सेठ केशवदेव सेकसरिया-स्मारक-ग्रन्थमाला—२

रेवातट

(पृथ्वीराज-रासो)

२७ वाँ समय

महाकवि चंद वरदाई कृत

सम्पादक

विपिन विहारी त्रिवेदी, एम्० ए० (कलकत्ता),
डी० फिल्० (कलकत्ता)

प्रकाशक

हिन्दी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

लखनऊ

सन् १९५३ ई०

प्रकाशक
हिन्दी-विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

मूल्य ६)

मुद्रक :
श्री रामचरनलाल श्रीवास्तव,
पवन प्रिंटिंग प्रेस, नजीराबाद, लखनऊ।

प्राक्कथन

कुछ वर्ष पूर्व लखनऊ विश्वविद्यालय की एम्० ए० कक्षाओं के लिये हमारे सम्मुख रासो-अध्यापन की समस्या उपस्थित हुई थी। उस समय मैंने अपने प्रिय शिष्य डॉ० श्री भगीरथ मिश्र को पद्मावती और रेवातट प्रस्तावों का एक संग्रह प्रस्तुत करने का परामर्श दिया था और उसके फलस्वरूप उन्होंने एक छात्रोपयोगी संग्रह प्रस्तुत करके अध्यापन कार्य को सुकर बना दिया था।

अब से लगभग पाँच वर्ष पूर्व हमारे विभाग में प्रस्तुत पुस्तक के रचयिता डॉ० श्री विपिन विहारी त्रिवेदी की नियुक्ति से हमें रासो का एक विशेषज्ञ प्राप्त हुआ। डॉ० त्रिवेदी ने "चन्दवरदायी और उनका काव्य" नामक निबन्ध प्रस्तुत करके कलकत्ता विश्वविद्यालय से डी० फिल० की डिग्री प्राप्त की है। उनके उक्त ग्रंथ को प्रयाग की हिन्दुस्तानी एकेडमी ने प्रकाशित भी कर दिया है। डॉ० त्रिवेदी द्वारा रासो के रेवातट समय पर स्वतंत्र रूप से किए गए विशेष अध्ययन का परिणाम आज प्रस्तुत ग्रंथ के रूप में हम पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर रहे हैं।

अपने सहयोगियों की प्रशंसा आत्मश्लाघा समझी जा सकती है, किन्तु मुझे यह कहते हुए अणुमात्र भी संकोच नहीं है कि प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन में डॉ० त्रिवेदी जी ने अथक परिश्रम तथा अदम्य उत्साह का परिचय दिया है। इस पुस्तक की कुछ प्रमुख विशेषताओं की ओर निर्देश कर देना यहाँ पर अप्रासंगिक न होगा।

ग्रंथ-सम्पादन का प्रथम कार्य पाठ-निर्धारण होता है। जबतक एक निश्चित पाठ ग्रहण नहीं कर लिया जाता अध्ययन का कार्य सुचारु रूप से नहीं चल सकता। इस कार्य के लिए यथासम्भव उपलब्ध ग्रन्थ सम्बन्धी सामग्री को देखना अनिवार्य हो जाता है। त्रिवेदी जी ने रासो (वृहत संस्करण) की प्रमुख उपलब्ध प्रतियों की सहायता लेकर उनके पाठान्तर प्रस्तुत करते हुए, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी वाली डॉ० ह्योर्नले संपादित प्रति के पाठ ग्रहण किए हैं, क्योंकि उसके पाठ सर्वाधिक शुद्ध हैं।

रासो की भाषा सम्बन्धी कठिनाई से तो पाठक परिचित हैं ही। इस

कठिनाई ने रासो के सर्व सुलभ बनने में सदैव व्यवधान खड़ा किया है। यह प्रसन्नता की बात है कि डॉ० त्रिवेदी ने प्रस्तुत ग्रंथ में एक एक शब्द को लेकर उसके विकास क्रम को स्पष्ट किया है और इस प्रकार अध्येता को पूर्ण निरवलम्बता प्रदान कर दी है। पाठक बिना किसी की सहायता के ग्रंथ को पढ़ और समझ सकते हैं।

रासो की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा उसकी प्रामाणिकता को लेकर निरन्तर विवाद चलते रहते हैं। डॉ० त्रिवेदी ने सम्पूर्ण विद्वन्-मण्डली के मतों का संग्रह करके एक ओर तो ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की परीक्षा की है और दूसरी ओर रासो के प्रक्षिप्त अंशों को दूर करने की आवश्यकता की ओर निर्देश किया है। हसननिज़ामी, मिन्हाजुस्सेराज़, फ़िरिश्ता, अब्दुलफ़ज़्ल, टॉड, बूलर, ह्योर्नले, ग्रियर्सन आदि प्राचीन तथा पाश्चात्य विद्वानों से लेकर आज तक के सम्पूर्ण विद्वानों द्वारा प्रस्तुत विचारों का उल्लेख उक्त विवेचन में कर दिया गया है।

चन्दकालीन भौगोलिक स्थिति पर भी लेखक ने विस्तृत विचार किया है। रेवातट समय में आये प्राचीन नगरों आदि पर टालमी, हैमिल्टन, कनिंघम आदि पाश्चात्य विद्वानों के आधार पर विचार किया गया है।

कथा-प्रसंग में पड़ने वाले अगणित संदर्भों तथा अन्तर्कथाओं की ओर लेखक ने व्यापक दृष्टि डाली है। वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत, वेद, उपनिषद्, कथासरित्सागर, पंचतंत्र, वैतालपंच-विंशतिका आदि तथा कितने ही अपभ्रंश ग्रन्थों की सहायता से अनेक कथासूत्र स्पष्ट कर दिए गए हैं और इस प्रकार अध्ययन को सुस्पष्ट बनाने के साथ-साथ मनोरंजकता भी प्रदान की गई है।

ज्योतिष तथा वैद्यक आदि विद्याओं से सम्बन्ध रखने वाली कितनी ही समस्याओं का बहुत ही स्पष्ट समाधान लेखक ने प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर किया है।

साहित्य-सौष्ठव तथा पिंगल-शास्त्र पर भी विस्तृत रूप से विचार किया गया है। रासो-काव्य-परम्परा, अपभ्रंश-रचना, रासो का महाकाव्यत्व तथा उसकी साहित्यिक विशेषताओं का मार्मिक दिग्दर्शन किया गया है।

इसमें सन्देह नहीं कि रासो के वैज्ञानिक अध्ययन का प्रयत्न पाश्चात्य विद्वानों ने आरम्भ किया था और इस दिशा में उनके परिश्रम की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है; भले ही उनके सम्पूर्ण निष्कर्ष सर्वमान्य न हो सके

हों; सारग्राहिणी प्रवृत्ति के अनुसार तो हमें उनके परिश्रम से लाभ उठाना ही चाहिए। मुझे प्रसन्नता है कि डॉ० त्रिवेदी ने इस प्रवृत्ति का परिचय दिया है। संसार में कोई भी कार्य पूर्ण नहीं कहा जा सकता; प्रस्तुत ग्रन्थ में भी त्रुटियाँ, अपूर्णताएँ हो सकती हैं, किन्तु अपने ढंग का यह पहला कार्य है, ऐसा कहते हुए मुझे संकोच नहीं है।

मुझे आशा है कि साहित्य प्रेमी संसार डॉ० त्रिवेदी की इस कृति को सहृदयता पूर्वक अपनाएगा और उनकी इस गम्भीर गवेषणापूर्ण कृति का समुचित समादर करके उन्हें प्रोत्साहित करेगा।

हम श्री शुभकरण जी सेक्सिरिया के परम आभारी हैं जिन्होंने अपने स्वर्गीय पिता और लघु भ्राता का चिरस्थायी स्मारक बनाने के हेतु लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग की ग्रन्थमालाओं के लिये आवश्यक निधि प्रदान की है। उनका यह कार्य अनुकरणीय है। प्रस्तुत पुस्तक 'सेठ केशवदेव सेक्सरिया स्मारक-ग्रन्थमाला' का द्वितीय पुष्प है।

डॉ० दीनदयालु गुप्त
एम्० ए०, डी० लिट्०
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय

दीनदयालु गुप्त

विषय-सूची

प्रथम भाग—

द्वितीय भाग—

चित्र-सूची—

प्रथम भाग

पृथ्वीराज चौहान तृतीय
(इंडियन म्यूज़ियम कलकत्ता के अधिकारियों के सौजन्य से)

भूमिका

बंगाल और लंदन की रॉयल एशियाटिक सोसाइटियों के त्रैमासिक-शोध-पत्रों के उन्नीसवीं शताब्दी के विविध अंकों में 'पृथ्वीराज रासो' पर प्राच्य-विद्या-विशारद श्री बीम्स, ग्राउज़ और डॉ० ह्योर्नले के लेखों ने इस विषय पर लगन लगाये इन विदेशियों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करके हृदय में अनुराग और प्रेरणा को जन्म दिया। कलकत्ता-विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के तत्कालीन अध्यक्ष श्री ललिताप्रसाद जी सुकुल एम० ए० ने न केवल प्रोत्साहित किया वरन् सारी कठिनाइयों को सदैव सुलझाते रहने का आश्वासन दिया और उक्त विद्यालय के आधुनिक वागेश्वरी प्रोफेसर डॉ० नीहार रंजन राय ने बंबई और बंगाल की एशियाटिक सोसाइटियो के संग्रहालयों से रासो की प्रतियाँ शीघ्र ही मेरे कार्य हेतु सेन्ट्रल-लायब्रेरी में संग्रहीत कर दी। तब तो प्रेरणा एक निष्ठा होकर कर्तव्य बन गई।

जिज्ञासा उठना स्वाभाविक था कि क्या हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वानों में रासो के प्रति अनुराग नही या वे संकोच अथवा किसी अवज्ञावश उसको साधारण पाठकों के लिये बोधगम्य नहीं बनाना चाहते? इतिहास की कसौटी पर खरा न उतरने के कारण साहित्यिकों की इस महाकाव्य के प्रति दुविधात्मक उपेक्षा तो कुछ समझ में आई परन्तु साहित्य की इस अनुपम पैतृक सम्पत्ति पर स्वाभाविक अनुराग होते हुए भी उनके मौन में संकोच निहित देख पड़ा। आगे बढ़कर आलोचनाओं का लक्ष्य कौन बने?

मैं नींव का एक तुच्छ पत्थर हूँ जो पृथ्वी के अंतराल में गड़ा रहता है तथा जिसकी ओर सहसा किसी का ध्यान नहीं जाया करता परन्तु उसकी भीत पर विश्व को चकाचौंध में डालने वाले भव्य प्रासाद का निर्माण होता है। उसी आगामी 'ताज' की प्रतीक्षा में रासो के 'रेवा-तट' का अपना प्रथम प्रयास मैं वाणी के हिन्दी-उपासकों को सादर अर्पित कर रहा हूँ।

सन् १६४१ ई० में प्रस्तुत 'समय' का कार्य समाप्त हो चुका था। तब से सन् १६५१ ई० तक इसकी पाण्डुलिपि सौभाग्य की प्रत्याशा में अपने दुर्भाग्य के दिन कई विश्व-विख्यात संस्थाओं की अलमारियों में बन्द रह कर काटती रही और मैं उनके बड़े नाम के प्रलोभन के भँवर-जाल में पड़ा रहा। हम हिन्दी लेखकों के जीवन में ऐसे क्षोभ और निराशा के क्षण एक आध बार नहीं आते वरन् एक बवंडर सदृश चारों ओर से ग्रस्त किये रहते हैं। अपना ख़ून-पसीना एक करके, मर मिटकर प्रस्तुत की हुई हमारी कृतियाँ, बीस-पच्चीस रुपये पारिश्रमिक स्वरूप और वह भी एहसान का बोझ लादते हुए, कुकुरमुत्ते की तरह छाये, हिन्दी लेखकों के रक्त-मांस के आधार पर अपने ऐहिक सुखों की निरन्तर अभिवृद्धि करने वाले व्यक्तिगत-प्रकाशक नामधारी कराल शोषक जन्तुओं के चंगुल से बच जावें तो महान सौभाग्य है। हिन्दी की बड़ी-बड़ी संस्थाओं में दलबंदी के कारण आये दिन पारस्परिक मुठभेड़ों से ही मुक्ति नहीं तब नये लेखक का पुरसाहाल कौन हो। इसी कशमकश में एक दशाब्द व्यतीत हो गया। अंततोगत्वा 'पंचतंत्र' की डपोरशंख वाली कथा का 'वदामि ददामि नो' उपदेश साकार हो उठा। अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के प्रलोभन के तिमिर-जाल का तिरोभाव हुआ और आकाश-पुष्प की वास्तविकता का रहस्य उद्घाटित हो गया। लखनऊ-विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष और प्रोफेसर डॉ० दीन दयालु जी गुप्त इस कार्य को सन् १६४२ ई० में ही देख चुके थे, उन्हीं के प्रोत्साहन के फलस्वरूप इसका प्रकाशन हो सका है।

'रेवा-तट' पर आने से पूर्व रासो सम्बन्धी कतिपय विवेचनायें विचारणीय हैं:

काव्य-सौष्ठव

हिंदी के आदि अथवा उत्तर कालीन अपभ्रंश के अंतिम महाकवि चंद वरदाई (चंद बलद्दिउ) का 'पृथ्वीराज रासो', १२ वीं शती के दिल्ली और अजमेर के पराक्रमी हिन्दू-सम्राट शाकम्भरी-नरेश पृथ्वीराज चौहान तृतीय तथा उनके महान प्रतिद्वंदी कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द्र गाहड़वाल, गुर्जरेश्वर भीमदेव चालुक्य और ग़ज़नी लाहौर के अधिपति सुलतान मुईज़ुद्दीन मुहम्मद बिन साम (शाह शहाबुद्दीन ग़ोरी) के राज्य, रीतिनीति, शासन-व्यवस्था, सैनिक, सेना, सेनापति, युद्धशैली, दूत, गुप्तचर, व्यापार, मार्ग आदि का एक प्रमाण, समता विषमता की शृंखलाओं से जुड़ा हुआ, ऐतिहासिक-अनैतिहासिक वृत्तों से आच्छादित, पौराणिक कथाओं से लेकर कल्पित कथाओं का अक्षय तूणीर, प्राचीन काव्य परम्पराओं तथा नवीन का प्रति-

पादक, भौगोलिक वृन्तों की रहस्यमयी गुफा, सहस्रों अज्ञात हिन्दू-मुस्लिम योद्धाओं के पराक्रम का मात्र कोष, प्राकृत-अपभ्रंश कालीन सार्थक अभिव्यंजना करने में क्षम सफल छंदों की विराट पृष्ठभूमि, हिन्दी गुजराती और राजस्थानी भाषाओं की संक्रांति कालीन रचना, गौड़ीय भाषाओं की अभिसंधि का उत्कृष्ट-निदर्शन, समकालीन युग का सांस्कृतिक प्रमाण, उत्तर भारत का आर्थिक मानचित्र, विभिन्न मतावलंबियों के दार्शनिक तत्वों का आख्याता, युगीन शकुन-अपशकुन, मंत्र-तंत्र, अंधविश्वास आदि की जंत्री तथा मानव की चित्त-वृत्तियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषक यह अपने ढंग का एक अप्रतिम महाकाव्य है परन्तु हिन्दी रचनाओं में संभवत: सबसे अधिक विवादग्रस्त है।

पाश्चात्य लेखकों की पढ़ाई इस पट्टी पर कि हिन्दुओं के यहाँ मुस्लिमों की अपेक्षा इतिहास लिखने की कोई पद्धति नहीं थी, योरोपीय विद्वान् और उनके भारतीय अनुगामी रासो की परीक्षा करने बैठे क्योंकि उसकी परंपराओं की छाप न केवल परवर्ती साहित्य पर थी वरन् राजस्थान के उत्तर कालीन इतिहास को भी उसने प्रभावित कर रक्खा था। इधर दुर्भाग्यवश इस महाकाव्य का प्रणेता कर बैठा था अक्षम अपराध ऐतिहासिक काव्य लिखने का। फिर तो उस बेचारे की कृति का पोस्टमार्टम परम आवश्यक हो गया और बाल की खाल खींचकर रासो को अनैतिहासिक सिद्ध करनेवाले प्रमाण ख़ुर्दबीन लगाकर ढूँढ़े गये।

सर्व प्रथम जोधपुर के मुरारिदान (चारण) ने (जे० आर० ए० बी० बी० एस०, सन् १८७६ ई० में) और फिर उदयपुर के कविराजा श्यामलदास (चारण) ने (जे० आर० ए० एस० बी०, सन् १८८७ ई० में) चंद (भट्ट) के रासो पर शंका उठाई परन्तु चारणों और भाटों के जातीय द्वेष की दुर्गन्धि का आरोप लगने के कारण इनके तर्कों को अधिक बल न मिला। सन् १८७५ ई० में प्रो० बूलर को पृथ्वीराज के दरबार में कुछ वृत्ति तथा सम्मान पाये हुए काश्मीरी जयानक द्वारा प्रणीत 'पृथ्वीराज-विजय-महाकाव्य' की ताड़पत्र-लिखित एक अधूरी प्रति काश्मीर के हस्तलिखित ग्रन्थों की शोध करते समय प्राप्त हुई थी, जिसके अध्ययन का सार निकालते हुए उनके शिष्य डॉ० हर्बर्ट मोरिसन ने (वियना ओरियंटल जर्नल, सन् १८९३ ई० में) उसे वंशावली, शिलालेख, घटनाओं आदि के आधार पर ऐतिहासिक और रासो को इन्हीं आधारों तथा एक बड़ी फारसी शब्दों की संख्या के कारण अनैतिहासिक घोषित किया तथा मुरारिदान और श्यामलदास के मत की पुष्टि

की। डॉ० बूलर अपने शिष्य की नवीन शोध से स्वाभाविक ही प्रभावित हो रॉयल एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल को (प्रोसीडिंग्ज़, जे० आर० ए० एस० बी०, जन० दिसं० १८९३ ई०) पत्र लिख बैठे—'चंद के रासो का प्रकाशन बंद कर दिया जाय तो अच्छा होगा। वह ग्रंथ जाली है।' इस पत्र की प्रतिक्रिया शीघ्र हुई और सोसाइटी में इस अनूठे काव्य के सुचारु मनन और अध्ययन में लगे हुए श्री बीम्स, ग्राउज़ और डॉ० ह्योर्नले जैसे मेधावी विद्वान् विरत हो गए तथा रासो की भूरि-भूरि प्रशंसा (मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान, पृ० ३-४ में) करने वाले डॉ० सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन की मति फिर गई (प्रोसी०, जे० आर० एस० बी०, १८९३ ई०)। पं० मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या, कुँवर कन्हैया जू, बाबू श्यामसुन्दर दास और मिश्रबन्धु पर रासो के पक्षपात के अभियोग लगे। इस समय तक रासो को अनैहातिसिक सिद्ध करने वालों का पक्ष मुंशी देवीप्रसाद (ना० प्र० प०, भाग ५, सन् १९०१ ई०, पृ० १७०) और महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा (कोशोत्सव स्मारक संग्रह, सन् १९२८ ई०, पृ० २९-६६) ने ले लिया था। 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' और उसके प्रणेता की बखिया उधेड़ने वाले (सरस्वती, नवंबर १९३४ ई०, जून १९३५ ई० और अप्रैल १९४२ ई०) महामहोपाध्याय पं० मथुरा प्रसाद दीक्षित ने अपने विविध लेखों द्वारा रासो को चंद की अधिकारी रचना सिद्ध करने का भरसक उद्योग किया परन्तु इन साहित्यकारों की आवाज़ इतिहासकारों के आगे नक्कारख़ाने में तूती की आवाज़ बन कर रह गई। रासो के ऐतिह्य पर संदेह प्रकट करने वालों ने इतिहास विरोधी बातों का रासो से संकलन करके दस-पाँच अकाट्य तर्क पेश किये परंतु साहित्यकारों को कवि चंद का साहित्यिक उत्तराधिकारी मान बैठने वालों के न्यायालय में क्या इतना सौजन्य न था कि वे यह भी बतलाते कि इस काव्य में ऐतिहासिक तथ्य कितने हैं। रासो की ऐतिहासिक विवेचनाओं की विशाल राशि के संतुलन में अनैतिहासिक तत्व नगण्य सिद्ध होंगे, जिनका परवर्ती प्रक्षेप होना भी असंभव नहीं है, यह एक साहित्यसेवी के नाते मेरा विनम्र प्रस्ताव है।

फारसी इतिहासकारों के साक्ष्य पर रासो और उसके रचयिता पर छींटे कसने वाले ही नहीं वरन् 'टामस क्रानिकल्स' उल्लिखित ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित पृथ्वीराज के सिक्कों के बायीं ओर (पट पर) 'हमीर' (< अ० अमीर) शब्द देखकर लगे हाथ भारतीय शौर्य के प्रतीक चौहान के चरित्र पर भी सुलतान ग़ोरी की अधीनता स्वीकार करने का आरोप लगाने वाले, अपनी

सुप्रसिद्ध पुस्तक 'दि फाउंडेशन आव दि मुस्लिम रूल इन इंडिया' (१९४५ ई०) के लेखक, इस समय ढाका विश्वविद्यालय के 'इस्लामी संस्कृति विभाग' के प्रोफेसर, डॉ० ए० बी० एम० हबीबुल्ला यह बताना क्यों भूल गये कि ये सिक्के मुहम्मद-बिन-साम (ग़ोरी) की हत्या के उपरांत ग़ज़नी में ताजुद्दीन-याल्दुज़ ने अपने ग़ाज़ी स्वामी के सन्मान में ढलवाये थे [(क्वायन्स आव ग़ज़नावाइड्स ऐन्ड ग़ोरियन्स), हिस्ट्री आव इंडिया, इलियट ऐंड डासन, भाग २, अपेंडिक्स डी, नोट ई]। कुतुबुद्दीन ऐबक के सिक्के नहीं मिलते। अनुमान है कि याल्दुज़ के ढलवाये सिक्के ही ऐबक के शासन काल में चलते रहे जिनमें से पृथ्वीराज और जयचन्द्र के कुछ दिल्ली-संग्रहालय में इस समय सुरक्षित हैं। यह भूलने का विषय नहीं कि कुतुबुद्दीन ऐबक के दरबारी हसन् निजामी का 'ताजुल-म आसिर' और दिल्ली के सुलतान नासिरुद्दीन द्वारा सम्मानित मिनहाजुस्सिराज का 'तबकाते नासिरी' द्वेष और असहिष्णुता से अतिरंजित हैं। सन् ११९२ ई० के तराईं वाले युद्ध के १३ वर्षों बाद अर्थात् सन् १२०५ ई० में जिस वर्ष इतिहास के अनुसार सुलतान ग़ोरी की हत्या हुई थी 'ताजुल-म आसिर' की रचना प्रारंभ हुई थी और इलियट (वही, भाग २, पृ० २०५) का कथन है कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उस पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। 'ताज' में लिखा है कि अजमेर का राय वंदी बना लिया गया परन्तु उसके प्राण नहीं लिये गये, फिर एक षड्यंत्र में उसका हाथ पाकर उसका सिर उड़ा दिया गया (वही, इलियट, भाग २, पृ० २१५)। मिनहाज ने 'तबक़ाते नासिरी' में लिखा है कि मुईनुद्दीन नामक व्यक्ति ग़ोरी की सेना के साथ ११९२ ई० के तराईं वाले युद्ध में था, उसने बताया कि पिथौरा अपने हाथी से उतर कर एक घोड़े पर चढ़ कर भागा परन्तु सरस्वती के समीप पकड़ा गया और मौत के घाट उतार दिया गया (वही, इलियट, भाग २, पृ० २९७)। पृथ्वीराज की मृत्यु को लेकर सी० वी० वैद्य (हिस्ट्री आव मेडीवल हिंदू इंडिया, भाग ३, पृ० ३८५) और डॉ० हेमचन्द्र (डाइनेस्टिक हिस्ट्री आव इंडिया, भाग २) के निष्कर्षों पर हरताल फेरने वाले हबीबुल्ला ऐतिहासिक भीत तो न उठा सके, अपने द्वेष की छाप अवश्य छोड़ गये। कुँवर देवीसिंह ने दिल्ली-संग्रहालय के एच० नेलसन राइट के सूचीपत्र में मुहम्मद ग़ोरी के एक चाँदी के सिक्के के पट की ओर 'श्री मुहम्मद बीन साम और चित भाग पर 'श्री पृथ्वी राजा देव' नागरी लिपि में लिखे होने की चर्चा (ना० प्र० प०, वर्ष ५७, अंक १, सं० २००९ वि०, पृ० ५९-६० में) करते हुए अपना निष्कर्ष निकाला है—'पृथ्वीराज तराईं के युद्ध में

मारा नहीं गया, केवल वंदी बना लिया गया था और इसीसे उसके नाम का उपयोग हो सका।' अनुमान है कि याल्दुज़ के ग़ज़नी वाले सिक्कों की भाँति ये सिक्के भी ग़ोरी की मृत्यु के बाद उसके सम्मानार्थ ढाले गये होंगे। परमेश्वरीलाल गुप्त ने (ना० प्र० प०, वर्ष ५७, अंक २-३, सं० २००६ वि०, पृ० २७०-७३ में) लिखा है कि इस प्रकार का सिक्का केवल एक ही ज्ञात है और यह टकसाल के अधिकारियों की भूल से छप गया है अस्तु देवीसिंह की यह कल्पना कि पृथ्वीराज तराईं के युद्ध में वंदी बना लिये गये थे ग्राह्य नहीं जान पड़ती। 'सिक्का एक ही है और भूल से छप गया है'—यह प्रमाण संगत नहीं प्रतीत होता। देवीसिंह का निर्णय रासो की बात का प्रतिपादन करता है कि तराईं वाले युद्ध में पृथ्वीराज वंदी बनाये गये थे। रासो के अनुसार ग़ोरी को चौदह बार वंदी बनाने वाले पृथ्वीराज उससे उन्नीसवें युद्ध में स्वयं वंदी हुए और ग़जनी में चंद की सहायता से शब्दवेधी बाण द्वारा सुलतान को उसके दरबार में मार कर स्वयं आत्मघात करके मृत्यु को प्राप्त हुए। 'पृथ्वीराज प्रबंध' में वर्णित है कि सुलतान को 'एवं बार ७ बद्ध्वा बद्ध्वा मुक्तः, करदश्च कृतः' पृथ्वीराज अंतिम युद्ध में अपने मंत्री प्रतापसिंह के षड़यंत्र के कारण वंदी किये गये और पुनः उसी के षड़यंत्र से उन्होंने सुलतान की लौह-मूर्ति पर बाण मारा जिसके फलस्वरूप उन्हें पत्थरों से भरे गढ़े में ढकेल कर मार डाला गया (पुरातन प्रबंध संग्रह, पृ० ८६-७)। साहित्यिक भावनाओं से आवृत्त रासो के वृत्तांत में सत्य का अंश अवश्य ही गुम्फित है, ऐसा अनुमान करना अनुचित न होगा।

सन् १९३६ ई० में बम्बई से एक सिंह गर्जन हुआ (पुरातन प्रबंध संग्रह, प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० ८-१०)। जैन-ग्रंथागारों में सुरक्षित पृथ्वीराज और जयचंद्र के संस्कृत प्रबंधों में आये चंद बलद्दिउ (चंद वरदाई) के अपभ्रंश छंदों के आधार पर जिनमें से तीन सभा वाले रासो में किंचित् विकृत रूप में वर्तमान हैं, विश्वविख्यात वयोवृद्ध साहित्यकार मुनिराज जिनविजय ने घोषणा की है कि पृथ्वीराज के कवि चंद वरदाई ने अपनी मूल रचना अपभ्रंश में की थी। इस गर्जन से स्तम्भित होकर चंद वरदाई तक के अस्तित्व को अस्वीकार कर देने वाले इतिहासकार चुप हो गये, गुम-सुम, खोये हुए से, किसी नवीन तर्क की आशा में शिलालेखों और ताम्रपत्रों की जाँच में संलग्न। ख़ैरियत ही हुई कि शिलालेख मिल गये, नहीं तो कौन जानता है पृथ्वीराज, जयचन्द्र और भीमदेव का व्यक्तित्व भी इन इतिहासकारों की प्रौढ़ लेखनियों ने ख़तरे में डाल दिया होता। ये कभी कभी भूल जाते हैं

कि इनके ऐतिहासिक सिद्ध करने वाले तत्वों द्वारा दिये गये प्रमाणों के अभाव में लिखित साहित्य से ही नहीं वरन् लौकिक साहित्य के आधार तक से भी इतिहास का कलेवर भरा जाता है। रासो अपने ऐतिह्यों का मूल्यांकन करने के लिये फिर उनसे माँग कर रहा है और यदि उन्होंने पक्षपात को न अपनाया तो कल्हण की 'राज तरंगिणी' सदृश रासो भी उन्हीं के द्वारा एक अपवाद मान लिया जायगा।

मुनिराज जिनविजय की रासो की वार्ता संबंधी चार अपभ्रंश छंदों की शोध ने जहाँ एक ओर डॉ० दशरथ शर्मा को 'राजस्थान भारती' में प्रकाशित अपने कई लेखों में यह दिखाने के लिये प्रेरित किया कि अपभ्रंश और प्राचीन राजस्थानी में अति अल्प अंतर है तथा मूल रूप में उत्तर-कालीन-अपभ्रंश रचित 'पृथ्वीराज-रासो' का विकृत रूप ना० प्र० स० वाला प्रकाशित रासो है वहाँ दूसरी ओर मोतीलाल मेनारिया ने (राजस्थान का पिंगल साहित्य, सन् १९५२ ई०, पृ० ३७—३८ में) लिखा—"जिस प्राचीन प्रति में ये छप्पय मिले हैं वह सं० १५२८ की लिखी हुई है। इससे मालूम पड़ता है कि चंद नामक कोई कवि प्राचीन समय में, कम से कम सं० १५२८ से पहले हुआ अवश्य है। परंतु वह चंद कब हुआ, कहाँ हुआ, वह किस जाति का था, उसने क्या लिखा इत्यादि बातों का कुछ पता नहीं है। अत: उस चंद का अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो से सम्बन्ध जोड़ना अनुचित है। क्योंकि इसकी भाषा स्पष्ट बतलाती है कि यह विक्रम की १८ वीं शताब्दी से पूर्व की रचना नहीं है।" परन्तु 'पृथ्वीराज-प्रबंध' में चंद का नाम मात्र ही नहीं है वरन् उसकी भट्ट जाति का भी उल्लेख है तथा पृथ्वीराज के ग़ोरी से अंतिम युद्ध में उसके एक गुफा में वंदी होने का भी वर्णन है। इसके अतिरिक्त पृथ्वीराज और जयचन्द्र का बैर, पृथ्वीराज का अपने मंत्री कइंबास (कैमास) दाहिम को बाण से मारना और वंदी होने पर सुलतान के ऊपर बाण चलाना भी वर्णित है। ये सभी बातें प्रकाशित रासो में वर्तमान हैं तथा इन प्रबंधों के तीन छप्पय भी उसमें विकृत रूप में पाये जाते हैं। 'जयचंद्र प्रबंध' में आये दो छप्पय चंद के नहीं वरन् उसके पुत्र 'जल्हुकइ' (जल्ह कवि) के हैं जो रासो के अनुसार चंद का सबसे श्रेष्ठ पुत्र था और जिसे (पुस्तक जल्हन हस्त दै चलि गज्जन नृप काज) रासो की (पुस्तक समर्पित करके कवि पृथ्वीराज के कार्य हेतु ग़ज़नी गया था। इतने प्रमाणों की उपेक्षा कैसे की जा सकती है? जहाँ तक भाषा का प्रश्न है यह किसी रासो प्रेमी से नहीं छिपा कि उसका एक बड़ा अंश एक विशेष प्रकार की प्राचीन हिंदी भाषा में है।

ऐतिहासिक वाद विवादों के कोलाहल से दूर, ताम्रपत्रों की नीरस जाँच से पृथक तथा वंशावलियों, पट्टे परवानों और शिलालेखों के द्वंद से अलग 'पृथ्वीराज रासो' हिंदी साहित्यकारों की अमूल्य विरासत है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से यह एक अनूठी रचना है। विविध चीर-फाड़ अंततः इसके लिये हितकर ही हुई और अनेक मर्मज्ञ इसका रसास्वादन करने के लिये उन्मुख हुए।

इस काव्य के आदि (सत्त सहस नष सिष सरस; १—६०) तथा अंत (सहस सत्त रूपक सरस;६७-५०) में कवि ने स्पष्ट लिख दिया है कि रासो में सात हज़ार रूपक हैं परन्तु ना० प्र० स० द्वारा प्रकाशित रासो की वृहत् वाचना में ६६ समय और १६३७६ छंद पाये जाते हैं। इस प्रकार देखते हैं कि रासो का आकार मूल से सवा दो गुना अधिक बढ़ गया है। पंजाब विश्वविद्यालय के डॉ० वूलनर द्वारा विज्ञापित रासो की रोटो वाली प्रति या मध्यम वाचना में आर्या छंद की गणना के हिसाब से छंद संख्या लगभग ७००० है, बीकानेर और शेखावटी (जयपुर) की रासो की लघु वाचना में १६ समय हैं और छंद संख्या ३५०० है तथा गुजरात के धारणोज गाँव की लघुतर वाचना वाली प्रति में छंद संख्या १३०० है। ये तीनों संस्करण अभी तक प्रकाशित नहीं हुए हैं परन्तु जहाँ तक ऐतिहासिक आक्षेपों का प्रश्न है वे इनमें भी अंशतः वर्तमान हैं। प्रकाशित रासो में प्रक्षेपों के घटाटोप की संभावना को भलीभाँति जानते हुए भी वर्तमान स्थिति में उन्हें पृथक करने की कठिनाई के कारण उस संपूर्ण सामग्री को काव्य की कसौटी पर लाने के लिए वाध्य होना पड़ता है।

वस्तु-वर्णन

काव्यों में विस्तृत विवरण के दो रूप होते हैं—एक वस्तु वर्णन द्वारा और दूसरा पात्र द्वारा भावाभिव्यंजना से। वस्तु वर्णन की कुशलता इतिवृत्तात्मक अंश को बहुत कुछ सरस बना देती है। रासो में ऐसे फुटकर वर्णनों का ताँता लगा हुआ है जिन्हें कवि ने वर्णन विस्तार हेतु चुना है। संक्षेप में उनका उल्लेख इस प्रकार है :

व्यूह-वर्णन—भारत की हिन्दू सेनाओं का व्यूह बद्ध होकर लड़ने का विवरण मिलता है और कभी-कभी मुस्लिम सेना को भी किसी भारतीय व्यूह को अपनाये युद्ध करता हुआ बतलाया गया है। व्यूह-वर्णन के ढङ्ग की परम्परा कवि को महाभारत से मिली प्रतीत होती है। एक चक्रव्यूह का प्रसंग देखिये जिसके वर्णन के अन्त में बड़े काव्यात्मक ढंग से कवि कहता है कि अरुणोदय होते ही रण का उदय हुआ, दोनों ओर के सुभटों ने तल-

वारें खींच लीं, फिर युद्ध रूपी सरोवर में तलवारों रूपी हिलोरें उठीं और हंसात्मा रूपी कमल खिल उठे :

> इम निसि वीर कढिय समर, काल फंद अरि कढ्ढि ।
> होत प्रात चित्रंग पहु, चक्राव्यूह रचि ठढ्ढि ॥ ७०
> समर सिंह रावर । नरिंद कुण्डल अरि घेरिय ॥
> एक एक असवार । बीच बिच षाइक फेरिय ॥
> मद सरक तिन अग्ग । बीच सिल्लार सु भीरह ॥
> गोरंधार विहार । सोर छुट्टै कर तीरह ॥
> रन उदै उदै बर अरुन हुअ । दुहू लोह कढ्ढी बिभर ॥
> जल उकति लोह हिल्लोर । कमल हंस नंचै सु सर ॥७१, स० ३६

लगभग तत्कालीन फ़ारसी इतिहासकारों ने हिन्दू सेना को बिना किसी ढंग के अस्त-व्यस्त युद्ध करने वाला वर्णन किया है तथा अपने पक्ष की युद्ध-शैली का विवरण देते हुए कहीं यह उल्लेख नहीं किया है कि उनमें भारतीय-युद्ध-पद्धति कभी अपनाई जाती थी ।

नगर-वर्णन—अनेक नगरों, ग्रामों और दुर्गों का उल्लेख करने वाले इस महाकाव्य में अन्हलवाड़ा पट्टन, कन्नौज, दिल्ली और ग़ज़नी के वर्णन विस्तृत हैं जो संभवतः युगीन चार प्रतिनिधि शासकों की राजधानियाँ होने के कारण किये गए प्रतीत होते हैं । इन वर्णनों को अनुमान या काव्य-परंपरा के आधार पर नहीं किया गया है वरन् इनमें एक प्रत्यक्षदर्शी का सा अनुभव सन्निहित है । पट्टनपुर के वर्णन का एक अंश देखिये :

> तिन नगर पहुच्यौ चंद कवि । मनों कैलास समाष लहि ॥
> उपकंठ महल सागर प्रबल । सघन साह चाहन चलहि ॥ ५०
> सहर दिष्षि अंषियन । मनहु बद्दर वाहनु दुति ॥
> इक चलंत आवंत । इक ठलवंत नवन भति ॥
> मन दंतन दंतियन । इला उप्पर इल भारं ॥
> विप भारथ परि दंति । किए एकठ व्यापारं ॥
> रजकंब लष्ष दस बीस बहु । दोइ गंजन बादह पर्यौ ॥
> अनेक चीर सूपरु फिरंग । मनों मेर कंठै भरयौ ॥ छं० ५१, स० ४६

पनघट-वर्णन—श्रीमद्भागवत् में यमुना तट पर की हुई कृष्ण की लीला के वर्णन ने कालांतर में क्रमशः साहित्य में पनघट वर्णन की परंपरा का सृजन किया होगा । रासोकार ने भी पनघट की चर्चा की है । पट्टनपुर

और वहाँ की सुन्दरियों का वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि अप्सराओं जैसी कामिनियाँ कामदेव के रथ से उतर कर अपने घड़े भर रहीं थीं :

भरे जु कुंभयं घनं, इला सु पानि गंगनं।
असा अनेक कुंडनं, ...॥ ५६
सरोवरं समानयं, परीस रंभ जानयं।
बतक्क सार संमयं, अनेक हंस क्रम्मयं॥ ५७
भरै सु नीर कुंभयं, ...।
अरुढ काम रथ्थयं, सु उत्तरी समथ्थयं॥ ५८, स० ४२

कन्नौज में ·जर्जरित (चौथे प्रहर की) रात्रि में घट लिये हुए, कूलों पर पट डाले, गंगा तट पर एक सुन्दरी को विचरण करते देख कवि ने उक्ति की कि यह मुक्ति-तीर्थ पर काम-तीर्थ का हथलेवा (पाणिग्रहण) है :

जरित रयन घट सुंदरी, पट कूरन तट सेव।
मुगति तिथ्थ अरु काम तिथ, मिलहि हथह हथलेव॥ ३२३

तदुपरांत कवि की पैनी काव्य-दृष्टि रूप-सौंदर्य का चित्र खींच देती है—'दो सुवर्ण शृंगों को जिनके कंठ प्रदेश पर भौंरे क्रीड़ा कर रहे हैं उन्हें पुष्प सदृश कामराज के प्रसन्नतार्थ पूजा करने के हेतु लिये है, उसके उदर में त्रिवली है और वहीं उसकी कटि में घंटियों का मधुर स्वर हो रहा है। इस प्रकार अनंग के रंग की भीर वाली उस सुन्दरी और मुक्ति का त्रिवेणी पर मेल हुआ है' :

उभय कनक सिंभं भृंग कंठीव लीला।
पुहप पुनर पूजा विप्रवे कामराजं॥
त्रिवलिय गंगधारा मद्धि घंटीव सबदा।
मुगति सुमति भीरे नंग रंग त्रिवेनी॥ ३२४

थोड़ा और आगे बढ़कर देखा कि चंचल नेत्रों वाली चपल तरुणियाँ तथा अपने दृष्टिपात से चित्त हरण करने वाली सुन्दरियाँ सुवर्ण कलशों को झकोर कर गंगा-तट पर जल भर रहीं थीं—

द्रिग चंचल चंचल तरुनि, चितवत चित्त हरंति।
कंचन कलस झकोरि कैं, सुंदरि नीर भरंति॥ ३३८

इसी स्थल पर कवि ने भावी रोमांस का शिलान्यास करते हुए नारी-सौंदर्य का लुभावना चित्र खींचा है। जयचंद की सुन्दरी दासियाँ अभी जल ही भर रहीं थीं कि अचानक उनमें से एक का घूँघट सरक गया और सामने सौंदर्य के सागर पृथ्वीराज दिखाई पड़ गये। फिर क्या था, हाथ का सोने

का घड़ा हाथ में ही रह गया, घूँघट खुला का खुला रहा, वाणी रुँध गई, उरोजों के तट प्रदेश पर प्रस्वेद कण झलक उठे, होंठ काँपने लगे, आँखों में जल भर आया, जड़ता और आलस्य के लक्षण जृंभा और स्वेद प्रकट हो गये, गति शिथिल हो गई। सात्विक काम विकारों से चौंक कर वह सुन्दरी भाग गई और भागते-भागते पृथ्वीराज को निहारती गई, खाली घड़ा गंगा-तट पर पड़ा रह गया :

दरस त्रियन दिल्ली नृपति सोभ्रन घट पर हथ्थ।
बर घूँघट छुटि पट्ट गौ सटपट परि मनमथ्थ॥
सटपट परि मनमथ्थ भेद बच कुच तट श्रेदं।
उष्ट कंप जल द्रगन लग्गि जंभायत भेदं॥
सिथिल सु गति लजि भगति गलत पुंडरि तन सरसी।
निकट निजल घट तजै मुहर मुहरं पति दरसी॥ ३७०, स० ६१

पनघट-वर्णन भारतीय कवियों की नारी-रूप-सौंदर्य वर्णन की प्रतिभा के निखार का एक अच्छा अवसर प्रस्तुत करता आया है। सूफ़ी कवि जायसी ने 'पदमावत' में शुक मुख द्वारा सिंहलद्वीप का वर्णन कराते हुए पनघट की हंसगामिनी, कोकिल वयनी सुन्दरी पनिहारिनों की भी चर्चा कराई है जिनके शरीर से कमल की सुगन्धि आने के कारण भौंरे साथ लगे फिरते थे। चन्द्र-मुखी, मृगनयनी बालाओं ने पनघट पर ही बूढ़े आचार्य केशव को बाबा संबोधन करके उनकी अतृप्त-काम-तृष्णा को ठेस पहुँचाई थी और कवि इस विडंबना के प्रत्यक्ष-मूल-कारण अपने निर्जीव श्वेत केशों की भर्त्सना कर उठा था। रीति-कालीन कवियों ने अपनी काफ़ी प्रतिभा पनघट के दृश्य-वर्णन में ख़र्च की है।

विवाह-वर्णन—रासो में कई विवाहों का उल्लेख है परन्तु दो विवाह 'इंच्छिनि व्याह' और 'प्रिथा व्याह' विस्तृत रूप से दो स्वतंत्र प्रस्तावों में वर्णित हैं। इनमें हमें ब्राह्मण द्वारा लग्न भेजने से लेकर तिलक, विवाह हेतु यात्रा और बारात, अगवानी, तोरण, कलश, द्वारचार, जनवासा, कन्या का शृंगार, मंडप, मंगल गीत, गाँठ बंधन, गणेश, नवग्रह, कुलदेवता, अग्नि, ब्राह्मण आदि के पूजन, शाखोच्चार, कन्यादान, भाँवरी, ज्योनार, दान, दहेज, विदाई और वधू का नख-शिख सभी विस्तार पूर्वक पढ़ने को मिलते हैं। ये विवाह साधारण व्यक्तियों के नहीं वरन् तत्कालीन युग के प्रमुख शासकों पृथ्वीराज और चित्तौड़-नरेश रावल समरसिंह (सामंतसिंह) के हैं अतएव इनमें हमें राजसी ठाट-बाट और अनुकूल दान-दहेज का वर्णन मिलता है।

हिन्दू के जीवन के सोलह संस्कारों में विवाह प्रथा भी एक है और इस परम रूढ़िवादी जाति ने अपनी परंपराओं में साधारणत: परिवर्तन स्वीकार नहीं किए हैं; रासो में जो दो चार कहीं-कहीं दिखाई भी पड़ जाते हैं वे मूल में प्रादेशिकता के योग मात्र हैं। कन्या के शृंगार-वर्णन में कवि को पुष्पों, वस्त्रों और आभूषणों की एक संख्या देने का अवसर भी मिल गया है।

नल-दमयंती, कृष्ण-रुक्मिणी, ऊषा-अनिरुद्ध आदि के विवाहों की परंपरा के दर्शन पृथ्वीराज के शशिवृता और संयोगिता के साथ विवाहों में होते हैं। शुक-मुख द्वारा पूर्वराग से प्रारम्भ होकर और अंत में विलक्षण रीतियों से हरण और युद्ध का बड़ा ही सजीव चित्र कवि ने खींचा है तथा अपनी बुद्धि और मौलिकता से इन प्रसंगों को अत्यंत सरस बना गया है।

युद्ध-वर्णन—रासो जैसे वीर-काव्य में इनकी दीर्घ संख्या होना स्वाभाविक है। ये वर्णन विस्तृत तो हैं ही परन्तु साथ ही वर्णन कुशलता और अनुभूति के कारण अपना प्रभाव डालने में पूर्ण समर्थ हैं। कवि की प्रतिभा का योग योद्धाओं के उत्साह की सुन्दर अवतारणा करा सका है। 'कर्म-बंधन को मिटाने वाले, विधि के विधान में संधि कर देने वाले, युद्ध की भयंकर विषमता से क्रीड़ा करके रण-भूमि में अपने शरीर को सुगति देने वाले, बलवान और भीष्म शूर सामंत स्वामी के कार्य में मति रखने वाले हैं। स्वामि-कार्य में लगकर इन श्रेष्ठ मति वालों के शरीर तलवारों से खंड-खंड हो जाते हैं और शिव उनके सिर को अपनी मुंडमाला में डाल लेते हैं' :—

सूर संधि विहि करहि। क्रम्म संधी जस तोरहि॥
इक्क लष्ष आहुटहि। एक लष्षं रन मोरहि॥
सुबर बीर मिथ्था। विवाद भारथ्थह षंडै॥
विच्चि वीर गजराज। वाद अंकुस को मंडै॥
कलहंत केलि काली विषम। जुद्ध देह देही सुगति॥
सामंत सूर भीषम बलह। स्वामि काज लग्गेति मति॥ ७२०
स्वामि काज लग्गे सुमति। षंड षंड धर धार॥
हार हार मंडै हियै। गुथ्थि हार हर हार॥ ७२१, स० २५

ज्योनार-वर्णन—के मिस कवि ने विधि-विधि के भोजनों की अपनी जानकारी प्रदर्शित करने का अवसर पाया है। परन्तु जायसी और सूदन की भाँति उसका वर्णन खटकने वाला नहीं है। राजा के भोज में पारुस का विधिवत् वर्णन इस प्रकार किया गया है कि वह प्रधान कथानक का अंग बन गया है। महाराज पृथ्वीराज के राजसी ठाट-बाट के औचित्य का निर्वाह करते हुए

कवि ने युग के खाद्य पदार्थों पर यथेष्ट प्रकाश डाला है। 'धुओं से पारुस प्रारम्भ हुई तथा नाना प्रकार की मिठाइयाँ परोसी जाने लगीं....नाना प्रकार की चबाने योग्य वस्तुयें आईं, इसके बाद तरकारियाँ और दूध में बनी हुई भाँति-भाँति के अनेक चीज़ें परोसी गईं....नाना प्रकार के शाक और दालें आईं....अंत में थोड़ी क्षुधा शेष रहने पर पछावर की परुस प्रारम्भ हुई :

पूप अनूप परूस पुनि, पुरी सुष्पपुरि मेलि।
ललित लूचई लै चलै, ऊँच रती बिधि बेलि ॥७२

भरि पीठि भीतर लोन सिलाय, कचौरिय मेलि चले दुजराय।
घरे निसराज सिषा जनु फेरि, धरे ढ़िग बातर भाँवर हेरि ॥७३
सु तेवर घेवर पैसल पागि, लषे चष फेरि गई उर आगि।
जलेबनि जेब कहै कवि कौन, महा मधु माठ मिटावन मौन ॥७४, स० ६३

स्त्री-भेद-वर्णन—'काम सूत्र' और 'रति मंजरी' आदि में विवेचित काम के आधार पर चार प्रकार के स्त्री भेद—पद्मिनी, चित्रिनी, हस्तिनी, और संखिनी के वर्णन करने का अवसर रासो जैसे युद्ध और शृंगार काव्य का रचयिता क्यों न पाता। उसके पूर्ववर्तियों ने भी इनके वर्णन किये थे और एक प्रकार से इसे शृंगार-काव्य में वर्णन परंपरा का अंग बना दिया था। रासो की 'पद्मिनी' देखिये :

कुटिल केस पदमिनी। चक्र हस्तन तन सोभा ॥
स्निग्ध दंत सोभा विसाल। गंध पद्म आलोभा ॥
सुर समूह हंसी प्रमांन। निद्रा तुछ जंपै ॥
अलप वाद मित काम। रत्त अभया भय कंपै ॥
धीरज्ज छिमा लच्छिन सहज। असन बसन चतुरंग गति ॥
आवंक लोइ लग्गै सहज। कांम बांन भूलंत रति ॥१२६, स० ६३

षट्ऋतु-बारह मास-वर्णन—रासो के 'देवगिरि समय' में वर्षा और शरद का चित्रण है और ये वर्णन पृथ्वीराज द्वारा यादव कुमारी की प्राप्ति-हेतु-विरह में संचारी रूप में आये हैं। पुरुष-विरह-हेतुक ये वर्णन ऋतु विशेष के स्पष्ट सूचक भी हो सके हैं। षट् ऋतुओं और उनमें प्राकृतिक उद्दीपन होने के कारण वियोगियों की व्यथा का प्रभावोत्पादक वर्णन करने का अवसर कवि ने 'कनवज्ज खंड' स० ६१ में युक्ति से खोजा है। पृथ्वीराज कन्नौज जाने के लिए कटिबद्ध हैं परन्तु विपक्षी प्रबल है अस्तु वहाँ से कुशल पूवक लौट आने में शंका है इसलिए वे अपनी पटरानी इंच्छिनी से आज्ञा लेने के लिए

उसके महल में जाते हैं। यह वसंत ऋतु है और रानी वसंत का आगमन और उसमें अपना विरह निवेदन करके राजा को रोकती है :

यामंगं कलधूत नूत सिषरं, मधुरे मधू वेष्टिता।
वाते सीत सुगंध मंद सरसा, आलोल संचेष्टिता ॥
कंठी कंठ कुलाहले मुकलया, कामस्य उद्दीपने।
रत्ते रत्त वसंत मत्त सरसा, संजोग भोगायते ॥६

इसी प्रकार के चार छै छंद और सुनने पर राजा वसंत भर उसके पास रुक गये। ग्रीष्म ऋतु के आगमन पर वे रानी पुंडीरिनी से जाने की अनुमति लेने जाते हैं। पुंडीरिनी उनसे ग्रीष्म में दिनों की दीर्घता, दाघ का कोप, अनंत बवंडर, रात्रि में मार्ग-गमन, जल की अदृश्यता, तपे हुए शरीर को चंदन द्वारा शीतलता, चन्द्रमा की मंद ज्योत्स्ना आदि का वर्णन करके उन्हें उक्त ऋतु भर अपने पास ठहरने के लिए कहती है :

दीहा दिघ्घ सदंग कोप अनिला, आवर्त मित्ता करं।
रेनं सेन दिसान थान मिलनं, गोमग्ग आडंबरं ॥
नीरे नीर अपीन छीन छपया, तपया तरुया तनं।
मलया चंदन चंद मंद किरनं, ग्रीष्मं च आषेवनं ॥१८

पूर्वानुसार कुछ छंद सुनने पर राजा अभिभूत होकर उसके पास रुक जाते हैं और वर्षा ऋतु आ जाती है। उस युग में वर्षा में यात्रायें नहीं होती थीं और "जाना आवश्यक होने पर पथिक जन घोड़ों के स्थान पर नावों से यात्रा करते थे—

दिसि पावासुय थक्किय णियकज्जागमिहिं,
गमियइ णाविहिं मग्गु पहिय ण तुरंगमिहिं ॥१४२;संदेश-रासक।"

फिर भी ऋतु-वर्णन की आयोजना तो कवि कर ही चुका था अस्तु पृथ्वीराज वर्षा आने पर रानी इन्द्रावती के घर जाते हैं जो प्रिय का गमन सुनकर दुःख में भर जाती है और उमड़ते हुए आँसुओं सहित उत्तर देती है ;

पीय वदन सो प्रिय परषि ! हरष न भय सुनि गोंन।
आसू मिसि असु उप्पटै। उत्तर देय सलोन ॥२६....
जे बिज्जुझ्झल फुट्टि तुट्टि तिमिरं, पुन अंधनं दुस्सहं।
बुंदं घोर तरं सहंत असहं, वरषा रसं संभरं ॥
बिरहीनं दिन दुष्ट दारुन भरं, भोगी सरं सोभनं।
मा मुक्के पिय गोरियं च अबलं, प्रीतं तया तुच्छया ॥३५

बारहवीं शती के जिनपद्म सूरि ने अपने 'थूलिभद्दफाग' में वर्षा काल में कामीजनों को अपनी रमणियों के चरणों में गिर कर उन्हें मनाने का वर्णन किया है :

झिरमिरि झिरमिरि झिरमिरि ए मेहा वरिसंति ।
खलहल खलहल खलहल ए बादला वहंति ।।
झबझब झबझब झबझब ए बीजुलिय झबक्कइ ।
थरहर थरहर थरहर ए विरहिणि मणु कंपइ ।। ६ ।।
महुर गंभीर सरेण मेह जिमि जिमि गाजंते ।
पंचबाण निय-कुसुम-बाण तिम तिम साजंते ।।
जिम जिम केतकि महमहंत परिमल विहसावइ ।
तिम तिम कामिय चरण लग्गि निय रमणि मनावइ ।। ७।।

अस्तु ग्रीष्म में रानी पुंडीरिंनी के महल में 'काम रूप करि गय नृपति' रसिक पृथ्वीराज वर्षा में ऋतु की प्रेरणा से इन्द्रावती के महल में क्यों न जाते।

तदुपरांत 'वरिखा रितु गई सरद रितु वलती, वाखाणिसु वयणा वयणि' (वेलि) ऐसी सुंदर शरद ऋतु के आने पर राजा ने रानी हंसावती से पूछा और उसने उक्त ऋतु का वर्णन करते हुए कहा कि हे कांत शरद बड़ी दारुण होने से असह्य है, इससे भवन त्याग कर गमन मत करो—

द्रप्पन सम आकास । श्रवत जल अमृत हिमकर ।।
उज्जल जल सलिता सु । सिद्धि सुंदर सरोज सर ।।
प्रफुलित ललित लतानि । करत गुंजारव भंमर ।।
उदित सित्त निसि नूर । अंगि अति उमगि अंग बर ।।
तलफंत प्रान निसि भवन तन । देषत दुति रिति मुष जरद ।।
नन करहु गवन नन भवन तजि । कंत दुसह दारुन सरद ।।४२

वैसे शरद ऋतु में राजा-गण अभियान के लिये सन्नद्ध हो जाते थे परंतु हंसावती के लिये 'सरदाय दरदायने' पाकर पृथ्वीराज ठहरने के लिये विवश हो गये ।

फिर हेमंत ऋतु आई, राजा को हंसावती से छुटकारा मिला और वे रानी कूरंभी के महल की ओर विदा लेने के लिये बढ़े । उसने कहा—'दिन छोटे होने लगे, रात्रि बढ़ने लगी, शीत का साम्राज्य छा गया, स्त्री पुरुष अनंग के आलिंगन पाश में आबद्ध होकर शय्या की शरण लेने लगे, इस ऋतु में हिम जिस प्रकार कमलिनी को जला डालता है उसी प्रकार वह वियोगिनी

तरुणी बाला को भी कवलित कर लेता है अतएव इस हेमन्त में अपनी प्रमदा को निरावलम्ब छोड़कर मत जाओ। और मानव शरीर के दो ही धर्म हैं—भोग या योग, चाहे वनिता का सेवन करे चाहे वन का, चाहे पंचाग्नि की साधना करे चाहे उरोजों की उष्णता से अपना शारीरिक शीत निवारण करे, चाहे गिरि कंदराओं का जलपान करे चाहे अधरों का रस पिये, चाहे योग की निद्रा के मद में अलसित रहे चाहे सुंदर वस्त्र धारण करे, चाहे अनुराग त्याग दे और चाहे राग से मन रँग ले तथा चाहे पर्वतीय झरनों के कलकल से प्रीति करे चाहे स्त्री के मधुर वचनों में अनुरक्त हो। इस ऋतु में विराट विश्व का त्राण इन्हीं विधियों के द्वारा हो सकता है तथा "सुर और असुर भी ये ही मार्ग ग्रहण करते हैं' :

छिन्नं बासुर सीत दिघ्घ निसया, सीतं जनेतं बने।
सेजं सज्जर बानया बनितया, आनंग आलिंगने॥
यों बाला तरुनी वियोग पतनं, नलिनी दहनते हिमं।
मा मुक्के हिमवंत मन्त गमने, प्रमदा निरालम्बनं॥४९....
देंह धरे दोगत्ति। भोग जोगह तिन सेवा॥
कै वन कै बनिता। अगनि तप कै कुच लेवा॥
गिरि कंदर जल पीन। पियन अधरारस भारी॥
जोगिनीद मद उमद। कै छगन वसन सवारी॥
अनुराग बीत कै राग मन। बचन तीय गिर झरन रति॥
संसार विकट्ट इन विधि तिरय। इही विधी सुर असुर अति॥५१

फिर राजा को कुछ द्रवित होता देखकर रानी रोमावली रूपी वनराजि और कुच रूपी पर्वतों का प्रसंग चला कर उनके कंठ से लग गई—

रोमावलि वन जुथ्थ। वीच कुच कूट मार गज॥
हिरदै उजल विसाल। चित्त आराधि मंडि सज॥
विरह करन झीलई। सिद्ध कामिनी डरप्पै॥
तो चलंत चहुआन। दीन छंडै पै रुप्पै॥
हिमवंत कंत मुक्कै न त्रिय। पिया पन्न पोमिनि परषि॥
ग्राह कंठ कंठ ऊठन अवनि। चलत तोहि लगिवाय रूष॥५२

अब पृथ्वीराज क्या करते? राठौर नरेश ने 'वेलि' में लिखा है—'नीठि छुडै आकास पोस निसि, प्रौढा करखण पङ्गुरण' अर्थात् पौष की रात्रि से आकाश रूपी पति बड़ी कठिनाई से छूटता है जैसे रात्रि के

अवसान में प्रौढ़ा नायिका द्वारा खींचा जाता हुआ नायक का वस्त्र। अस्तु राजा को रुक जाने के अतिरिक्त और मार्ग न था।

हेमन्त ऋतु व्यतीत होने पर शिशिर का आगमन हुआ और राजा छठी रानी (?) के महल में उसकी अनुमति लेने गये। वही भला कब छोड़ने वाली थी! शिशिर का रूप खड़ा करने के साथ उसने मानव-व्यापारों की शरण ली और राजा को रोक लिया—

रोमाली वन नीर निद्ध चरयो, गिरिदंग नारायने।
पब्बय पीन कुचानि जानि मलया, फुंकार भुंकारए॥
सिसिरे सर्वरि वारूनी च विरहा माहद्द मुव्वारए।
मांकंते म्रिगबद्ध मध्य गमने, किं दैव उचारए॥६२

इस प्रकार पृथ्वीराज ने षट्-ऋतुयें छै रानियों के साथ सहवास सुख में व्यतीत कीं और फिर वसन्त आ गया। कवि ने जिस प्रकार यह ऋतु-वर्णन करने का प्रसंग कौशल पूर्वक ढूँढ़ा उसी प्रकार बड़ी नाटकीयता से उसे समाप्त भी किया। छै ऋतुओं के बारह मास काम-सुख में बिताकर राजा ने चन्द से पूछा कि हे कवि, वसन्त फिर आ गया, वह ऋतु मुझे बताओ जिसमें स्त्री को अपना प्रियतम नहीं अच्छा लगता :

षट रिति बारह मास गय। फिरि आयौ रु बसंत॥
सो रिति चंद बताउ मुहि। तिया न भावै कंत॥७३

चंद ने स्त्री के पति-प्रेम की महिमा बखानते हुए 'ऋतु' शब्द पर श्लेष करके उत्तर दिया :

जौ नलिनी नीरह तजै। सेस तजै सुरतंत॥
जौ सुबास मधुकर तजै। तौ तिय तजै सु कंत॥७४
रोस भरै उर कामिनी। होइ मलिन सिर अंग॥
उहि रिति त्रिया न भावई। सुनि चुहान चतुरंग॥७५

कथा के इस प्रसंग में षट्-ऋतुओं का रोचक वर्णन पढ़ने को मिलता है। यद्यपि उद्दीपन को लेकर ही इसकी रचना हुई है परन्तु यह रासोकार के ऋतु विषयक ज्ञान, प्रकृति-निरीक्षण, मानवी-व्यापारों की अनुरंजना और वर्णन-कौशल का परिचायक है। 'संदेश रासक' की विरह-विधुरा प्रोषितपतिका का ऋतु-विरह-वर्णन, 'वस्तु-वर्णन' का प्रसंग न होकर विरह-संदेश-पूर्ण प्रधान-कथानक था और वहाँ कवि अद्दहमाण (अब्दुल रहमान) ने ऋतुओं का सांगोपांग वर्णन किया है। रासोकार की न तो वैसी योजना थी और न वैसा कथानक

ही फिर भी उसे यथेष्ट सफलता प्राप्त हुई है। रासो का प्रस्तुत ऋतु-वर्णन सूफी कवि जायसी के पदमावत के 'षट्-ऋतु-वर्णन और नागमती-वियोग-खंड' के वर्णन के समान ईश्वर से मिलन और वियोग की प्रतीकता का मिस नहीं, भक्त तुलसी के मानस के किष्किधाकाण्ड की वर्षा और शरद के वर्णन की भाँति नीति और भक्ति आदि का उपदेशक नहीं, राठौर नरेश पृथ्वीराज के खंड-काव्य 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' के ऋतु-वर्णन सदृश गहरा और व्यापक नहीं तथा सेनापति के स्वतंत्र ऋतु-वर्णन की तरह अलंकारों से बोझिल, उखड़ा हुआ और रूखा नहीं फिर भी उसमें अपना ढंग और अपना आकर्षण है तथा मुख्य-कथानक से उसे जोड़ने का कवि-चातुर्य परम सराहनीय है।

नख-शिख और शृंगार वर्णन—इनके बारह प्रसंग हैं जिनमें से अधिकांश में पृथ्वीराज से विवाहित होने वाली राजकुमारियों का सौंदर्य वर्णित है। देवगिरि की यादव कुमारी शशिवृता का सौंदर्य-वर्णन कवि की पैठ का परिचय देते हुए उसके सरस हृदय का पता देने वाला है तथा सबसे विस्तृत और विशद नख-शिख कन्नौज की राजकुमारी संयोगिता का है। इन प्रकरणों में स्नान से वर्णन प्रारम्भ करके, केश धोने, उबटन लगाने, वेणी गूँथने, मोती बाँधने, विंदी देने तथा विभिन्न आभूषण धारण करने के साथ-साथ नख-शिख वर्णन भी मिश्रित है। कहीं एक छप्पय छंद में ही सारा नख-शिख दे दिया गया है :

चंद वदन चष कमल। भौंह जनु भ्रमर गंध रत ॥
कीर नास बिंबोष्ठ। दसन दामिनी दमकत ॥
भुज म्रनाल कुच कोक। सिंह लंकी गति वारुन ॥
कनक कंति दुति देह। जंघ कदली दल आरुन ॥
अलसंग नयन मयनं मुदित। उदित अनंगह अंग छिहि ॥
आनी सुमंत्र आरंभ बर। देषत भूलत देव जिहि ॥२४९, स० १२

और कहीं विस्तृत रूप में है। प्रसिद्ध उपमानों के अतिरिक्त नवीन सफल और असफल उपमानों की भी योजना है। इन वर्णनों में चमत्कारिक रूपकों का समावेश भी मिलता है।

समुद्र-मंथन से निकले हुए चौदह-रत्नों का आरोप संयोगिता के अवयवों पर करके कवि ने अपनी मौलिक सूझ-बूझ की छाप लगाई है। 'संयोगिता का रूप (अप्सरा) रंभा के समान है, गुण लक्ष्मी के समान और वचन अमृत सदृश (मधुर तथा जीवन दाता) हैं, उसकी लज्जा विष-तुल्य है, उसके अंगों की सुगन्धि पारिजात का बोध कराती है, उसकी ग्रीवा (पांचजन्य) शंख

के समान है, मुख चन्द्रमा के समान, चंचलता उच्चैश्रवा की भाँति, चाल ऐरावत सदृश, योवन सुरा की तरह मदहोश करने वाला, (पृथ्वीराज की इच्छाओं को पूरा करने वाली) वह कामधेनु सदृश है, उसके शील को धन्वंतरि और कौस्तुभमणि की भाँति समझो तथा उसकी भौंह को सारंग के समान जानो

जिहि उदद्धि मथ्थए। रतन चौदह उद्धारे॥
सोइ रतन संजोग। अंग अंगं प्रति पारे॥
रूप रंभ गुन लच्छि। वचन अमृत विष लज्जिय॥
परिमल सुरतरु अंग। संष ग्रीवा सुभ सज्जिय॥
बदन चंद चंचल तुरंग। गय सुगति जुब्बन सुरा॥
धेनह सु धनंतरि सील मनि। भौंह धनुष सज्जौं नरा॥ २१६, स० ६६

वय:संधि अवस्था बालाओं के जीवन में सौंदर्य-विकास की एक अप्रतिम घटना और अद्भुत व्यापार है। रासोकार ने इसका कुशल चित्रण किया है। ये अधिकांश वर्णन कहीं भी मुक्तक रूप से प्रयुक्त किये जा सकते हैं—

ज्यों करकादिक मकर मैं। राति दिवस संक्रांति॥
यों जुब्बन सैसव समय। आनि सपत्तिय कांति॥ ४१
यों सरिता अरु सिंध सँधि। मिलत दुहून हिलोर॥
त्यों सैसव जल संधि में। जोवन प्रापत जोर॥ ४२, स० ४७

कबंध-युद्ध-वर्णन—रामायण के कबंध राक्षस की मृत्यु के उपरांत विश्वावसु गंधर्व का जन्म, महाभारत में संसार के प्राणियों के विनाशकारी अशुभ चिह्न स्वरूप असंख्य कबंधों का खड़ा होना और पुराणों की राहु के अमर कबंध की गाथा ने क्रमश: साहित्य में कबंधों के युद्ध करने की परम्परा डाली होगी। रासो जैसे वीर-काव्य में उनकी अनुपस्थिति किंचित् आश्चर्यजनक होती। कबंधों के युद्ध अद्भुत-रस का परिपाक करते हुए वीर और रौद्र भावों को उत्तेजना देने वाले हैं। एक स्थल देखिए :

लरत सीस तुट्यौ सु सर। धर उठ्यौ करि मार॥
घरी तीन लौं सीस बिन। कट्टे तीस हजार॥ २२५३
बिन सीस इसी तरवारि बहै। निघटै जनु सावन घास महै॥
धर सीस निरास हुअंत इसे। सुभ राजनु राह रुकंत जिसे॥ २२५४, स० ६१

अन्य-वर्णन—मुख्य कथानक छोड़कर रासो में हमें अनेक वर्णन मिलते हैं जिनमें से कुछ का लगाव प्रधान कथा से बड़े ही सूक्ष्म तंतुओं से जुड़ा

हुआ है। इन वर्णनों को हटा देने से कोई बाधा पड़ने की संभावना भी नहीं है। महाभारत, भागवत और भविष्य-पुराण आदि के आधार पर राजा परीक्षित के तक्षक-दंशन, जनमेजय के नाग-यज्ञ और आबू पर्वत के उद्धार तथा दशावतार की कथा ऐसे ही प्रसंग हैं। इनके अतिरिक्त अन्य छोटे स्थलों की भी एक संख्या है तथा पृथ्वीराज की जिज्ञासा पूर्ति हेतु कवि द्वारा समाधान किये गए अनेक मनोहर उपाख्यान जुड़े हुए हैं जो उसकी जानकारी, अनुभव, प्रत्युत्पन्नमति तथा विशाल अध्ययन के परिचायक हैं। इनमें विनोद की मात्रा भी यथेष्ट है।

वस्तुओं के विस्तृत वर्णन और व्यापार मनुष्य की रागात्मिका वृत्ति के आलम्बन हैं तथा इनसे भिन्न-भिन्न स्थायी-भावों की उत्पत्ति होने के कारण इनमें रसात्मकता का पूरा आभास मिलता है। पाश्चात्य महाकाव्यों में रस के स्थान पर वस्तु-वर्णन को ही प्रधानता दी गई है।

भावाभिव्यंजना

रासो युद्ध-प्रधान काव्य है और पृथ्वीराज-सदृश वीर योद्धा का जीवन-वृत्त होने के कारण इसमें उस समय की आदर्श वीरता का चित्रण मिलता है। क्षात्र-धर्म और स्वामि-धर्म निरूपण करने वाले इस काव्य में तेजस्वी क्षत्रिय वीरों के युद्धोत्साह तथा तुमुल और बेजोड़ युद्ध दर्शनीय हैं। असार संसार में यश की श्रेष्ठता और प्रधानता को दृष्टिगत करके उसकी प्राप्ति स्वामि-धर्म पालन में निहित की गई है। स्वामि-धर्म की अनुवर्तिता का अर्थ है प्रतिपक्षी से युद्ध में तिल-तिल करके कट जाना परन्तु मुँह न मोड़ना। इस प्रकार स्वामि-धर्म में शरीर नष्ट होने की बात को गौण रूप देकर यश सिरमौर कर दिया गया है। और भी एक महान प्रलोभन तथा इस संसार और सांसारिक वस्तुओं से भी अधिक आकर्षक भिन्न लोक-वास तथा अनन्य सुन्दरी अप्सराओं की प्राप्ति है। धर्म-भीरु और त्यागी योद्धा के लिए शिव की मुंडमाला में उसका सिर पोहे जाने तथा तुरन्त मुक्ति-प्राप्ति आदि की व्यवस्था है। "कर्म-बन्धन को मिटाने वाले, विधि के विधान में संधि कर देने वाले, युद्ध की भयंकर विषमता से क्रीड़ा करने वाले भीष्म सूर सामंत स्वामी (पृथ्वीराज) के कार्य में मति रखने वाले हैं, स्वामि-कार्य में लगकर इन श्रेष्ठ मति वालों के शरीर तलवारों के वारों से खंड-खंड हो जाते हैं और शिव उनके सिरों को अपनी मुंडमाला में डाल लेते हैं। क्षत्रिय शरीर का केवल स्वामि-धर्म ही साथी है जो कर्मों के भोग से छुटकारा दिला सकता है। शूर सामन्तों का स्वामि-धर्म धन्य है क्योंकि वे लड़ना और मरना ही जानते हैं।"—इस प्रकार के विचारों से रासो ओतप्रोत है। उस युग की वीरता का यह आदर्श कि

स्वामि-धर्म ही प्रधान है कोरा आदर्श मात्र न था। उसका संस्थापन सेना की सामूहिक दृढ़ता और स्थायित्व तथा विशेष रूप से उसकी युद्धोचित प्रवृत्ति की जागरूकता को ध्यान में रखते हुए अति आवश्यक अनुशासन (discipline) को लेकर हुआ था। अनुशासन ही सेना और युद्ध की प्रथम आवश्यकता है। आदि काल से लेकर आज तक सेना में अनुसाशन की दृढ़ता रखने के लिए नाना प्रकार के नियमों का विधान पाया जाता है। यहाँ आज्ञाकारिता को दासता से जोड़ना ठीक नहीं है क्योंकि उस युग में किराये के टट्टुओं (mercenaries) से भारतीय सम्राटों की सेनायें नहीं सजाई जाती थीं। युद्ध क्षत्रियों का व्यवसाय था और स्वामि-धर्म हेतु प्राणोत्सर्ग करना उनका कर्तव्य था। यहाँ दासता और धन के लोभ का प्रश्न उठाना तत्कालीन वीर-युग की भावना को समझने में भूल करना है। सम्राट या सेनापति की आज्ञापालन के अनुशासन को चिरस्थायी और व्रतस्वरूप बनाने के लिए स्वामि-धर्म का इतना उत्कट प्रचार किया गया था कि वह सामान्य सैनिकों की नसों में कूट-कूट कर भर गया था और इसी आदर्श की रक्षा में उनके कट मरने का कार्य दुहाई दे रहा है। दार्शनिक जामा पहने हुए स्वामि-धर्म योद्धा का परम आभूषण था।

इस प्रकार के वातावरण में रहते हुए, प्रतिदिन ऐसे ही विचारों और दृढ़ विश्वासों के संघट्टन में पड़कर तत्कालीन योद्धा की अंतर्मुखी वृत्ति असार संसार में यश की अमरता और स्वामि-धर्म के प्रति जागरूक हो जाती होगी, तभी तो हम देखते हैं कि युद्ध-काल इन योद्धाओं के लिए अनिर्वचनीय आनंद के क्षण उपस्थित करता था। लड़कर मर मिटने वाले इन असीम साहसी योद्धाओं के उद्‌गार कितने प्रभावशाली हैं और साथ ही इनका वीरोचित उत्साह भी देखते ही बनता है :

(१) करतार हथ्थ तरवार दिय। इह सु तत्त रजपूत कर ॥
(२) रजपूत मरन संसार बर ॥
(३) सूर मरन मंगली ॥
(४) मरना जाना हक्क है। जुग्ग रहेगी गल्हां ॥
सा पुरुसाँ का जीवना। थोड़ाई है भल्लां ॥
(५) जीविते लभ्यते लक्ष्मी मृते चापि सुरांगणा।
क्षणे विध्वंसिनी काया का चिन्ता मरणे रणे ॥
(६) जीवंतह की रति सुलभ। मरन अपच्छर हूर ॥
दो हथान लड्डू मिलै। न्याय करै बर सूर ॥

(७) ता छत्री कुल लज्ज । छत्र धरि सिर हति लज्जै ॥
(८) धार तित्थ बर आदि । तित्थ कासी सम भज्जै ॥
असि बरुना तिन मध्य । लोह तेजं सम गज्जै ॥

सात सौ वर्षों से जनता के कंठ में प्रतिध्वनित होने वाले जगनिक के 'आल्हा-खंड' में भी मृत्यु से खेल करने वाले १२वीं शताब्दी के क्षत्रियों की वीरोचित वाणी सुनाई देती है :

(१) मरना मरना है दुनियाँ मा । एक दिन मरि जैहै संसार ॥
स्वर्ग मढ़ैया सब काहू कै । कोऊ आज मरै कोउ काल ॥
खटिया परि कै जो मरि जैहौ । कोउ न लैहै नाम अगार ॥
चढ़ी अनी पै जो मरि जैहौ । तौ जस रहै देस मैं छाय ॥
जो मरि जैहौ खटिया परि कै । कागा गिद्ध न खैहैं माँस ॥
जो मरि जैहौ रन खेतन मैं । तुम्हरो नाम अमर होइ जाय ॥
मरद बनाये मरि जैबे कौ । औ खटिया पै मरै बलाय ॥
(२) बारह बरिस लै कूकर जीयैं । औ तेरह लौं जियैं सियार ॥
बरस अठारह क्षत्रिय जीवैं । आगे जीवन कै धिक्कार ॥

जैसे इस समय के योद्धा थे वैसी ही शूर भावों की पोषक उनकी पत्नियाँ, मातायें, बहनें और बेटियाँ भी थीं । इस शौर्य-काल में ही उन प्रेयसियों के उदाहरण मिलते हैं जो पेट की आँतें निकलकर पैरों में लग जाने पर और कंधों से सिर कट जाने पर भी हाथ से कटार न छोड़ने वाले योद्धा की बलिहारी जाती हैं :

पाइ विलग्गी अंत्रडी सिरु ल्हसिउ खन्धस्सु ।
तो वि कटारइ हत्थडउ बलि किज्जउँ कन्तस्सु ॥ सिद्धहेम०

अथवा जिन्हें विश्वास है कि यदि शत्रु की सेना भग्न हो गई तो उनके प्रिय द्वारा ही और यदि अपनी नष्ट हो गई तो प्रियतम मारा गया है :

जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि मज्झु पिएण ।
अह भग्गा अम्हहं तणा तो तें मारिअडेण ॥ सिद्धहेम०

इस युग की रमणियाँ ही गौरी से वरदान माँग सकती हैं कि इस जन्म में तथा अन्य जन्मों में भी हमें वह कांत देना जो अंकुशों द्वारा त्यक्त मदांध गजराजों से हँसता हुआ भिड़े :

आयहिं जम्महिं अन्नहिं वि गोरि सु दिज्जहि कन्तु ।
गय मत्तहँ चत्तङ्कुसहं जो अब्भिडइ हसन्तु ॥ सिद्धहेम०

युद्ध की सुरा में झूमता हुआ क्षत्रिय योद्धा उस प्रिय देश को

जाना चाहता है जहाँ खड्ग के ख़रीदार हैं, रण के दुर्भिक्ष ने उसे भग्न कर रक्खा है और बिना जूझे हुए वह नहीं रह सकता :

खग्ग बिसाहिउ जहिं लहहुं पिय तहिं देसहिं जाहुं।
रण दुब्भिक्खें भग्गाइं विणु जुज्झें न वलाहुं ॥ सिद्धहेम०

कायरों में भी वीरता फूँक देने वाले इस युग को हमारे साहित्यिकों ने उचित ही 'वीरगाथा-काल' नाम दिया है और हमारा 'पृथ्वीराज-रासो' अपने युग के वीरों की वीरोचित गाथा से परिपूर्ण है। जाति-गौरव के लिये निजी हित-अहित की अवमानना करने वाले, भारतीय मान-मर्यादा के रक्षक, हिंदू-शासन का आदर्श रूप से पालन करने वाले, प्राचीन संस्कृति के पोषक राजपूत योद्धाओं ने शत्रु को पीठ नहीं दिखाई, जातीय सम्मान के लिये प्राण होम दिये, वचन का निर्वाह किया, सब कुछ उत्सर्ग करके शरणागत की रक्षा की, निशस्त्र, आहत, निरीह और पलायन करने वाले शत्रु पर हाथ नहीं उठाया, धोखा नहीं दिया, प्रतारणा नहीं की, झूठ नहीं बोले, विश्वासघात नहीं किया और युद्ध में स्त्री-बच्चों पर हाथ नहीं उठाया। वे मिट गये, उनके विशाल साम्राज्य ध्वस्त हो गये परन्तु राजपूती आन, बान और शान भारतीय इतिहास में सदा के लिये स्वर्णाक्षरों में लिख गई। 'आल्हाखंड' की 'माँडौ की लड़ाई' में आदर्श शूरत्व, अमित युद्धोत्साह, दमित स्वार्थ, शमित मोह और जीवन की बाज़ी फेंकने वालों की ललकार देखिये :

चोट अगाऊ हम न खेलैं। ना भागे के परैं पिछार ॥
हा हा खाते को ना मारैं। नाहीं हुक्म चँदेले क्यार ॥
चोट आपनी राजा करि लेउ। मन के मेटि लेहु अरमान ॥

'पृथ्वीराज-रासो' सरीखे वीरगाथात्मक काव्य में वीररस खोजने का प्रयास नहीं करना पड़ता। ये स्थल अपने-आप ही हमारे सामने आते रहते हैं और हमारा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। आलंबन, उद्दीपन, अनुभाव और संचारियों की अंगों और उपांगों सहित योजना युद्धवीर रस को प्रसवित करती हुई अपनी उत्साह-भंगिमा द्वारा दूसरों को भी प्रभावित करती है। एक स्थल देखिये :

हयग्गयं सजे भरं। निसांन बज्जि दूभरं ॥
नफेरि बीर बज्जई। मृदंग झल्लरी गई ॥३५
सुनंत ईस रज्जई। तनीस राग सज्जई ॥
सुभेरि भुंकयं घनं। श्रवन्न फुट्टि झंझनं ॥३६....

उषाह मध्य ते चले। सगुन्न वंदि जे भले ॥
ससूर सूरयं कलं। दिनं सु अष्टमी चलं ॥५४, स० ७

इस प्रसंग के विशद स्थल वे हैं जहाँ सावयव रूपक के सहारे कवि ने युद्धोत्साह की व्यंजना की है। देखिये—'श्रेष्ठ योद्धा सुलतान ग़ोरी रूपी समुद्र में पंग रूपी ग्राह का भय लगा हुआ था। चौहान की वहाँ देवता रूप में शोभा हुई। उन्होंने युद्ध का परवाना हाथ में ले लिया और शत्रु से भिड़ने के लिये चामंडराय, जैतसिंह तथा बड़गूजर के साथ सुंदर वट के आकार में अपनी चतुरंगिणी सेना सजाई। फिर तो युद्ध-भूमि में रक़ाभ तलवार रूपी कमल खिल उठे' :

समुद रूप गोरी सुबर। पंग ग्रेह भय कीन ॥
चाहुआन तिन बिबध कै। सो ओपम कवि लीन ॥
सो ओपम कवि लीन। समर कग्गद लिय हथ्थं ॥
भिरन पुच्छि बट सुरँग। बंधि चतुरंग रजथ्थं ॥
समर सु मुक्कलि सोर। लोह फुल्यो जस कुमुदं ॥
रा. चावंड जैतसी। रा बड़ गुज्जर समुदं ॥५५, स०२६

शूरवीरों के सिरताज महाराज पृथ्वीराज और उनके सामन्तगण आदर्श योद्धा थे। उन्होंने हिन्दुओं की अनुकरणीय वीरता की प्राचीन पद्धति और नियमों का अपूर्व पालन किया है। स्त्रियों पर वार न करने, गिरे हुए घायलों और पीठ दिखाने वालों को न मारने आदि के नियमों का यथेष्ट संयम-पूर्वक उनके द्वारा निर्वाह रासो में मिलता है। परन्तु इन सबसे बढ़कर जो बात पृथ्वीराज ने कर दिखाई वह भी इतिहास की एक अमर कहानी है। वह है रासो के अनुसार चौदह बार और 'पृथ्वीराज-प्रबंध' के अनुसार सात बार शत्रु को प्राण-दान और प्राण-दान ही नहीं वरन् ऐसे प्रबल शत्रु को जो, कई बार अपमानित और दंडित होकर भी फिर-फिर आक्रमण करता था, वंदी बनाने के उपरांत मुक्त कर दिया और मुक्त ही नहीं वरन् आदर-सत्कार के साथ उसे उसके घर भिजवाया। भारत के इतिहास का राजपूत-काल ही ऐसी वीरता के नमूने पेश करने में समर्थ है।

उत्साह और रति की मैत्री अस्वाभाविक है तथा एक स्वर से काव्य-शास्त्र के आचार्यों द्वारा ठुकराई गई है परन्तु रासो में इनके मेल के कई स्थल हैं। यह कहना बिलकुल कठिन नहीं है कि इन विरोधी रसों के सामंजस्य की परंपरा रासो-काल की धरोहर थी, जो जायसी आदि परवर्ती कवियों को जागीर रूप में मिली। बारहवीं शताब्दी में विशेषत: उत्तर-पश्चिम

भारत के शासकों और क्षत्रिय योद्धाओं के जीवन में अनवरत रूप से युद्ध होने के कारण उनमें युद्धोत्साह और रति के शाश्वत उभार स्वाभाविक रूप से देखे गये जिनका प्रतिबिम्ब साहित्य में साकार हुआ। शास्त्र द्वारा अविहित होते हुए परन्तु सामन्ती जीवन में प्रत्यक्ष रूप से उन्हें घटित होता देखकर कवि का मन वास्तविकता के चित्रण का लोभ संवरण न कर सका। आये दिन होने वाले युद्धों का मोर्चा सम्हालने का उत्साह अक्षुण्ण रखने के लिये यदि उसने अपने वीर आश्रयदाता और उसके पक्षवालों की हित कामना से रति जैसी कोमल भावनाओं के अंतर्गत युद्धोत्साह सरीखी कठोर भावनाओं का सामंजस्य कर दिया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। पृथ्वीराज और संयोगिता की रति-क्रीड़ा को रति-वाह की युद्ध-क्रीड़ा का रूप देने की चेष्टा ऐसे ही प्रसंगों में है :

लाज गढ्ढ लोपंत। बहिय रद सन ढक रज्जं॥
अधर मधुर दंपतिय। लूटि अब ईव परज्जं॥
अरस प्ररस भर अंक। षेत परजंक षटक्किय॥
भूषन टूटि कवच्च। रहे अध बीच लटक्किय॥
नीसान थान नूपुर बजिय। हाक हास करषत चिहुर॥
रति वाह समर सुनि इंछिनिय। कीर कहत बत्तिय गहर॥१४१, स० ६२

रासो में जो स्थिति उत्साह की है वही क्रोध की भी है। युद्धकाल के सभी प्रसंगों में अबाध रूप से उसकी कुशल अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। कहीं-कहीं उसके साथ जुगुप्सा भी है :

बज्जे बज्जन लागि दल उभै हंकि जगि वीर।
विकसे सूर सपूर बढ़ि कंपि कलत्र अधीर॥२२६
छुट्टियं हथ नारि दुअ दल गोम व्योमह गज्जियं।
उड्डियं आतस झार झारह धोम धुंधर सज्जियं॥२२७....
छुट्टियं बान कमान पानह छाह आयस रज्जियं।
निरष्षंत अच्छरि सूर सुब्बर सज्जि पारथ मज्जियं॥
परि सीस हक्कहि धर हहक्कहि अंत पाइ अलुझ्झरं।
उठि उट्टि क्ककसि केस उक्कसि सांइ सुथ्थल जुझ्झरं॥२३१, स०५८

रौद्र रस के प्रसंग में कवि ने सांग रूपक के माध्यम से अनेक श्रेष्ठ योजनायें की हैं। एक प्रसंग इस प्रकार है—'युद्ध रूपी विषम यज्ञ प्रारंभ हो गया, शस्त्र-बल प्रहार रूपी वेद पाठ होने लगा, हाथी, घोड़ों और नरों का हवन होने लगा, शीश कटने के रूप में स्वस्ति-वाचन आहुति दी जाने लगी,

उस हवन कुंड का क्रोध रूपी विस्तार हुआ, कीर्ति रूपी मंडप तना था, गिद्ध सिद्ध वेताल रूपी दर्शक थे, किन्नर, नाग, तुंबरु और अप्सरायें गान कर रहे थे, इस युद्ध रूपी यज्ञ में वीरों को मुक्ति रूपी तत्व के भोग की प्राप्ति हुई':

विषम जग्य आरंभ । वेद प्रारंभ सस्त्र बल ॥
है गै नर होमियै । शीश आहुत्ति स्वस्ति कल ॥
क्रोध कुंड बिस्तरिय । क्त्ति मंडप करि मंडिय ॥
गिद्धि सिद्धि वेताल । पेषि पल साकृत छंडिय ॥
तुंबर सु नाग किन्नर सु चर । अच्छरि अच्छ जु गावहीं ॥
मिलि दान अस्स अप्पन जुगति । भुगति मुगति तत पावहीं ॥४५३, स०२५

वीभत्स का प्रसंग पृथक नहीं वरन् युद्ध के अन्तर्गत ही आता है। योगिनियों का रुधिर पीना, गिद्धों का चिल्लाना आदि स्वाभाविक दृश्यों का इनमें चित्रण पाया जाता है :

पत्र भरें जुग्गिनि रुधिर, गिध्धिय मंस डकारि ।
नच्यो ईस उमया सहित, रुंड माल गल धारि ॥६६,स०३६

युद्ध-भूमि में भयंकर वेष वाले योगिनी, डाकिनी, भूत, प्रेत, पिशाच, भैरव आदि के नृत्य और किलकारियाँ, कबंधों का दौड़ना, पलचरों का गाना आदि बहुधा भय की प्रतीति कराने लगते हैं परन्तु यह सहचारिता उचित और संभव है।

स्वतंत्र रूप से भयानक रस का परिपाक ढुंढा दानव के प्रसंग में मिलता है। 'ढूँढ-ढूँढ कर मनुष्यों को खाने वाले विकराल ढुंढा दानव ने सारा अजमेर नगर उजाड़ डाला। उसके भय से उस नगर के समीपस्थ वन में किसी जीव का प्रवेश न था और दिशाएँ भी शून्य हो गई थीं, उसकी घोर हिंसकता के आगे मानव तथा अन्य जीवों की क्या चर्चा, सिंह सदृश हिंसक-जंतु भी भाग खड़े हुए थे।' यथा :

सो दानव अजमेर बन । रह्यो दीह घन अंत ॥
सुन्न दिसानन जीव को । थिर थावर जग मंत ॥५२६
तहँ सिंघ न म्रग्ग न पंषि बनं । दिसि सून भई डर जीव घनं ॥
तिहि ठाम गजं बर बाजि ननं । तिहँ ठाम न सिद्धय साधकनं ॥ ५२७

पाँच सौ हाथ ऊँचा, हाथ में विकराल खड्ग लिये ढुंढा मुँह से ज्वालायें फेंका करता था :

अंगह मान प्रमान । पंच सैं हाथ उने कह ॥
इह ऊँचो उनमान । विनय लछि छनह विवेकह ॥

हथ्थ पड्ग विकराल । मुष्य ज्वालंघन सद्दह ॥ ५८०, स० १

एक ऋषि द्वारा पृथ्वीराज को अन्धे किये जाने के श्राप में भी भयानक रस की अवतारणा मिलती है । इसके अतिरिक्त युद्ध-भूमि में भूत-प्रेतों का नृत्य-गान आदि दृश्य भी इसी रस के प्रसंग हैं ।

हास्य के स्थल रासो में अति थोड़े हैं । एक आध स्थल पर वाणी और वेश के कारण उसकी संभावना हुई है । कान्यकुब्जेश्वर के दरबार में महाराज जयचन्द्र और चंद बरदाई के प्रश्नोत्तरों में वह उद्भूत हुआ है । कवि को अपने से अधिक पृथ्वीराज का पराक्रम बखानते देखकर जयचन्द्र ने उससे श्लेष वक्रोक्ति द्वारा पूछा कि मुँह का दरिद्री, तुच्छ जीव, जंगलराव (पृथ्वीराज; भील) की सीमा में रहने वाला बरद (बरदाई; बैल) क्यों दुबला है :

मुह दरिद्र अरु तुच्छ तन, जंगलराव सु हद्द ।
बन उजार पशु तन चरन, क्यौं दूबरौ बरद्द ॥५८०

उद्भट कवि ने उन्हें उत्तर दिया कि चौहान ने अपने घोड़े पर चढ़कर चारों ओर अपनी दुहाई फेर दी, अपने से अधिक बलवानों के साथ उन्होंने युद्ध किया, शत्रुओं में किसी ने पत्ते पकड़े, किसी ने जड़ें और किसी ने तिनके; अनेकों भयभीत होकर भाग खड़े हुए, इस प्रकार शत्रुओं ने सारा तृण चुन लिया और बैल दुबला हो गया :

चढ़ि तुरंग चहुआन आन फेरीत परद्धर ।
तास जुद्ध मंडयौ जास जानयौ सबर बर ॥
केइक गहि तक्कि पात, केइ गहि डार मूर तर ।
केइक दंत तुछ त्रिन्न, गए दस दिसनि भाजि डर ॥

भुअ लोकत दिन अचिरज भयौ, मान सबर बर मरदिया ।
प्रथिराज षलन षद्धौ जु षर, सु यौं दुब्बरौ बरद्दिया ॥५८१

जयचन्द्र ने फिर व्यंग्य किया और कवि ने फिर फब्ती कसी । अन्त में महाराज ने निरुत्तर होकर कवि को 'बरद' के स्थान पर 'बिरुद बर' कहकर संबोधित किया, परन्तु कवि ने पूर्व कहे हुए 'बरद' की महिमा की विवेचना करते हुए कहा कि जिस बरद (बैल) पर चढ़कर गौरीशंकर ने अपने शीश पर गंगा को धारण किया और सहस्त्र मुखों वाला देखकर शेषनाग को गले का हार बनाया, उस भुजंग के फणों पर सम्पूर्ण वसुमती का भार है तथा पृथ्वी पर पर्वत और सागर हैं, सृष्टिकर्ता ने उस वृषभ के कंधों पर सारा

ब्रह्माण्ड रख दिया है। हे पहुपंग नरेश (जयचन्द्र), आपने भट्ट पर महती कृपा की जो उसे 'बरद' कहकर महान विरुद दिया :

जिहि बरद्द चढ्ढि कै। गंग सिर धरिय गवरि हर ॥
सहस मुष्ष संपेषि। हार किन्नौ भुजंग गर ॥
तिहिं भुजंग फन जोर। झोलि रष्षी वसुमत्तिय ॥
वसुमत्ती उप्परै। मेर गिरि सिंध सपत्तिय ॥
ब्रहमंड मंड मंडिय सकल। धवल कंध करता पुरस ॥
गरुअत्त बिरद पहुपंग दिय। क्रपा करिय भट्टह सरिस ॥५८७, स०६१

यह व्यंग्यात्मक हास्य का अनूठा स्थल है।

आश्चर्य पैदा करने वाले स्थल रासो में अनेक हैं। शापवश मनुष्य का मृत्यु के उपरांत असुर हो जाना और असुर का आसुरी स्वभाव वश मनुष्यों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर खाना, वीरों का वशीकरण, देवी की सिद्धि और साक्षात्कार, गड़े खजाने से दैत्य और पुतली का निकलना, मंत्र-तंत्र की विलक्षण करामातें, वरुण के वीरों की उछल-कूद, वीर गति पाने वालों का अप्सराओं द्वारा वरण, आत्माओं का भिन्न लोक-वास, कबंधों का युद्ध आदि इसी प्रकरण के प्रसंग हैं। कवि ने इनका वर्णन इस प्रकार किया है जैसे ये अघटित घटनायें न होकर सत्य और साधारण हों। वीसलदेव की रथी से ढुंढा दानव का जन्म देखिये :

राज मरन उप्पनो। सब्ब जन सोच उपन्नौ ॥
पट रागिनि पावार। निकसि तबही सत किन्नौ ॥
तिन मुष इम उच्चरयौ। होइ जदवनि सपुत्तय ॥
मो असीस इह फुरो। तुम्म भोगवहु धरत्तिय ॥
जिन रथी मद्धि ऊठे असुर। धषै ज्वाल तिन मुष विष्षय ॥
नर भष्षय जहाँ लसकर सहर। मिलै मनिष्ष ते ते भष्षय ॥५११, स०१

वीरगाथा-काव्य होने के कारण शांत रस का रासो में प्राय: अभाव सा ही पाया जाता है और वीर रस का विरोधी होने के कारण भी उसमें निर्वेद की व्यंजना के लिये अवसर नहीं है। युद्धोपरांत एक स्थल पर शिव और पार्वती के वार्तालाप-प्रसंग में जन्म-मरण की व्याख्या करते हुए, कर्मानुसार जीव के जन्म-बंधन में पड़ने और आत्मा का माया आदि प्रपंचोपशम से निराकार अद्वैत ब्रह्म में समाहित होने का उल्लेख है। मम्मट और विश्वनाथ की काव्य-कसौटी पर रासो का यही प्रसंग शम का सिद्ध होता है। इस रस का संकेत करने वाले दो प्रसंग और हैं—एक तो ढुंढा दानव की

कठोर तपस्या और दूसरा दिल्लीश्वर अनंगपाल का वैराग्य। ढुंढा ने जीवन्मुक्ति हेतु तपस्या नहीं की थी और अनंगपाल का वैराग्य सात्विक न था, वे सर्वस्व त्याग कर विरक्त हुए परन्तु उस त्यागी हुई वस्तु की प्राप्ति हेतु फिर झुके, युद्ध किया, पराजित हुए, तब पुन: तपस्या करने चले गये—अस्तु ये दोनों स्थल शांत रस के विधायक नहीं कहे जा सकते।

वीर और रौद्र रस प्रधान रासो में शृङ्गार की स्थिति गौण नहीं है। युद्ध-वीर स्वभावत: रति-प्रेमी पाये गये हैं। किसी की रूपवती कन्या का समाचार पाकर अथवा कन्या द्वारा उसे अपने माता-पिता की इच्छा के विपरीत आकर वरण करने का संदेश पाकर उक्त कन्या का अपहरण करके उसके पक्ष वालों से भयंकर युद्ध और इस युद्ध में विजयी होकर कन्या का पाणिग्रहण तथा प्रथम मिलन आदि के वर्णनों में हमें वियोग और संयोग के चित्र मिलते हैं। नायक और नायिका के परस्पर रूप, गुण आदि श्रवण-मात्र से अनुराग और तज्जनित वियोग कष्ट के वर्णन काम-पीड़ा के प्रतीक हैं। संयोग के अनंतर वियोग का वर्णन आचार्यों ने भी स्वीकार किया है परन्तु संयोग से पूर्व ही वियोग का कष्ट वांछित प्रेमी या प्रेमिका को प्राप्त करने में बाधायें और कामोत्तेजना को लेकर ही पैदा होता है। वैसे नल-दमयन्ती, कृष्ण-रुक्मिणी, ऊषा-अनिरुद्ध आदि के प्रेम की परंपरा का पालन भी रासो में होना असंभव नहीं है।

विवाह के पूर्व और उपरांत सुन्दर राजकुमारियों के नख-शिख वर्णन तदुपरांत काम-क्रीड़ा और सहवास यद्यपि शृङ्गार रस के ही अंतर्गत हैं परन्तु उनमें वस्तु-स्थिति का निर्देश संकेत द्वारा न होने के कारण कहीं-कहीं अश्लीलत्व दोष भी आ गया है। यह रति भाव क्या है, केवल उद्दाम वासनाओं का नग्न चित्रण ही न। इन स्थलों को पढ़ते ही उस युग की विलासिता का चित्र सामने आ जाता है। नायिका भेद को दृष्टिगत करके काव्य का प्रणयन नहीं किया गया है, फिर भी नवोढ़ा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका आदि अपने स्वाभाविक रूप में दिखाई पड़ जाती हैं। शृंगार वर्णन में संभोग की प्रधानता है। 'कनवज्ज खंड' का षट्-ऋतु-वर्णन वियोग के मिस संयोग का आह्वान कराने वाला है। विप्रलम्भ का एक विशिष्ट स्थल है संयोगिता से पृथ्वीराज का प्रथम वियोग और अंतिम मिलन। इस प्रसंग का आदि और अंत परंपरा-भुक्त है परन्तु इसका निम्न वर्णन अति मार्मिक है:

घर घयार बज्जिग विषम । हलिग हिंदु दल हाल ॥
दुतिय चंद पूनिम जिमे । वर वियोग बढ़ि बाल ॥
वर वियोग बढ़ि बाल । लाल प्रीतम कर छुट्टौ ॥
है कारन हा कंत । आस असु जानि न फुट्टौ ॥
देषंत नैन सुभ्भै न दिसि । परिय भूमि संथार ॥
संजोगी जोगिन भई । जब बज्जिग घरियार ॥६४३

उपर्युक्त छंद में 'विषम', 'देषंत नैन सुभ्भै न दिसि' और 'संजोगी जोगिन' बड़े ही सार्थक प्रयोग हैं। निर्जीव वस्तु घड़ियाल अथवा उसके शब्द को किसी की समता-विषमता से क्या प्रयोजन हो सकता था परन्तु प्रियतम के प्रवास-हेतुक-वियोग की निर्दिष्टि के कारण लक्षणा का आरोप करके कवि ने संयोगिता की मानसिक अवस्था में विषमता घटित करके उसे वियोगावस्था का प्रारंभिक चरण बना दिया है। वियोग के इस प्रकरण में प्रवत्स्यतप्रेयसी संयोगिता के वर्तमान-प्रवास-हेतुक-वियोग का संकेत करके कवि ने उस वियोगिनी के भूत-प्रवास-हेतुक-विप्रलम्भ का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। दोनों प्रकार के वियोगों की मिलन सन्ध्या बड़े कौशल से प्रस्तुत की गई है।

इसके उपरांत युगों का अनुभूत वर्णन है कि वही वस्तु संयोग में सुखद परन्तु वियोग में दुखद हो जाती है :

वही रत्ति पावस्स । वही मघवान धनुष्षं ॥
वही चपल चमकंत । वही बगपंत निरष्षं ।
वही घटा घनघोर । वही पप्पीह मोर सुर ॥
वही जमी असमान । वही रवि ससि निसि वासुर ॥
वेइ अवास जुग्गिनि पुरह । वेई सहचरि मंडलिय ॥
संजोगि पयंपति कंत विन । मुहि न कछू लग्गत रलिय ॥ ६४५, स०६६

कहीं कहीं संभोग शृङ्गार के अनुपम चित्र कवि ने खींचे हैं। '(श्वेत-हस्ती) ऐरावत इन्द्र के अंकुश के प्रहार से भयभीत होकर संयोगिता के वक्ष-देश में प्रविष्ट होकर विहार करता था, उसका कुंभस्थल उभर कर उनके उन्नत उरोजों के रूप में प्रगट हुआ, जिनके ऊपर की श्यामता उसका मद-जल था। शुक ने कहा कि इंच्छिनी सुनो, विधि का विधान नहीं टाला जा सकता, रति-काल में पृथ्वीराज का कर-कोश ही अंकुश बन जाता है' :

ऐरापति भय मानि । इंद गज बाग प्रहारं ॥
उर सँजोगि रस मद्दि । रह्यौ दबि करत विहारं ॥

कुच उच्च जनु प्रगटि । उकसि कुंभस्थल आइय ॥
तिहि ऊपर स्यामता । दान सोभा दरसाइय ॥
बिधिना निर्मंत मिट्टत कवन । कीर कहत मुनि इंछनिय ॥
मन मथ्थ समय प्रथिराज कर । करज कोस अंकुस बनिय ॥
१५१, स० ६२ ।

यहाँ 'ऐरावत' कहकर संयोगिता के शारीरिक वर्ण की सूचना दी गई है और हाथी के 'मदजल' का कृष्ण रंग बड़े ढंग से आरोपित किया गया है तथा लक्षणा से 'मद जल' शब्द मुग्धा, ज्ञात-यौवना, विश्रब्ध-नवोढ़ा राजकुमारी के मदमाते यौवन की ओर भी ध्यान आकृष्ट करता है। उक्ति अनूठी है।

शोक के प्रसंग रासो में इने-गिने हैं। कमधज्ज नरेश के भाई बालुका-राव की मृत्यु पर अशुभ स्वप्न देखने के उपरांत उसकी स्त्री का विलाप, कन्नौज-युद्ध में प्रमुख सामंतों के मारे जाने पर पृथ्वीराज का शोक, ग़ज़नी के कारागार में वंदी पृथ्वीराज का नेत्र विहीन किये जाने के उपरांत पश्चाताप तथा अंतिम युद्ध का परिणाम वीरभद्र द्वारा सुनकर चंद कवि का दुःख इसी प्रकरण के हैं परन्तु करुण का सबसे प्रधान स्थल सती होने वाला दृश्य है जो इतना शांत और गंभीर है कि हृदय पर एक वीतराग त्याग का प्रभाव डाले बिना नहीं रहता। मरण-महोत्सव की परम उल्लास और आतुरता से प्रतीक्षा करने वाले उस सामन्त युग में विशेष रूप से क्षत्राणियों में सती प्रथा समादृत थी। उनके लिये अग्नि-पथ, प्रेम-पथ का विधान था। वीर हिंदू नारी का आत्मोल्लास से जलती हुई अग्नि-चिताओं में प्रवेश परम प्रशान्त पर अति मर्म-भेदी है। आत्मोत्सर्ग की यह पूर्ण आहुति स्वतंत्र भारत की हिंदू ललनाओं के चरित्र की विशेषता थी। स्वतंत्रता की महान देन रासो-काल में स्त्रियों के इस आत्म वलिदान के रूप में सुदृढ़ थी। एक दृश्य देखिये—'तरुणियों ने नाना प्रकार के दान दिये और सामंत तथा शूर योद्धा उनके हितैषी लोक में पहुँचाने के लिये उनके घोड़ों की रासें पकड़ कर चल दिये। इन बालाओं ने प्रज्वलित हुतासन में गमन करने का अपने चित्त में विचार किया और प्रेम को श्रेष्ठ ठहरा कर, उसका निर्वाह करने के लिये वे चल दीं। उज्ज्वल ज्वाला आकाश में मिल गई। प्रत्येक दिशा में हर-हर शब्द हो उठा। जहाँ-जहाँ जिस लोक को उनके स्वामी गये थे वहीं उनकी पतिव्रता पतिपरायणायें जाकर मिल गईं':

विविह तरुनि दिय दान । अवर सामंत सूर भर ॥
अप्प अस्स हय लीय । मिलिय रह हित्तधाम धर ॥
चित चिंतै रव रवनि । गवनि पावक प्रज्जारिय ॥
प्रेम प्रीति किय प्रेम । नेम गेमह प्रति पारिय ॥
उज्जलिय झाल आयास मिलि । हर हर सुर हर गोम भौ ॥
जहं जहां सुबास निज कंत किय । तहं तहां तिय पिय मिलन भौ ॥
१६२४, स० ६६ ।

परिस्थिति विशेष में नव रसों के एक साथ उद्रेक कराने की सिद्धि भी रासोकार ने कई स्थलों पर विभिन्न प्रसंगों में दिखाई है। कन्नौज-दरबार में छद्म वेशी पृथ्वीराज को पहिचान कर सुन्दरी दासी कर्णाटकी ने लज्जा से घूँघट खींच लिया परन्तु चंद के इशारे से तुरंत ही उसे पलट दिया। इस घूँघट खोलने और बंद करने के व्यापार मात्र ने पंग-दरबार में नवरस उत्पन्न कर दिये। 'कमधज्ज (जयचंद्र) आश्चर्य में पड़ गये, चौहान (पृथ्वीराज) (अवचनात्मक रूप से) हँस पड़े, संभरेश के प्रति दया भाव ने (कर्णाटकी के चित्त में) करुण रस पैदा किया, कवि चंद रोष से भर गया, वीर कुमार वीभत्स रस में आप्लावित हुआ, शूर गण (युद्ध होना अनिवार्य देख) वीर रस से भर गये, राज-प्रासाद के गवाक्षों से झाँकती हुई बालाओं के नेत्रों में (खवास वेश-धारी कमनीय पृथ्वीराज को देखकर) शृङ्गार पैदा हुआ, लोहा लंगरी राय के चित्त में निर्वेद हुआ और उसके सुदृढ़ शरीर तथा बलाबल को देखकर विपक्षी भय से आपूरित हुए। पहुपंग ने पान क्या मँगाये नवों रस सिद्ध कर दिये' :

बर अद्भुत कमधज्ज । हास चहुआन उपन्नौ ॥
करुना दिसि संभरी । चंद बर रुद्र दिपन्नौ ॥
वीभछ वीर कुमार । बीर बर सुभट विराजै ॥
गोष बाल झंषतह । द्रिगन सिंगार सु राजै ॥
संभयौ सन्त रस दिष्षि बर । लोहा लंगरि बीर कौ ॥
मंगाइ पान पहुपंग बर । भय नव रस नव सीर कौ ॥
७२०, स० ६१

इसके अतिरिक्त युद्ध और रति काल में विभिन्न रसों की अवतारणा भी कवि ने दिखाई है। उल्लेख अलंकार की सहायता से भिन्न रसों की स्फुरणा अनायास श्रीमद्भागवत् के इस काव्य-कौशल वाले निम्न श्लोक का स्मरण करा देती है :

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान,
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।
मृत्युर्भोजपते विराडविदुषां तत्वं परं योगिनाम्,
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः ।।१७-४३-१०

तुलसी और केशव ने भी इस कौशल का परिचय दिया है।

अलंकार

अलंकार का प्रयोग भाव-सौन्दर्य की वृद्धि हेतु किया जाता है। शब्दालंकारों में रासो में अनुप्रास और यमक का प्रयोग बहुलता से मिलता है। अनुप्रासों के सभी शास्त्रीय भेदों के उदाहरण इस काव्य में मिल जाते हैं। कुछ स्थल देखिये :

(१) जंग जुरन जालिम जुझार भुज सार भार भुअ ।।
(२) चढ़ि कंध कमंधन जोगिनी। सद्द मद्द उनमद्द फिरि ।।
(३) त्रैनैनं त्रिजटेव सीस त्रितयं त्रैरूप त्रैसूलयं ।।

वाच्यार्थ विचित्रता से रिक्त शब्दाडम्बर-मात्र वाला वर्णानुप्रास भी कहीं-कहीं दृष्टिगोचर हो जाता है।

यमक का प्रयोग अनेक स्थलों पर है परन्तु संयम के साथ:—

(१) सारंग रुकि सारंग हने। सारंग करनि करष्षि ।।
(२) धवल वृषभ चढ़ि धवल। धवल बंधे सु ब्रह्म वसि ।।
(३) रन रत्तौ चित रत्त। वस्त्र रत्तेत खग्ग रत ।।
हय गय रत्तै रत्त। मोह सों रत्त वीर रत ।।
धर रत्तै पत रत्त। रूक रत्ते विरुझानं ।।
रत्त वीर पलचर सु रत। पिंड रत्ती हिय साने ।।

अर्थालंकारों के अंतर्गत जहाँ कवि ने काव्य-परंपरा का ध्यान रखते हुए प्रसिद्ध उपमानों का प्रयोग किया है वहाँ अप्रचलित और अप्रसिद्ध उपमान भी उसने साहस के साथ रखे हैं। राजस्थान के कवियों में यह परम सराहनीय उद्योग विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रासोकार के अप्रचलित अप्रस्तुत कहीं क्लिष्ट होने के कारण और कहीं लोक में उतनी प्रसिद्धि न पाने के कारण अर्थ को सरल करने के प्रयास में उसे दुर्बोध भी कर बैठे हैं। कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :

(१) जस्यौ ससि फूल जरयौ मनिबद्ध। उग्यौ गुरदेव किधौं निसि अद्ध ।।

[अर्थात् मणि-जटित शीश फूल ऐसा भासित हो रहा था मानों अर्द्धरात्रि में वृहस्पति का उदय हुआ हो। उत्प्रेक्षा बड़ी अनुपम है परन्

बृहस्पति ग्रह को आकाश-मंडल में पहिचानने वालों की संख्या ग्रामीण जनों को कुछ अंशों में छोड़कर नगरों के शिक्षित जन-समुदाय में अति कम है। रासो काल में जब घड़ियाँ नहीं थीं भारत की अधिकांश जनता का ग्रहों और नक्षत्रों से परिचित रहना स्वाभाविक था अस्तु अपने युग में उपर्युक्त उत्प्रेक्षा बड़ी ही सार्थक रही होगी।]

(२) जगमगत कंठ सिरि कंठ केस। मनु अट्ठ ग्रह चंपि ससि सीस बैसि॥
(३) ग्रह अट्ठ सतारक पीत पगे। मनों सु तिके उर भांन उगे॥

परन्तु नवीन उपमान अपनी अर्थ-सुलभता और लोक-प्रसिद्धि के कारण अर्थ-गौरव की भी नि:सन्देह वृद्धि कर सके हैं :

(१) मुष कढ्ढिन घूँघट अस्सु बली। मनों घूँघट दै कुल बद्धु चली॥
(२) यों मिले सब्ब परिगह नृपति। ज्यों जल भर बोहिथ्थ फटि॥
(३) जनु छैलनि कुलटा मिलै। बहुत दिवस रस षंक॥
(४) दिषंत मेन लग्गयं। जिहाज जोग भग्गयं॥

कहीं-कहीं ग्रामीण प्रयोग भी मिलते हैं। यथा :

(१) सुर असुर मिलि जल फोरयं।
(२) साज सज्जि चल्यौ सु फुनि। जनु ऊलौ दरियाव॥

उपमा के प्रयोगों द्वारा रासोकार ने अपना अभीष्ट सिद्ध करने में अपूर्व सफलता प्राप्त की है। एक निरवयवा-लुप्तधर्मा-मालोपमा देखिये :

इसौ कन्ह चहुआन। जिसौ भारथ्थ भीम बर॥
इसौ कन्ह चहुआन। जिसौ द्रोनाचारिज बर॥
इसौ कन्ह चहुआन। जिसौ दससीस बीस भुज॥
इसौ कन्ह चहुआन। जिसौ अवतार वारि सुज॥
जुध बेर इस्स तुट्टै जु रिन। सिंघ तुट्टि लषि सिघनिय॥
प्रथिराज कुँवर साहाय कज। दुरजोधन अवतार लिय॥

उपमा के बाद रासो में रूपक का स्थान है। वैसे तो उसके सभी विभेद मिलते हैं परन्तु कवि को सांग-रूपक संभवत: विशेष प्रिय था क्योंकि इसके सहारे पुरातन कथा-सूत्रों, प्राकृतिक-सौन्दर्य और मौलिक उद्भावनाओं को साकारता प्रदान की जा सकती थी अतएव यह मोह छोड़ सकना उसे रुचिकर न रहा होगा। इसके प्रयोग में उसे आशातीत सफलता भी प्राप्त हुई है :

(१) बाल नाल सरिता उतंग। आनंग अंग सुज॥
रूप सु तट मोहन तड़ाग। भ्रम भए कटाच्छ दुज॥

प्रेम पूर विस्तार । जोग मनसा विध्वंसन ॥
दुति ग्रह नेह अथाह । चित्त करषन पिय तुट्टन ॥
मन विसुद्ध बोहित्थ बर । नहिं थिर चित जोगिंद तिहि ॥
उत्तरन पार पावै नहीं । मीन तलफ लगि मत्त विहि ॥

[अर्थात्—वह बाला उत्तुंग सरिता है, रूप उसका तट है, आकर्षण रूपी तड़ाग (कुंड) हैं, कटाक्ष रुपी भँवर हैं, प्रेम रूपी विस्तार है, योग रूपी मनसा (कामना) का वह विध्वंस करने वाली है, उसकी द्युति ही ग्राह (मकर) है, स्नेह रूपी अथाहता है, विशुद्ध मन रूपी बोहित पर आरूढ़ योगीन्द्र भी चंचल चित्त हो जाते हैं और उसके पार नहीं जा पाते (अर्थात् उसका अतिक्रमण नहीं कर पाते) तथा मीन सदृश तड़पते हैं।]

(२) आसा महीव कव्वी । नव-नव कित्तीय संग्रहं ग्रंथं ॥
सागर सरिस तरंगी । बोहथ्थयं उक्तियं चलियं ॥
काव्य समुद्र कवि चंद कृत । मुगति समप्पन ग्यान ॥
राजनीति बोहिथ सुफल । पार उतारन यान ॥

[अर्थात्—कवि के महान आशा रूपी सागर में उत्ताल तरंगें उठ रही हैं जिसमें उक्ति रूपी बोहित (जहाज़) चलाये गये हैं।

कवि चंद कृत काव्य रूपी समुद्र, ज्ञान रूपी मोती समर्पित करने वाला है और राजनीति रूपी बोहित उस काव्य रूपी सागर से सफलता पूर्वक पार उतारने वाला यान है।]

समस्त- वस्तु-सावयवों और एकदेश-विवर्ति-सावयवों की स्वाभाविक रंजना कवि के काव्य-शास्त्र-ज्ञान की परिचायिका है। एक निरवयव रूपक भी देखिये :

चंद वदनि मृग नयनि । भौंह असित कोदंड बनि ॥
गंग मंग तरलति तरंग । बैनी भुअंग बनि ॥
कीर नास अगु दिपति । दसन दामिक दारमकन ॥
छीन लंक श्रीफल अपीन । चंपक बरनं तन ॥
इच्छति भतार प्रथिराज तुहि । अहनिसि पूजत सिव सकति ॥
अध तेरह बरस पदंमिनी । हंस गमनि पिष्षहु नृपति ॥

उत्प्रेक्षाओं की रासो में भरमार है, परन्तु वे अत्यन्त सफल बन पड़ी हैं। रूप-शृङ्गार और युद्ध-वर्णन में वस्तूत्प्रेक्षाओं की प्रचुरता समझनी चाहिये। प्रचलित-अप्रचलित, प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध उपमानों का प्रयोग यहीं पर कवि ने जी खोलकर किया है। एक वाच्या-अनुक्त-विषया-वस्तूत्प्रेक्षा देखिये :

छुटि म्रगमद कै काम छुटि। छुटि सुगंध की बास ॥
तुंग मनौ दो तन दियौ। कंचन थंभ प्रकास ॥

यहाँ स्वर्ण-खंभ को प्रकाशित करने वाले दो तुङ्गों की संभावना देखकर और उपमेय स्वरूप उरोजों का कथन न होने के कारण रूपकातिशयोक्ति का भ्रम न करना चाहिये।

प्रतीयमाना-फलोत्प्रेक्षा और हेतूत्प्रेक्षा दोनों ही मिलती हैं। एक असिद्ध-विषया-हेतूत्प्रेक्षा लीजिये :

सम नहीं इसिमती जोइ। छिन गरुअ छिन लघु होइ ॥
देषंत त्रीय सुरंग। तब भयौ काम अनंग ॥

यहाँ कवि का कथन है कि संयोगिता की सुंदरता देखकर ही कामदेव अनंग हो गया परन्तु लोक-प्रसिद्ध है कि काम के अनंग होने की कथा शिव द्वारा भस्म किए जाने वाली है।

राति-काल में संयोगिता के स्वेद कणों को लेकर कवि ने शुक-मुख द्वारा मयंक और मन्मथ तथा (सूर्य) किरणों और मुकुलित कलियों की सुन्दर उत्प्रेक्षा की है :

देषि बदन रति रहस। बुंद कन स्वेद सुभ्भ भर ॥
चंद किरन मनमथ्थ। हथ्थ कुड्डे जनु डुक्कर ॥
सुकवि चंद वरदाय। कहिय उप्पम श्रुति चालह ॥
मनौ मयंक मनमथ्थ। चंद पुज्यौ मुत्ताहय ॥
कर किरनि रहसि रति रंग दुति। प्रफुलि कली कलि सुंदरिय ॥
सुक कहै सुकिय इंच्छिनि सुनव। पै पंगानिय सुंदरिय ॥

कन्नौज के गंगा-तट पर मछलियाँ चुनाते समय पृथ्वीराज ने संयोग-वशात् समीपस्थ महाराज जयचन्द्र के राज-प्रासाद के गवाक्ष पर एक अद्भुत दृश्य देखा—'हाथी के ऊपर सिंह है, सिंह के ऊपर दो पर्वत हैं, पर्वतों के ऊपर भ्रमर हैं, भ्रमर के ऊपर शशि शोभित है, शशि पर एक शुक है, शुक के ऊपर एक मृग दिखाई देता है, मृग के ऊपर कोदंड संधाने हुए कंदर्प बैठा है, फिर सर्प हैं, उन पर मयूर है और उस पर सुवर्ण जटित अमूल्य हीरे हैं। देव-लोक के इस रूप को देखकर राजा धोखे (भ्रम) में पड़ गये' :

कुंजर उप्पर सिंघ। सिंघ उप्पर दोय पब्बय ॥
पब्बय उप्पर भ्रङ्ग। भ्रङ्ग उप्पर ससि सुभ्भय ॥
ससि उप्पर इक कीर। कीर उप्पर म्रग दिट्ठौ ॥
म्रग ऊपर कोवंड। संधि कंद्रप्प बयट्ठौ ॥

अहि मयूर महि उप्परह । हेम सरिस हेमन जरयौ ॥
सुर भुअन छंडि कवि चंद कहि । तिहिं धोषै राजन परयौ ॥

यह अपरूप और कोई नहीं, देव-लोक की छवि, युग की अनन्य सुंदरी, गजगामिनी, केहरि कटि वाली, मांसल और पुष्ट तथा शिरोदेश पर श्याम वर्ण के उरोजों वाली, चन्द्रवदनी, कीर-नासिका, मृगनयनी, धनुषाकार भृकुटियों और घनी बरौनियों वाली, अपने कृष्ण कुंतलों पर मणि जटित मुकुट धारण किये स्वयं राजकुमारी संयोगिता थी, जो स्वयम्वर के अवसर पर अपने पिता की इच्छा के विपरीत दिल्लीश्वर पृथ्वीराज की सुवर्ण प्रतिमा को तीन बार वरमाला पहिना चुकी थी तथा जिसके परिणाम-स्वरूप इस महल में वंदिनी कर दी गई थी।

यहाँ भ्रमालंकार के सहारे कान्यकुब्ज की राजकुमारी के अंगों का सौन्दर्य चित्रित कर कवि चंद ने महाराज की भ्रान्ति का अपूर्व चित्रण किया है। आश्चर्य नहीं कि रासो के ऐसे प्रसंगों की चौदहवीं शताब्दी के मैथिल-कोकिल विद्यापति के स्त्री-सौंदर्य के स्थान पर पुरुष-रूप वर्णन के निम्न सदृश पदों की प्रेरणा में कुछ छाप रही हो :

ए सखि पेखल एक अपरूप।
सुनइत मानब सपन सरूप ॥
कमल जुगल पर चाँद क माला।
ता पर उपजल तरुन तमाला ॥
तापर बेढ़लि बिजुरी-लता।
कालिन्दी तट धीरे चलि जाता ॥
साखा सिखर सुधाकर पाँति।
ताहि नब पल्लव अरुनक भाँति ॥
बिमल बिम्बफल जुगल बिकास।
तापर कीर थीर करु बास ॥
तापर चंचल खंजन जोर।
तापर साँपिनि झापल मोर ॥....

अतिशयोक्ति अलंकार में रूपकातिशयोक्ति के प्रयोगों का प्राधान्य है। कहीं वह स्वतंत्र रूप में है और कहीं अन्य अलंकारों के साथ मिश्रित। एक स्थल देखिये :

अष्ट मंगलिक अष्ट सिध। नव निधि रत्न अपार ॥
पाटंबर अंमर बसन। दिवस न सुभ्झहिं तार ॥

दिन में सब वस्तुयें दिखाई पड़ती हैं परन्तु ये वस्त्र इतने महीन हैं कि दिन में भी इनके तार नहीं दिखाई देते। वस्त्र की सूक्ष्मता उपमान है जिसके प्रतिपादन हेतु 'दिवस न सुभ्भहि तार' का प्रयोग करके 'भेदेप्यभेद:' द्वारा बड़ी ख़ूबी से रूपकातिशयोक्ति सिद्ध की गई है।

अप्रस्तुत के सर्वथा अभाव वर्णन वाले असम अलंकार का एक छन्द देखिये :

रूपं नद्दि कटाच्छ कूल तटयौ, भायं तरंगं बरं।
हावं भावति मीन आसित गुनं, सिद्धं मनं भंजनी॥
सोयं जोग तरंग रूवति बरं, त्रीलोक्य ना ता समा।
सोयं साहि सहाबदीन ग्रहियं, आनंग क्रीड़ा रसं॥

'त्रीलोक्य ना ता समा' द्वारा असम अलंकार और इसके अतिरिक्त सांग रूपक का मिश्रण भी समझ लेना चाहिये।

उपमान को उपमेय कल्पना करना आदि कई प्रकार की विपरीतता वाला प्रतीपालंकार रासो में अनेक स्थलों पर देखा जाता है। 'उस (सुंदरी) की वेणी ने सर्पों को जीत लिया, मुख ने चन्द्र-ज्योत्स्ना फीकी कर दी, नेत्रों ने कमल की पंखुड़ियों को हीन किया, कलशाकार कुचों ने नारंगियों को क्षीण किया, मध्य भाग ने केहरि कटि को, गति ने हंसों (की चाल) को, यौवन-मद ने गलित गजराज को, जंघाओं ने उलट कर रखे हुए कदलि-खंभों को, कंठ ने कोकिल को, (शरीर के) वर्ण ने चंपक पुष्प को, दाँतों (की द्युति) ने बिजली को और नासिका ने शुक (की नाक) को श्री हीन कर दिया। इस प्रकार कामराज ने (मानों) भूमंडल की विजय हेतु अपना सैन्य सुसज्जित किया':

बैनि नाग लुट्टयौ। बदन ससि राका लुट्यौ॥
नैन पदम पंषुरिय। कुंभ कुच नारिंग छुट्यौ॥
मद्धि भाग प्रथिराज[1]। हंस गति सारँग मत्ती॥
जंघ रंभ विपरीत। कंठ कोकिल रस मत्ती॥
ग्रहि लियौ साज चंपक बरन। दसन बीज दुज नास बर॥
सेना समग्र एकत करिय। काम राज जीतन सुधर॥

इनके अतिरिक्त उदाहरण, दृष्टांत, आवृत्ति, दीपक, संदेह, सार, स्वभावोक्ति और अर्थान्तरन्यास के भी सुन्दर निरूपण मिलते हैं। वैसे रासो

---

(१) प्रथिराज' के स्थान पर 'बनराज' पाठ उचित होगा।

जैसे विशाल काव्य में प्रयत्न करने पर प्राय: सभी अलंकारों के उदाहरण मिलना असंभव नहीं है। इन विभिन्न शैलियों के माध्यम से कवि ने अपने काव्य की रस-निष्पत्ति में पूर्ण सहायता ली है। रस और अलंकार की सफल योजना को ही यह श्रेय है कि रासो के अनेक अंश मार्मिक, प्रभावशाली और मनोहर हो सके हैं।

छन्द

भारतीय छन्दों को संस्कृत (refined) और प्राकृत (popular) इन दो भागों में बाँटा जा सकता है। पहिली कोटि के छन्दों में वर्ण-गणना प्रधान होती है और दूसरी में मात्रा-गणना। वैदिक-छन्दों में वर्ण विचार प्रधान पाया जाता है और वर्णों में ह्रस्व या दीर्घ मात्रायें लगने से कोई अन्तर नहीं पड़ता जब कि इन्हीं छन्दों से विकसित होने वाले संस्कृत-छन्दों में वर्ण-विचार की प्रधानता के साथ कुछ मात्रिक-विचार भी सन्निहित रहता है। प्राकृत-छन्द अपने प्रारम्भिक काल से ही मात्रा वृत्त रहे हैं परन्तु मात्रिक गणना प्रधान होने पर भी आवश्यकतानुसार उनमें प्रयुक्त हुए वर्णों को ह्रस्व या दीर्घ किया जा सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वर्ण वृत्तों की अपेक्षा मात्रा वृत्तों में कवि को अधिक स्वतंत्रता रहती है और साथ ही ताल का निदान मात्राओं पर आधारित होने के कारण बहुधा वे संगीत के लिये भी उपयुक्त होते हैं। प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के युग में शैल्यूष और मागधों तथा भाट और चारणों ने साधारण जनता के मनोविनोद के लिये जिन प्राकृत छन्दों की सृष्टि की थी वे जन्मजात ही संगीतमय थे। प्राकृत छन्दों का निर्माण लोक-कवियों के अतिरिक्त विद्वान् पंडितों द्वारा भी हुआ यही कारण है कि मध्यकालीन प्राकृत (भाषा) की रचनायें संगीत विहीन हैं परन्तु इसके विपरीत दूसरा विरोधी सत्य यह भी है कि विद्वानों का सहयोग होते हुए भी अपभ्रंश कालीन रचनायें संगीत-पूर्ण हैं। पज्झटिका, अपभ्रंश का लाड़ला छन्द है और इसमें आठ मात्राओं के बाद स्वत: ताल लगने लगती है तथा इसी युग के घत्ता और मदनगृह वे छन्द हैं जिनका प्रयोग नृत्य में भी होता है।

जैसे श्रेष्ठ खराद करने वाले के हाथों में जाकर हीरे की चमक बढ़ जाती है बहुत कुछ वही हाल छन्द का भी है। छन्द का नियम पालन करने के अतिरिक्त कवि की प्रतिभा, विषय के अनुकूल छन्द चुनकर रस और अलंकारों का वास्तविक वांछित योग करके छन्द की महत्ता को बहुत कुछ गौरवपूर्ण पद पर पहुँचा सकती है। कवि के लिये छन्द का मुखापेक्षी होना

अनिवार्य नही तथा यति-गति के नियंत्रण उसे विवश नही करते परंतु यह किससे छिपा है कि वर्ण और मात्रा योजना की लय की मधुरिमा उसके भावों की व्यंजना की सिद्धि मे अदृश्य प्रेरक शक्ति है और ऐसी शक्ति का संबल कौन छोड़ना चाहेगा। वर्णन को दृष्टिगत रखकर ही छन्द का चुनाव होना चाहिये। प्रकाशित रचनाओ को देखकर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रत्येक छन्द हर प्रकार के वर्णन के लिये उपयुक्त नही होता। अवधी भाषा में प्रबन्ध-काव्य के लिये कुतबन, मंझन और जायसी ने दोहा-चौपाई छन्दों की पद्धति को अपनाया तथा तुलसी ने इस योग की शक्ति से प्रभावित होकर उसमें 'रामचरितमानस' की रचना की। सेनापति, मतिराम, रसखान, भूषण, देव, घनानंद, पद्माकर, रत्नाकर प्रभृति कवियों की ब्रजभाषा कृतियो ने सवैया और कवित्त छन्दों को महिमान्वित किया। प्रमुखत: वीर रस के लिये तथा प्रबंध के लिए भी छप्पय छन्द की उपयोगिता पाई गई। दोहा छंद अपभ्रंश काल से नीति और उपदेशात्मक रचनाओं के लिए प्रसिद्धि मे आ चुका था परन्तु गागर में सागर भरने वाले बिहारी के कौशल ने उसमे शृङ्गार की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं की व्यंजना कर सकने की क्षमता का भी पता दिया। रहीम ने बरवै जैसे छोटे छन्द में नायिका भेद का प्रणयन कर उसे निखार दिया। हिदी साहित्य मे जहाँ उचित छन्द के चुनाव ने अनेक रचनाओं और उनके रचयिताओं को अमरता प्रदान की वहीं लाल और सूदन जैसे श्रेष्ठ कवियो की कृतियाँ 'छत्र प्रकाश' और 'सुजान चरित्र', वीर बुंदेला छत्रसाल और भरतपुर के पराक्रमी जाट नरेश सूरजमल जैसे नायकों की प्रशस्तियाँ होने पर भी प्रतिकूल छन्दों के निर्वाचन से वांछित लोक-प्रसिद्धि न प्राप्त कर सकीं। भाषा तथा उसके शब्दों की संयुजन शक्ति को भली भाँति तौलकर ही छन्द का चुनाव करना किसी भी कवि के लिए अभीष्ट है। अवधी में चौपाई को जो सफलता मिली ब्रज में वह सम्भव न हुई। यद्यपि छन्द-शास्त्रियों ने ऐसे नियमों का विधान नही किया फिर भी प्रकाशित रचनाओं की सफलता और विफलता ने यह विचार ध्यान में रखने के लिये वाध्य कर दिया है कि हर छन्द हर रस के अनुकूल नहीं हुआ करता।

रासो के छन्द एक समस्या उपस्थित करते हैं। इस काव्य में अनेक छन्द ऐसे है जिनके रूप का पता उपलब्ध छन्द-ग्रंथों में अवश्य मिलता है परन्तु उनके नाम सर्वथा नवीन होने के कारण समस्या और उलझ जाती है तथा अनेक स्थल ऐसे है जिनमें छन्द के रूप के विपरीत उसका कोई

नाम दिया गया है, इस परिस्थिति को देखकर अनुमान होता है कि छन्दों का नामकरण किसी ने बाद मे किया है। इन छन्दो के वास्तविक रूप की विवेचना और उनका वर्गीकरण एक समस्या रही है। 'पिङ्गल छन्दः सूत्रम्', 'गाथालक्षणम्', 'वृत्तजातिसमुच्चयः', 'श्री स्वयम्भूःछन्दः', कविदर्पणम्', 'प्राकृतपैङ्गलम्', 'छन्दःकोशः', 'वृत्तरत्नाकर', 'छन्दार्णव पिङ्गल', 'छन्दः प्रभाकर' प्रभृति संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिंदी के छन्द ग्रंथों की सहायता से हमने अपनी पुस्तक 'चंदवरदाई और उनका काव्य' में इनके रूप और लक्षणो का निश्चय किया है।

इस महाकाव्य मे (मात्रा-वृत्त—गाहा, आर्या, दूहा, पद्धरी, अरिल्ल, हनुफाल, चौपाई, बाधा, बिअष्षरी, मुरिल्ल, काव्य, वेली मुरिल्ल, रासा, रोला, अर्द्धमालची, मालती, दुमिला, ऊधो, उधोर, चन्द्रायना, गीता मालती, सोरठा, करषा, माधुर्य, निसांणी, वेलीद्रुम, दंडमाली, कमंध, दुर्गम, लीलावती, त्रिभङ्गी और फारक या पारक। संयुक्त-वृत्त—वथुआ, कबित्त, कबित्त विधान जाति, वस्तु बंध रूपक, तारक और कुंडलिया। वर्ण-वृत्त—साटक, दंडक, भुजंगप्रयात, भुजंगी, वेली भुजंग, मोतीदाम, बिराज, श्लोक, त्रोटक, लघुत्रोटक, विज्जुमाला, मलया, रसावला, नाराच, नाराचा, वृद्ध नाराच, अर्द्ध नाराच, लघु नाराच, चावर नाराच, युक्त, वृद्धभ्रमरावली, कलाकल या मधुराकल, कंठशोभा, कंठाभूपन, पारस, मोदक, मालिनी, मुकुंद डामर और दोधक) ये अड़सठ प्रकार के छन्द पाये जाते हैं जिनकी संख्या ग्रंथ का आकार देखते हुए अनुचित नहीं है।

इस काव्य का 'कबित्त' नामधारी 'छप्पय' छन्द इतना प्रसिद्ध हुआ कि वह रासो-पद्धति का एक अमिट अङ्ग प्रसिद्ध हो गया। हिंदी मे नरहरि और नाभादास के छप्पय विख्यात हुए और वीर-प्रशस्तिकारों में शार्ङ्गधर (हमीर रासो), मान (राज विलास), भूषण (शिवराज भूषण), श्रीधर (जंगनामा), सूदन (सुजान चरित्र), जोधराज (हम्मीर रासो), पद्माकर (हिम्मतबहादुर विरुदावली) और चंद्रशेखर वाजपेयी (हम्मीर हठ) के अतिरिक्त मानसकार भक्त तुलसी, 'सुकविन के सरदार' गंग और 'प्रकृति वर्णनकार' सेनापति ने भी रासो की शब्दावली वाली छप्पय पद्धति का अनुकरण किया। इस सफलता का गौरव निःसंदेह चंद की प्रतिभा को ही है।

रासो के बहुधा बदलने वाले छन्द उसके कथानक की गति में बाधा नहीं डालते, यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। वे अपना रूप बदलते

रहते हैं परन्तु न तो रस का क्रम ही भंग होने पाता है और न वर्णनक्रम को ही आघात पहुँचता है अस्तु हम साहस के साथ कह सकते हैं कि कवि ने अपने छन्दों का चुनाव बड़ी दूरदर्शिता से किया है। कथा के मोड़ों को भली प्रकार पहिचान कर वर्ण और मात्रा की अद्भुत योजना करने वाला रासो का रचयिता वास्तव में छन्दों का सम्राट था।

चरित्र-चित्रण

चरित्र-चित्रण दो प्रकार का होता है--(१) आदर्श और (२) यथार्थ। अपनी भावना के अनुसार कवि का किसी चरित्र को पूर्ण रूप देना तथा उसमें किसी प्रकार की त्रुटि न पड़ने देना 'आदर्श चित्रण' है और संसार में नित्य-प्रति देखे जाने वाले चरित्रों का यथातथ्य रूप खींचना 'यथार्थचित्रण' है। आदर्श-चरित्र के दो प्रकार हैं—एक तो जातीय, राष्ट्रीय, सामाजिक और धार्मिक विचारों का अधिक से अधिक पूर्ण रूप से समन्वय करने वाला 'लोकादर्श चरित्र' जैसे रामचरितमानस के राम का और दूसरा उक्त ढंग के समन्वय या लौकिक औचित्य की भावना को गौण करके कोई एक भाव पराकाष्ठा तक पहुँचाने वाला 'ऐकान्तिक आदर्श चरित्र' जैसे पदमावत के राजा रतनसेन का जो अपनी विवाहिता पत्नी नागमती को छोड़ कर 'जोगी' हो जाता है और सिंहलगढ़ में जाकर सेंध लगाता है। 'ऐकान्तिक आदर्श चरित्र' धर्म और अधर्म (पाप) दोनों के आदर्श हो सकते हैं जैसे मूर्तिमान अत्याचारी रावण पाप का आदर्श है। ये कभी स्वतन्त्र रूप में विकसित पाये जाते हैं जैसे रतनसेन और कभी लोकादर्श नायक का महत्व बढ़ाने के लिये उदभूत होते हैं जैसे लोकनायक राम का महत्व बढ़ाने वाले सीता, भरत और हनुमान क्रमशः पातिव्रत, भातृ-भक्ति और सेवा भाव के ऐकान्तिक आदर्श हैं। 'यथार्थ चरित्र चित्रण' का ऐकान्तिक या प्रधान स्थान पा सकना संभव नहीं है परन्तु गौण रूप में उसकी आवश्यकता अनिवार्य कही जा सकती है।

'पृथ्वीराज रासो' के नायक पृथ्वीराज को क्षत्रिय लोकादर्श रूप में चित्रित किया गया है। अजमेर-नरेश महाबाहु-सोमेश्वर के अपूर्व तप और पुण्य से जगद्विजयी पृथ्वीराज का जन्म हुआ।[१] जिस दिन उनका जन्म हुआ उसी दिन पृथ्वी का भार उतर गया।[२] उनके जन्म

१—सोमेश्वर महावाहो। तस्यापूर्व तपो गुणैः॥
तेने पुण्यं जगज्जेता। गर्भान्ते पृथुराडयम्॥ छं० ६६६, स० १;

२—ज दिन जनम प्रथिराज भौ। त दिन भार धर उत्तरिय॥ छं० ६८८, स ०१;

से क्षत्रियों के छत्तीसों वंश ऐसे प्रफुल्लित हुये मानों यदुवंश में यदुनाथ (कृष्ण) का जन्म हुआ हो।[१] दशरथ के राम, वसुदेव के कृष्ण, कश्यप के करुणाकर, कृष्ण के प्रद्युम्न और प्रद्युम्न के अनिरुद्ध के समान बत्तीस लक्षणों, अनेक कलाओं और बाल-सुलभ क्रीड़ाओं वाले पृथ्वीराज कमनीय मूर्ति थे।[२] गुरु राम से चौदह विद्याओं की शिक्षा पाकर[३] और गुरु द्रोण से चौरासी कलाओं, अस्त्र-शस्त्रों का संचालन तथा सत्ताइस शास्त्रों का अध्ययन करके गौ, ब्राह्मण का पूजन करने वाले दानी पृथ्वीराज[४] संस्कृत प्राकृत, अपभ्रंश, पैशाची, मागधी, शौरसेनी इन छै भाषाओं के ज्ञाता हुए।[५] विनयी, गुरुजनों का आदर करने वाले, सर्वज्ञ, सबका पालन करने वाले, श्रेष्ठ सौन्दर्य-मूर्ति पृथ्वीराज बत्तीस लक्षणों से युक्त थे।[६]

वीरों और वीरता को प्रश्रय देने वाले पराक्रमी पृथ्वीराज प्रारंभ से ही साहसी और पुरुषार्थी वीरों को सम्मानित करने लगे थे। अवसर और परिस्थिति विशेष में सोलह गज़ ऊँचे गवाक्ष से कूद पड़ने वाले लोहाना को उन्होने 'आजानुबाहु' उपाधि तथा शत्रु का ओरछा-राज्य जागीर स्वरूप प्रदान किया। अपने शरणागत सात चालुक्य भाइयों को दरबार मे मूँछ ऐंठने के साधारण अपराध पर मारने के अविचार के कारण उन्होंने साम नीति से चाचा कन्ह की आँखों पर सोने की पट्टी बँधवा दी, धैर्य और निर्भयता से बावन वीरों को वशीभूत किया तथा कन्या-दान का वचन देकर पलटने और अपने कुल का निरादर करने वाले मंडोवर के शासक नाहरराय परिहार को युद्ध मे परास्त कर उसकी कन्या का पाणिग्रहण करके अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा की। पितृ-भक्त युवराज पृथ्वी-राज ने अपने पिता राजा सोमेश्वर को मेवात के युद्ध में राजपूती आन-बान में सहायता दी और विजय-श्री प्राप्त की, ग़ज़नी के शाह शहाबुद्दीन

१—बिगसंत वदन छत्तीस बंस। जदुनाथ जन्म जनु जदुन बंस॥ छं० ७१५, स० १;
२—छं० ७२७, स० १;
३—छं० ७२६, स० १;
४—छं० ७३०-४५, स० १;
५—संस्कृतं प्राकृतं चैव। अपभ्रंश: पिशाच्चिका॥
मागधी शूरसेनी च। षट् भाषाश्चैव ज्ञायते॥ छं० ७४६, स० १;
६—विमयी गुरजन ज्ञाता। सर्वज्ञ: सर्वपालक:॥
शरीरं शोभते श्रेष्ठं। द्वत्रिंशत्तस्य लक्षणम्॥ छं० ७४७, स० १,

ग़ोरी के भाई मीर हुसेन के शरणागत होने पर उसे आश्रय दिया जिसके कारण सुलतान से आजन्म बैर बँधा और कठिन युद्धों के मोर्चे रोकने पड़े, गुर्जरेश्वर भीमदेव चालुक्य के अनाचार से पीड़ित आबूराज सलख प्रमार को शरण देकर उसकी रक्षा कर उसकी कन्या इंच्छिनी से विवाह स्वीकार करके चालुक्यराज से वीर क्षत्रिय योद्धा के समान बैर का निर्वाह किया, समुद्र-शिखरगढ़ की राजकुमारी की 'ज्यों रुकमिनि कन्हर बरिय' याचना पर उसके पिता की अस्वीकृति पर भी उसका हरण किया और युद्ध में विजय प्राप्त करके उससे परिणय किया, अपनी बहिन पृथा का विवाह चित्तौड़ के रावल समरसिंह (सामन्त सिंह) से करके एक सबल शासक-वंश को अपनी चिर मैत्री के प्रगाढ़ बंधन में बाँधा, नाना प्रकार के आधिदैविक उपद्रवों को शांत करके खट्टू वन की भूमि के गर्भ की अगाध धन-राशि का अधिकार पाया, देवगिरि की यादवकुमारी शशिवृता की प्रणय-शरण-याचना पर महान युद्ध क्लेश सहन कर, देवालय से उसका हरण करके उससे विवाह किया और फिर यादवराज पर कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द्र के युद्ध-क्रुद्धालु होने पर उसकी रक्षा की, उज्जैन-नरेश भीमदेव के अपनी कन्या इन्द्रावती का पहिले विवाह-प्रस्ताव करके उसका उल्लंघन करने पर उससे युद्ध करके राजकुमारी का वरण किया, रणथम्भौर के राजा भान की (आर्त) पुकार पर युद्ध में चँदेरी-पति शिशुपाल वंशी पंचाइन से उसका त्राण किया, एक चन्द्र-ग्रहण के अवसर पर रात्रि में यमुना स्नान करने वाले पिता और उनके साथियों को वरुण के वीरों द्वारा मूर्छित किये जाने पर स्तुति और गन्धर्व-यंत्र का जप करके चैतन्य किया, पिता के निधन पर सिंहासन ग्रहण किया, पितृ-घाती भीमदेव चालुक्य को मारने तक पगड़ी न बाँधने और घी न खाने का व्रत लिया फिर पिता का प्रेत-संस्कार समाप्त करते ही ललकार कर चालुक्य-नरेश पर चढ़ाई की तथा घमासान युद्ध में उसे मौत के घाट लगाकर अपना बदला पूरा किया, राजसूय-यज्ञ में द्वारपाल का कार्य अस्वीकार करने पर जयचन्द्र द्वारा सुवर्ण-मूर्ति के रूप में उक्त स्थान पर खड़े किये जाने के अपमान के कारण उनके भाई बालुकाराय को युद्ध में मारकर यज्ञ विध्वंस किया, अन्तःपुर में रहने वाली अपनी प्रेयसी कर्नाटकी वेश्या से रमण करने के अपराध में मंत्री कैमास को मारा, युद्ध को ही अपना जीवन-शिविर बनाये रहने पर भी पंडितों के शास्त्रार्थ और मंत्र-तंत्र की होड़ देखने का अवसर ढूँढ़कर अपनी सुसंस्कृत और परिष्कृत रुचि का परिचय दिया, मृगया के परम व्यसनी इस योद्धा ने बहुधा उसमें विपक्षियों के षड्यंत्रों से युद्ध

की नौबत आ उपस्थित होने पर अपने बाहुबल का भरोसा, असीम साहस, अमित धैर्य और अतुलित पराक्रम से चिर-विजयी-भाग्य को सहचर बनाया, कान्यकुब्ज की राजकुमारी द्वारा तीन बार अपनी मूर्ति को वरमाला पहिनाने का वृत्तांत सुनकर छद्म वेश में कन्नौज पहुँचकर उसका हरण किया और दलपंग की असंख्य वाहिनी से विषम युद्ध में अपने चौंसठ श्रेष्ठ सामंतों की अपार हानि सहकर 'स्वयंवरा' को पत्नी रूप में प्राप्त किया, उन्नीस बार ग़ज़नाधिपति ग़ोरी से मोर्चा लेने वाले इस स्वनामधन्य युद्ध-वीर ने बार-बार अधिक प्रबल वेग से आक्रमण करने वाले वैरी को चौदह बार वंदी बनाकर उसे मुक्त करके अपनी दया-वीरता का सिक्का छोड़ा और अंतिम युद्ध में ग़ोरी द्वारा वंदी और अंधे किये जाने पर भी कविचंद की सहायता से अपना बदला लेने में समर्थ हुआ तथा ग़ज़नी-दरबार में कवि की छुरी से आत्म-घात करके संसार में शरणागत की रक्षा में प्राणों की आहुति देने, वचन का पालन करने, योद्धाओं का उचित पोषण करते हुए उन्हें बढ़ावा देने, प्रतिष्ठा पर आँच न आने देने, युद्ध में आहतों, गिरे हुओं और भागने वालों को न मारने, स्त्री-बच्चों पर वार न करने, वैर का बदला सिंह सदृश लेने और विनम्र शत्रु को प्राण-दान दे डालने का अपूर्व आदर्श स्थायी कर गया। इसीसे तो म्लेच्छों का भार भूमि से हटाने वाले इस परम वीर सम्राट की मृत्यु पर देवताओं ने पुष्पांजलि डाली थी।[1] तथा वीणा-पुस्तक-धारिणी सरस्वती योद्धाओं के इस वरेण्य स्वामी के गुणों और कार्यों से अभिभूत होकर कह बैठीं थीं—'पृथ्वीराज के गुणों का श्रवण करने से सबको आनन्द की प्राप्ति होती है, पृथ्वीराज के गुण सुनकर श्रृगाल सदृश भीरु पुरुष भी रण में संग्राम करते हैं, पृथ्वीराज का गुणानुवाद सुनकर कृपण जन कपट-रहित हो जाते हैं, पृथ्वीराज के गुण जानकर गूँगा व्यक्ति भी हर्षातिरेक से सिर हिलाने लगता है, नव रसों से अभिषिक्त पृथ्वीराज का सरस रासो मूर्ख को पंडित करने तथा निरुद्यमी को अपूर्व साहसी बनाने वाला है':

प्रथीराज गुन सुनत। होय आनन्द सकल मन ॥
प्रथीराज गुन सुनत। करय संग्राम स्यार रन ॥

१—मरन चंद वरदाइ। राज पुनि सुनिग साहि हनि ॥
पुहपंजलि असमान। सीस छोड़ी सु देवतनि ॥
मेछ अवद्धित धरनि। धरनि सब तीय सोह सिग ॥....छं० ५५६, स० ६७

प्रथीराज गुन सुनत । क्रयन कपटय तें खुल्लय ॥
प्रथीराज गुन सुनत । हरषि गुंगौ सिर डुल्लय ॥
रासौ रसाल नवरस सरस । आजानौ जानप लहै ॥
निसटौ गरिष्ट साहस करै । सुनौ सत्ति सरसति कहै ॥ २४०, स० ६८

यही कारण है कि इस क्षत्रिय लोकादर्श नायक के चरित्र का अनुकरण करने का उपदेश कवि ने पृथ्वीपालों को दिया है—'रण में कमधज्ज (जयचन्द्र) को जीतने वाले, शाह ग़ोरी को पकड़ कर अपने वंदी-गृह में डालने वाले, मेवात और सोभत के दुर्गों को तोड़ने वाले, भीमदेव को थट्टा में परास्त करके गुर्जर-देश को पददलित करने वाले, कुलधन्य नृपति (पृथ्वीराज) ने आश्चर्यजनक कृत्य किये हैं, वैसा न तो किसी ने किया और न आगे ही कोई करेगा, जगत को जीतकर (या जगत में विजयी होकर) उन्होंने युगों तक चलने वाला यश प्राप्त किया है । समस्त भूपाल यह बात समझ लें कि जैसा पिथ्थल (पृथ्वीराज) ने किया वैसा ही उन्हें भी करना चाहिये' :

रन जित्यौ कमधज्ज । साहि बंध्यौ गहि गोरी ॥
मैवाती मठ किद्ध । दौरि सो झत्तिय तोरी ॥
थट्टै भंज्यौ भीम । धरा गुज्जर दिसि धायौ ॥
इहै करी अषियात । कलस कुल नृपति चढायौ ॥
कीयौ न कि हूं करिहै न को । जग जित्तै जुग जस लियौ ॥
संभलौ सकल भूपति बयन । कीजै ज्यौं पिथ्थल कियौ ॥ ५५८, स० ६७

सुयोग्य मंत्री कैमास दाहिम का सामान्य अपराध पर वध, चंद पुंडीर द्वारा युवराज रैनसी और चामंडराय के षड्यंत्र की अनर्गल चर्चा चलाकर कान भरने तथा मदांध गज शृङ्गारहार को मारने मात्र की भूल पर उकसाने के फलस्वरूप सेनापति (चामंडराय) को बेड़ी पहिनने का दंड और ग़ोरी से अंतिम युद्ध से पूर्व 'रतिवंतौ राजन्' द्वारा राज्य-कार्य में शिथिलता यथार्थ चित्रण हैं तथा इनके औचित्य-अनौचित्य पर मीमांसा करने के लिये यथेष्ट अंतरंग प्रमाण हैं ।

चाचा कन्ह चौहान, मंत्री कैमास दाहिम, जैतराव प्रमार, सेनापति चामंडराय, क्षत्रप चंद पुंडीर, संजमराय, लोहाना आजानुबाहु, लंगा लंगरी राय, अल्हन कुमार, निढ्ढुर राय, धीर पुंडीर, पावस पुंडीर, अत्ताताई चौहान प्रभृति एक सौ छै दुर्द्धर्ष हुतात्मा सामंत, स्वामि-धर्म में रँगे

बेजोड़ योद्धा, पृथ्वीराज-सदृश रणोन्माद में मदमाते, अपने स्वामी के सुख-दुख को अपना हर्ष-विषाद मानने वाले, छाया की भाँति उनकी रक्षा और आज्ञा में तत्पर वीर 'ऐकान्तिक आदर्श' के जीवन्त प्रमाण हैं। देवगिरि की राजकुमारी शशिव्रता, समुद्रशिखरगढ़ की पद्मावती और कान्यकुब्ज की संयोगिता, आबू की इंच्छिनी, पुंडीरी दाहिमी और रणथम्भौर की हंसावती, मंडोवर की राजपुत्री और उज्जैन की इन्द्रावती प्रभृति पृथ्वीराज के साथ ढंग-ढंग से विवाहित होनेवाली पति-परायणा राज कन्यायें, अपने प्रियतम के युद्ध में वंदी होने का समाचार पाकर अग्नि-प्रवेश करने वाली क्षत्रिय-बालायें 'ऐकांतिक-धर्म-आदर्श' की सजीव मूर्तियाँ हैं। पृथ्वीराज का सखा, कवि, सहचर और परामर्शदाता, नेत्रविहीन और वंदी स्वामी की असहायावस्था में उनके शब्द-वेधी-बाण द्वारा सुलतान ग़ोरी की हत्या कराके आत्म वलिदान करने वाला, स्वामिधर्म का साक्षात् प्रतीक चंद भी 'ऐकान्तिक आदर्श' की प्रतिमूर्ति है।

अपने नाना अनंगपाल के न देने पर भी उनके दिये हुए राज्य का आधा माँगने वाले, राजसूय-यज्ञ के मिस चक्रवर्तित्व और दिग्विजय के अभिमानी, पृथ्वीराज के विपक्ष में हिन्दुओं और उनके देश-शत्रु सुलतान ग़ोरी के सहायक, बेटी विवाहने पर भी मुस्लिम-संग्राम की भीर पड़ने पर दिल्लीश्वर को सहायता न करने वाले पंग नरेश (महाराज जयचन्द्र); स्वयं निर्वासित किये हुए भाइयों के पृथ्वीराज के यहाँ आश्रित होने पर बैर मानने परन्तु उनकी हत्या के समाचार से युद्ध के नगाड़े बजा देने वाले, आबूराज की दूसरी कन्या से वलपूर्वक विवाह करने के आकांक्षी, जैन धर्म के प्रभाव से ब्राह्मणों का अपमान करने वाले और अनेक छल-छद्मों के आयतन भोलाराय भीमदेव चालुक्य; सांसारिक सुखों के उपभोग के लोभ में स्वामि-धर्म को तिलांजलि देकर अंतिम युद्ध में चंद को जालंधरी देवी के मंदिर में बंद करके सुलतान ग़ोरी के पक्ष में जाने वाले, काँगड़ा दुर्ग के अधिपति पृथ्वीराज के सामंत हाहुलीराय हमीर; अनीति करने वाले महोबा के शासक दम्भी परमर्दिदेव उपनाम परमाल तथा बार-बार युद्ध में पराजित और वंदी होकर क्षमा याचना करने, क़ुरान की शपथ पर फिर आक्रमण न करने का वचन देने और उसकी अवज्ञा करने, पृथ्वीराज की साधुता के प्रतिदान में उन्हें वंदी करके अंधा कराने वाले, छल-बल को ही धर्म और कर्म मानने वाले दुष्टात्मा, विश्वासघाती, निर्लज्ज और दुर्निवार सुलतान ग़ोरी, उसके सेनानायक तथा मंत्री आदि 'ऐकान्तिक-पाप-आदर्श की प्रतिमायें हैं।

उपर्युक्त धर्म और पाप के सारे ऐकान्तिक-आदर्श-चरित्र अपने आचरणों से इस महाकाव्य के नायक पृथ्वीराज के लोकादर्श-चरित्र की महत्ता बढ़ाने वाले हैं। इस काव्य में यही इनकी स्थिति है और यही इनकी विशेषता है।

पृथ्वीराज के लोकादर्श चरित्र-चित्रण का ही यह प्रभाव है कि '(उनके) रासो को सुनकर देवराज इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु और महेश रीझ गये, उमा ने शिव भाव से उसका ग्रहण किया तथा गुणज्ञ देवर्षि नारद ने उसका श्रवण किया। तत्व का सार, ज्ञान, दान तथा मान सभी उसमें मन का रंजन करने वाले हैं। वह अस्त्र-शस्त्रों के संचालन की कलाओं का ज्ञान कराने वाला और शत्रु-दल का नाश कर्ता है। सब रसों के विचार, लोक की विद्यायें तथा मंत्र-तंत्र की साधनायें उसमें वर्णित हैं। कवि चंद ने युक्ति पूर्वक उसे छन्दों में बाँधा है जिसका पठन और मनन करने से सद्बुद्धि प्राप्त होती है':

सुनि रासौ सुरराय। रिझ्झ ब्रह्मा हरि संकर ॥
उमया धरि हरि भाव। सुनिय नारद्द गुनंकर ॥
जु कछु तत्त गुर ग्यान। दान माननि मन रंजन ॥
सस्त्र कला साधंन। मानि अरियन दल भंजन ॥
सब रस बिचार विद्या भुअन। मंत्र जंत्र साधन सुतन ॥
कवि चंद छंद बंधिय जुगति। पढ़त गुनत पावै सुमति ॥ २४१,स० ६८

जीवन से सम्बन्ध

'पृथ्वीराज-रासो' क्षत्रिय शासक पृथ्वीराज के जीवन-चरित्र का दिग्दर्शन कराने के कारण भारतीय हिन्दू समाज के क्षत्रिय जीवन और उसके सम्पर्क में आने वाले अन्य सामाजिक अंगों के जीवन से अधिक सम्बन्धित है। युगीन घटना-चक्रों के प्रवाह में अपने पात्रों को ढालते हुए कवि ने परंपरा से संचित भारत के धर्म-अधर्म, सत्यासत्य, हिंसा-अहिंसा, दान-कृपणता, दया-क्रूरता, पातिव्रत-स्वैरता आदि के विश्वासों को दृढ़तर करते हुए समाज को आदर्श रूप देने की सफल चेष्टा की है।

चिर-पोषित मानवीय मनोवृत्ति अतिथि-सत्कार और शरणागत को अभयदान हिन्दुओं में विशेष निष्ठित पाये गये हैं। इस भावना की रक्षा मात्र ही नहीं वरन् उसकी पूरी प्रतिष्ठा कवि ने शहाबुद्दीन ग़ोरी द्वारा देश-निर्वासित उसके भाई हुसेन ख़ाँ के पृथ्वीराज से आश्रय-याचना के अवसर

पर की है। हुसेन पृथ्वीराज के पास क्या आया 'मनु आयौ ग्रह दंद' (छं० ७, स० ६)। चौहान राज संकल्प-विकल्प में पड़े कि म्लेच्छ का मुख देखना, शाह ग़ोरी का क्रोध और शरण-याचक को त्यागना सभी बड़े समस्यात्मक हैं :

मेछ मुष देषे न नृपति, विपति परी दुहु क्रंम।
इक सरना इक रग्रहन, इक धर रष्षन ध्रंम ॥ १४

चंद ने 'मच्छ रूपं जगदीसं' में 'सरन रष्षि वसुमती' और 'संकर गर विष कंद जिम, बडवा अगनि समंद' के उदाहरण सामने रखकर प्रेरणा की और उत्कर्ष दिया तथा पृथ्वीराज ने 'सरनागत ध्रंम तैं रषिय' हुसेन को आदर-सत्कार पूर्वक कैंथल, हाँसी और हिसार प्रदेशों का शासन भार देकर अभयता का पट्टा लिख दिया। इसका परिणाम शीघ्र ही सामने आया। सुलतान ने 'कढ्ढौ हुसेन तुम देस अंत' का संवाद भेजा जिसे सुनकर पृथ्वीराज 'कलमलिय कोप रोमंच जिंद' हुए। मंत्री कैमास ने संदेश वाहक आरब ख़ाँ को डपटा 'जोधांन ध्रंम षत्रीय आन' और चंद पुंडीर ने कह डाला 'सरनै सुकौम कढ्ढै नियान'। फिर क्या था वीर शरणदाता पर रण का घोष हो उठा। हुसेन की रक्षा और शाह का रण-मद चूर्ण करने के लिये चौहान की वाहिनी बढ़ चली। विषम युद्ध में ग़ोरी तो वंदी हुआ जिसे संधि कर लेने के पश्चात् मुक्त कर दिया गया परन्तु हुसेन की मृत्यु हो गई। इस प्रकार भयभीत को अभयदान देकर तथा प्राणपण से उसकी रक्षा का प्रयत्न दिखाकर कवि ने चौहान का चरित्र सँवार कर अनुकरणीय बनाते हुए हिन्दू जनता की निर्दिष्ट अभिलाषा का पोषण किया है।

गुर्जरेश्वर भोलाराय भीमदेव की अपने सात पैतृव्य (चचेरे) भाइयों से अनबन होने पर पृथ्वीराज द्वारा उन्हें अपने यहाँ बुलाकर ग्राम आदि से सम्मानित करने के उपरांत कन्ह चौहान द्वारा उनमें से बड़े भाई प्रतापसिंह को दरबार में अपने सामने मूँछ ऐंठने के अपराध पर मारने और इसके फलस्वरूप युद्ध में शेष छै भाइयों को मृत्यु के घाट उतारने के वृत्तांत में पृथ्वीराज की आकुलता, अजमेर में हड़ताल और सात दिनों तक दरबार में चाचा (कन्ह) के न आने पर संभरेश का उनके घर जाकर कहना कि अपने घर आये हुओं के साथ आपने ऐसा व्यवहार किया, यह खरा दोष आपको लग गया और इस बुराई से संसार में अपयश होगा :

आएति विषैं अप्पन सुधर। सो रावर ऐसी करिय ॥

इह दोस अप्प लग्गयौ खरौ । बत्त वित्तरिय जग बुरिय ॥९०, सं० ५;
तथा दरबार की निन्दा मिटाने के लिये 'चष बँध पट्ट रतंन' का प्रस्ताव करके उनकी आँखों पर पाव लाख मूल्य की पट्टी चढ़ा देना, इस प्रकार के व्यवहार के प्रायश्चित स्वरूप कवि ने दिखाया है । वैसे, दंभी प्रतापसिंह गुर्जर को कन्ह का प्रण विदित ही रहा होगा कि वे अपने सामने मूँछ ऐंठने वाले को अपने को ललकारने वाला समझकर उस पर प्रहार कर बैठते हैं । अस्तु, प्रसंगानुकूल कन्ह का कार्य उचित होते हुए भी पृथ्वीराज द्वारा घर आये के साथ ऐसे बर्ताव की भर्त्सना कराके कवि ने सामाजिक व्यवहार की मर्यादा की रक्षा की है ।

स्वामि-धर्म का व्रत दिखाने के फलस्वरूप अर्थात् स्वामी के लिये ऐहिक प्रलोभनों में सबसे महान, जीवन के मोह से रिक्त कहीं कोई सामंत बत्तीस हाँथ ऊँची चित्रशाला से कूद पड़ता है, किसी का धड़ तीन लाख विपक्षी वीरों का सफ़ाया कर डालता है, किसी का सिर समुद्र रूपी शत्रु-दल में कमल की भाँति खिल उठता है, कोई 'सुगति मग्ग षुल्लिय द्दरिय', किसी की प्राप्ति के लिये 'रंभ झग्गरिय कहिरु बर', कोई 'तरनि सरन गय सिंधु', कोई 'सुगति मग्ग लभ्भी घरिय', किसी के लिये 'बलि बलि वीर भुअंग भुअ', कोई 'असि प्रहार धारह चढ्यौ', कोई 'रवि मंडल भेदियै', किसी को 'रहे सूर निरषत नयन', कोई 'करतार हथ्थ तरवार दिय' को ही 'इह सु तत्त रजपूत कर' कहता है, कोई वीर गति पाकर सुरपुर में निवास करता है, कोई 'बरयौ न को रवि चक्कत्तर' उपाधि प्राप्त करता है, कोई 'लष्ष सों भिरयौ इकल्लौ', किसी का 'षंड षंड तन षंडयो' हो जाता है, किसी का 'सिर फुट्टत धर धरयौ, धरह तिल तिल होय तुट्यौ', किसी का रुंड अपना सिर स्वामी को समर्पित करके लड़ता है, कोई 'राम अग्र हनमंत जिम' अग्रसर होता है, कोई 'करौं पंग दल दंति रिन' की प्रतिज्ञा करके पूर्ण करता है, किसी के वीर गति पाने पर उसका वरण करने के लिये अप्सरायें इस प्रकार आ घेरती हैं जैसे 'ससि पारस रति सरद जिम', कोई कमधज्ज के ऊपर राहु रूप होकर 'गज्जि लग्यौ आयासह', किसी के मोक्ष पाने पर 'टरिय गंग संकर हस्यौ', कोई 'ज्यों बड़वानल लपट, मथ्थि उड्डंत नरं नथि' और कोई 'सगर गौर सिर मौर, रेह रष्षिय अजमेरिय' राम-रावण सदृश युद्ध का उपमान प्राप्त करता है । नमक का अदा करना भारतवासियों का पुरातन विश्वास है और इस विश्वास के कारण ही अपने अन्नदाता स्वामी के उचित और अनुचित कार्यों में उसके भृत्य इच्छा या अनिच्छा से अपने प्राणों जैसी बहुमूल्य वस्तु की

बलि देते रहे हैं। महाभारत के भीष्म सदृश धर्म-भीरु और ज्ञानी योद्धा नमक खाने के कारण ही पांडवों को धर्म-पथ पर जानते हुए भी आततायी कौरवों की ओर से लड़े थे। 'व्यासस्मृति' के 'कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः' वचन सुप्रसिद्ध हैं। कृतघ्नता से बढ़कर कोई पाप नहीं समझा जाता था। कुछ अपवाद भले ही मिल जावें अन्यथा पुराणों से लेकर अब तक का भारतीय साहित्य इसी चारित्रिक मर्यादा के अनुष्ठान में श्रद्धा के फूल चढ़ाता आया है। कल्हण का 'राजतरंगिणी' में यह लिखना कि जिसने भूख से बिलखते प्यारे पुत्र को, दूसरे के घर सेवा करने वाली अपनी भार्या को, विपत्ति में पड़े हुए मित्र को, दुही हुई किन्तु चारा न मिलने के कारण रँभाती हुई गाय को, पथ्य के अभाव में रोग-शय्या पर मरणासन्न माता-पिता को तथा शत्रु से पराजित अपने स्वामी को देख लिया, उसे मरने के बाद नरक में भी इससे अधिक अप्रिय दृश्य देखने को क्या मिलेगा—

क्षुत्क्षामस्तनयो वधूः परगृहप्रेष्यावसन्नः सुहृत्
दुग्धा गौरशनाद्यभावविवशा हम्बारवोग्दारिणी।
निष्पथ्यौ पितरावदूरमरणौ स्वामी द्विषन्निर्जितो
दृष्टो येन परं न तस्य निरये प्राप्तव्यमस्त्यप्रियम् ॥ ७–१४१४

स्पष्ट करता है कि सेवक के जीवन धारण करते हुए स्वामी का पराभव उसको नरक तो भेजता ही है परन्तु वहाँ की दारुण यंत्रणायें और हृदय विदारक दृश्य भी इस विडंबना के सम्मुख कोई मूल्य नहीं रखते। ध्वनि यह है कि रौरव नरक और उसके अप्रिय दृश्यों से त्राण पाने के लिये सेवक का धर्म स्वामी की विजय हेतु जूझ मरना है।

रासो में जहाँ कहीं पृथ्वीराज, जयचन्द्र, भीमदेव और परमर्दिदेव के प्रधान योद्धाओं के युद्ध का उल्लेख हुआ है कवि ने स्वामि-धर्म की वेदी पर उनके उत्सर्ग ही दिखाये हैं। सुभटों के परम आश्रयदाता दिल्लीश्वर चौहान के प्राणों के साथ घुले-मिले उनके यशस्वी सामंत स्वामि-धर्म के अतुलनीय व्रती हैं। परन्तु जहाँ चामंडराय सदृश वाहिनी-पति अपने को निर्दोष मानते हुए भी स्वामी की आज्ञा से बेड़ियाँ धारण कर लेते हैं और उनसे मुक्ति पाने पर चंद द्वारा 'पाइन बेरी लोन, गलै तोष न्रप आन की' से सावधान कर दिये जाते हैं तथा धीर पुंडीर जैसे चौहान-दरबार में प्रबल सुलतान ग़ोरी को बंदी बनाने का बीड़ा उठाते हैं वहाँ दरबार के मुंशी धर्मायन कायस्थ पृथ्वीराज के भेद ग़ज़नी भेजते रहते हैं और जालंधर के अधिपति हाहुलीराय

हमीर ऐहिक सुखों की तृष्णा के लोभ में पृथ्वीराज का पक्ष अंतिम युद्ध में निर्बल पाकर ग़ोरी के साथ हो लेते हैं। रासो में धर्मायन और हमीर सदृश कृतघ्नियों की चर्चा स्वामि-धर्म का आदर्श पालन करने वाले सहस्रों योद्धाओं के साथ लोलुपों का यथार्थ चित्र है। युद्ध में विजय प्राप्त होने के उपरांत ग़ोरी द्वारा हमीर को प्राणदंड वास्तव में उसकी पृथ्वीराज के प्रति कृतघ्नता का ईश्वरीय दंड है जो हिन्दू समाज के चिर आचरित व्यवहार और दृढ़ विश्वास के अनुरूप हुआ है।

मातृ-पितृ भक्त भारत-भूमि के निवासी अपवाद रूप में ही मातृ और पितृ घाती पाये गये हैं। रामायण में माता-पिता की आज्ञा के फलस्वरूप ही राम चौदह वर्षों के लिये वनवासी होते हैं। महाभारत में यक्ष के प्रश्न का युधिष्ठिर द्वारा उत्तर कि माता पृथ्वी से भारी है और पिता आकाश से ऊँचा है, सर्व विदित है। इसीसे तो पिता और उसकी भूमि के प्रति अबाध सम्बन्ध घोषित कर अपभ्रंश का कोई कवि गा उठा था कि पुत्र के जन्म से क्या लाभ हुआ और उसकी मृत्यु से कौन सी हानि हो गई जिसके बाप की भूमि पर दूसरे का अधिकार हो गया :

पुत्तें जाएँ कवणु गुणु अवगुणु कवण मुएण।
जा बप्पी की भुंहडी चम्पिज्जइ अवरेण॥ सिद्धहेम०

'पृथ्वीराज-रासो' में पितृ-वत्सल पृथ्वीराज अपने पिता सोमेश्वर के परम आज्ञापालक दिखाये गये हैं। एक चन्द्र-ग्रहण के काल में वरुण के वीरों द्वारा उनके मूर्च्छित किये जाने पर पृथ्वीराज ने यमुना की स्तुति और गंधर्व-मंत्र का जप करके उन्हें चैतन्य किया था :

वरुन दोष मेट्यौ सुप्रथु। ग्रेह संपते आय॥
देषि पराक्रम सोम नृप। फूल्यौ अंग न माय॥ ५५, स० ४८

भीमदेव चालुक्य द्वारा युद्ध में उनके वध का समाचार पाकर पृथ्वीराज ने कहा कि उसके जीवन को धिक्कार है जिसने अपने पिता का बैर न चुकाया :

धिग ताहि ताहि जीवन प्रमान। सध्यौ न तात बैरह बिनान॥

और भीमदेव को मारने तक 'घृत मुक्कि पाग बंधन तजिय' (अर्थात् घृत सेवन और पगड़ी बाँधना छोड़ दिया)। अजमेर में राज्याभिषेक का कार्य समाप्त करके भीमदेव पर चढ़ाई हुई और युद्ध में उसे मारकर 'काढ़ि बैर अनभंग' पृथ्वीराज दिल्ली लौट आये। इस प्रकार कवि ने पितृ-भक्ति

और पितृ-बैर का बदला दिखाकर समाज को तदनुसार आचरण करने का बढ़ावा दिया है।

प्रेम करने में उन्मुक्त ही नहीं वरन् उस प्रेम को उद्योग विशेष से परिणय में परिणत करने वाली साहस और विलास की प्रतिमूर्तियाँ, विरोधी परिवारों में अपने आचरण वश सामंजस्य की तारिकायें, मुग्धा-क्षत्रिय-राजकुमारियाँ (शशिव्रता, पद्मावती आदि), माता-पिता के भावों की अवहेलना करके 'पूजा व्याजि काजि प्री परसण' देवालय अथवा पूर्व निर्दिष्ट संकेत-स्थल से स्वाभाविक किंचित् खेद और शोक प्रकाश कर, सम-विषम परिणाम पर दृष्टिपात न करके आहूत प्रेमी के साथ चल देती हैं। प्रेमी के बलाबल और शौर्य की लोक-प्रसिद्ध गाथा सुनकर ही तो उन्होंने उसको अपना प्राणधन बनाया था; दमयन्ती, रुक्मिणी, ऊषा आदि पौराणिक नारियों के अनुरूप प्रयत्न और सफलता ने ही तो उन्हें प्रेरणा दी थी, तब विपन्न युद्ध में अपराजित प्रिय के विजयोन्माद में उल्लसित ये बालायें उसके घर क्यों न पहुँच जातीं। समाज के अधिक प्रचलित, प्रतिष्ठित और विहित नियमों के साथ विवाहित रमणियों की तुलना में वरण-हरण द्वारा परिणीता जीवन-संगिनियाँ अतीव पतिपरायणता और पति की मृत्यु के उपरांत सती होकर स्वामी के साथ चिर-सहचारिता के दावे में किसी प्रकार घट कर नहीं हैं। इस प्रकार के चित्रण से कवि ने इस क्षेत्र में प्रसिद्धि और अपवाद के समन्वय द्वारा सामाजिक मर्यादा की रक्षा की है।

बार-बार बन्दी-गृह से मुक्त होकर अधिक प्रचंड वेग से आक्रमण करने वाले विश्वासघाती शत्रु द्वारा स्वयं बन्दी और अंधे किये जाने पर, उससे मृत्यु के सौदे पर अपना बदला चुकाना व्यक्तिगत, सामाजिक तथा देशीय विजय के साथ ही नैतिकता और धर्म-पक्ष की भी विजय है ; अन्यायी को दंड मिलना उचित है इसीसे शोक में समाप्त होने वाले इस महाकाव्य की परिसमाप्ति में चंद के पुत्र कवि जल्ह ने धरती का म्लेच्छों से उद्धार पृथ्वीराज की मृत्यु से अधिक सुखद और सन्तोषप्रद बताकर देवताओं द्वारा पुष्पांजलि दिलाई है :

मरन चंद बरदाइ। राज पुनि सुनिग साहि हनि ॥
पुहपंजलि असमान। सीस छोड़ी सु देवतनि ॥
मेछ अवद्धित धरनि। धरनि रुब तीय सोह सिग ॥
तिनहि तिनह संजोति। जोति जोतिह संपातिग ॥
रासौ असंभ नव रस सरस। चंद छंद किय अमिय सम ॥
श्रृंगार बीर करुना बिभछ। भय अदभुत्त हसंत सम ॥ ५५६, स० ६७

महाकाव्यत्व

'प्रबन्ध' और 'निर्बन्ध' (या मुक्तक) श्रव्य-काव्य के दो भेद माने गये हैं। पूर्वापर से सम्बन्ध रखने वाला 'प्रबन्ध' और इस तारतम्य से रहित 'मुक्तक' कहा गया है। 'प्रबन्ध' में छन्द परस्पर कथा-सूत्र से ग्रथित रहते हैं और उनमें किसी प्रकार का व्यतिक्रम संभव नहीं है। 'मुक्तक' के स्वयं-स्वतंत्र छन्दों का क्रम भंग किया जा सकता है। कुछ आचार्यों ने दो-दो और तीन-तीन छन्दों के भी 'मुक्तक' माने हैं। आधुनिक हिन्दी-काव्य के गीत संयुक्त-मुक्तकों की कोटि में आते हैं। 'प्रबन्ध' में सम्पूर्ण काव्य सामूहिक रूप से अपना प्रभाव डालता है परन्तु 'मुक्तक' का प्रत्येक स्वतंत्र छन्द अपने भाव और प्रभाव में उन्मुक्त रहता है।

'महाकाव्य', 'काव्य' और 'खण्डकाव्य' ये तीन प्रबन्ध-काव्य के भेद हैं। जीवन की अनेकरूपता दिखाने वाला या समग्र रूप में उसका चित्रण करने वाला 'महाकाव्य' विशाल आकार और दीर्घ कथानक वाला होता है। 'महाकाव्य' की प्रणाली पर लिखा जाकर भी उसके सम्पूर्ण लक्षणों का उपयोग न करने वाला 'काव्य' कहलाता है और विद्वानों ने इस प्रकार के कथा-निरूपक सर्ग-बद्ध काव्यों को 'एकार्थ-काव्य' कहा है। जीवन की एक ही परन्तु स्वतःपूर्ण घटना को मुख्यता देने के कारण एकदेशीयता वाला 'खण्डकाव्य' विख्यात है।

जिस प्रकार भाषा बन जाने के उपरान्त उसका व्याकरण निर्धारित किया जाता है उसी प्रकार साहित्य की विविध विधाओं—श्रव्य और दृश्य काव्यों के निर्माण के बाद उनके लक्षण निश्चित किये जाते हैं। और जिस प्रकार आगामी पीढ़ियाँ व्याकरण के ज्ञान प्राप्ति के माध्यम से किसी भाषा का ज्ञान अर्जन करके उसमें साहित्य सर्जन करती हैं उसी प्रकार लक्षण-ग्रन्थों के आधार पर परवर्ती विद्वान् साहित्य के विविध प्रकारों को जन्म देते हैं तथा बहुतेरे मेधावी अपूर्व योजनाओं की चमत्कृति से लक्षणों में परिवर्तन या नवीन योग उपस्थित करते हुए भी पाये गये हैं। प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल ने उचित ही लिखा है—'कलाकार मन्तव्य न जानता हुआ, असीम गन्तव्य में, अनुगामियों की दृष्टि से अदृश्य रहकर उनका मार्ग प्रदर्शन करता हुआ, आलोचक (आचार्य) के इशारों से नई प्रेरणा और नवीन आदर्श पाकर भी उसे पीछे छोड़कर सृजन का अग्रदूत है।'[1]

१—साहित्य जिज्ञासा, पृ० २४;

पाश्चात्य आचार्यों के अनुसार 'महाकाव्य' वर्णन-प्रधान या विषय-प्रधान काव्य के अन्तर्गत रखा जाता है और इसी से उसे 'एपिक' कहा गया है। संस्कृत के लक्षण-ग्रन्थों में 'महाकाव्य' के विविध अंगों का विस्तार पूर्वक विवेचन मिलता है। पाश्चात्य और भारतीय आचार्यों द्वारा प्रतिपादित 'महाकाव्य' के लक्षणों में विशेष अन्तर नहीं है। पाश्चात्य आचार्य 'महा-काव्य' में जातीय भावनाओं के समावेश पर अधिक बल देते हैं जब कि भारतीय महाकाव्य जातीय भावनाओं के स्थान पर युद्ध, यात्रा, ऋतु-वर्णन आदि को प्रश्रय देते हैं। आज विकासशील मानव ने महाकाव्य-सम्बन्धी प्राचीन आदर्शों में परिवर्तन और संशोधन कर लिये हैं।

भारतीय आचार्यों में आठवीं शताब्दी के दंडी ने 'महाकाव्य' के लक्षणों की विवेचना अपने 'काव्यादर्श' में इस प्रकार की है—

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम् ।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम् ॥ १४
इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् ।
चतुर्वर्गफलोपेतं चतुरोदात्तनायकम् ॥ १५
नगरार्णव - शैलर्तु - चन्द्रार्कोदयवर्णनैः ।
उद्यानसलिल - क्रीड़ा - मधुपान - रतोत्सवैः ॥ १६
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः ।
मन्त्र - दूत - प्रयाणाजि - नायकाभ्युदयैरपि ॥ १७
अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभाव निरन्तरम् ।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्य वृत्तैः सुसन्धिभिः ॥ १८
सर्व्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जकम् ।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायेत सदलंकृति ॥ १९

काव्य की 'सगुणौ शब्दार्थौ' परिभाषा करने वाले बारहवीं शताब्दी के आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने अपने 'काव्यानुशासनम्' में महाकाव्य को संस्कृत भाषा तक ही सीमित नहीं रखा वरन् विभिन्न प्राकृतों, अपभ्रंश और ग्राम्य-भाषाओं के महाकाव्यों का भी उल्लेख किया तथा उनमें सर्ग के पर्य्याय क्रमशः आश्वास, सन्धि और अवस्कन्ध बतलाये और मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निर्वहण ये पाँच सन्धियाँ जो अभी तक पूर्ववर्तियों द्वारा केवल नाटक में अपेक्षित कही गई थीं, उन्होंने महाकाव्य में आवश्यक बतलाई—

'पद्यं प्रायः संस्कृतप्राकृतापभ्रंशग्राम्यभाषानिबद्धभिन्नान्त्यवृत्तसर्गाश्वास-संध्यवस्कन्धकबन्धं सत्सन्धि शब्दार्थवैचित्र्योपेतं महाकाव्यम् ।' ८, ६

चौदहवीं शती के कविराज विश्वनाथ ने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा दिये गये लक्षणों को ध्यान में रखते हुये महाकाव्य के निम्न लक्षण अपने 'साहित्य-दर्पण' में दिये जिनकी सर्व मान्यता विदित है:—

सर्गबन्धो महाकाव्यम् तत्रैको नायक: सुर: ।
सद्वंश: क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वित: ॥१
एक वंशभवा भूपा: कुलजा वहवोऽपि वा ।
शृङ्गार वीरशान्तानामेकोङ्गी रस इष्यते ॥२
अङ्गानि सर्वेतिरसा: सर्वे नाटक सन्धय: ।
इतिहासोद्भवं वृत्तम् अन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ॥३
चत्वारस्तस्य वर्गा: स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ॥४
क्वाचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ।
एक वृत्तमयै: पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकै: ॥५
नातिस्वल्पा नातिदीर्घा: सर्गा अष्टाधिकाइह ।
नाना वृत्तमय: क्वापि सर्ग: कश्चन दृश्यते ॥६
सर्गान्ते भावि सर्गस्य कथाया: सूचनं भवेत् ।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासरा: ॥७
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तु वन सागरा: ।
सम्भोग विप्रलम्भौ च मुनि स्वर्ग पुराध्वरा: ॥८
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादय: ।
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ॥९
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ॥१०

अर्थात्—

(१) महाकाव्य में सर्गों का निबन्धन होता है।

(२) इसका नायक देवता या धीरोदात्त गुणों से समन्वित कोई सद्वंशी क्षत्रिय होता है। एक वंश के सत्कुलीन अनेक राजा भी नायक हो सकते हैं।

(३) शृङ्गार, वीर और शान्त में से कोई एक रस अंगी होता है तथा अन्य रस गौण होते हैं।

(४) नाटक की सब सन्धियाँ रहती हैं। ('सन्धियों के अङ्ग यहाँ यथा-सम्भव रखने चाहिये।' टीकाकार)

(५) कथा ऐतिहासिक या लोक में प्रसिद्ध सज्जन सम्बन्धिनी होती है।

(६) (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) इस चतुर्वर्ग में से एक उसका फल होता है।

(७) प्रारम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्य-वस्तु का निर्देश होता है।

(८) कहीं खलों की निन्दा और सज्जनों का गुणानुवाद रहता है।

(९) इसमें न बहुत छोटे और न बहुत बड़े आठ से अधिक सर्ग होते हैं।

(१०) इन सर्गों में प्रत्येक में एक ही छन्द होता है किन्तु सर्ग का अन्तिम पद्य भिन्न छन्द में होता है। कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं।

(११) सर्ग के अन्त में आगामी कथा की सूचना होनी चाहिये।

(१२) इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, ध्वान्त, वासर, प्रात:काल, मध्याह्न, मृगया, शैल, ऋतु, वन, सागर, सम्भोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग, नगर, अध्वर, रण, प्रयाण, उपयम, मंत्र, पुत्र और उदय आदि का यथा सम्भव साङ्गोपाङ्ग वर्णन होना चाहिये।

(१३) इसका नाम कवि के नाम से (यथा माघ) या चरित्र के नाम से (यथा कुमारसंभव) अथवा चरित्रनायक के नाम से (यथा रघुवंश) होना चाहिये। कहीं-कहीं इनके अतिरिक्त भी नाम होता है (यथा भट्टि)।

(१४) सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम रखा जाता है।

महाकाव्य की इस कसौटी पर देखना है कि 'पृथ्वीराज-रासो' में निर्दिष्ट लक्षण कहाँ तक उपलब्ध होते हैं। इन पर क्रमश: विचार उचित होगा :—

(१) रासो में 'महोबा समय' को लेकर ६९ समय या प्रस्ताव हैं जो कथा के वलयनसूत्र से आबद्ध हैं। 'समय' या 'प्रस्ताव' शब्द सर्ग का पर्य्याय है। ये विविध समय महाराज पृथ्वीराज के जीवन की घटनाओं पर आधारित हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इनकी शृङ्खलायें बहुत सुदृढ़ नहीं परन्तु आकर्षण की इनमें कमी नहीं है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने अपने 'पृथ्वीराज रासो' शीर्षक लेख में उचित ही लिखा है—"....इस क्रमबद्ध जंजोर को तैयार करने में लम्बी-छोटी, सुडौल-बेडौल, अनेक हाथों से गढ़ी हुई पृथक-पृथक कड़ियों का उपयोग किया गया है जो एक दूसरे के साथ बाद को जोड़ दी गई हैं। ऐसा होने पर भी यह जंजीर असाधारण ही है।"[१]

(२) महाराज सोमेश्वर के पुत्र तथा अजमेर और दिल्ली के शासक

१—काशी विद्यापीठ रजत जयन्ती अभिनंदन ग्रंथ, पृ० १७८;

'वंस अनल चहुआन'[1], 'बज्रंग बाहु अरि दल मलन'[2], शस्त्र-शास्त्र पारंगत[3], 'अवतार अजित दानव मनुस'[4], 'सत्रु त्रिनु रद गहि छंडै'[5], जिनके कारण 'अरि घरन घरनि घर चैन नहिं'[6], 'दिल्लीवै चहुआन महाभर'[7], 'आषेट दुष्ट दुज्जन दलन'[8], 'ध्रुअ समान संभरि धनिअ'[9], 'कामिनि पूजत मार'[10], 'कलि काज किति बेली अमर'[11] करने वाले, 'सुरतान गहन मोषन करन'[12],

लज्जा रूप गुणेन नैषध सुतो। वाचा च धर्मो सुतं ॥
बाने पार्थिव भूपति समुदिता। मानेषु दुर्योधनं ॥
तेजे सूर समं ससी अमि गुनं। सत विक्रमो विक्रमं ॥
इन्द्रो दान सुशोभनो सुरतरू। कामी रमावल्लभं ॥[13]

'ना समान चहुआन कौ'[14], 'भंजेब जग्य जैचंद नृप'[15], 'भीम चालुक अहि साहिय'[16], 'दल बल धरै न आस'[17], 'पैज कनवज्ज सपूरिय'[18], 'सिंगिनि सरवर इच्छिविन सत्त हनन बरियार'[19] पृथ्वीराज चौहान तृतीय इस काव्य के धीरोदात्त नायक हैं, जिनके सहायक हैं मनसा वाचा कर्मणा से स्वामि-धर्म के परम अनुयायी शूर सामंत और विषम प्रतिद्वंदी हैं गुर्जरेश्वर, कान्यकुब्जेश्वर और ग़ज़नाधिपति।

(३) युद्ध के शाश्वत व्रती महाराज पृथ्वीराज के जीवन का आद्योपान्त वर्णन करने वाले ६९ समय के इस काव्य में इक्कीस समय[20] छोड़कर (जिनमें चढ़ाई के उपरान्त बिना युद्ध के सन्धि का वर्णन करने वाले समय ११ और ३० भी सम्मिलित हैं) शेष अड़तालिस समय रण-साज-सज्जा और संग्राम में अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार तथा वीरों के हाँकों से ओत-प्रोत हैं इससे सहज

पृ० रा०, (१) छं० १८६, स० ७ (२) छं० ६२, स० १ (३) छं० ७२९-४९, स० १ (४) छं० ५५, स० ३ (५) छं० १२८, स० ६ (६) छं० १८६, स० ७ (७) छं० ७६, स० २५ (८) छं० १५८, स० २८ (९) छं० १७४, स० ३१ (१०) छं० १९६, स० ३६ (११) छं० १३४, स० ३७ (१२) छं० १५१, स० ३९ (१३) छं० ८५, स० ४५ (१४) छं० ९७, स० ४७ (१५) छं० २७३, स० ४८ (१६) छं० ३४, स० ५० (१७) छं० ६५१, स० ६१ (१८) छं० २, स० ६२ (१९) छं० ३६६, स० ६७; (२०) स० १, २, ३, ६, ११, १६, १७, १८, २१, २२, २३, ३०, ४२, ४६, ४७, ५७, ५९, ६०, ६२, ६३ और ६५;

ही अनुमान किया जा सकता है कि इस काव्य में वीर रस की प्रधानता है। अपनी अनुभूति के कारण कवि ने इन युद्धों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन बड़ी कुशलता से किया है और यह उत्कृष्ट भावाभिव्यंजना का ही फल है कि ये स्थल अपने रस में बहा ले जाने की क्षमता रखते हैं। युद्ध में जीवन-आहुति के विषम कष्टों और शोकाकुल परिणामों के स्थान पर मिलते हैं वीरगति पाने पर उच्च लोकों के सौख्य-समृद्धिपूर्ण निवास और चिर-यौवना अप्सराओं के साथ विलास तथा आततायी शत्रु-दर्प चूर्ण करके विजयोल्लास और ऐहिक सुखों की प्राप्ति जो नायक के रस में मग्न कर देते हैं।

अपने काव्य में 'राजनीति नवं रसं' और 'रासो असंभ नव रस सरस' का दावा करने वाले रासोकार ने सुचिर मैत्री वाले उत्साह और क्रोध नामक भावों को ही स्थान दिया है जिनमें बहुधा जुगुप्सा और यदा-कदा भय का मिश्रण देखा जाता है। इनके उपरान्त रूप की राशि अनेक राजकुमारियों का सौन्दर्य चित्रित करने के अतिरिक्त, उनकी काममूर्ति पृथ्वीराज से विवाह करने की साध और उसमें विघ्न तथा अन्त में वांछित प्राप्ति के वर्णन ने रति-भाव की व्यंजना को सदा मानव-चित्त द्रवीभूत करने की शक्ति से सम्पन्न होने पर भी उसे विशेष लुभावने बल से समन्वित कर दिया है। शेष भाव आंशिक रूप से उपस्थित होते हुए भी गौण हैं।

(४) पृथ्वीराज के किंचित् पूर्ववर्ती आचार्य हेमचन्द्र ने महाकाव्य में सन्धियों का निरूपण किया जाना आवश्यक ठहराया था परन्तु ऐतिहासिक वृत्त लेने के कारण कवि चंद को रासो में यथेच्छा परिवर्तन करने और काव्याङ्गों के अनुकूल कथा को घुमाव देने की स्वाधीनता न थी। रासो वर्णित पृथ्वीराज की मृत्यु का ढंग भले ही प्रमाणों के अभाव में इतिहासकारों द्वारा मनोनीत न हो और भले ही स्वदेश और हिन्दू जाति की रक्षा में अपनी आहुति देने वाले चौहान सम्राट के कीर्तिकार ने उस पर कुछ रंग चढ़ाया हो परन्तु शोक में अवसान होने वाली अपनी कृति को नैतिक, आध्यात्मिक और आंशिक लौकिक विजय प्रदान करके, अपने काव्य-नायक की कीर्ति-गाथा ही उसने प्रकारान्तर से गान करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है।

पृथ्वीराज का यशोगान ही इस काव्य का उद्देश्य था, चाहे वह मित्र-भाव के नाते रहा हो, चाहे जीविका के कारण स्वामि-धर्म की पूर्ति हेतु रहा हो अथवा चाहे जनता द्वारा समादृत लोक-कल्याण के कारण प्रसिद्धि को प्राप्त प्रजावत्सल शासक के प्रति स्वाभाविक श्रद्धा वश रहा हो, कवि ने अपने ध्येय को पूरा किया है।

दिल्लीश्वर के जीवन की क्रमबद्ध घटनाओं को भले ही किंचित् शैथिल्य से परन्तु निश्चित रूप से आबद्ध किये हुए इस सम्पूर्ण ख्याति-काव्य में मुख-संधि है 'आदि पर्व्व' का निम्न छप्पय, जिसमें मङ्गलाचरण और विविध स्तुतियाँ करने तथा काव्यगत अपना दैन्य निवेदन करने के उपरान्त, उसने संक्षेप में अपनी रचना के लक्ष्य की सूचना इस प्रकार दे दी है—'क्षत्रियों के दानव कुल में ढुंढा नाम का श्रेष्ठ राक्षस था। उसकी ज्योति से पृथ्वीराज, अस्थियों से शूर वीर सामंत, जिह्वा से चंद और रूप से संयोगिता ने जन्म पाया। जैसी कुछ कथा हुई तथा राजा ने जिस प्रकार योग से भोग प्राप्त किये उन्हीं शत्रु-समूह का नाश करने वाले वज्राङ्ग-बाहु की कीर्ति चंद ने कही है। श्रेष्ठ पृथ्वीराज चौहान जंगल-भूमि के प्रथम शासक हुए जिनके यहाँ सामंत, शूर और भट्ट रहते थे तथा जिन्होंने सुलतान को वन्दी बनाया था। मैं कवि चंद जिनका मित्र तथा सेवापरक हूँ तथा श्रेष्ठ योद्धा सामंत जिनके हितैषी हैं, उनकी कीर्ति वर्णों में बाँधकर मैं सार सहित प्रसारित करता हूँ':

दानव कुल छत्रीय। नाम ढूंढा रष्षस बर॥
तिहिं सु जोत प्रथिराज। सूर सामंत अस्ति भर॥
जीह जोति कविचंद। रूप संजोगि भोगि भ्रम॥
इक्क दीह ऊपन्न। इक्क दीहै समाय क्रम॥
जथ्थ कथ्थ होइ निर्मये। जोग भोग राजन लहिय॥
बज्रंग बाहु अरि दल मलन। तासु कित्ति चंदह कहिय॥ ६२
प्रथम राज चहुवांन पिथ्थ बर। राजधान रंजे जंगल धर॥
मुष सु भट्ट सूर सामंत दर। जिहि बंध्यो सुरतांन प्रान भर॥ ६३
हं कविचंद मित्त सेवह पर। अरु सुहित सामंत सूर बर॥
बंधौं कित्ति प्रसार सार सह। अष्षों बरनि भंति थिति थह॥ ६४, स० १

पृथ्वीराज द्वारा लोहाना आजानुबाहु के साहस पर उसे पुरस्कृत करना और भीमदेव के पैतृव्य भ्राताओं तथा गोरी सुलतान के भाई हुसेन ख़ाँ को शरण देने के वृत्तान्त 'प्रतिमुख-सन्धियाँ' हैं, जिनमें लोहाना को पुरस्कार-स्वरूप बढ़ावा ऐसे अच्छे स्वामी के प्रति आस्था जाग्रत कर कालान्तर में किसी रणभूमि में अपने जीवन पर खेल कर उसकी ख्याति बढ़ाने वाला है और आश्रय देना प्रत्यक्ष ही कीर्ति का द्योतक है। अनायास और अकारण अनेक आक्रमणों का पृथ्वीराज द्वारा मोर्चा लेना भी इसी सन्धि के अन्तर्गत आवेगा।

अपने प्रतिद्वन्दियों के कई बार छक्के छुड़ाने वाले, अनेक युद्धों के

विजेता पृथ्वीराज का अन्तिम युद्ध में बन्दी किये जाने पर भी उससे बदला लेकर अपने प्राण-त्याग करना इस कीर्ति-काव्य में 'निर्वहण-सन्धि' है।

विभिन्न कथा संघ-बद्ध इस काव्य को आमूल रूप से सन्धियों में निबद्ध नहीं पाया जाता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसकी कथाओं के क्रम में नायक के उत्तरोत्तर जीवन-विकास का ध्यान रखा गया है परन्तु इतना होने पर भी विशेषता किंवा अनोखापन यह है कि उनमें से अनेक स्वयं-स्वतंत्र, पूर्ण और पूर्वापर सम्बन्ध से रहित इस ढंग की हैं कि उनके हटा लेने से शेष कथानक में कोई व्याघात नहीं पड़ता। इन विभिन्न प्रस्तावों में दी हुई पूर्ण कथाओं के चित्रण में 'एक ही प्रयोजन की साधिका उन कथाओं का मध्य-वर्ती किसी एक प्रयोजन के साथ सम्बन्धित होने वाला व्यापार' अर्थात् सन्धियों का निर्वाह अवश्य ही कुशलता पूर्वक किया गया है। उदाहरण के लिए हम 'शशिवृत्ता समय पचीस' लेंगे।

इस समय की कथा का प्रारम्भ करता हुआ कवि कहता है कि एक ग्रीष्म के उपरान्त वर्षा-काल में पृथ्वीराज के दिल्ली-दरबार में देवगिरि का एक नट आया और उसने वहाँ की राजकुमारी शशिवृता के विषय में पूछे जाने पर कहा कि उज्जैन-नरेश 'कमध्ज्ज' के भतीजे वीरचंद से उसकी सगाई के लिये ब्राह्मण भेजा गया है परन्तु उसको यह सम्बन्ध प्रिय नहीं है। फिर नट का राजकुमारी का रूप वर्णन—

कहै सु नट राजिंद। ब्रह्म आमोदक्क दिन ॥
चंद कला मुष कंज। लच्छि सहजहँ सरूप तन ॥
नेंन सु मृग शुक नास। अधर बर बिंब पक्क मति ॥
कंठ कपोत मृनाल भुज्ज। नारंगि उरज सति ॥
कटि लंक सिद्ध जुग जंघ रँभ। चलत हंस गति गयँद लजि ॥
सा नृपति काज न्रमिय तरुनि। मनों मेनिका रूप सजि ॥ २६,
कह गुन बरनौं राज कहि। कुंअरी जद्दव नाथ ॥
विधना रचि पचि कर करी। मनुं मेंनिका समाथ ॥ २७,

'मुख-सन्धि' का 'विलोभन' है जिसे सुनकर पृथ्वीराज का आसक्त होकर उससे विवाह करने का विचार—

सुनि राजन्न लगो श्रोतानं। लग्गे मीन केतु क्रत बानं ॥
कहै नट सौं राजंन बर प्रेमं। मह सगपन सा करहि सु केमं ॥ २८,

'उपक्षेप' है। नट का उत्तर कि जो मेरे किये होगा उठा न रखूँगा—

जौ मुझ कीयौ होइ है। तौ करि हौं नृप इंद ॥ २६,

'परिक्रिया' है।

हंस रूपी गन्धर्व का शशिवृता से वीरचन्द की अयोग्यता—

तिहि सु दई मातु पितु बंधं। सो तुम जोग नहीं बर कंधं॥ ७३,

का उल्लेख करते हुए कहना कि उसकी आयु एक ही वर्ष की है इसी से इन्द्र ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है—

तेम रहै बर बरष इक्क महि। हय गय अनत झुझ्झि हैं समतहि॥

तिहि चार करि तुमही पै आयौ। करि करुना यह इन्द्र पठायौ॥७४,

'युक्ति' है। तथा शशिवृता द्वारा उचित वर बतलाने की अभिलाषा प्रकट करने पर हंस का कथन कि दिल्ली के महा पराक्रमी चौहान तुम्हारे योग्य हैं जिनके सौ सामंत हैं और जिन्होंने ग़ज़नी-पति ग़ोरी को युद्ध में वन्दी बनाकर दंड लेकर छोड़ दिया है—

दिल्ली वै चहुबान महा भर। सो तुम जोग चिन्तयौ हम बर॥७६

सत सामंत सूर बलकारी। तिन सम जुद्ध सु देव बिचारी॥

जिन गहियौ सर बर गज्जन वै। हब गय मंडि छंडि पुनि हिय वै॥७७,

'समाधान' है।

हंस से पृथ्वीराज का शशिवृता से मिलन का संकेत-स्थल पूछना और उसका उत्तर—

कह संभरि वर हंस सुनि। कह जहों संकेत॥

कोन थान हम मिलन है। कहन बीच संमेत॥ १९९

कह यह दुज संकेतं। हो राज्यंद धीर ढिल्लेसं॥

तेरसि उज्जल माघे। व्याहन वरनीय थान हर सिद्धिं॥२००,

तथा पृथ्वीराज का आने का वचन देना—

तब राजन फिरि उच्चरै। हो देवस दुजराज॥

जो संकेत सु हम कहिय। सो अष्षी त्रिय काज॥२०१,

'प्रतिमुख-सन्धि' है।

देवगिरि के राजा भान का अपनी कन्या के प्राण देने के संकल्प के विचार से गुप्त रूप से पृथ्वीराज को निमंत्रण और देवालय में शशिवृता की प्राप्ति का समाचार—

यों सु सुनिय नृप भान नैं। पुत्रि प्रलय व्रत लीन॥

चरं पिष्षिय चहुआन पै। जद्दव मोकल दीन॥ २६५

मुक्काए मति वंतिनी। नृप कग्गद लै हथ्थ॥

पूजा मिसि बाला सु भर। संभु थान मिलि तथ्थ॥ २६६,

तथा पृथ्वीराज के सामंतों का उत्साहित होना (छं० २६७) और कवि का प्रोत्साहन कि गन्धर्व विवाह शूर वीर ही करते हैं—

सार प्रहारति भेवो । देवो देवत्त जुद्धयौ बलयं ॥
गंध्रब्वी प्रति ब्याहं । सा ब्याहं सूर कलयामं ॥२६८,

'गर्भ-सन्धि' है, जिसमें अंकुरित बीज का विस्तार हुआ है। इसी के अन्तर्गत देवालय में शिव-पूजन हेतु गई हुई शशिवृता की पृथ्वीराज से मिलन हेतु स्तुति का भी प्रसंग है—

उतरि बाल चौडोल तैं । प्रीति प्रात छुटि लाज ॥
शिवहिं पूजि अस्तुति करी । मिलन करै प्रथुराज ॥३५७

सात सहस्र कपट वेश धारी सैनिकों सहित पृथ्वीराज का देवालय में घुसकर पूजन करती हुई सशंकित और लज्जित शशिवृता को लेकर चल देना—

दिट्ठ दिट्ठ लग्गी समूह । उतकंठ सु भग्गिय ॥
निष लज्जानिय नयन । मयन माया रस पग्गिय ॥
छल बल कल चहुआन । बाल कुंअरप्पन भंजे ॥
दोष त्रीय मिट्टयौ । उभय भारी मन रंजे ॥
चौहान हथ्थ बाला गहिय । सो ओपम कविचंद कहि ॥
मानों कि लता कंचन लहरि । मत्त बीर गजराज गहि ॥ ३७४...
बीर गत्ति संधिय सुमति । वृत्त अवृत्त न जाइ ॥
घरी एक आवृत्त रषि । सुबर बाल अनुराइ ॥ ३८२,

जिसके फल स्वरूप चौहान की सेना का राजा भान और कमधज्ज की संयुक्त वाहिनी से युद्ध (छं० ३८३–७७२) 'अवमर्श-सन्धि' है जिसमें 'संफेट', 'विद्रव', 'शक्ति', 'व्यवसाय', 'द्युति', 'विरोधन', 'प्ररोचना' आदि मिलते हैं।

'अनंछित्ति अंगं बरं अत्तताई । भई जीत चहुआन प्रथिराज राई ॥ ७७३' से 'निर्वहण-सन्धि' का प्रारम्भ होता है जिसका 'ग्रथन' कमधज्ज वीरचंद के प्रति निढ्ढुर राय के इन वाक्यों से होता है कि पृथ्वीराज बाला को लेकर चले गये अब किस लिये युद्ध ठाना है—

परे सुभर दोऊन दल । निढ्ढुर देष्यौ बंध ॥
कोन भुजा बल जुध करै । मुनि कमधज्ज अमुंद्ध ॥ ७७४
बाला लै प्रथिराज गय । गहिय बग्ग कमधज्ज ॥
रोस रीस विरसोज भय । रह बाजे अनबज्ज ॥ ७७५,

में मिलता है। 'निर्णय' और 'प्रशस्ति' सूचक निम्न छन्द हैं जिनमें

यादवराज द्वारा शेष डोलियाँ पृथ्वीराज को देने तथा चौहान की प्रशंसा का उल्लेख है—

षूब राज प्रथिराज । षूब जैचंद बंध बर ॥
षूब सूर सामंत । षूब नृप सेन पंग बर ॥
षूब सेन ढंढोरि । षूब झोरी करि डारिय ॥
षूब प्रेत विधि गाम । वान गंगा पथ झारिय ॥
आसेर आस छंडिय नृपति । विपति सपति जानीय भर ॥
सुठिहार राज प्रथिराज कौ । धरे सबह चौंडोल घर ॥ ७७७
इन परंत पत्तौ सुग्रह । सुबर राज प्रथिराज ॥
हय गय दल बल मथत बर । रंभ सजीवन काज ॥ ७८१
तपय सु नरपति ढिल्ली । दीह दीहं पद्धरे राजं ॥
जै मंगै क्रत कामं । सा देवं सोइयं देहिं ॥ ७८५
दीहं पासा रूवं । सारूवं भूपयो सब्बं ॥
जे नष्षै ते मंगै । देवानं देवयो दीहं ॥ ७८६

रासो के अन्य कई प्रस्तावों में सन्धियों का उपयुक्त ढंग से निरूपण किया जा सकता है।

(५) बारहवीं शती के दिल्ली और अजमेर के शासक, ऐतिहासिक वीर महाराज पृथ्वीराज चौहान तृतीय का जिस दिन जन्म हुआ....ग़ज़नी नगर भग्न होने लगा, अन्हलवाड़ा पट्टन में सेंध लग गई, धरा का भार उतर गया और युग-युग तक उनका यश अमर हो गया—

ज दिन जनम प्रिथिराज । षरिग बत्तह कनवज्जह ॥
ज दिन जनम प्रिथिराज । त दिन गज्जन पुर भज्जह ॥
ज दिन जनम प्रिथिराज । त दिन पट्टन वै सद्धिय ॥
ज दिन जनम प्रिथिराज । त दिन मन काल न षद्धिय ॥
ज दिन जनम प्रथिराज भौ । त दिन भार धर उत्तरिय ॥
बतरीय अंस अंसन ब्रहम । रही जुगें जुग बत्तरिय ॥ ६८८, स० १

'उनका जन्म होते ही शिखरों (पर्वतों) के दुर्ग लड़खड़ाने लगे, भूमि में भूचाल आ गया, शत्रुओं के नगर धराशायी होने लगे और उनके गढ़ तथा कोट टूटने लगे, सरिताओं में ज्वार आ गया, भूमिपालों के चित्त में चमक पैठ गई और वे भौचक्के रह गये, ख़ुरासान में खलबली पड़ गई और वहाँ की रमणियों के गर्भ पात हो गये, वीर वैताल गणों के मन प्रफुल्लित हुए और देवी रणचंडी हुंकारने लगीं'—

भयौ जनम प्रथिराज। द्रुग्ग षरहरिय सिषर गुर ।।
भयौ भूमि भूचाल। धममि धम धम्म अरिनि पुर ।।
गढन कोट सें लोट। नीर सरितन बहु बढ्ढिय ।।
भै चक भै भूमिया। चमक चक्कित चित चढ्ढिय ।।
षुरसान थान षलभल परिय। अम्भ पात भै अम्भ निय ।।
बेताल बीर बिकसे मनह। हुंकारत षह देव निय ।। ७१६, स० ६

आबू के यज्ञ-कुण्ड से प्रतिहार, चालुक्य, प्रमार और चाहुआन की उत्पत्ति बताकर, अग्नि कुलीन चौहान पृथ्वीराज के तेरह पूर्वजों के नामों का उल्लेख करके, उनके पितामह विग्रहराज चतुर्थ उपनाम वीसलदेव,, सारंगदेव, अर्णोराज उपनाम आना का विशेष प्रसंग चलाकर, जैसिंहदेव और आनंदमेव जी का निर्देश करके तथा उनके पिता सोमेश्वर के बाहुबल द्वारा दिल्लीश्वर अनंगपाल की कान्यकुब्जेश्वर विजयपाल के आक्रमण से रक्षा के वृत्तान्त द्वारा काव्य की कथा का श्री गणेश होता है। पृथ्वीराज से भीमदेव चालुक्य, जयचन्द्र गाहड़वाल, परमर्दिदेव उपनाम परमाल चंदेल और ख़ुरासान, कंधार, ग़ज़नी तथा पंजाब के शासक शाह शहाबुद्दीन ग़ोरी के कई युद्धों का इसमें उल्लेख है, जिनमें से सब प्रमाणित नहीं हो सके हैं। इतिहास के इस अंधकार-युग के रासो के विविध वर्णन ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में कवि-कल्पना-प्रसूत आदि आरोपों से अभिषिक्त हैं। पृथ्वीराज के दुर्द्धर्ष वीर सामंतों के शौर्य के विस्तृत वर्णन, उनके प्रतिद्वंदियों से विग्रह की मूल स्वरूप घटनायें और उनके अनेक विवाहों के विवरण सभी खटाई में पड़े हुए हैं। परन्तु पृथ्वीराज के ऐतिहासिक सम्राट होने के अतिरिक्त लोक में उनकी शूरवीरता, पराक्रम, दया और दान की प्रसिद्धि का प्रतिबिंबित्व करने के कारण उनका प्रस्तुत काव्य शताब्दियों से उत्तर भारतीय हिन्दू जनता द्वारा समादृत होता चला आ रहा है। शोध की वर्तमान परिस्थिति इस काव्य की कथा को इतिहास और कल्पना के योग पर आश्रित ठहराती है।

(६) मंगलाचरण के बाद रासोकार ने धर्म, कर्म और मोक्ष की स्तुति क्रमशः तीन छन्दों में इस प्रकार की है—'श्रेष्ठ मंगल ही उस (धर्म रूपी वृक्ष) का मूल है, श्रुति (वेद) ही बीज है, तथा स्मृति (धर्म-शास्त्र) के सत्य रूपी जल से सींचकर यह धर्म रूपी वृक्ष पृथ्वी पर खड़ा किया गया है। अठारह पुराणों रूपी उसकी शाखायें आकाश, पाताल और मर्त्य तीनों लोकों में छाई हुई हैं तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण रूपी उसके

पत्ते हैं, राग-रंग रूपी उसके पुष्प हैं और भारत में जन्म ही उसका फल है। धर्म की इस उक्ति के आलंबन अमीरों (मुसलमानों) के अतिरिक्त हिन्दू मात्र हैं। कवि रूपी शुक भोजन की आशा में दर्शन रूपी रस पाकर इस धर्म-वृक्ष के चारों ओर मँड़रा रहा है' :

प्रथम सुमंगल मूल अतबिय। स्मृति सत्य जल सिंचिय ॥
सुतरु एक धर ध्रम्म उभ्यौ ॥
त्रिषट साष रम्मिय त्रिपुर। बरन पत्त मुख पत्त सुभ्यौ ॥
कुसम रंग भारह सुफल। उकति अलंब अमीर ॥
रस दरसन पारस रमिय। आस असन कवि कीर ॥ २, स० १;

'(कर्म रूपी वृक्ष का) प्रमाण भूत मंगल रूपी बीज है, निगम (अर्थात् वैदिक कर्म कांड) अंकुर है, वेद (ज्ञान कांड) धुरा है, त्रिगुणात्मक (सत रज, तम रूपी) शाखायें चारों ओर फैली हैं, वर्ण रूपी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र (कर्म के कारण) गिरने वाले पत्ते हैं। धर्म ही त्वचा (छाल) है, सत्य रूपी पुष्पों से यह चारों ओर से शोभित है, कर्म रूपी सुंदर फल उससे विकसित होता है (अर्थात् धर्म करने से यह कर्म रूपी वृक्ष सुस्वादु फल का दाता है), उसके मध्य में अविनाशी अमृत स्वर्ग-सुख है, राजनीति रूपी वायु उसकी स्थिरता नहीं हिला सकती, स्वाद लेने से वह जीव को अमरत्व प्रदान करता है तथा यदि शक्ति और बुद्धि दृढ़ता पूर्वक इस (वेदानुकूल कर्म) को धारण करे तो कलिकाल के कलंक नहीं व्याप्त होते' :

प्रथम मंगल प्रमान। निगम संपजय बेद धुर ॥
त्रिगुन साख चिहुं चक्क। वरन लग्गो सु पत्त छर ॥
त्वचा ध्रम्म उद्धरिय। सत्त फूल्यौ चावद्दसि ॥
क्रम्म सुफल उदयत्त। अम्रत सुम्रत मध्य वसि ॥
डुलै न वाय न्रप नीति अति। स्वाद अमृत जीवन करिय ॥
कलि जाय न लगै कलंक इहि। सत्ति मत्ति आढति धरिय ॥ ३, स० १;

'भोग-भूमि रूपी क्यारी को, वेद रूपी जल से सींचकर, उसके मध्य में श्रेष्ठ वय रूपी बीज बोया गया जिससे ज्ञान रूपी अंकुर निकला, त्रिगुणात्मिका (सत, रज और तम रूपी) उसकी शाखायें हुईं और पृथ्वी पर अनेक नामधारी उसके पत्ते हुए, सत्कर्म रूपी सुन्दर फूल उसमें आया जिसमें मुक्ति रूपी फल लगा। इस (मुक्ति रूपी) वट-वृक्ष के गुणों में विलसित बुद्धिमान (शूर रूपी) शुक मन से इसके मुक्ति रूपी पके फल में चोंच मारता है।

इस एक वृक्ष की शाखायें तीनों लोकों में फैली हुई हैं तथा जय और पराजय इसके प्रख्यात गुण हैं' :

भुगति भूमि किय क्यार । वेद सिंचिय जल पूरन ॥
बीय सुवय लय मध्य । ग्यांन अंकू रस जूरन ॥
त्रिगुन साख संग्रहिय । नाम बहु पत्त रत्त छिति ॥
सुक्रम सुमन फुल्लयौ । मुगति पक्की द्रव संगति ॥
दुज सुमन डसिय बुध पक्क रस । वट विलास गुन पिस्तरिय ॥
तरु इक्क साख त्रयलोक महि । अजय विजय गुन विस्तरिथ ॥ ४, स० १

इस प्रकार धर्म के आधार पर कर्म करते हुए मुक्ति-प्राप्ति की प्रशंसा का इस वीर गाथात्मक कृति में विशेष प्रयोजन है क्योंकि इस क्षत्रिय-लोकादर्श काव्य में स्वामि-धर्म के लिये रण रूपी कर्म करके मुक्ति-प्राप्त करने का विधान आद्योपान्त मिलता है।

ग्रन्थ की समाप्ति में उसका माहात्म्य कथन करते हुए कवि ने जहाँ अन्य अनेक वरदान दिये हैं वहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति की बात भी कह डाली है—

पावहि सु अरथ अरु ध्रम्म काम ।
निरमान मोष पावहि सु धाम ॥ २३२, स० ६७

(७) अपने मंगलाचरण में चंद ने इस प्रकार स्तुति की है—'आदि देव ॐ को प्रणाम कर, गुरुदेव को नमन करके और वाणी के चरणों की वंदना करके, मैं स्वर्ग, पाताल और पृथ्वी को धारण करने वाले श्रेष्ठ इंदिरा के पति (अर्थात् विष्णु) के चरणों का आश्रय ग्रहण करता हूँ, दुष्टों का निश्चय ही विनाश करने वाले, देवताओं के नाथ तथा सिद्धि के आश्रय ईश (अर्थात् शंकर) की वंदना करता हूँ (या ईश की पादुकाओं का सेवन करता हूँ) और स्थिर, चर तथा जंगम सब जीवों के वरदानी और स्वामी ब्रह्मा को नमस्कार करता हूँ':

ॐ आदि देव प्रनम्य नम्य गुरुयं, वानीय वंदे पयं ।
सिष्टं धारन धारयं वसुमती, लच्छीस चर्नाश्रयं ।
तं गुंनतिष्टति ईस दुष्ट दहनं, सुर्नाथ सिद्धिश्रयं ।
थिर्चरजंगम जीव चंद नमयं, सर्वेस वर्दामयं ॥ १, स० १

इसके उपरान्त कवि ने धर्म, कर्म और मुक्ति की स्तुति की है (छं० २–४) तथा पूर्व कवियों की स्तुति करते हुए अपने काव्य को उनका उच्छिष्ट कहा है (छं० ५–१०) और अपनी पत्नी की शंका का समाधान

करते हुए (छं० ११-४१) अपने को पूर्व कवियों का दास कहकर दुर्जनों और सज्जनों का स्वभाव वर्णन किया है (छं० ५०-५२) तथा सरस्वती की वंदना इस प्रकार की है—'मोतियों का हार पहिनने वाली, विहार से प्रसन्न, विदुषी, अहिंसक, विद्वानों की रक्षिका, श्वेत वस्त्रों को धारण करने वाली, लावण्य से सुन्दर शरीर वाली, गौरवर्णा, वाणी स्वरूपा, योगिनी, हाँथ में वीणा लिये, ब्रह्माणी रूपा, हंस और जिह्वा पर आसीन होने वाली तथा दीर्घ केश और पृथुल उरुओं वाली देवी विघ्नों के समूह का नाश करें' :

मुक्ताहार बिहार सार सुबुधा, अबुधा बुधा गोपिनी ॥
सेतं चीर सरीर नीर गहिरा, गौरी गिरा जोगिनी ॥
बीना पानि सुबानि जानि दधिजा, हंसा रसा आसिनी ॥
लंबोजा चिहुरार भार जघना, बिघ्ना घना नासिनी ॥ ५३, स० १;

तथा गजानन का स्तवन इस प्रकार किया है—'मस्तक से उत्पन्न मदगंध और सिंदूर राग से रुचिर भ्रमरों से आच्छादित, गुंजाओं (घुँघचिलों) की माला धारण किये, उत्तम गुणों के सार, झंझायुक्त पदों से शोभित, (समग्र देवताओं में प्रथम पूजनीय होने के कारण) अग्रज, कानों में कुंडल धारण किये, सूँड़ उछालते हुए गणेश जी पृथ्वीराज के काव्य की रचना को अन्त तक सफल करें' :

छत्रंजा मद गंध राग रुचयं, अलिभूराछादिता ॥
गुंजा हार अथार सार गुनजा, झंझा पया भासिता ॥
अग्रेजा श्रुति कुंडलं करि कर, स्तुद्दीर उद्दारयं ॥
सोयं पातु गनेस सेस सफलं, पृथ्राज काव्यं कृतं ॥ ५४, स० १;

इसके उपरान्त गणपति के जन्म आदि की कथा कहकर (छं० ५५-६७) कवि ने भगवान् शंकर की स्तुति करते हुए (छं० ६८-७५) तथा हरि और हर की उपासना का द्वन्द मिटाते हुए (छं० ७६-७७) उसका समन्वय इस प्रकार किया है—'लक्ष्मी और उमा दोनों के क्रमशः स्वामी हरि और हर पापों का निवारण करें। हरि जिनके वक्षस्थल पर भृगु ऋषि के चरण का चिन्ह है तथा हर जिनकी जटाओं से गंगा निसृत हुई हैं, वैजयन्ती माला धारण करने वाले हरि और शंख सदृश श्वेत (प्राणियों या नरों के) कपालों की माला से सुशोभित हर, मध्यकाल में पोषणकर्ता तथा रक्षक हरि और चरम काल में ऐश्वर्यवान तथा संहारक हर, विभूति और माया से सेवित हरि तथा चरणों में भभूत (राख या भस्म) रमाये हर; मुक्ति प्राप्ति के मूल ये दोनों श्रेष्ठ देवता पापों को दूर करें':

गंगाया अगुलत्त वसन्न मसनं[1], लच्छी उमा दो बरं ॥
संखं भूत कपाल माल असितं, बैजंति माला हरी ॥
चर्मं मध्य विभूति भूतिक युगं, विब्भूति माया क्रमं ॥
पापं विहरति मुक्ति अप्पन वियं, वीयं बरं देवयं ॥ ७८, स० १

इन स्तुतियों के बाद कवि ने अपनी रचना की वर्ण्य-वस्तु इस प्रकार निर्दिष्ट कर दी है—'क्षत्रिय-कुल में ढुण्ढा नामक एक श्रेष्ठ राक्षस हुआ। उसकी ज्योति से पृथ्वीराज का जन्म हुआ, अस्थियों से शूरमा सामंत उत्पन्न हुए, जिह्वा की ज्योति से कविचन्द हुआ और रूप से संयोगिता पैदा हुई। एक शरीर से जन्म प्राप्त करके सब क्रम से एक शरीर में ही समा गये।[2] यथानुसार जैसे कुछ वे उत्पन्न हुए तथा राजा को भोग और योग की प्राप्ति हुई, उसी शत्रु-दल के दलन करने वाले वज्राङ्ग-बाहु की कीर्ति चंद ने कही है' :

दानव कुल छत्रीय। नाम ढूंढा रष्षस बर ॥
तिहिं सु जोत प्रथिराज। सूर सामंत अस्ति भर ॥
जीह जोति कविचंद। रूप संजोगि भोगि भ्रम ॥
इक्क दीह ऊपन्न। इक्क दीहै समाय क्रम ॥
जथ्थ कथ्थ होइ निर्मये। जोग भोग राजन लहिय ॥
बज्रङ्ग बाहु अरि दल मलन। तासु कित्ति चंदह कहिय ॥ ६६, स० १

(८) सज्जनों और दुर्जनों के अनादि अस्तित्व ने काव्य में भी उनकी स्तुति-निन्दा करना विधेय बनाया होगा यही कारण है भारतीय महाकाव्यों के आदि में इनके प्रसंग का। रामायण और महाभारत जैसे विश्व-विश्रुत काव्यों में इनके वर्णन की अनुपस्थिति किञ्चित् विचार में डालने वाली है तथा संस्कृत-पण्डितों द्वारा इन्हें महाकाव्य न मानकर क्रमशः आदिकाव्य और इतिहास कहकर इस प्रश्न से मुक्ति पाने का यत्न बहुत समाधान नहीं करता क्योंकि संस्कृत के अन्य कई श्रेष्ठ काव्यों में उनके महाकाव्य न होने पर भी इनकी यथेष्ट चर्चा हुई है।

भारत की इन दो विशिष्ट रचनाओं को छोड़कर ६०० ई० के आस-पास होनेवाले महाकवि भारवि ने अपने 'किरातार्जुनीयम्' नामक महाकाव्य

---

(१) 'वसन्न मसनं' का अर्थ 'मसान का वासी' भी सम्भव है; वैसे इसके दूसरे पाठ 'वासमसनं' से अभीष्ट है 'वास का स्थान' जो यहाँ अधिक अभिप्रेत है।

(२) या—एक ही दिन उत्पन्न होकर एक ही दिन क्रम से समा गये।

में लिखा है कि वे मूढ़ बुद्धि वाले पराभव को प्राप्त होते हैं जो मायावियों के साथ माया नहीं करते, शठ जन प्रवेश करके उसी प्रकार घात करते हैं जिस प्रकार बाण खुले हुए अंगों में—

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।
प्रविश्य हिघ्नन्ति शठास्तथाविधान-
संवृताङ्गान्निशिता इवेषवः ॥ १-३०

दसवीं शताब्दी के अपभ्रंश के महाकवि 'अहिमाणमेरु पुप्फदंत' (अभिमानमेरु पुष्पदन्त) ने अपने 'महापुराण' में दुर्जनों की निन्दा करते हुए लिखा है कि गिरि कंदराओं में घास खाकर रह जाना अच्छा है परन्तु दुर्जनों की टेंढ़ी भृकुटियाँ देखना अच्छा नहीं—

तं सुणिवि भणइ अहिमाणमेरु, वर खज्जइ गिरि कन्दर कसेरु ।
णउ दुज्जनभउँहा वंकियाइं, दीसंतु कलुसभावंकियाइं ॥

और इसी शती के 'धणवाल' (धनपाल) ने अपने 'भविसयत्तकहा' काव्य की पतवार विद्वत् जनों को यह कहकर सौंप दी कि मैं मन्द बुद्धि वाला गुणों से हीन और व्यर्थ का व्यक्ति हूँ; हे बुध जन, तुम मेरी काव्य-कथा को सँभाल लेना—

बुहयण संभालमि तुम्ह तेत्थु, हउं मन्द बुद्धि णिग्गुणु णिरत्थु ।

तथा दुर्जनों के लिये कह दिया कि पराये छिद्र देखना ही जिनका व्यापार है उन्हें कोई किस प्रकार गुणवान कह सकता है, वे श्रेष्ठ कवियों में त्रुटियाँ ढूँढ़ते हैं और महान् सतियों को दोष लगाते हैं—

परछिद्दसएहिं वावारु जासु गुणवंतु कहिमि किं कोवि तासु ।
अवसद्द गवेसइ वरकईहुं दोसइं अब्भासइं महसईहुं ॥ १—२

१०८५ ई० के कवि बिल्हण ने अपने सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्य 'विक्रमांकदेवचरितम्' में लिखा है कि विद्वानों की श्री जड़ों (मूर्खों) की प्रसन्नता के लिये नहीं होती क्योंकि मोती में छिद्र करने वाली शलाका टाँकी का काम नहीं दे सकती; और दुर्जनों का इसमें कोई दोष नहीं क्योंकि उनका स्वभाव ही गुणों के प्रति असहिष्णु होना है जैसे चन्द्र के खण्ड के समान उज्ज्वल मिश्री भी कुछ लोगों के लिये द्वेष की पात्र होती है—

व्युत्पत्तिरावर्जितकोविदापि न रञ्जनाय क्रमते जडानाम् ।
न मौक्तिकच्छिद्रकरी शलाका प्रगल्भते कर्मणि टङ्किकायाः ॥ १-१६....

न दुर्जनानामिह कोपि दोषस्तेषां स्वभावोसि गुणासहिष्णु: ।
द्वेष्यैव केषामपि चन्द्रखण्ड विपाण्डुरा पुण्ड्रक शर्करापि ॥ १–२०

'वंदउँ संत असज्जन चरना' वाले मानसकार ने 'सुजन समाज सकल गुन खानी' को प्रणाम करके 'परहित हानि लाभ जिन केरे' की भी स्तुति की और फिर दोनों की विषम भिन्नता दिखाकर कह ही तो डाला कि दुष्टों के पापों तथा अवगुणों की तथा साधुओं (सज्जनों) के गुणों की गाथायें दोनों ही अथाह और अपार सागर हैं—

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा । उभय अपार उदधि अवगाहा ॥

सोलहवीं शती तक के उपर्युक्त प्रमाण स्वत: सिद्ध करते हैं कि चंद के काल में सज्जन-दुर्जन की वर्णन-परम्परा अवश्य ही माननीय रही होगी । 'पृथ्वीराज-रासो' के प्रारम्भिक प्रस्ताव में कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों की स्तुति करके अपनी रचना को उनका उच्छिष्ट (जूठन) कहता है—'तिनैं की उचिष्टी कवी चन्द भखवी' (छं०१०,स०१) । और चौहान की प्रशस्त कीर्ति के सम्मुख अपनी बुद्धि की लघुता का वर्णन करता हुआ (छं०४२–४६, स०१) अपने को पूर्व कवियों का दास बताकर कहता है कि जो कुछ उनके द्वारा कहा जा चुका है उसी की मैं अपने छन्दों में बकवास कर रहा हूँ—

कहां लगि लघुता बरनवों । कविन दास कवि चन्द ॥
उन कहि ते जो उब्बरी । सो बकहों करि छंद ॥ ५०,

'मैं सरस काव्य की रचना कर रहा हूँ जिसे सुनकर दुष्ट जन उपहास करेंगे जैसे हाथी को मार्ग पर जाते देखकर कुत्ते स्वभाव वश भूँकने लगते हैं'—

सरस काव्य रचना रचौं । खल जन सुनि न हसंत ॥
जैसे सिंधुर देखि मग । स्वान सुभाव भुसंत ॥ ५१,

तथापि 'सज्जनों के गुणों (की गुण ग्राहकता) के कारण मैं तन मन से प्रफुल्लित होकर अपनी रचना कर रहा हूँ क्योंकि 'नहियूकभयाल्लोक: कंथात्यजतिनिर्भय:''[1] —

तौ पनि निमित्त सुजन गुन । रचिये तन मन फूल ।
जूका भय जिय जानि कैं । क्यौं डारियै दुकूल ॥ ५२,

'रासो का तत्व श्रेष्ठ विद्वान् जितना अच्छा बता सकता है उतना अच्छा दुर्मति नहीं, अस्तु उसे सद्गुरु से पढ़ना चाहिये'—

१—नष्टजन्माङ्गदीपिका, पृ० २६ ;

जो पढय तत्त रासौ सुगुर। कुमति मति नहिं दरसाइय ॥ ८८,

'विधि (कर्म) और बिनान (विज्ञान) का सर्वस्व छिद्रान्वेषक को नहीं आ सकता परन्तु जो विशुद्ध गुणों वाले सज्जन वृन्द हैं उनको इसका वर्णन और रस सरसित होता है'—

कुमति मति दरसत तिहिं। बिधि बिनान अब्बान ॥
तिहिं रासौ जु पवित्र गुन। सरसौ ब्रह्म रसान ॥ ८९, स० १

(९) महाकाव्य में न बहुत छोटे और न बहुत बड़े आठ से अधिक सर्गों का निदान आचार्य ने किया है। आदिकाव्य 'रामायण' में ७ कांड हैं और 'महाभारत' इतिहास में १८ पर्व हैं, कुमारसम्भव में १७ सर्ग हैं, रघुवंश में २१ सर्ग हैं, शिशुपाल-वध में २० सर्ग हैं, नैषध में २२ सर्ग हैं, सेतुबंध में १५ आश्वास हैं, (स्वयम्भू के) पउमचरिउ में ५ कांड हैं परन्तु पृथ्वीराज-रासो में ६९ समय या प्रस्ताव हैं। जहाँ तक छोटे और बड़े प्रस्तावों का प्रश्न है, छोटे प्रस्तावों में रासो के चौथे समय में ३१ छन्द हैं, १० वें में ३६, ११ वें में ३३, १५ वें में ३६, १६ वें में १८, २२ वें में २२, २३ वें में ३५, ३५ वें में ४९, ४० वें में २४, ४१ वें में ३५, ४९ वें में ४३, ५३ वें में ३१ और ६५ वें में १२ हैं तथा बड़े प्रस्तावों में पहले समय में ७८३ छन्द हैं, दूसरे में ५८६, २४ वें में ४९४, २५ वें में ७८९, ६१ वें में २५५३, ६६ वें में १७१४, ६७ वें में ५६८ और महोबा समय में ८२८ हैं; इनके अतिरिक्त शेष प्रस्तावों में ५५ से लेकर ४५३ छन्द तक पाये जाते हैं। नीचे दी हुई तालिका से यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि महाकाव्य का यह नियम रासो में अत्यन्त शिथिल है—

समय या प्रस्ताव	छन्द संख्या	छन्द प्रकार	समय या प्रस्ताव	छन्द संख्या	छन्द प्रकार
१	७८३	१९	९	२१०	१४
२	५८६	२४	१०	३६	५
३	५८	७	११	३३	७
४	३३	७	१२	३९७	२४
५	१०८	१२	१३	१५९	१४
६	१७८	१०	१४	१६४	१३
७	१८६	१४	१५	३६	६
८	७१	८	१६	१८	४

समय या प्रस्ताव	छन्द संख्या	छन्द प्रकार	समय या प्रस्ताव	छन्द संख्या	छन्द प्रकार
१७	८०	६	४४	२०६	१२
१८	१०४	११	४५	२१६	१६
१६	२५१	१४	४६	११३	१४
२०	७१	५	४७	१३७	११
२१	२१४	१५	४८	२७५	१७
२२	२२	२	४६	४३	५
२३	३५	२	५०	६६	१०
२४	४६४	२३	५१	१४५	१२
२५	७८६	२२	५२	२०३	१४
२६	६०	८	५३	३१	४
२७	१५०	११	५४	५७	५
२८	१६८	११	५५	१६५	१३
२६	५७	५	५६	१०६	१२
३०	५७	१०	५७	३२२	१८
३१	१७८	१०	५८	२६७	१८
३२	११५	१०	५६	६६	५
३३	८२	७	६०	७८	५
३४	७२	१०	६१	२२५३	३७
३५	४६	६	६२	१८८	२१
३६	२५३	१८	६३	२०४	११
३७	१३४	१३	६४	४५३	१५
३८	५५	८	६५	१२	२
३६	१५२	१३	६६	१७१४	२८
४०	२४	४	६७	५६८	१८
४१	३५	६	६८	२४४	१०
४२	८५	७	महोबा	८२८	१२
४३	१३३	१०	समय		

(१०) जहाँ तक सर्गों में छन्द की एकता का प्रश्न है रासो की स्थिति महाकाव्य की कसौटी पर बहुत आशाजनक न कही जा सकती थी यदि

साहित्यदर्पणकार ने सर्ग में एक छन्द के नियम के अतिरिक्त यह भी न कह दिया होता कि कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं। रासो में यह अनेक छन्दों वाला नियम ही लागू होता है। अनुमान है कि कालिदास, माघ, श्रीहर्ष और प्रवरसेन के विश्रुत महाकाव्यों के सर्गों में प्रत्येक में एक छन्द तथा सर्ग की समाप्ति के अंतिम पद्य की दूसरे छन्द में योजना द्वारा रस और भाव की अविकल साधना होते देखकर आचार्य ने यह नियम बनाया होगा परन्तु साथ ही उन्होंने छन्दों को यति, गति और गेयता के वरदानी कुशल कवियों के लिये छूट भी दे रखी होगी। भावानुकूल छन्दों की योजना करने में सक्षम रासोकार को तभी तो छन्दों का सम्राट कहना पड़ता है।

निर्दिष्ट तालिका के अनुसार रासो के समय ६५ में २ प्रकार के १२ छन्द हैं, समय २२ में २ प्रकार के २२ छन्द हैं, समय २३ में २ प्रकार के ३५ छन्द हैं, समय १६ में ४ प्रकार के १८ छन्द हैं, समय ४० में ४ प्रकार के २४ छन्द हैं और समय ५३ में ४ प्रकार के ३१ छन्द हैं; शेष समय ५ प्रकार से लेकर ३७ प्रकार के छन्दों वाले हैं जिनमें छन्दों की संख्या ३३ से लेकर २२५३ तक है। परन्तु विविध आकार-प्रकार वाले रासो के प्रस्तावों की विषम छन्द योजना और उनका स्वच्छन्द दीर्घ विस्तार सरसता का साधक है बाधक नहीं। केशव की 'रामचन्द्रिका' और सूदन के 'सुजान-चरित्र' सदृश रासो में भी छन्दों का मेला है परन्तु उनकी भाँति इसके छन्द कथा प्रवाह में अवरोध नहीं डालते वरन् अवसर के अनुकूल ओज, माधुर्य और प्रसाद गुणों की सफल सृष्टि करते हैं। लाल के 'छत्र-प्रकाश' की भाँति चंद ने अपनी काव्य भाषा के प्रतिकूल छन्दों का चुनाव भी नहीं किया है। 'महाभारत' के विविध पर्वों में विविध छन्दों की सफल योजना देखकर यदि रासोकार प्रभावित हुआ हो तो आश्चर्य नहीं।

(११) पहले समय में बीसलदेव के ढुंढा दानव वाले विस्तृत प्रसंग और सोमेश्वर के पुत्र तथा दिल्लीश्वर अनंगपाल के दौहित्र पृथ्वीराज का अपने नाना के यहाँ दिल्ली में जन्म और अजमेर लाये जाने तथा शिक्षा-दीक्षा का वर्णन करके कवि अंत में हरि के रूप-रस की जिज्ञासा करने वाली अपनी पत्नी से कहता है कि मैं वांछित सरस वार्ता का वर्णन करूँगा तुम ध्यान से सुनना—

कह्यौ भांमि सौं कंत इम। जो पूछै तत मोहि ॥
कान धरौ रसना सरस। ब्रन्नि दिषाऊं तोहि ॥७८३

इसके उपरान्त दूसरे समय में उपर्युक्त सूचना के अनुसार कवि ने दशावतार की कथा कही है और उसके अंत में यह कहकर कि राम और कृष्ण की कीर्ति अनन्त है, उसका कथन करने में अधिक समय लगेगा, आयु थोड़ी है और चौहान का भार सिर पर है—

राम किसन कित्ती सरस। कहत लगै बहु बार ॥
छुच्छ आव कवि चंद की। सिर चहुआना भार ॥५८५,

उसने तीसरे समय में 'दिल्ली किल्ली कथा' से चौहान का वृत्तान्त फिर प्रारम्भ किया है और अन्त में स्वप्न का सुफल तथा दिल्ली-कथा कहकर, आगे पृथ्वीराज के गुण और चाव वर्णन की सूचना देकर—

सुपन सुफल दिल्ली कथा। कही चंद बरदाय ॥
अब अग्गे करि उच्चरों। पिथ्थ अँकुर गुन चाय ॥५८,

चौथे समय में लोहाना आजानुबाहु के साहस और पौरुष की कथा 'इक समय प्रिथिराज राज ठढ्ढा सामंतह' से प्रारम्भ कर दी है तथा अंत में आगामी कथा की सूचना न देकर पाँचवाँ समय भोलाराय भीमदेव और पृथ्वीराज की शत्रुता के कारण की जिज्ञासा करने वाली शुकी को शुक द्वारा उत्तर रूप में आरम्भ किया है—

सुकी कहै सुक संभरौ। कहौ कथा प्रति प्रान ॥
पृथु भोरा भीमंग पहु। किम हुअ बैर बिनान ॥१,

इसके अंत में संभरेश चौहान को अजमेर की भूमि में रहकर कृष्ण सदृश अहर्निशि लीला करते हुए बतलाकर छठे समय में इस वार्ता को युक्ति से जोड़ते हुए पृथ्वीराज की चौदह वर्ष की कुमारावस्था के एक आखेट में वीरों के वशीकरण की कथा कही गई है—

कुँअरप्पन प्रथिराज। वर्ष विय सपत समर तन ॥

सातवें समय में ११२६ बदी फाल्गुन चतुर्दशी सोमवार को सोमेश्वर द्वारा किये गये शिवरात्रि-व्रत का उल्लेख करते हुए, पृथ्वीराज पर मोहित होकर मंडोवर के नाहर राय के अपनी कन्या उन्हें देने की बात कहकर पलटने के फलस्वरूप युद्ध तथा चौहान की विजय का वर्णन कवि कर डालता है। आठवें समय में मंडोवर विजयी सोमेश्वर द्वारा युद्ध की लूट का विभाजन करके मेवाती मुगल का वृत्तान्त आ जाता है।

अति उत्कंठा पैदा करने वाली संभरेश और ग़ोरी सुलतान के आदि बैर की कथा के मिस नवाँ समय प्रारम्भ होता है—

संभरि वै चहुआन के। अरु गज्जन वै साह ॥
कहाँ आदि किम वैर हुअ। अति उतकंठ कथाह ॥१,

और उसमें चित्ररेखा वेश्या तथा ग़ोरी के भाई हुसेन ख़ाँ के पृथ्वीराज के शरणार्थी होने का प्रसंग चलाकर तथा युद्ध में सुलतान की पराजय और वन्दीगृह से उसकी मुक्ति का वर्णन करके बड़ी आसानी से दसवाँ समय ग़ोरी की द्रोहाग्नि से बढ़ चलता है—

बरष एक बीते कलह। रीस रष्षि सुरतान ॥
उर अंतर अग्गी जलै। चित सल्लै चहुआन ॥१

ग्यारहवें समय में कवि पाठकों की उत्सुकता तीव्र करता हुआ, उनकी सुपरिचिता सुन्दरी चित्ररेखा की उत्पत्ति तथा अश्वपति ग़ोरी द्वारा उसकी प्राप्ति का ललित प्रसंग चलाता है—

पुच्छि चंद बरदाइ नैं। चित्ररेष उतपत्ति ॥
षां हुसेन प्रावास कहि। जिम लीनी असपत्ति ॥१

परन्तु अन्त में आगे की कथा की कोई सूचना नहीं देता। पूर्व सूचित न होने के कारण बारहवें समय में नाटकीय ढंग से भोलाराय भीमदेव द्वारा शिवपुरी जलाने का वर्णन प्रारम्भ होता है जो अनायास कौतूहल बढ़ा देता है तथा यह प्रसंग पृथ्वीराज द्वारा भोलाराय की पराजय में समाप्त हो जाता है तथा तेरहवें समय के साथ बड़ी युक्ति से यह कहकर सम्बन्धित कर दिया जाता है कि इधर जब भीमदेव से युद्ध छिड़ा था, ग़ोरी के आक्रमण का समाचार मिला जिससे उधर चढ़ाई की गई—

सयन सिंह लग्गा सुआरि। सुनि करि बर प्रथिराज ॥
सारुंडै संम्हौ चढ्यौ। तहं गोरी प्रति बाज ॥४

ये दोनों समय भारद्वाज नामी दो मुख और एक उदर वाले पक्षी का उदाहरण देकर निम्न 'गाथा' द्वारा मिलाये जाते हैं—

भारद्वाज सु पंषी। उभयं मुष उद्दरं एकं ॥
त्यों इह कथ्थ प्रमांनं। जांनिज्यौ कोविंद लोयं ॥५

चौदहवाँ समय शुकी-शुक के प्रश्नोत्तरों से प्रारम्भ तो होता है परन्तु उसमें पिछले समय से जोड़ने वाला एक उपयुक्त सूत्र भी सुलभ है। 'पृथ्वीराज ने शाह को वन्दी बनाकर और उससे कर लेकर सत्कार पूर्वक मुक्त कर दिया है, यह जानकर आबूपति सलख प्रमार ने अपनी पुत्री इंच्छिनी से उनके साथ विवाह करना चाहा';

मुक्कि साह पहिराइ करि । दंड दियौ सलषांनि ॥
लगन पठाइय विप्र कर । बर ब्याहन पिथ्थांन ॥४,

और इसके उपरान्त विवाह का साङ्गोपाङ्ग वर्णन उचित ही है ।

पन्द्रहवें समय को पूर्व कथा से जोड़ने वाला प्रसंग है इंच्छिनी का परिणय करके जाते हुए पृथ्वीराज पर मेवात के मुगल राजा का पूर्व बैर के कारण आक्रमण करने का निश्चय—

प्रथीराज राजत सुवर । परनि लच्छि उनमांन ॥
दिसि मुग्गल संभर धनी । बैर षटक्यौ प्रान ॥१

सोलहवें समय में शुकी और शुक नहीं आते । पिछले विवाह के दम्पति-सुख का वर्णन करके पूर्व कथा से इस समय का सम्बन्ध जुड़ता है और इसी के साथ कवि पृथ्वीराज से पुंडीरी दाहिमी के विवाह की चर्चा छेड़ देता है ।

सत्रहवें समय का पूर्व वार्ता से सम्बन्ध स्थापित करने का कोई उद्योग न करके पृथ्वीराज की कुमारावस्था में मृगया का एक प्रसंग चलाया गया है और यही स्थिति अठारहवें समय की है जिसमें अनायास अनंगपाल के दूत द्वारा कैमास को पत्र दिलाकर दिल्ली-दान की कथा कही गई है । उन्नीसवाँ समय पृथ्वीराज के दिल्ली आकर नाना के राज्य के अधिकारी होने की पूर्व बात छप्पय में दोहराकर, पिछले समय से सम्बन्ध जोड़कर, ग़ोरी के दरबारी माधौ भाट के आगमन की कथा कह चलता है ।

'पूरब दिसि गढ गढनपति' वाले समुद्रशिखर गढ़ की राजकुमारी पद्मावती की कथा बताने वाला समय बीस, 'चित्रकोट रावर नरिंद' का विवाह पृथा से वर्णन करने वाला समय इक्कीस, एक दिन पृथ्वीराज द्वारा होली और दीपावली का माहात्म्य पूछे और चंद द्वारा बताये जाने वाले समय बाइस और तेइस, 'षट्टू आषेटक रमै' बताकर उक्त वन की भूमि से पृथ्वीराज द्वारा धन प्राप्त करने का उल्लेख करने वाला समय चौबिस और 'आदि कथा शशिवृत्त' की प्रारम्भ करने वाला समय पच्चीस, सब परस्पर स्वतंत्र हैं तथा एक दूसरे से कोई लगाव नहीं रखते ।

छब्बीसवाँ समय, पिछले देवगिरि की कुमारी 'शशिवृता समय' की स्मृति हरी रहने के कारण 'न चल्लै कमधज्ज ग्रह, ग्रह घेरयौ फिरि भान' प्रारम्भ करते ही उससे सम्बद्ध हो जाता है और एक प्रकार से उसका उपसंहार सदृश है । सत्ताइसवाँ समय 'देवग्गिरि जीते सुभट आयौ चामंडराय' कहकर पिछले समय से जोड़ दिया गया है ।

(अनंगपाल) तोमर, चौहान को दिल्ली देकर बद्रीनाथ चले गये थे तो उन्होंने फिर दिल्ली लौटकर क्यों विग्रह छेड़ा ?'—

दिय दिल्ली चहुआन कौं। तूंअर बद्री जाइ ॥
कहौ दंद क्यों पुक्करिय। फिरि दिल्ली पुर आइ ॥१,

इस प्रश्न से सर्व स्वतंत्र वार्ता वाला अट्ठाईसवाँ समय प्रारम्भ हो जाता है।

'दिल्लियपति प्रथिराज, अवनि आषेटक षिल्लय' से आरम्भ करके घघर नदी के तट पर युद्ध का वृत्तान्त बताने वाला उन्तीसवाँ समय, 'चहुआन वीर क्रन्नाट देस' पर चढ़ाई बताने वाला तीसवाँ समय, 'महल भयौ नृप प्रात, आइ सामंत सूर भर' वाला दरबार में उज्जैन, देवास और धार पर चढ़ाई का मंतव्य कराने वाला इकतीसवाँ समय, 'कितक दिवस वित्ते' मालवा में मृगया हेतु जाने वाले पृथ्वीराज का वर्णन करने वाला बत्तीसवाँ समय परस्पर पूर्वापर सम्बन्ध से रहित हैं।

बत्तीसवें समय के अन्त में सुन्दरी इन्द्रावती से विवाह की सूचना है—

षंडौ सुनि पठयौ सु नृप। बंज्जि निसानन घाइ ॥
बर इंद्रावति सुंदरी। बिय बर करि परनाइ ॥११५

और इसी कथा को ढंग विशेष से प्रारम्भ करके तेंतीसवाँ समय जोड़ा गया है। चौंतीसवें समय में यह कहकर कि इन्द्रावती से विवाह के ढाई वर्ष उपरान्त पृथ्वीराज खट्टू वन में मृगया हेतु गये, कवि ने उसको पूर्व प्रसंग से सम्बन्धित कर दिया है।

पैंतीसवाँ समय एक सर्वथा नवीन वार्ता से प्रारम्भ होता है। 'कितक दिवस निस मात, आइ जालंधर रानी' ने काँगड़ा दुर्ग को लेने की अभिलाषा प्रकट की। इस अभियान में चौहान केवल विजयी ही नहीं हुए वरन् भोटी राजा भान की पुत्री से विवाह करके लौटे। छत्तीसवाँ समय रणथम्भौर की हंसावती का विवाह बिलकुल नये रूप में आरम्भ करके उसे समाप्त करता है। पहाड़राय तोमर ने असुर-राज (ग़ोरी) को किस प्रकार पकड़ा था, शुकी के इस प्रश्न से सैंतीसवाँ समय प्रारम्भ होता है—

दुज सम दुजी सु उच्चरिय। ससि निस उज्जल देस ॥
किम तूंअर पाहार पहु। गहिय सु असुर नरेस ॥१

और ग़ोरी का एक युद्ध वर्णन कर जाता है।

चन्द्र-ग्रहण की घटना का वर्णन करने वाला समय अड़तिस और सोमेश्वर-वध का वृत्तान्त बताने वाला समय उन्तालिस दोनों निर्लिप्त रूप से दो पृथक प्रसंग हैं। चालीसवाँ समय 'सुनि कगद प्रथिराज जब, बध्यौ भीम

सोमेस' कहकर पूर्व समय से शृंखलित कर दिया गया है। परन्तु जयचन्द्र की प्रेरणा से ग़ोरी का दिल्ली पर आक्रमण वाला समय इकतालिस और चंद का द्वारिका गमन समय बयालिस पुनः दो अछूते प्रसंग हैं। बयालिसवें समय के अन्त में अन्हलवाड़ापट्टन में चंद को पृथ्वीराज का पत्र मिला कि ग़ोरी आ रहा है और वह कूच पर कूच करता हुआ दिल्ली जा पहुँचा—

प्रथु कागद चंदह पढ़िय। आयौ परि गजनेस ॥
कूच कूच मग चंद परि। पहुंच्यौ घर दानेस ॥८५,

इस कथन से ग़ोरी-युद्ध वाला तेंतालीसवाँ समय पूर्व कथा-सूत्र से सम्बन्धित हो गया है।

पिता सोमेश्वर के वध के कारण पृथ्वीराज दिन-रात भीमदेव से बदला लेने की ज्वाला से धधकते रहते थे—

उर अड्डौ भीमंग नृप। नित्त पटक्कै थाइ ॥
अगनि रूप प्रगटै उरह। सिंचै सत्रु बुझाइ ॥१,

इस प्रकार प्रारम्भ करने के कारण तथा सोम-वध और पृथ्वीराज की प्रतिज्ञा से परिचित होने के कारण यह घटना स्वतंत्र होते हुए भी अप्रासंगिक नहीं हो पाती।

देवलोक की वार्ता प्रारम्भ करने वाला समय पैंतालिस तथा संयोगिता के जन्म, शिक्षा और पृथ्वीराज के प्रति अनुराग वर्णन करने वाले समय छियालिस और सैंतालिस परस्पर सम्बन्धित होते हुए भी पूर्व और अपर समय के सम्बन्ध से विछिन्न हैं।

समय अड़तालिस जयचन्द्र का राजसूय यज्ञ और पृथ्वीराज द्वारा उसका विध्वंस वर्णन करता है जिसके अंत में बालुकाराय की पत्नी का विलाप करते हुए जयचन्द्र के पास जाना—

रन हारी पुक्कार पुनि। गई पंग पंथाहि ॥
जग्य विध्वंसिय नृप दुलह। पति जुग्गिनिपुर प्राहि ॥२७५,

इस कथा को आगामी समय उन्चास की वार्ता से आसानी से जोड़ देता है और जयचन्द्र की पृथ्वीराज पर चढ़ाई का कारण स्पष्ट हो जाता है। पचासवें समय में पंग और चौहान का युद्ध वर्णन होने के कारण वह पूर्व समय से संयुक्त दिखाई पड़ता है। दिल्ली-राज्य में जयचन्द्र की सेना द्वारा लूट-खसोट से प्रारम्भ होने के कारण—

ढुंढि फौज जयचंद फिरि। बर लभ्यौ चहुआन ॥
चंपि न उप्पर जाहि बर। रहै ठठुक्कि समान ॥१,

समय इक्यावन के हाँसीपुर युद्ध में सामंतों की विजय और मुसलमान सेना की पराजय का वृत्तान्त समय बावन में सुनकर ग़ोरी का आक्रमण तथा परास्त होने के विवरण एक सूत्र में बँध जाते हैं।

तिरपनवाँ समय महुवा दुर्ग में ग़ोरी से युद्ध के कारण की शुकी द्वारा जिज्ञासा—

सुक्क सुकी सुक संभरिय। बालुक कुरंभ जुद्ध ॥
कोट महुब्बा साह दल। कहौ आनि किम रुद्ध ॥१,

के फलस्वरूप शुक द्वारा उत्तर में प्रारम्भ हो जाता है और इस मोर्चे पर परास्त ग़ोरी का भेद पा जाने के कारण पज्जून राय से वैर लेने के लिये नागौर जा धमकने वाला समय चउवन उससे पृथक नहीं प्रतीत होता। प्रासंगिक वार्ता होने के कारण उनकी कथा एक समय के अन्तर्गत रखी जा सकती थी परन्तु उस स्थिति में संभवत: पज्जून की वीरता की छाप गहरी न पड़ती।

समय पन्चपन में 'राह रूप चहुआन, मान लग्गौ सु भूमि पल' से पृथ्वीराज की प्रशंसा करके, उनका सामंतों पर दिल्ली का भार छोड़कर 'अप्पन आषेटक कियौ' जाने पर जयचन्द्र से युद्ध का विस्तृत वर्णन है। 'चित्रंगी उप्पर तमकि, चढ़ि पंगुरौ नरेस' के साथ समय छप्पन में जयचन्द्र और रावल समरसिंह का युद्ध दिया गया है तथा सत्तावनवें समय में 'दिल्ली वै चहुआन, तपै अति तेज बग्गबर' से प्रारम्भ करके, प्रसंग लाकर कैमास वध की कथा है। समय अट्ठावन में सामंतों के सिरताज पृथ्वीराज कैमास की मृत्यु से दुखी दिखाये गये हैं—

नह सच मुष्ष गवष्ष थह। नह सच अंदर राज ॥
उर अंतर कैमास दुष। सामंता सिरताज ॥१,

इस वर्णन द्वारा नवीन वार्ता को पूर्व कथा से सम्बन्धित कर भट्ट दुर्गा केदार और चंद का वाद-विवाद, ग़ोरी का आक्रमण तथा पराजय की कथा इस समय में कह डाली गई है।

समय उनसठ में अब तक अनेक युद्धों के विजेता पृथ्वीराज के ऐश्वर्य तथा दिल्ली नगर और दरबार का समयानुकूल वर्णन बड़े कौशल से किया गया है। यद्यपि पूर्व 'समय' की वार्ता से इसका कोई सम्बन्ध नहीं परन्तु उपयुक्त अवसर पर लाये जाने के कारण यह खटकता नहीं है। दरबार का वर्णन 'यों तपै पिथ्थ दिल्ली सजोर' के साथ समाप्त होता है जिसमें साठवें समय का प्रारम्भ 'बैठो राजन सभा विराजं, सामँत सूर समूहति साजं'

पूरी तरह खप जाता है तथा संयोगिता द्वारा उनकी मूर्ति को तीन बार वरमाला पहिनाने की सूचना से पृथ्वीराज का प्रेम और उत्साह जाग्रत कर और 'चलन नरिंद कविंद पिथ, पुर कनवज मत मंडि' से उनका कान्यकुब्ज गमन का निश्चय दिखाकर आगामी अपूर्व समय इकसठ की पृष्ठभूमि भलीभाँति प्रस्तुत कर दी गई है। शुक द्वारा संयोगिता के रूप-गुण वर्णन के प्रभाव से पृथ्वीराज को व्यथित दिखाकर तथा ग्रीष्म में दलपंग का दरबार दिखाने के अनुरोध से—

सुक बरनन संजोग गुन। उर लग्गे छुटि बान ॥
षिन षिन सल्लै वार पर। न लहै बेद बिनान ॥१
भय श्रोतान नरिंद मन। पुच्छै फिरि कविरज्ज ॥
दिष्षावै दल पंगुरौ। धर ग्रीषम कनवज्ज ॥२

रासोकार समय इकसठ की कन्नौज गमन, संयोगिता हरण और युद्ध में पृथ्वीराज के कुशलता पूर्वक दिल्ली पहुँचने की कहानी कह जाता है।

समय बासठ 'विलसन राज करै नव नित्तिय' की प्रारम्भिक सूचना चौहान नरेश के सुखोपभोग का परिचय देकर, पूर्व कथा-सूत्र से ग्रथित हो, इंच्छिनी के सपत्नीक विरोध तथा पृथ्वीराज द्वारा उसके मान-मोचन में समाप्त हो जाती है।

समय तिरसठ कन्नौज-युद्ध में मारे गये सामंतों पर पृथ्वीराज के दुःख प्रकाश से प्रारम्भ होता है—

जिन बिन नृप रहते न छिन। ते भट कटि कनवज्ज ॥
उर उप्पर रष्षत रहै। चढै न चित हित रज्ज ॥१

और भविष्य में गोरी द्वारा उनके अंधे किये जाने की भूमिका, श्राप-फलित होने के भारतीय विश्वास के कारण, दिल्लीश्वर को ऋषि-शाप दिलाकर पुष्ट की गई है। 'ते भट कटि कनवज्ज' के उल्लेख द्वारा समय इकसठ के प्रसंग से प्रस्तुत समय जोड़ने की चेष्टा की गई है। इस समय के अन्त में श्राप पाने के उपरान्त पृथ्वीराज का संयोगिता के महल में जाकर विश्वासी द्वारपालों को नियुक्त करके रस रंग में डूबने का समाचार—

गैर महल राजन भयौ। सहित संजोइय बाम ॥
पोरि न रष्यो पोरिया। जे इतबारी धाम ॥२०४,

आगामी छाँछठवें समय में रति-विस्मृत होकर, राज-कार्य से उनकी उपेक्षा का शिलान्यास कर चलता है।

चौंसठवाँ समय पृथ्वीराज का संयोगिता के साथ नित्य नवीन रूप से विलास करने की चर्चा से प्रारम्भ होता है—

सुत्र विलास संजोगि सम। विलसत नव नव नित्त॥
इक दिन मन में उप्पनी। ऐ ऐ वित्त कवित्त॥१;

इस युक्ति से पूर्व कथा से इसे जोड़कर इसमें सामंतों के बलाबल की परीक्षा, धीर पुंडीर की वीरता और गोरी से युद्ध आदि के वृत्तान्त लाये गये हैं।

पैंसठवाँ समय अपने आदि तथा अन्त की कथाओं से असम्बन्धित है और पृथ्वीराज की रानियों के नाम मात्र गिनाता है तथा समय छाँछठ रावल समरसिंह को चित्तौर में स्वप्न में श्वेत वस्त्र धारिणी मन मलीन दिल्ली की राज्य-श्री द्वारा 'पहु अच्छ वधू वीरहतनी, को तन गोरी संग्रहै' कथन से इस कथा के शोक में पर्यवसान का सूचक है। इस समय के अन्त में कविचंद के मोह का निवारण—

तब रंज्यौ कविचंद चित। उर लद्धौ अविनास॥
जान्यौ कारन अप्प जिय। उर आनंदयौ तास॥१७१४,

करके अगले समय सरसठ के प्रथम छन्द में उसी प्रसंग को—

कहै चंद बलिभद्र सम। अहो वीर जट जात॥
इह विभ्रम सुभ्रम सुमन। वज्रपाट विघ्घाट॥१,

बढ़ाने के कारण अनायास संयुक्त हो गया है और ग़ज़नी दरबार में ग़ोरी का वध तथा चंद और पृथ्वीराज के आत्मघात पर 'पुहपंजलि असमान, सीस छोड़ी सु देवतनि' में समाप्त होता है।

अड़सठवाँ समय 'ग्रहिय राज सुरतान, गयौ गज्जन गज्जनवै' द्वारा छाँछठवें समय के युद्ध के अन्त की ओर ध्यान आकर्षित करके, पृथ्वीराज के पुत्र रैनसी को गद्दी पर बिठाकर 'सुन्यौ राज बरदाइ, हन्यौ सुरतान सटक्कै' द्वारा सरसठवें समय की कथा से सम्बन्ध जोड़ता हुआ, मुस्लिम युद्ध में रैनसी के साका करके वीरगति प्राप्त करने और जयचन्द्र की मृत्यु का वर्णन करके ग्रंथ-माहात्म्य के साथ समाप्त हो जाता है।

अन्त में जुड़ा होने के कारण उनहत्तरवाँ समझा जा सकने वाला 'महोबा समय' चौहान और चंदेल कुल में बैर और युद्ध के कारण की जिज्ञासा स्वरूप प्रारम्भ होता है—

कहै चंद गुन छंद पढि। क्रोध उदंगल सोइ॥
चाहुआन चंदेल कुल। कंदल उपजन कोइ॥१,

परन्तु इस युद्ध की स्थिति 'पदमावती समय बीस' के उपरान्त है क्योंकि इस

समय के दूसरे छन्द में ही वर्णन है कि पृथ्वीराज समुद्रशिखर गढ़ की राजकुमारी से परिणय करके गोरी शाह को वन्दी बनाये दिल्ली चल दिये, उनके कुछ आहत सैनिक लौटते समय महोबा होकर जा निकले—

समुद्र सिषर गढ परनि नृप । पकरि साहि लिय संग ॥
चलि बहीर आई महुव । चढिव रंग वहु रंग ॥२

इस प्रकार देखते हैं कि महाराज पृथ्वीराज के जीवन के विविध प्रसंग आदि से लेकर अन्त तक क्रमानुसार रखे गये हैं जिससे कथा-सूत्रों को बाँधने वाली सबसे बड़ी विशेषता इस काव्य में रक्षित हो गई है। इन घटनाओं के जोड़ों में कहीं-कहीं शिथिलता प्रत्यक्ष है परन्तु पृथ्वीराज से अनवरत रूप से सम्बन्धित होने के कारण उसका बहुत कुछ परिहार हो जाता है। आदि से अवसान तक इस विशाल काव्य में उमड़ती हुई घटनाओं के प्रवाह में उत्तोत्तर जिज्ञासु पाठक को बहा ले जाने की पूरी क्षमता है। दूसरे 'दशावतार समय' में भले ही उक्त कथाओं से परिचित होने के कारण उनकी संक्षिप्त पुनरावृत्ति में मन अधिक न रमे अन्यथा कहीं भी अटकने-भटकने के स्थल अवरोध नहीं डालते। कथा कहने की प्रणाली के कौशल को ही यह श्रेय है कि रासोकार विविधता में एकता का संयुजन कर रमणीयता और आकर्षण की रक्षा कर सका है।

(१२) साहित्यदर्पणकार ने इस शीर्षक के अन्तर्गत महाकाव्य में वर्णनीय जिन विषयों का उल्लेख किया है वे काव्य में वस्तु-वर्णन के अङ्ग हैं। यद्यपि पिछले 'काव्य-सौष्ठव' की मीमांसा में वस्तु-वर्णन की चर्चा की जा चुकी है फिर भी अनेक विषयों के नवीन होने और महाकाव्य में उनके आवश्यक होने के कारण परीक्षा कर लेना उचित होगा। हम क्रमशः उन पर विचार करेंगे :—

सन्ध्या—

रासो में सन्ध्या का वर्णन बहुधा युद्ध-काल के अन्तर्गत आता है, जिसका आगमन युद्ध बंद करने या रात्रि में भी किसी विषम युद्ध की भूमिका हेतु कवि करता है :

(अ) 'संसार में सन्ध्या आई....योगिनियों ने अपने पात्र भरे, शिव ने नर-मुण्डों की माला धारण की, चालुक्य के भृत्य मुड़े नहीं, कन्ह ने हृदय में रौद्र रस धारण किया, दरबार में गजराजों के मस्तक तैर चले' :

परिय संझ जग मंझ। टरिय कंकन रंकन धन ॥
भरिय पत्र जुगिनीय। करिय सिव सीस माल धन ॥

मुरिय न भ्रित चालुक । धरिय रस रोस कन्ह हिय ।।
पैर चलिय दरबार । सीह गज घट्टि उहट्टिय ।।७६, स० ५;

(ब) 'इच्छा या अनिच्छा से अपनी सीमा को प्रमाणित करती हुई रात्रि आई जो सैनिकों और पथिकों को समान रूप से मिली । निशा का आगमन जानकर नगाड़े बज उठे । धूल के धुंध ऊपर उठकर लौटे जिससे कुएँ भर गये' :

छुटी छंद निच्छंद सीमा प्रमानं ।
मिली ढालनी माल राही समानं ।।
निसा मान नीसांन नीसान धूअं ।
धुअं धूरिनं मूरिनं पूर कूअं ।। १०७, स० २७;

(स) 'सन्ध्या-काल आया, आकाश में चन्द्रोदय हुआ और दो प्रहर रात्रि बीती :
साँझ समय ससि उग्गि नभ । गइ जामिनि जुग जाम ।। ;

(द) बजी संझ घरियार । सार बज्यौ तन झंझर ।।
जनु कि बज्जि झननंक । ठनकि घन टोप सु उच्चर ।।
अनल अग्गि सम जग्गि । जेन धजि बंधि सलग्गा ।।
मनु द्रप्पन में बैठि । नेत बडवानल जग्गा ।।
घन स्यांम पीत रत रंग बर । त्रिविधि वीर गुन बर भरिय ।।
हर हार गंठिठ रुठिठ उमां । किम उतारि पच्छो धरिय ।। ४६५,स०२५

पुप्फदंत (पुष्पदन्त) ने अपने 'आदि पुराण' में ऋतु-वर्णन बड़ी कुशलता से किया है। उसी प्रसंग में सन्ध्या का भी अनूठा वर्णन है—'दिनेश्वर का अस्त होना पथिकों ने शकुन पूर्ण समझा । जैसे दीपक जलाने की बात कही गई वैसे ही प्रियतमाओं के आभरण प्रदीप्त हो उठे । जैसे सन्ध्या राग युक्त (लालिमा पूर्ण) हुई वैसे ही वेश्याओं का राग बढ़ा । जैसे भुवन संतप्त हुए वैसे ही चक्रवाक भी व्याकुल हुए । जैसे-जैसे दिशा-दिशा में तिमिर बढ़ने लगा वैसे-वैसे दिशा-दिशा में व्यभिचारिणियाँ जारों से संयोग करने लगीं । जैसे रात्रि में कमलिनी मलिन होकर मुकुलित हो गई वैसे ही विरहिणी का मुख भी मुकुलित हुआ । जिस घर के कपाट बंद हो गये उसे वल्लभ (पति) रूपी सम्पत्ति प्राप्त हो गई । जिस प्रकार चन्द्रमा ने अपनी किरणों का प्रसार किया वैसे ही प्रिया ने अपने हाथों से अपनी केश-राशि बिखरा दी । जिस प्रकार कुवलय के पुष्प विकसित हुए उसी प्रकार मिथुन-क्रीड़ा ने भी विकास पाया....':

अत्थमिइ दिरोसरि जिह सउणा । तिह पंथिय थिय माणिय-सउणा ।
जिह फुरियउ दीवय-दित्तियउ । तिह कांताहरणह-दित्तियउ ।
जिह संभा-राएँ रंजियउ । तिह वेसा-राएँ रंजियउ ।
जिह भुवणुल्लउ संतावियउ । तिहँ चक्कुल्लुवि सँताबियउ ।
जिह दिस-दिस तिमिरइँ मिलियाइँ । तिह दिस-दिस जारइ मिलियाइँ ।
जिह रयणिहि कमलइँ मउलियाइँ । तिह विरहिणि-वयणइँ मउलियाइँ ।
जिह घरहँ कबाडइँ दिरणाइँ । तिह वल्लह-संवइँ दिरणाइँ ।
जिह चंदे णिय-कर पसरु किउ । तिह पिय-केसहिं कर-पसरु किउ ।
जिह कुवलय-कुसुमइँ वियसिअइँ । तिह कीलय-मिहुणइँ वियसिअइँ ॥

सूर्य—

(अ) "आकाश को सरसित करने वाले हंस, श्याम लोक को प्रदीप्त करने वाले, सरसिज (कमल) के वंधु, चक्रवाक को मुदित करने वाले, तिमिर रूपी गजराज के लिये सिंह, चन्द्र-ज्योत्स्ना के पीड़क भास्कर (सूर्य) का प्राची दिशा में अरुणोदय हुआ । उनको नमस्कार है":

गगन सरस हंसं स्याम लोकं प्रदीपं ।
सस सज बंधू चक्रवाकोपि कीरा ॥
तिमिर गज मृगेन्द्रं चन्द्रकांतं प्रमाथी ।
विकसि अरुन प्राची भास्करं तं नमामी ॥ २३६, स० ३६;

(ब) 'निशाचरों ने जब सूर्योदय देखा, निर्मल किरणें जगमगाने लगीं, तमचुरों (कुक्कुटों) के शब्द होने लगे, किरणें प्रकट हुई और दिशा विदिशा में फैल गईं' :

निसि चरन दिष्षि जब समय सूर । झलमलत किरन निमल करूर ॥
तमचरह पूर प्रगटी किरन्न । प्रगटी सु दिसा विदिसान अन्न ॥ ३०, स० ३८;

(स) 'जिस प्रकार शैशव-काल में (वय:सन्धि के समय) यौवन का किंचित् आभास दिखाई देता है उसी प्रकार रात्रि के अवसान में अरुण (सूर्य) की किरणें प्राची में उदित होती हुई शोभित हो रही हैं' :

ज्यौं सैसब में जुवन कछु । तुच्छ तुच्छ दरसाइ ॥
यों निसि मध्यह अरुन कर । उद्दित दिसा लसाइ ॥ ३२, स० ३८;

(द) 'शरद-पूर्णिमा का चन्द्रमा अपने बिम्ब की ज्योत्स्ना से तिमिर-जाल विदीर्ण कर रहा था । देव-वंदना और कर्म-सेवा की प्रेरक सूर्य-किरणें प्रगट हुईं । उनके सारथी अरुण ने अपने कमलस्वरूपी हाँथों से रथ की सँभाल की तथा यम और यमुना के पिता (भगवान् भास्कर) अपनी स्वर्ण

किरणें बिखेरने लगे। जवास जल गये, कुमुद के सम्पुट बन्द हो गये और अरुण वरुण (रक्ताभ सूर्य) तारागणों के त्रास का कारण हुए। शूर सामंतों ने उनके दर्शन किये और अधर्म को धर्म रूप में उनके शरीर में विलसित पाया' :

सरद इंद प्रतिब्यंब। तिमर तोरन किरनिय तम ॥
उग्गि किरन वर भान। देव बंदहि सु सेव क्रम ॥
कमल पानि सारथ्थ। अरुन संभारति रष्षै ॥
जमुन तात जम तात। करन कंचन कर बरषै ॥
ग्रीषम जवास बंध्यौ कमुद। अरुन बरुन तारक त्रसहि ॥
सामंत सूर दरसन दिषिय। पाप धरम तन बसि लसहि ॥ १६८, स० ४४

चन्द्र—

(अ) 'जिनका शरीर अमृतमय है अर्थात् जिनके कारण बनस्पतियाँ उत्पन्न होकर शारीरिक व्याधियों का हरण करती हैं (इत्यादि), सागर को प्रफुल्लित करने के जो मूल कारण हैं, कुमुदिनी को विकसित करने वाले, रोहिणी (नक्षत्र) के जीवनदाता, कन्दर्प के बन्धु, मानिनियों का मान मर्दन करने वाले और रात्रि रूपी रमणी से रमण करने वाले चन्द्रदेव को नमस्कार है' :

अमृतमय सरीरं सागरा नंद हेतुं।
कुमुद वन विकासी रोहीणी जीवतेसं ॥
मनसिज नस वंधुर्मानिनी मान मर्दी।
रमति रजनि रमनं चंद्रमा ते नमामी ॥ २३७, स० ३६,

(ब) चन्द्र-ग्रहण समाप्त होने पर चन्द्रमा का सौन्दर्य एक स्थान पर इस प्रकार चित्रित किया गया है—'कमलों की कला बंद हो गई, चक्रवाक चकित चित्त रह गये, चन्द्र-किरणों ने कुमुदिनी को विकसित किया, सूर्य की कला क्षीण हो गई, मन्मथ के बाणों के आघात से मदोन्मत्त विश्व की रति ऐश्वर्यों के उपभोग में बढ़ी, जगत निद्रा के वशीभूत है जिसमें कामी और भक्त ये ही दो प्रकार के जन जागरण कर रहे हैं। (पृथ्वीराज ने भी अपनी 'वेलि' में लिखा है—'निद्रावसि जग अेहु महानिसि जामिअे कामिअे जागरण') :

मुँदी मुष्ष कमोद हंसति कला, चक्कीय चक्कं चितं।
चंदं किरन कढ़ंत पोइन पिमं, भानं कला छीनयं ॥
बानं मन्मथ मत्त रस जुगयं, भोगयं च भोगं भवं।
निद्रा बस्य जगत्त भक्त जनयं, वा जग्ग कामी नरं ॥७, स० ३८

रात्रि—

(अ) युद्ध-भूमि में रात्रि होने पर 'विकसित कमल अपने दलों को बाँधकर सम्पुट रूप में हो गये, चक्रवाक वियुक्त हुए, चकोर ने चन्द्रदेव के वृत्त पर अपनी दृष्टि बाँधी, युवती जन काम पूरित हुई, पक्षी अपने नीड़ों में चले गये, सुन्दरियों के सुन्दर नेत्रों के काम-कटाक्ष बढ़ गये, निर्मल चन्द्र आकाश में उदित हुआ, राजा ने शूर सामंतों पर सेना की रक्षा का भार छोड़ा और सारे योद्धा विश्राम करने लगे' :

कुमुद उघरि मूँदिय । सु बँधि सतपत्र प्रकारय ।।
चकिय चक्क बिच्छुरहि । चक्कि शशिवृत्त निहारय ।।
जुवती जन चढ़ि काम । जाहि कोतर तर पंषी ।।
अवृत्त वृत्त सुंदरिय । काम बढ्ढिय बर अंषी ।।
नव नित्त हंस हंसह मिलै । विमल चंद उग्यौ सु नभ ।।
सामंत सूर त्रप रष्षि कै । करहि वीर विश्राम सभ ।।६७५,स०२५

(ब) रात्रि के समय जयचन्द्र की सभा की सजावट और शोभा का वर्णन छं० ८३२-३४, स० ६१ में देखा जा सकता है ।

प्रदोष—

रण-काल में सूर्यास्त होने पर, युद्ध रुक जाने के उपरान्त कभी रात्रि के प्रथम प्रहर का किंचित् वर्णन कहीं-कहीं मिलता है और कहीं सन्ध्या होने के बाद भी युद्ध चलते रहने पर उसका उल्लेख पाया जाता है; अथवा निम्न ढंग के संकेत मिलते हैं :

(अ) वार सोम पंचमी । जाम एकह निसि बित्तिय ।।२७३, स०६१;
(ब) भइत निसा दिन मुदित बिनु । उड़पति तेज विराज ।।
कथक साथ कथ्थहि कथा । सुष्ष सयन प्रथिराज ।।८२४, स०६१;
(स) जाम एक निसि बीति बर । बोले भट्ट नरिंद ।।
ओसर पंग नरिंद कौ । देषहु आय कविंद ।।८२६, स०६१;

ध्वान्त (अन्धकार)—

तम बढ्ढिय धुंधर धरा । परष पयं पन मुष्ष ।।
तम्म तेज चावद्दिसह । जुझ्झनि भग्गि अरुष्ष ।।६७७,
जुझ्झ भग्गि आरुष्ष बर । रोकि रहिग बर स्याम ।।
सुबर सुर सामंत गुन । तम पुच्छे त्रप ताम ।।६७८, स०२५;

युद्ध-भूमि की अँधेरी रात्रि में पलचरों, रुधिचरों और अंसचरों का कोलाहल इस प्रकार पाया जाता है :

अद्ध अवन्निय चंद किय । तारस मारू भिन्न ॥
पलच्चर रुधिचर अंसचर । करिय रवन्निय रिन्न ॥१५४६, स०६१

वासर (दिन)—

दिन का वर्णन युद्ध के साथ ही मिलता है, यथा :

चढ़त दीह विप्पहर । परिग हज्जार पंच लुथि ॥१०८, स०३२;

रासो में क्षत्रिय के लिये दिन और युद्ध अनवरत रूप से अगाध सम्बन्ध में बँधे हुए हैं। शूरवीर युद्ध के लिये दिन की अभिलाषा करते थे जिसमें उन्हें अपने स्वामी, स्वामिधर्म और योद्धापन के जीवन की बाज़ी जीतनी रहती थी। देखिये :

प्रात सूर बंछई, चक्क चक्किय रबि बंछै ।
प्रात सूर बंछई, सुरह बुद्धि बल सो इंछै ॥
प्रात सूर बंछई, प्रात वर बंछि वियोगी ।
प्रात सूर बंछई, सु बंछै बर रोगी ॥
बंछयौ प्रात ज्यों त्यों उनन, बंछै रंक करन्न बर ॥
बंछयौ प्रात प्रथिराज ने, ज्यौं सती सत्त बंछैति उर ॥५७, स० २७;

मृत्यु युद्ध का वरदान थी, जिसकी प्राप्ति के लिये लालायित शूर-साधक दिन की साध करते थे। रात्रि में युद्धों का उल्लेख कहीं-कहीं हुआ है परन्तु वे सम्भवत: कुछ तो महाभारत आदि वर्णित देशीय परम्पराओं की युद्ध-वीर-धर्म-नीति के कारण और कुछ रात्रि में प्रकाश की अव्यवस्था के कारण एक प्रकार से वर्जित से थे। वैसे रात्रि में तभी तक युद्ध चलते थे जब तक ज्योत्स्ना रहती थी। एक स्थान पर आया भी है कि द्वितीया का चन्द्रमा अस्त होते ही युद्ध बंद हो गया :

प्रतिपद परितापह पहर । समर सूर चहुआन ॥
दिन दुतिआ दल दुअ उरझि । ससि जिम सद्धि षिसान ॥११६, स० ३७

प्रात:काल—

इस युद्ध-काव्य में प्रात: की महिमा उचित ही हुई है। रात्रि की विश्रान्ति के पश्चात् प्रात: ही तो वीरों की कामना पूरी होती थी। यश:प्रदाता ऊष:काल के कतिपय वर्णन देखिये :

(अ) 'प्रात:काल हुआ, रात्रि रक्त वर्ण दिखाई देने लगी, चन्द्र मंद होकर अस्ताचलगामी हुआ। तामसिक वृत्ति वाले शूर वीर तमस (क्रोध) में भर कर तामस पूर्ण शब्द कहने लगे। नगाड़ों का गंभीर

घोष होते ही वीर वर्ण अंकुरित हो गया परन्तु जब युद्ध के चारणों ने कड़खा गाया तब कायरों की दृष्टि भी वीरों-सदृश हो गई' ।

भय प्रात रत्तिय, जुरत्त दीसय, चंद मंदय चंदयौ ।
भर तमस तामस, सूर बर भरि, रास तामस छंदयौ ॥
बर बज्जियं नीसान धुनि घन बीर बरनि अँकूरयं ।
घर धरकि धाइर करषि काइर रसमि सूरस कूरयं ॥५८, स० २७

(ब) भीमदेव से युद्ध-काल में 'भयौ प्रात बर नूर' की प्रशंसा कवि ने इस प्रकार की है—'रात्रि में कमल के सम्पुट में बन्द हुए भ्रमर मुक्त होकर प्रसन्नता से गुंजारने लगे, तारागण विलीन हुए, तिमिर विदीर्ण हो गया, चन्द्रदेव अपने ज्योत्स्ना रूपी गुण सहित अस्त हुए, देव-कर्म प्रगट हुए, वीरों का श्रेष्ठ कर्म सुनाई पड़ने लगा, चकवी ने वियोग का स्वर त्यागा, उल्लू के नेत्र चौंधियाने लगे, पौ फट गई, आकाश के तिमिर-जाल का नाश हुआ, देवताओं की अर्चना हेतु शंखध्वनि होने लगी, अभी सूर्य का बिम्ब नहीं निकला था कि पक्षी वृक्षों में कलरव करने लगे' :

निस सुमाय सत पत्र । मुक्कि अलि भ्रम तक सारस ॥
गय तारक फटि तिमिर । चंद भग्गौ गुन पारस ॥
देव क्रम्म उध्धरहि । बीर बर क्रम्म सुनिज्जह ॥
सोर चक्र तिय तजिय । नयन घुघ्घू रस भिज्जह ॥
पहु फट्टि फट्टि गय तिमर नभ । बजिय देव धुनि संष धुर ॥
भय भान पनान न उघरयौ । करहि रोर द्रुम पष्ष तर ॥१६७,स०४४

(स) 'पौ फट गई, तिमिर घट गया, सूर्य की किरणों ने अन्धकार का नाश कर दिया, पृथ्वी पर उसे पाकर प्रहार करने के लिये उनका आकाश में उदय हुआ । सूर्य का बिम्ब रक्ताम्बर दिखाई पड़ रहा है; यह पंगराज का कलश नहीं है वरन् सूर्य का दूसरा गोला है' :

पहु फट्टिय घट्टिय तिमिर । तमचूरिय कर भान ॥
पहुमिय पाय प्रहारनह । उदो होत असमान ॥२९९,
रत्तंबर दीसै सु रबि । किरन परष्षिय लेत ॥
कलस पंग नहिं होय यह । बिय रबि बंध्यौ नेत ॥ ३००, स० ६१

मध्याह्न—

दोपहर का वर्णन प्रात: और सायंकाल की भाँति विस्तृत और सौन्दर्य पूर्ण नहीं है । युद्धों के बीच में उसका उल्लेख मात्र हो जाता है । देखिये :

(अ) कंध बंध संधिय निजर । परी पहर मध्यान ॥
तब बहुरयौ पारस फिरिय । फिरयौ भीछ चहुआन ॥ ५९२, स० २५;

(ब) छठि्ठ अद्ध बर घटिय । चढ्यौ मध्यान भान सिर ॥
सूर कंध बर कट्टि । मिले काइर कुरंग बर ॥ ७२, स० २७;

(स) जय जया सद्द जुग्गिनि करहि । कलि कनवज दिल्लिय बयर ॥
सामंत पंच षित्तह षपिग । भिरत पंच भये विप्पहर ॥ १७३३, स० ६१

मृगया—

इस काव्य के चरित्र नायक का परम व्यसन मृगया था। तभी तो देखते हैं कि जहाँ युद्ध से विश्राम मिला कि मृगया का आयोजन किया गया परन्तु इसमें भी बहुधा युद्ध की नौबत आ पहुँचती थी। इस आखेट-काल में हिंसक जन्तुओं को मारने के अतिरिक्त कभी किसी वन की भूमि से गड़ा द्रव्य खोदा जाता था, कभी वीरगण (प्रेत, प्रमथ आदि) वशीभूत किये जाते थे, कभी शत्रु की चढ़ाई का समाचार पाकर उसे स्थगित कर दिया जाता था और कभी वहीं शत्रु से मुठभेड़ हो जाती थी। इस प्रकार की विविधता के कारण रासो के मृगया-प्रसंग अधिक रोचक और सरस हो गए हैं तथा साथ ही उनका विस्तार भी अधिक हो गया है। एक आखेट वर्णन के कुछ अंश देखिये :

आषेट रमत प्रथिराज रंग । गिरवर उतंग उद्यांन दंग ॥
उत्तंग तरुन छाया अकास । अनेक पंषि क्रीडति हुलास ॥
सुब्बा सुरास छुट्टै सुगंध । तहां भ्रमत भोर बहु बास अंध ॥
फल फूल भार नमि लगी साष । नासा सुगंध रस जिह्व चाष ॥ १३
पन्नग प्रचंड फूंकर फिरंत । देषंत नरह ते करत अंत ॥
अनेक जीव तहं करत केलि । बट बिटप छांह अवलंब बेलि ॥
इक घाट विकट जंगल दुआर । तहां बीर मूल पिथ्थल कुंआर ॥
वामंग अंग चामंड राय । चूकै न मूठि सौ काल घाइ ॥ १४, स० १७

इससे भी अधिक साङ्गोपाङ्ग वर्णन स० २५, छं० ५२-६७ में द्रष्टव्य है। वर्णन-विस्तार के साथ उसकी संश्लिष्ट योजना भी उल्लेखनीय है।

पर्वत—

(अ) 'प्रथम समय' में हिमालय का अपने पर्वत पुत्रों से वार्तालाप (छं० १७८-९२), अर्बुद नाग द्वारा नंदगिरि को उठाकर उसे गह्वर में रखकर पूर देने, शिव के अचलेश्वर नाम से वहाँ स्थित होने तथा अर्बुद नाग के

नाम पर उस पर्वत का आबू नाम होने और उस पर वशिष्ठ का ऋषियों को आमन्त्रित करके यज्ञ करने (छं० १६३-२४०) का उल्लेख है।

(ब) दिल्ली से चंद के ग़ज़नी जाने पर मार्ग की विषमता, पर्वत, झरने, व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओं का वर्णन हुआ है :

सम चल्यौ भट्ट गज्जन सु राह। वन विषम•सुषम उग्गाह गाह ॥
रह उंच नीच सम विषम थान। गह बरन सैल रन जल थलान ॥ ९६
द्रिग जोति लग्गि मन सबद भीन। भुल्ल्यौ सरीर निज मग्ग षीन ॥
रत्तौ सु जोग मग्गह सरुव। जगमगत जोति आयास भूव ॥ ९७
भिद्यौ सु प्रीति प्रथिराज अंग। निरकार जीय रत्तौ सुरंग ॥
भुल्ल्यौ सु मग्ग गज्जनह भट्ट। बन चल्यौ थान उद्यान थट्ट ॥ ९८
उभ्भरत इभ्भ सम अभ्भ नद्द। के लरत भिरत भज्जत समद्द ॥
उद्यान तज्जि संग्रहै एक। गुंजहिति बध्घ मग्गह अनेक ॥ ९९
जुग देत दंति सिंघहि सुरभ्भ। म्रिग बध्घ पंषि अजगर अदभ्भ ॥
सा पंच चिल्ह संग्रहै सास। सा बद्द बनंचर विषम भास ॥१००
गुंजरत दरिय सम्मीर सद्द। निझ्झरत झरत नद रोर नद्द ॥
बन विकट रंध की चक्क राह। सद्दहि सु ताम संमीर गाह ॥१०१
उड्डुत उरग्गधर तर सुलग्ग। सुझ्झहि न विदिसि दिसि मझ्झ मग्ग ॥
बन चल्यौ मझ्झ भट्टह भयंक। रत्तौ सु जोति सज्जे निसंक ॥१०२
निझ्झरिह झरिय झरहर करूर। उभ्भरहि सलित सलिता सपूर ॥
कलरव करंत दुज नेक भास। तर विकट सघन पंषिनि हुलास ॥१०३
निसि दिवस भट्ट बन चल्यौ जाम। संभरयौ राज भौ श्रम्म ताम ॥
बे·यौ सु अंग छुद्धा पियास। तर धवह देषि लग्गे अयास ॥ १०४, स० ६७

ऋतु—

ऋतुओं के वर्णन का उल्लेख पिछले 'काव्य सौष्ठव' शीर्षक के अन्तर्गत पृष्ठ १३-८ में किया जा चुका है तथापि 'शशिवृता वर्णनं नाम प्रस्ताव' के वर्षा और शरद वर्णन के दो स्थल अप्रासंगिक न होंगे। 'चारों ओर मोरों के स्वर हो रहे थे, आषाढ़ मास की घटायें आकाश में चढ़ीं थीं, मेढकों और झींगुरों के स्वर मुखरित थे, चातक रट रहे थे, अलंकृत आभरण धारण करके वसुन्धरा हरी हो गई थी, बादलों के गर्जन सहित वर्षा होने पर राजा यादव कुमारी का स्मरण करते थे, मन्मथ के बाण लगने पर उनकी आत्मा व्याकुल होने लगती और शरीर धैर्य नहीं धारण करता था' :

मोर सोर चिहुँ ओर। घटा आसाढ़ बंधि नभ ॥
बच दादुर भिंगुरन । रटन चातिग रंजत सुभ ॥
नील बरन बसुमतिय । पहिर आंभ्रन अलंकिय ॥
चंद वधू सिर व्यंज। धरे बसुमत्ति सु रज्जिय ॥
बरषंत बूंद घन मेघ सर। तब सुमिरै जद्दव कुँअरि ॥
नन हंस धीर धीरज सुतन। इष फुट्टे मनमथ्थ करि ॥ ३५,

'कीचड़ सूख गया, सरितायें उतर गईं, वल्लरियाँ कुम्हिला गईं, बादलों से रहित पृथ्वी ऐसी प्रतीत होती है जैसे पति के बिना स्त्री। निर्मल कलाओं सहित चन्द्रोदय हुआ, कन्दर्प प्रकट होकर आकाश में उदित हुआ, नदियों का जल नीचा हो गया, प्रावरण (घूँघट) स्त्रियों के नेत्रों की लज्जा का हरण करने लगे, मल्लिका के पुष्पों से वायु सुगन्धित हो गई, संयोगिनी स्त्रियाँ अपने पति के आलिंगन पाश में बँध गईं':

सुक्कि पंक उत्तरि सरित । गय बल्ली कुमिलाइ ॥
जलधर बिन ज्यों मेदिनी । ज्यों पतिहीन त्रियाइ ॥ ४४
नृम्मलिय कला उग्गयौ सोम । कंदर्प प्रगट उद्दित्त व्योम ॥
सरिता सु नीर आए निवांन । पंगुरन हरै त्रिय द्रग लजान ॥
मल्लिका फुल्ल सुग्गंध वाय । संजोगि कंत रहिं लप्पटाइ ॥....४५,सं०२५

वेलिकार पृथ्वीराज राठौर ने भी शरद-वर्णन में लिखा है—'नीखर जल जिम रह्यौ निवाणे निधुवन लज्जा त्री नयन' अर्थात् जल निर्मल होकर नीची भूमि में चला गया जिस प्रकार लज्जा रति-काल में स्त्री के नेत्रों में जा रहती है।

ऋतुओं के इस प्रकार के वर्णन के अतिरिक्त युद्ध की उपमा कहीं वसंत से और कहीं वर्षा से दी गई है। इन स्थलों पर भी ऋतु-वर्णन मिल जाता है। सुसज्जित शाही सेना की वर्षा से पूर्णोपमा स० ६६, छं० ८३५-४२ में देखी जा सकती है। हिंदू सेना की पावस से उपमा देखिये :

झरि पावस सिर बर प्राहारं। बरषत रुद्धि धरं छिछवारं ॥
षग विज्जुल जोगिनि सिरधारं। बग्गी सौ जंबू परिवारं ॥ १०३२
कटि टूक करें जिनके किरयं। मनौं इंद्रबधू धरमें रचयं ॥
झमक्कै सषग्गीन षग्गनि बजै। सुनि बद्दलि झिंगुर सद्द लजै ॥ १०३३
लपटांइ सुसोकिय वेल तरं। पर रंभन रंभन रंभ बरं ॥
अकुरी बढ़ि बेलि सुबीर बरं। बढ़ि पावस पावस झार झरं ॥ १०३४,स०६६

वन—

वन का वर्णन मृगया के साथ मिला जुला प्राप्त होता है जो अनुचित नहीं क्योंकि आखेट का वही स्थल है। विशाल जंगल देश के स्वामित्व के कारण भी 'जंगलेश' उपाधि वाले पृथ्वीराज का वन में आखेट मग्न रहना स्वाभाविक ही था। वन-वर्णन का एक प्रसंग देखिये :

वन में शिकार के लिये पृथ्वीराज के पहुँचने पर हाँका हुआ और पशुओं में भगदड़ मच गई—

कवि चंद सोर चिहुँ ओर वन। दिध्ध सद दिग अंत भौ ॥
सकिय सयल्ल जिम रंक। इम अरण्य आतंक भौ ॥ १२;

कुमार पृथ्वीराज जंगल की भूमि में आखेट कर रहे थे। उनके साथ शूर सामंत, गहन पर्वतों और उनकी गुफाओं में भ्रमण कर रहे थे। एक सहस्त्र श्वान, एक सौ चीते, मन सदृश वेग वाले दो सौ हिरन उनके साथ थे। वहाँ उस सघन वन में कवि चंद मार्ग भूलकर भटक गया :

सम विषम विहर वन सघन घन। तहाँ सथ्थ जित तित्त हुअ ॥
भूल्ल्यौ सुसंग कवियन वनह। और नहीं जन संग दुअ ॥ १३;

यह वन इस प्रकार का था :

विपन विहर ऊपल अकल। सकल जीव जड जाल ॥
परसंपर बेली बिटप। अवलंबि तरल तमाल ॥ १४
सघन छांह रवि करन चष। पग तर पसु भजि जात ॥
सरित सोह सम पवन धुनि। सुनत श्रवन झहनात ॥ १५
गिरि तट इक सरिता सजल। झिरत झिरन चहुँ पास ॥
सुतरु छाँह फल अमिय सम। बेली विसद विलास ॥ १६, स० ६;

यहीं पर कवि को एक ऋषि के दर्शन हुए थे (छं० १७-८, स० ६)।

'पउम चरिउ' में स्वयम्भु देव का वन-वर्णन भी देखिये :

तहि तेहएँ सुन्दरेँ सुप्पवहे। आरगण - महग्गय - जुत्त रहे।
धुर लक्खणु रहवरेँ दासरहिं। सुर-लीलएँ पुणु विहरंत महिं।
तं कण्ह-वण्ण-णइ मुएँ विगया। वण केहिमि णिहालिय मत्तगया।
कत्थवि पंचाणण गिर-गुहेहिं। मुत्तावलि विक्खिरंति णहेहिं।
कत्थवि उड्डाविय सउण-सया। णं अडविहेँ उड्डु विणण्ण-गया।
कत्थवि कलाव णच्चंति वणे। णावइ णट्टावा जुयइ-जणे।
कत्थवि हरिणइँ भय-भीयाइं। संसारहोँ जिह पावइ याइं।
कत्थवि णाणा-विह रुक्ख-राइँ। णं महि-कुल-वहुअहि रोमराइँ ॥ ३६-१

सागर—

'दूसरे समय' की 'मच्छावतार कथा' में मत्स्य भगवान् का सागर में निवास और सातों सागरों के जल का उछल-उछल कर आकाश में लगने का प्रलयकारी दृश्य भय के संचारी रूप में वर्णित हुआ है :

सायर मद्धि सु ठाम। करन त्रिभुअन तन अंगुल ॥
देव सिंगि रषि धरनि। सिरन चक्री चष भंपल ॥
गैन भुजा ग्रज्जंत। रसन दसनं झुकि झांइय ॥
एक करन ओढंत। एक पहरंत सवांइय ॥
चल चले सपत साइर अधर। इंद्र नाग मन कवन कहि ॥
गिर धर चलंत पग मलन मल। लेन वेद अवतार गहि ॥ ६२

इसके अतिरिक्त रासो में समुद्र का विस्तृत वर्णन पृथक रूप से नहीं किया गया है। अधिकांशत: वह उपमान रूप में आया है और जहाँ कहीं उसका प्रसंग है भी वहाँ पर सम्भवत: वार्ता विशेष का उससे अधिक सम्बन्ध न होने के कारण उसे चलता कर दिया गया है।

चंद अन्हलवाड़ापट्टन पहुँचा जो सागर के तट पर था। उसका किंचित दृश्य देखिये :

तिन नगर पहुच्यौ चंद कवि। मनों कैलास समाष लहि ॥
उपकंठ महल सागर प्रबल। सघन साह चाहन चलहि ॥५०,
बजान बज्जयं घनं। सुरा सुरं अनंगनं ॥
सदान सद्द सागरं। समुद्दयं पटा भरं ॥ ५३, स० ४२

'मानस' में तुलसी के सामने सागर वर्णन के पाँच अवसर आये। प्रथम में 'सिंधु तीर एक भूधर सुन्दर, कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर' कहकर उसके नाम मात्र से प्रसंग जोड़ा गया। दूसरे में लंका-दाह करनेवाले हनुमान् को 'कूदि परा पुनि सिंधु मझारी' तथा 'नाघि सिंधु एहि पारहिं आवा' कहकर समाप्त किया गया। तीसरे स्थल पर जिसके प्रसंग में आदि-कवि ने सागर का प्राकृतिक रूप साकार किया, तुलसी ने 'एहि विधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर' मात्र से अन्त कर दिया। चौथे में 'विनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति' के पश्चात् रघुपति ने चाप चढ़ाया और 'मकर उरग झष गन अकुलाने, जरत जन्तु जलनिधि जब जाने' पर सागर के विप्र रूप में उपस्थित होकर क्षमा प्रार्थी होने तथा अपने ऊपर पुल बनाने की युक्ति बताने का उल्लेख किया। पाँचवाँ स्थल लंका-विजेता पुष्पकारूढ़ राम द्वारा सीता को सेतुबन्ध दिखाते हुए 'इहाँ सेतु बाँध्यों

अरु थापेउँ सिव सुखधाम' कहकर समाप्त हो जाता है। अस्तु, प्रत्यक्ष है कि सागर का प्राकृतिक सौन्दर्य 'मानस' में नहीं है।

तुलसी की अपेक्षा उनके पूर्ववर्ती जायसी ने अपने 'पदमावत' में सागर का कुछ अधिक रूप दिखाने की चेष्टा की है। योगी राजा रतनसेन और उनके साथी योगियों की सिंहल-यात्रा वाले 'बोहित खण्ड' (१४) में—

समुद अपार सरग जनु लागा। सरग न घाल गनै बैरागा ॥
ततखन चाल्हा एक देखावा। जनु धौलागिरि परबत आवा ॥
उठी हिलोर जो चाल्ह नराजी। लहरि अकास लागि भुइँ बाजी ॥

इसके उपरान्त बड़ी मछलियों और राज-पंखियों की कौतूहल-पूर्ण चर्चा है। और आगे सिंहल-कुमारी पद्मावती से परिणय करके समुद्र-मार्ग से घर लौटते हुए राजा रतनसेन वाले 'देश यात्रा खंड' (३३) में कवि को सागर के प्रसंग में भँवर-कुंड वर्णन करने का एक अवसर और मिल गया है :

जहाँ समुद मझधार मँड़ारू। फिरै पानि पातार - दुआरू ॥
फिरि फिरि पानि ठाँव ओहि मरै। फेरि न निकसै जो तहँ परै ॥

जिसके साथ महिरावण-पुरी आदि का भी ललित प्रसंग है।

वस्तु-वर्णन में संस्कृत और अपभ्रंश के कवि अधिक निष्ठ पाये जाते हैं। क्रान्तदर्शी आदि कवि वाल्मीकि ने समुद्र का वर्णन इस प्रकार किया है— 'जो नक्र और ग्राह के कारण भयंकर है, दिन की समाप्ति और रात्रि के प्रारम्भ में जो फेनराशि से हँसता हुआ तथा लहरियों से नाचता हुआ सा प्रतीत होता है। जो चन्द्रोदय के समय प्रत्येक लहर में चन्द्रमा के प्रतिबिम्बित होने से चन्द्रमय दीख पड़ता है और जो प्रचंड वायु के समान वेग वाले बड़े-बड़े ग्राह तथा तिमि तिमिङ्गलों से भरा हुआ है। उसमें प्रदीप्त फणवाले सर्प रहते हैं, अन्य अनेक बड़े बली जलचर भरे हैं तथा अनेक पर्वत छिपे हुए हैं। असुरों का निवास स्थान यह समुद्र अगाध है, जलचरों के कारण दुर्गम है तथा नौका आदि के द्वारा इसके पार जाना असम्भव है; मकर तथा सर्प के शरीर के समान प्रतीत होने वाली इसकी लहरें प्रसन्नता के साथ ऊपर उठतीं और नीचे जाती हैं। चमकीले जल के छोटे-छोटे कण बिखरे हुए अमृत-चूर्ण के समान विदित होते हैं, इसमें बड़े-बड़े सर्प और राक्षस निवास करते हैं तथा यह पाताल सदृश गहरा है। इस प्रकार सागर आकाश के समान और आकाश सागर के समान जान पड़ता है, उनमें कोई भेद नहीं दिखाई देता। सागर का जल आकाश

में छू गया है और आकाश सागर को छू रहा है अस्तु तारा और रत्न युक्त वे दोनों समान देखे जाते हैं। आकाश में मेघ उठ रहे हैं और सागर में लहरें जिससे उनमें अभेद हो गया है। सागर की लहरें परस्पर टकराकर भयंकर गर्जन कर रही हैं मानों आकाश में नगाड़े बजते हों। [१]

अपभ्रंश के कविर्मनीषी स्वयम्भु देव ने अपने 'पउम चरिउ' (रामायण) में समुद्र का प्रभावोत्पादक वर्णन किया है। कुछ अंश देखिये :

संचल्लेउ राहव साहरोण। संघट्टिउ वाहणु वाहरोण।
थोवंतरे दिट्ठु महासमुद्दु। सुंसुवर - मयर - जलयर-रउद्द।
मच्छोहरु - णक्क - ग्गोहु घोरु। कल्लोलावंतु तरंग - थोरु।
वेला वडढंतउ दुहुदुहंतु। फेणुज्जल - तोय तुषार दिंतु।
तहो अवरें पयड्उ राम-सेगणु। णं मेह-जालु णहयले णिसण्णु ॥५६६,

सम्भोग—

पूर्व राग द्वारा वरण और तदुपरान्त हरण कालीन संयोग का एक दृश्य देखिये—'(पृथ्वीराज और शशिवृता की) दृष्टियाँ परस्पर मिलीं, उत्कन्ठा तुष्ट हो गई; बाला के नेत्र लज्जापूर्ण हो गए और वह कामराज की माया के रस में लीन हो गई...उसका महान सन्ताप मिट गया और दोनों के मन प्रसन्नता से छलक उठे। फिर तो चौहान ने उस किशोरी का हाँथ क्या पकड़ा मानों मदान्ध गजराज ने स्वर्ण-लता को लहरा दिया' :

---

(१) रामायण, युद्धकाण्डम्, सर्ग ४—
चण्डनक्रग्राह घोरं क्षपादौ दिवसक्षये।
हसन्तमिव फेनौघैर्नृत्यन्तमिव चोर्मिभिः ॥११०
चन्द्रोदये समुद्भूतं प्रतिचन्द्रसमाकुलम्।
चण्डानिलमहाग्राहैः कीर्णं तिमि तिमिंगिलैः ॥१११
दीप्तिभोगैरिवाकीर्णं भुजंगैर्वरुणालयम्।
अवगाढं महासत्त्वैर्नानाशैलसमाकुलम् ॥११२;
श्लोक ११३-१६ तथा—
समुत्पतित मेघस्य वीचि मालाकुलस्य च।
विशेषो न द्वयोरासीसागरस्याम्बरस्य च ॥११७
अन्योन्यैरहताः सक्ताः सस्वनुर्भीमनिःस्वनाः।
ऊर्मयः सिन्धुराजस्य महाभेर्य इवाम्बरे ॥११८;

दिट्ठ दिट्ठ लग्गी समूह। उतकंठ सु भग्गिय ॥
निष लज्जानिय नयन। मयन माया रस पग्गिय ॥
छल बल कल चहुआन। बाल कुंअरप्पन भंजे ॥
दोष त्रीय मिट्टयौ। उभय भारी मन रंजे ॥
चौहान हथ्थ बाला गहिय। सो ओपम कवि चंद कहि ॥
मानों कि लता कंचन लहरि। मत्त बीर गजराज गहि ॥ ३७४, स० २५

उत्साह के बाद रासो में रति भाव को ही स्थान मिला है जिसमें संयोग-शृङ्गार की अधिकता के कारण सम्भोग के अनेक अप्रतिम रूप देखने को मिलते हैं।

विप्रलम्भ—

संयोगिता से गन्धर्व विवाह करके, जयचन्द्र के गंगातट वाले महल से जब पृथ्वीराज अपने सामंतों को घेरे हुए पंगराज की सेना से युद्ध करके अपने दल में चले गये, उस समय दुश्चिन्ताओं से पूर्ण शंकित हृदय राज कुमारी संज्ञा-शून्य हो गई। 'सखियाँ पंखा कर रहीं थीं, घनसार (कपूर) और चंदन के लेप किये जा रहे थे। अनेक उपाय हो रहे थे परन्तु चित्र लिखी सी वह बाला अचेत पड़ी थी। उसके मुँह से हाय शब्द निकल पड़ता था। जब सखियाँ उसके कान में पृथ्वीराज के नाम का मंत्र सुनाती थीं तब वह बलहीना क्षण भर को अपनी आँखें खोल देती थी' :

बाली बिजन फिरन। चंद चारी क्रितम रस ॥
के घन सार सुधारि। चंद चंदन सो भति लस ॥
बहु उपाय बल करत। बाल चेतै न चित्र मय ॥
है उच्चार उचार। सखी बुल्लयति हयति हय ॥
श्रवनें सुनाइ जंपै सु अलि। नाम मंत्र प्रथिराज बर ॥
आवस निवत्त अगाद भय। तं निबलह द्रिग छिनक कर ॥ १२६५, स० ६१

मुनि—

(अ) ढुंढा दानव ने योगिनिपुर में यमुना-तट पर हारीफ ऋषि को देखा जिन्होंने उसे तपस्या करने का उपदेश दिया—

ढिंग जुगिनिपुर सरित तट। अचवन उदक सु आय ॥
तहं इक तापस तप तपत। बीली ब्रह्म लगाय ॥ ५६०
ताली षुल्लिय ब्रह्म। दिष्षि इक असुर अदम्भुत ॥
दिघ्घ देह चष सीस। मुष्ष करुना जस जप्पत ॥

तिनि रिषि पूछिय ताहि । कवन कारन इत अंगम ॥
कवन थान तुम नाम । कवन दिसि करबि सु जंगम ॥
मो नाम ढुंढ बीसल नृपति । साप देह लम्भिय दयत ॥
छुट्टन सु तेह गंगा दरस । तजन देह जन मंत कृत ॥५६१....
तब मुनि बर हसि यौं कहिय । बिन तप लहिय न राज ॥
अन धन सुत दारा मुदित । लहौ सबै सुख साज ॥५६४....

मुनि के इस उपदेश का फल यह हुआ कि ढुंढा ने तीन सौ अस्सी वर्ष तक तपस्या की :

तपत निसाचर तप्पं । बीते बरष तीन सै असीयं ॥
भय बाधा विण अंगं । लग्गौ राम धारना ध्यानं ॥५६७, स०१

(ब) एक वन में एक ऋषि का मिलन और उनका रूप देखिये :

तहां सु अँबतर रिष्ष इक । कस तन अंग सरंग ॥
दव दद्धौ जनु द्रुम्म कोइ । कै कोई भूत भुअंग ॥१७
जप माला मृग छाला । गोटा विभूतं जोग पट्टायं ॥
कुविजा खप्पर हथ्थं । रिद्धं सिद्धाय बचनयं मभ्भं ॥१८, स०६

(स) एक वन में आखेट करते हुए पृथ्वीराज ने पर्वत की कन्दरा में सिंह के भ्रम से धुआँ करवाया जिससे क्रोध में भरे मुनि निकले और उन्होंने राजा को श्राप दे दिया :

कोमल सु कमल द्रग श्रवै नीर । रद चंपि अधर कंपत सरीर ॥
जट जूट छूटि उरभंत पाय । म्रग चरम परम नंष्यौ रिसाय ॥१५३
तमि तोरि डारि दिय अच्छ माल । निकरयौ रिषीस बेहाल हाल ॥
गहि दर्भ हस्त बर नीर लीन । प्रथिराज राज कहुँ श्राप दीन ॥१५४,स०६३

स्वर्ग—

स्वर्ग का वर्णन पृथक रूप से नहीं किया गया है। स्वामि-धर्म का पालन करते हुए युद्ध में वीर-गति पाने वालों का स्वर्ग-गमन कवि ने बड़े उत्साह से वर्णन किया है। योद्धाओं का रण-कौशल देखकर कहीं 'जै जै सुर सुर लोक जय' हो उठता है, कहीं अप्सरायें देव-वरण त्याग कर लोक-युद्ध-भूमि में वीर-वरण हेतु आतीं हैं—(बर अच्छर बिंटयौ सुरग मुक्के न सुर गहिय), कहीं किसी के मृत्यु-पाश में जाते ही अप्सरायें उसे गोद में ले लेती हैं और वह देव-विमान में चढ़कर चल देता है—(उच्छंगन अच्छर सों लयौ, देव विमानन चढ़ि गयौ), कहीं योद्धाओं को युद्ध में

विजयी होने पर ऐहिक भोग प्राप्त करने की चर्चा है तो कहीं मरने पर अप्सराओं की प्राप्ति की—(जीविते लभ्यते लक्ष्मी मृते चापि सुरांगणा)।

वीरों को स्वर्ग-लोक मात्र ही नहीं मिलता कभी-कभी वे यमलोक, शिवलोक और ब्रह्मलोक के ऊपर सूर्यलोक भी प्राप्त कर लेते हैं :

जमलोक न शिवपुर ब्रह्मपुर । भान थान भानै भियौ ॥

रासो में वीरों के लिये सूर्य-लोक की महिमा सर्वोपरि दिखाई पड़ती है। महाभारत के प्रख्यात योद्धा और इच्छा-मृत्यु वाले महात्मा भीष्म शर-शय्या पर पड़े हुए सूर्य के उत्तरायण होने की प्रतीक्षा करते रहे क्योंकि दक्षिणायन या दक्षिण-मार्ग अर्थात् आवागमन से मुक्ति के वे आकांक्षी थे। उपनिषद-काल तक सूर्य ब्रह्म के पर्य्याय निश्चित हो चुके थे। 'ईशावास्य' में उपासक अपने मार्ग की याचना करता हुआ कहता है कि आदित्य मण्डलस्थ ब्रह्म का मुख ज्योतिर्मय पात्र से ढका हुआ है। हे पूषन्, मुझ सत्यधर्मा को आत्मा की उपलब्धि कराने के लिये तू उसे उघाड़ दे :

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥१५

और हे जगत्पोषक सूर्य ! हे एकाकी गमन करने वाले, हे यम (संसार का नियम करने वाले) ! हे सूर्य (प्राण और रस का शोषण करने वाले) ! हे प्रजापतिनंदन ! तू अपनी किरणों को हटा ले (अपने तेज को समेट ले)। तेरा जो अतिशय कल्याणमय रूप है उसे मैं देखता हूँ। यह जो आदित्य मण्डलस्थ पुरुष है वह मैं हूँ :

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्समूह ।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुष : .
सोऽहमस्मि ॥१६

अस्तु, सूर्य-लोक पहुँच कर ब्रह्म और जीव की एकता अनिवार्य थी इसी से स्वर्ग-लोक, शिव-लोक, ब्रह्म-लोक (ब्रह्मा का लोक), यम-लोक आदि भोग-लोकों की अपेक्षा आवागमन मिटाने वाले सूर्य-लोक की प्राप्ति की अभिलाषा ज्ञानी योद्धाओं द्वारा की जानी उचित ही थी।

स्वामी के लिये युद्ध में मृत्यु प्राप्त करने वाले हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मों के योद्धाओं को क्रमशः स्वर्ग और बिहिश्त में अप्सराओं और हूरों की प्राप्ति के दर्शन कवि की सहिष्णुता के परिचायक हैं। फ़ारसी इतिहासों में जहाँ कमीने काफ़िर हिन्दू तलवार के घाट उतार कर दोज़ख़ भेज दिये

जाते हैं वहाँ रासो के मुस्लिम योद्धा स्वर्ग में स्थान प्राप्त करते हैं। कुछ स्थल देखिये :

(अ) लघु बंधु रुस्तमा हनिय सूर।
बर माल बरै लै चलीं हूर ॥ ५५, स० २४,

(ब) तहां षांन हिंदवान भए चक्र चूरं।
तहां हूर रंभा बरै बरह सूरं ॥ १५५, स० ४३,

(स) जीवंतह की रति सुलभ। मरन अपच्छर हूर ॥ १५८, सं० ४८

नगर—

योगिनिपुर में यमुना-तट पर निगमबोध के उद्यान के फूलों और फलों आदि का वर्णन करके, पृथ्वीराज के दरबार का प्रसंग है, फिर नगाड़ों के घोष वाली इन्द्रपुरी सदृश दिल्ली, वहाँ के सात खण्ड के प्रासाद, जनाकीर्ण हाट में अमूल्य वस्तुओं के क्रय-विक्रय इत्यादि का कवि ने उल्लेख किया है :

सुधं निगंम बोधयं, जमंन तट्ट सोधयं।
तहां सु बाग अच्छयं, बने सु गुल्ल अच्छयं ॥ ५
समीर तासु बासयं, फलं सु फूल रासयं।
बिरष्ष बेलि डंबरं, सुरंग पान अंमरं ॥ ६
जु केसरं कुमंकुमं, मधुप्प वास तं भ्रमं।
अनार दाष पल्लवं, सु छत्र पत्ति ढिल्लवं ॥ ७...
जु श्री फलं नरंगयं, सबद्द स्वाद होतयं।
चवंत मोर वायकं, मनों संगीत गायकं ॥ १०
उपम्म बाग राजयं, मनो कि इंद्र साजयं।
.... , ... ॥ ११...

घुरि घुम्मिय त्रंब निसान घुरं। पुर है प्रथिराज कि इंद्रपुरं ॥
प्रथमं दिलियं किलियं कहनं। ग्रह पौरि प्रसाद षना सतनं ॥ २३
बन भूप अनेक अनेक भती। जिन बंधिय बंधन छत्रपती ॥
जिन अश्व चढ़ै घरि अस्सि लषं। बल श्री प्रथु मत्र अनेक भषं ॥ २४
दह पोरि सु सोभत पिथ्थ बरं। नरनाह निसंकित दाम नरं ॥
भर हट्ट सु लष्षनयं भरयं। धरि बस्त अमोल नयं नरयं ॥ २५
तिहिं बीच महल्ल सतष्षनयं। लष कोटि धजी सु कवी गनयं ॥
नर सागर तारँग सुद्ध परें। परि राति सुरायन बाहु षरें ॥२६,स०५६

'पउम चरिउ' में स्वयम्भु देव का नगर-वर्णन देखिये—'वहाँ पर धन और सुवर्ण से समृद्ध राजगृह नाम का नगर है जो नव यौवना पृथ्वी की श्री के शेखर सदृश दिखाई देता है। उक्त नगर में चार द्वार हैं जो चार प्रकार के हैं जिन पर मुक्ताफलों सदृश श्वेत हंस हैं। कराग्र में वायु द्वारा ध्वजा इस प्रकार हिलती है जैसे आकाश-मार्ग में धारा पड़ रही हो। शूल के अग्र-भाग में विँधे हुए देवल शिखर ऐसे बजते हैं जैसे पारावत गंभीर शब्द कर रहे हों। मद-विह्वल गजराजों पर जैसे धूँवते हैं, चंचल तुरंगों पर जैसे उड़ते हैं। (बालायें) चन्द्रकान्त मणि सदृश जल में स्नान करती हैं और दैदीप्यमान मेखलायें धारण किये हुए प्रणाम करती हैं। अपने गिरे हुए नूपुरों को उठाते समय उनके युगल कुंडल हिलने लगते हैं। सर्वजनोत्सव में इस प्रकार की खिलखिलाहट हो रही है मानों मृदंग और भेरी के स्वरों का गर्जन हो रहा हो। मूर्च्छना और आलाप सहित गान हो रहे हैं मानो धन, धर्म और सुवर्ण को पूर्णता प्राप्त हो रही हो':

तहिँ पट्टणु णामेँ रायगिहु, धण-कणय-समिद्धउ ।
णं पुहइएँ णव-जोव्वणाइ, सिरि-सेहरु आइद्धउ ॥ ४
चउ गोउरु-त्ति पायार - वन्तु । हँस इव मुत्ताहल-धवल दन्तु ।
णच्चइ' व मरुद्धय-धय-करग्गु । धर इव णिवडंतउ गयण-मग्गु ।
सूलग्ग-भिण्णु देउल-सिहरु । कण इव पारावय-सद्द-गहिरु ।
धुम्मइ' व गएहिं मयभिंभलेहिँ । उड्डइ' व तुरंगहि चंचलेहिँ ।
ण्हाइ' व ससिकंत-जलोयरेहिँ । पणवइ' व तार-मेहल-हरेहिँ ।
पक्खलइ' व नेउर-णिय-लएहिँ । विप्फुरइ' व कुंडल-युयलएहिँ ।
किलकिलइ' व सव्व-जणोच्छवेण । गज्जइ इव मुख-मेरी-रवेण ।
गायइ' व अलाव-णिमुच्छणेहिँ । पुरवइ' व धम्मु धण-कंचणेहिँ ॥ १।५४-५

जयानक के 'पृथ्वीराज-विजय' सर्ग ५ तथा 'प्रभावक चरित' (हेमचन्द्र सूरि प्रबंध) में अजमेर नगर का वर्णन द्रष्टव्य है।

अध्वर (यज्ञ)—

रासो-काल तक यज्ञों की परम्परा समाप्त हो गई थी यही कारण है कि कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द्र को राजसूय यज्ञ करने का समर्थन नहीं प्राप्त हुआ। पूर्व काल में अपना चक्रवर्तित्व स्थापित करके उक्त यज्ञ का विधान किया जाता था जिसका छोटे से लेकर बड़ा कार्य राजागण ही करते थे। गुजरात के चालुक्य और दिल्ली-अजमेर के चौहान जयचन्द्र के प्रबल प्रति-स्पर्द्धी थे अस्तु ऐसी स्थिति में 'दलपंग' का राजसूय यज्ञ ठानना अनुचित

ही था। फिर भी यज्ञ प्रारम्भ हुआ और पृथ्वीराज को उसमें द्वारपाल पद पर कार्य करने के हेतु दूतों द्वारा आमंत्रित किया गया :

छिति छत्र बंध आए सु सब्ब। तुम चलहु बेगि नह बिरम अब्ब ॥
फुरमान दीन चहुआन तोहि। कर छरिय दाबि दरबान होहि ॥ ५४,

यह सुनकर दिल्ली-राज के सामंत गोयंदराज गौरुआ ने सतयुग, त्रेता और द्वापर के यज्ञों का उल्लेख करते हुए कहा कि—

जानौब तुम्ह षत्री न कोइ। निरबीर पहुमि कबहूँ न होइ ॥ ५८,

और फिर स्पष्ट कह डाला कि पृथ्वीराज का जीवन रहते हुए यज्ञ नहीं हो सकता (छं० ५८–६०)।

दिल्ली का समाचार जानकर कन्नौज में यज्ञ-मण्डप के बाहर पृथ्वीराज की सुवर्ण-प्रतिमा द्वारपाल के स्थान पर स्थापित करने का निश्चय हो गया :

सोवन्न प्रतिम प्रथिराज जानि। थप्पियै पवरि दरबार बानि ॥ ७०;

यह सुनकर पृथ्वीराज ने यज्ञ विध्वंस करने का निश्चय किया—

मो उम्भै पहुपंग। जग्य मंडै अबुद्धि कर ॥
जो भंजौं इह जग्य। देव विध्वंसि धुंम परि ॥
कच करवत पाषान। हथ्थ छुट्टै बर भग्गै ॥
प्रजा पंग आरुही। बहुरि हथ्था नन लग्गै ॥
प्रथिराज राज हंकारि बर। मत सामंत सु मंडि धर ॥
कैमास बीर गुज्जर अठिल। करौ सूर एकठ्ठ बर ॥ १०५;

सामंतों से मंत्रणा करके यह सम्मति हुई कि जयचन्द्र के भाई बालुकाराय पर आक्रमण करके उसे मारा जाय (छं० १०६-८, १२१-२२)। इस विचार के फलस्वरूप चढ़ाई हुई और युद्ध (छं० १५२-२२८) में बालुकाराय वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया :

भगी फौज कमधज्ज सा छंडि षंतं। हन्यौ बालुकाराइ देष्यौ समथ्थं ॥
२२८, स० ४८

जयचन्द्र ने यह समाचार पाकर, यज्ञ का विनाश समझकर, पृथ्वीराज को बाँधने तथा चित्रंगपति रावल समरसिंह के साथ उन्हें कोल्हू में पेर डालने की प्रतिज्ञा की :

बंधौं सु चंपि अब चाहुआन। विग्गरयौ जग्य निहचै प्रमान ॥ २४,
आहुट्टराज प्रथिराज साहि। पीलौं जु तेल जिम तिल प्रवाहि ॥ २५, स० ४९

रण—

युद्धों से ओत-प्रोत इस काव्य में रण-प्रांगण के कुशल और प्रभावोत्पादक वर्णन देखने को मिलते हैं और कवि-हृदय समर्थित ये स्थल भय की प्रतीति नहीं करते वरन् आह्वान का मंत्र देते हैं जहाँ 'बधाबधी निज खावणौ' (सूर्य्यमल्ल) की सिद्धि प्रत्यक्ष करते हुए संग्राम-साधकों की ओजस्विनी ललकार सुनाई देती है। एक स्थल देखिये :

मेछ हिंदू जुद्ध घरहरि। घाइ-घाइ अघाय घर हरि॥
रुंड मुंडन षंड षर हर। मत्त बहुत सुरत्त झरहरि॥ ७६
भग्ग काइर जूह भीरन। छंडि जल सूरिज्ज धीरन॥
रुंडचढ्ढिय रच्चि थरहरि। रक्क जुग्गिनि पत्र पिय भरि॥८०....

भर तोंअर अभिरत्त। धरत कर कुंत जंत अरि॥
गजन बाज धर ढारि। धरनि बर रत्त जुथ्थ परि॥
भग्गि भीर काइर कनंक। हिय पत्त मुच्छि द्रढ़॥
भग्गि सेन सुरतान। दिष्षि भर सुभर पानि कढ़॥

उम्भारि सिंगि कुंभन छरिय। झरिय श्रोन मद गज ढरिय॥
हर हरषि हरषि जुग्गिनि सकल। जै जै जै सुर उच्चरिय॥ ११८,स०३७

प्रयाण (यात्रा)—

रासो में विवाह, रण और मृगया ये ही तीन यात्राओं के प्रकार हैं। आबूराज की कुमारी इंच्छिनी से परिणय हेतु पृथ्वीराज की विवाह-यात्रा देखिये :

चढि चल्यौ राज प्रथिराज राज। रति भवन गवन मनमथ्थ साज॥
सिर पहुप पटल बहुसा षवास। अवलंब रहिय अलि सुर सुरास॥
मुष सोभ जलज कंद्रप किसोर। दीजै सु आज त्रप कोंन जोर॥
चिति काम बीर रजि अंग और। संकरयौ जान मनमथ्थ जोर॥
जिम जिमति लाज अरु चढत दीह। लज्जा सुजांनि संकलिय सीह॥
जिम-जिम सुनंत त्रप श्रवन बत्त। तिंम तिम हुअंत रस काम रत्त॥
मधु मधुर बेन मधुरी कुंआंरि। रति रच्चिय जांनि सेंसव सवारि॥

१८, स० १४

सुलतान ग़ोरी की सुसज्जित वाहिनी का रण-प्रयाण द्रष्टव्य होगा जिसके वर्णन के अन्त में कवि कहता है कि पृथ्वीराज चौहान के अतिरिक्त उसका मद कौन चूर्ण कर सकता है :

चढयौ साहि साहाब करि जुद्धि साजं । करी पंच फौजं सुभं तथ्थ राजं ॥
बरं मद्द वारे अकारे गजानं । हलै रत्त चौंसट्ठ बैरत्त बानं ॥४०
षरौ फौज में सीस सुविहान छत्रं । तिनं देषते कंपई चित्त सत्रं ॥
तहां धारि हथ नारि कमनेत पत्रं ।....................................॥ ४१
तहां लष्ष पाइक्क पंती सपेषं । तहां रत्त बैरष्ष की वनी रेषं ॥
तहां तीन पाहार मै मत्त जोरं । तिनं गज्जतें मंद मववान सोरं ॥ ४२

तहां सत्त उमराव सुरतान जोटं ।
मनो पेषियै मध्य साहाब कोटं ॥
इमं सज्जि सुरतान रिन चढ्ढि अप्पं ।
बिना राइ चहुआन को सहै तप्पं ॥ ४३, स० ४३

और साँभर-भूमि में पृथ्वीराज की मृगया-यात्रा का एक अंश भी देखिये :

चढ़िय राज प्रथिराज । साज आपेट लिए सजि ॥
सथ्थ सुभट सामंत । संग सेना सु तुच्छ रजि ॥
जाम देव का कन्ह । अत्तताई निड्डुर गुर ॥
मति मंत्री कैमास । राव चामंड जुझ्झ भर ॥
परमार सिंघ सूरन समथ । रघुवंसी राजन सुबर ॥
इतनें सहित भर सैंन चलि । उडी रेनु आयास पर ॥ ५१
बागुर जाल बयल्ल । हिरन चीते सु स्वांन गन ॥
कालबूत अग विहंग । विवाह तट्टीय चलत बन ॥
सर नावक बंदूक । हरित जन बसन बिरज्जिय ॥
गै जिमि गिरि करि अग्ग । अप्प बन संपति सज्जिय ॥
है भारि भईय कांनन सकल । मग अमग्ग दल संचरिय ॥
षिल्लन सिकार चढ्ढिय न्रपति । प्रथियराज महि संभरिय ॥ ५२, स० २५

[उपर्युक्त छन्द में 'बंदूक' शब्द उक्त छन्द का परवर्ती प्रक्षेप होना सिद्ध करता है ।]

उपयम (विवाह)—

रासो में कई विवाहों का उल्लेख है जिन्हें प्रधानत: दो प्रकारों में रखा जा सकता है । एक तो वे हैं जहाँ माता-पिता की इच्छा से वर विवाह करने आता है और दूसरे वे जहाँ वर और कन्या परस्पर रूप-गुण श्रवण से अनुरक्त हो जाते हैं तथा माता-पिता की इच्छा के विपरीत कन्या द्वारा आमंत्रित वर आकर देवालय सदृश संकेत-स्थान से उसका हरण करता है और उसके पक्ष वालों को पराजित करके अपने घर पहुँच जाता है जहाँ

विवाह की शेष शास्त्रीय रीतियाँ विधिवत् पूरी कर ली जाती हैं। प्रथम ढंग के विवाहों में कवि ने यदि पुरातन होते हुए भी युगीन संस्कार की नूतन प्रादेशिक विधियों और रीति-रिवाजों पर विस्तृत प्रकाश डालने का अवसर पाया है तो दूसरे में पूर्वराग, मिलन की युक्तियाँ, विप्रलम्भ, विराग, मोह, विस्मय, उद्यम, साहस, धैर्य आदि का चित्रण करने के कारण सरसता और आकर्षण की अपेक्षाकृत अधिकता है तथा उसका चित्त इनके वर्णन में अधिक रमा है। उसने (स० २५, छं० २६८ में) अपनी सम्मति भी दे दी है कि गन्धर्व विवाह शूर वीर ही करते हैं। इस सम्मति ने रणानुराग में घुले हुए योद्धाओं को वांछित प्रेरणा अवश्य पहुँचाई होगी। मौत का खेल खेलने वाले रासो के इस प्रकार के परिणय अपनी अलौकिक छटा से स्तम्भित करने की क्षमता रखते हैं।

मंत्र—

मंत्र-तंत्र की कई होड़ें दिखाने वाले इस काव्य में तांत्रिक करामातें और उनकी युक्तियों की चर्चा तो मिलती है परन्तु जिनके कारण सिद्धि सम्पादित हुई वे मंत्र नहीं बताये गये हैं। मंत्रों के स्थान पर स्तुतियाँ मिलती हैं। मंत्रों और स्तुतियों का आशय लगभग एक ही होता है अन्तर यह है कि मंत्र का आकार छोटा और स्तुति का बड़ा होता है।

(अ) भैरव मंत्र की दीक्षा और उसकी परीक्षा का निम्न प्रसंग देखिये :

धरि कान मंत्र लीनौ कविय। परसि पाइ अग्गैं चलिय ॥
करबे सु परिष्षा मंत्र की। रचि आसन अग्गैं बलिय ॥ २६...
फुनि मंत्रह भैरव जपत। डक्कु गरज्जिय आभ ॥ ३०....
गैन गहर गंभीर धुनि। सुनि ससंक भय गात ॥
आनन अग गअ गंज हुअ। जानि उलक्का पात ॥ ३१, स० ६

(ब) ग़ज़नी दरबार के कवि दुर्गा केदार भट्ट के साथ मंत्र-तंत्र की होड़ में कवि चंद द्वारा देवी सरस्वती की मंत्र रूप में स्तुति इस प्रकार है :

सेतं चीर सरीर नीर सुन्चितं स्वेतं सुभं निर्मलं।
स्वेतं संति सुभाव स्वेत ससितं हंसा रसा आसनं।
बाला जा गुन वृद्धि मौर सु भ्रितं त्रिभे सुभं भासितं।
लंबोजा चिहुराय चंद्र वदनी दुर्ग्ग नमो निश्चितं ॥ १०८, स० ५८

पुत्र—

पृथ्वीराज के गर्भ-स्थिति होने और उनके जन्म, उत्सव तथा दान आदि का वर्णन कवि ने 'प्रथम समय' में इस प्रकार किया है :

"(दिल्लीश्वर अनंगपाल तोमर की कन्या कमला और अजमेर-नरेश सोमेश्वर के विवाह के) कुछ दिनों बाद रानी को गर्भ रहा जिसकी कला प्रतिदिन उसी प्रकार बढ़ी जैसे भाद्र-मास में मेघों का दल, शुक्ल पक्ष में चन्द्रकला अथवा प्रियतम से मिलन पर प्रति क्षण मुग्धा सुन्दरी का यौवन बढ़ता है। शुभ गर्भ शरीर में उसी प्रकार बढ़ा जैसे पूर्णिमा में सागर बढ़ता है। गर्भिणी पर जैसे-जैसे ज्योति चढ़ती जाती थी वैसे-वैसे ही पति और पत्नी के हृदय हुलसित हो रहे थे।[1] अनंगपाल तोमर की पुत्री और सोमेश्वर की गृहिणी ने क्षत्रियों के दानव कुल वाले पृथ्वीराज को धारण किया।[2] गंधपुर में ढुंढा के वरदान से सोमेश्वर के प्रथम पुत्र का जन्म स्मरण कर गन्धर्वों ने पुष्पांजलि डाली, ब्राह्मणों ने मंत्रोच्चारण किया, सिद्धों ने अर्द्ध रात्रि में बालक का सिर स्पर्श किया और आकाश में घनघोर शब्द ने उसके जीवन में युद्ध और विजय का घोष किया। एक सौ सूरमा भी साथ ही आये तथा चंद भट्ट कीर्ति-कथन हेतु जन्मा....।[3] तपस्विनी बाला का श्राप वीसलदेव ने सिर पर धारण किया और तीन सौ अस्सी वर्ष तक दिल्ली के समीप की गुफा में समाधि लगाई....; जिस दिन पृथ्वीराज ने जन्म लिया उस दिन अनंत दान दिये गये तथा कन्नौज, ग़ज़नी और अन्हलवाड़ापट्टन में रणचंडी किलकिला उठी।[4] जिस दिन पृथ्वीराज का जन्म हुआ कन्नौज में बात फैल गई, गज्जनपुर भंग हो गया, पट्टन में छिद्र हो गये, मृत्यु ने भरपेट भोजन किया, पृथ्वी का भार उतर गया तथा युगों तक कीर्ति प्रशस्त हो गई।[5] पृथ्वीपति अनंगपाल ने ज्योतिषी व्यास को अपनी पुत्री के पुत्र की जन्म-लग्न पर विचारार्थ बुलाया। उसने कहा कि (बालक) चारों चक्रों (दिशाओं) में अपना नाम चलावेगा....कलिकाल में यह अनेक युद्ध करने वाला सौ भृत्यों सहित दैत्यों (म्लेच्छों) से भिड़ेगा। दिल्ली के कारण ही यह अपूर्व अवतार (जन्म) हुआ है।[6] पुत्री के पुत्रोत्सव में राजा ने अनेक दान दिये और (सबका) घना सत्कार किया। घर-घर धमार गाये गये (ऐसा हर्ष का साम्राज्य बिखर गया) मानों सर्प को मणि मिल गई हो। कन्नौज में जयचन्द्र की माता ने अपनी साँभर वाली बहिन के पुत्र का जन्म सुनकर सुवर्ण, वस्त्र और थाल सहित ब्राह्मण भेजा, परिवार वालों को पहिरावे दिये, ब्राह्मणों

---

(१) छं० ६८४; (२) छं० ६८५; (३) छं० ६८६; (४) छं० ६८७; (५) छं० ६८८; (६) छं० ६८९।

को दान दिये तथा सारे कृत्य किये और दस दिन तक अत्यन्त आनन्द पूर्वक उत्साह मनाया।[1] पुत्र का जन्म सुनकर सोमेश्वर ने हाथी, घोड़ों और वस्त्रों द्वारा बधावा दिया तथा उत्साह और आनन्द से पूर्ण होने के कारण राजा के मुख की कान्ति बढ़ गई।[2] तदुपरान्त उन्होंने लोहाना और चंद को बुलाकर ननिहाल से इन्द्र को अजमेर लाने के लिये कहा।[3] फिर नरेश (स्वयं) उत्साहपूर्वक सहस्रों हाथी, घोड़े, सुभट और सौ दासियों सहित (पुत्र को लेकर) अजमेर चले।[4] विक्रम के १११५ आनन्द शाका में शत्रुओं को जीतने वाले और उनके पुरों का हरण करने वाले नरेन्द्र पृथ्वीराज उत्पन्न हुए।[5] महाबाहु सोमेश्वर के पूर्व जन्म की तपस्या के गुण से और उनके पुण्य के कारण जगत् विजयी पृथ्वीराज का जन्म हुआ।[6] अनंगपाल की पुत्री ने पुत्र का प्रसव किया मानो घनी मेघमाला में दामिनी दमक उठी। राव ने सोमेश्वर को बधाई दी जिन्हें एक सहस्र सुवर्ण मुद्रायें और एक अश्व दिये जाने की आज्ञा हुई। एक ग्राम, एक घोड़ा और एक हाथी उन्होंने अपने परिग्रह (में प्रत्येक) को देकर प्रसन्न किया, दरबार में नगाड़ों का तुमुल नाद होता था मानो बादलों का गर्जन हो अथवा समुद्र में उत्ताल तरंगों का शब्द हो। पुत्र को पधराकर राजा ने उसका मुख देखा और उसे अपने पूर्व कर्मों का फल जाना। विद्वान् ब्राह्मणों की सहायता से शिशु के वेदोक्त और शास्त्रोक्त जात-कर्म किये। मंगलाचरण करके नृत्य प्रारम्भ हुए जिनमें अप्सराओं सदृश आलाप ने देवलोक की अनुभूति कराई"—

अनगेस पुत्रि हुअ पुत्र जन्म। बिज्जल चमंकि जनु मेघ घन्म ॥
बद्धाइ राव सोमेस दीन। इक सहस हेम हय हुकम कीन ॥६६७
दिय ग्राम एक हय इक्क हथ्थ। परिग्रह प्रसाद सह कीन तथ्थ ॥
नीसांन बाजि दरबार जोर। घन गज्जं जान दरिया हिलोर ॥६६८
पधराइ राइ मुष दरस कीन। क्रित क्रम्म पुब्ब फल मान लीन ॥
करि जात क्रम्म मति ग्रंथ सोधि। वेदोक्त विप्प बर बुद्धि बोधि ॥ ६६९
मंगल उचार करि नृत्य गान। अछ्छरि अलाप सुर भुवन जान ॥ ७००

---

(१) छं० ६९०; (२) छं० ६९१; (३) छं० ६९२; (४) छं० ६९३; (५) छं० ६९४; (६) छं० ६९६।

टिप्पणी—छं० ६९२ प्रक्षिप्त है क्योंकि चंद ने अपना जन्म पृथ्वीराज के साथ ही लिखा है। उक्त वक्तव्य के आधार पर उसका नवजात पृथ्वीराज को लेने जाना असम्भव है।

इसके बाद पृथ्वीराज के जन्मोत्तर गुणों का उल्लेख किया गया है जिसे सुनकर सोमेश्वर हर्षित और शोकाकुल हुए। तदुपरान्त उनके जन्मकाल के ग्रहों की स्थिति और जन्मपत्र का फल वर्णन करके फिर उत्सव का प्रसंग है जिसके अंत में दरबार की अवर्णनीय भीड़, सुगन्धित द्रव्यों की वास से नासिका के अघाने और मानों यदुवंश में यदुनाथ का जन्म हुआ हो यह जानकर क्षत्रियों के छत्तीस वंशों के मुखों के विकसित होने का विवरण है—

दरबार भीर वरनी न जाइ। सुगंध वास नासा अघाइ ॥
विगसंत वदन छत्तीस वंस। जदुनाथ जन्म जनु जदुन वंस ॥ ७१५

उदय (अभ्युदय)—

अनेक युद्धों के विजेता, जयचन्द्र, भीमदेव और शहाबुद्दीन सदृश युगीन महान प्रतिद्वन्दियों को परास्त करने वाले दिल्लीश्वर पृथ्वीराज के जीवन का चित्रण करने वाले इस इतिहास और कल्पना मिश्रित काव्य में उनका उत्तरोत्तर अभ्युदय दिखाते हुए, अन्तिम युद्ध में उनके वन्दी होने तथा नेत्र विहीन किये जाने पर भी शत्रु से बदला लेने की चर्चा करके रासोकार ने 'यतो धर्मस्ततो जयः' के अनुसार अपने युद्ध और दया वीर नायक का पक्ष उठाया है।

नयन बिना नरघात । कहौ ऐसी कहु किद्धी ॥
हिंदू तुरक अनेक । हुए पै सिद्ध न सिद्धी ॥
धनि साहस धनि हथ्थ । धन्नि जस वासन पायौ ॥
ज्यों तरु छुट्टै पत्र । उड़ै अप सत्तियौ आयौ ॥
दिष्यैं सु सथ्थयौ साह कौं। मनु नछित्र नभ तें टरयौ ॥
गोरी नरिंद कवि चंद कहि। आय धरप्पर इम परयौ ॥ ५६५, स० ६७

(१३) कवि चंद ने अपने काव्य का नाम् चरित्र के नाम से रखा है और आद्योपान्त पृथ्वीराज का चरित्र वर्णन होने के कारण उसको 'पृथ्वीराज रासो' नाम दिया है।

'रासो' शब्द के विविध अर्थ विद्वानों द्वारा लगाये गये हैं। कविराजा श्यामलदान 'रहस्य' शब्द से इसकी व्युत्पत्ति मानते थे[१] और डॉ० काशी-प्रसाद जायसवाल का भी ऐसा ही अनुमान था[२]। फ्रासीसी विद्वान् गार्सां

---

(१) पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता; (२) प्रिलिमिनरी रिपोर्ट ऑन आपरेशन इन सर्च ऑव बार्डिक क्रानिकल्स, पृ० २५, फुट नोट।

द तासी ने 'राजसूय' शब्द से निष्पत्ति बतलाई।[1] पं० मोहनलाल विष्णु-लाल पांड्या के अनुसार—"रासो शब्द संस्कृत के रास अथवा रासक से है और संस्कृत भाषा में रास के 'शब्द, ध्वनि, क्रीड़ा, शृंखला, विलास, गर्जन, नृत्य और कोलाहल आदि के' अर्थ और रासक के काव्य अथवा दृश्य काव्यादि के अर्थ परम प्रसिद्ध हैं। मालूम होता है कि ग्रंथकार ने संस्कृत भारत शब्द के सदृश रासो शब्द को भावार्थ से महाकाव्य के अर्थ में ग्रहण कर प्रयोग किया है। यह रासो शब्द आजकल की व्रजभाषा में भी अप्रचलित नहीं है किन्तु अन्वेषण करने से वह काव्य के अर्थ के अतिरिक्त अन्य अनेक अर्थों में प्रयोग होता हुआ विद्वानों को दृष्टि आवेगा, जैसे—'हमने चौदे के गदर को एक **रासो** जोड्यो है। कल बहादर सिंह जी की बैठक में बदर ने गदर कौ **रासो** गायो हो, फिर मैंने भरतपुर के सूरजमल को **रासो** गायो सो सब देखते ही रह गये। अजी ये कहा **रासो** है। मैं तो कल्ल एक **रासो** में फँस गयौ या सूं तुमारे वहाँ नाय आय सक्यों। अजी राम गोपाल बडौ दिवारिया है, वाके **रासे** में फँस कै रुपैया मत बिगाड दीजो। हमनै आज विन कौ **रासो** निपटाय दीनौ है। देखौ सब **रासो** के संग **रासो** है, बुरी मत मानौ। तथा लुगाइयाँ भी गाया करती हैं—

गीत ॥ मत काची तोन्ह राखियो धानी
नान्ह करूँगी अँत **रासा**
गुर राख, पकावा, मत काचा। इत्यादि ॥ १ ॥
जिव लोगन की **रास** उठेगी तौन्ह के खाक उठावेगा,
हल जोत नहीं पछतावेगा। इत्यादि ॥ २ ॥"[2]

बनारस के पं० विन्धेश्वरीप्रसाद दुबे ने 'राजयश:' शब्द से 'रासो' को निकला हुआ माना। प्राकृत में ज के स्थान पर य हो जाता है जिससे 'राय यश:' हुआ और इससे उनके अनुसार कालान्तर में 'रायसा' बन गया।[3] म० म० डॉ० हर प्रसाद शास्त्री का कथन है कि राजस्थान के भाट, चारण आदि रासा (=क्रीड़ा) या रासा (=झगड़ा) शब्द से 'रासो' शब्द का विकास बतलाते हैं। राजपूताना में बड़ा झगड़ा रासा कहलाता है, और

---

(१) इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदूई ऐं ऐंदुस्तानी, प्रथम भाग, पृ०; (२) पृथ्वीराज रासो, (नागरी प्रचारिणी सभा), उपसंहारिणी टिप्पणी, पृ० १६३-६४; (३) वही, प्रिलिमिनरी रिपोर्ट, पृ० २५।

भी जब कोई एक बात पर अधिक वार्तालाप करता है तो कहा जाता है—'क्या रासा करते हो'। जैनों ने अनेक 'रासा' ग्रंथों की रचना की है। इतना कहकर शास्त्री जी का निष्कर्ष है कि 'पृथ्वीराज-रासा' का अर्थ होगा पृथ्वीराज की क्रीड़ायें या साहसिक कार्य।[१] पं० रामचन्द्र शुक्ल ने वीसलदेव रासो में कई बार प्रयुक्त हुए 'रसायण' शब्द को 'रासो' शब्द का मूल माना है[२] और प्रो० ललिता प्रसाद सुकुल विविध प्रधान रसों की निष्पति सूचक 'रसायण' (अर्थात् रस का अयन) शब्द द्वारा विकसित 'रासो' शब्द को रासो साहित्य की भरपूर सार्थकता सिद्ध करने वाला मानते हैं[३]। डॉ० दशरथ शर्मा ने सिद्ध किया है कि रासो प्रधानतः गान-युक्त नृत्य-विशेष से क्रमशः विकसित होते-होते उपरूपक और फिर उपरूपक से वीर रस के पद्यात्मक प्रबन्धों में परिणत हो गया।[४]

(१४) शत्रु-दल का दलन करने वाले, विग्रहराज चतुर्थ उपनाम वीसलदेव की मृत्यु के उपरान्त ढुंढा दानव की ज्योति से जन्म पाने वाले सोमेश्वर के पुत्र वज्रांग-वाहु पृथ्वीराज की कीर्ति चंद ने रासो में वर्णन की क्योंकि पृथ्वीपति पृथ्वीराज क्षत्रियों के छत्तीसों कुलों द्वारा सम्मानित हैं, नख से शिख तक अपरमित तेज वाले तथा राज्योचित बत्तीस गुणों से युक्त हैं—

> प्रिथ्थिराज पति प्रिथ्थपति। सिर मनि कुली छत्तीस ॥
> नष सिष पर मित लस तजै। ते गुन बरनि बतीस ॥ ७५८, स० १

इस यशस्वी सम्राट की कीर्ति अमर करना उसके दरबारी कवि के लिये स्वामि-धर्म तो था ही परन्तु एक रात्रि को रस में आकर उसकी पत्नी ने दिल्लीश्वर का यश आदि से अन्त तक वर्णन करने के लिये कहकर—

> समयं इक निसि चंदं। वाम वत्त वद्दि रस पाई ॥
> दिल्ली ईस गुनेयं। कित्ती कहो आदि अंताई ॥ ७६१, स० १,

मानों अभिलषित प्रेरणा प्रदान कर दी। यही रासो का आदि पर्व है।

फिर पत्नी की शंका का समाधान करने के लिये कवि ने दूसरे समय में 'दशावतार की कथा' कही और उसे अनंत कहकर अपने सिर पर चौहान (से उद्धार) का भार तथा थोड़ी आयु का उल्लेख किया—

---

(१) वही, प्रिलिमिनरी रिपोर्ट, पृ० २५; (२) हिंदी साहित्य का इतिहास, सं० २००३ वि०, पृ० ३२; (३) साहित्य जिज्ञासा, पृ० १२७; (४) रासो के अर्थ का क्रमिक विकास, साहित्य सन्देश, जुलाई १९५१ ई०।

राम किसन कित्ती सरस। कहत लगै बहु बार॥
छुच्छ आव कविचंद की। सिर चहुआना भार॥ छं० ५८५,स०२,

और तीसरी 'दिल्ली किल्ली कथा' में योगिनिपुर के राजा अनंगपाल तोमर द्वारा वहाँ पृथ्वी में अभिमंत्रित कील गाड़ने, उखाड़ने और फिर गाड़ने पर उसके ढीले रहने के कारण 'ढिल्ली' (दिल्ली) नाम पड़ने का हाल कहकर उनके द्वारा अपने दौहितृ पृथ्वीराज चौहान को दिल्ली-राज्य दान करने के विचार का वृत्तान्त दिया। चौथे 'लोहाना आजानुबाहु समय' में लोहाना आजानुबाहु नामक सामंत के साहस के फलस्वरूप पृथ्वीराज द्वारा विपक्षी के ओरछागढ़ का उसे पुरस्कार देना और उसका युद्ध करके उस पर अधिकार कर लेने का वर्णन है। पाँचवें 'कन्ह पट्टी समय' में पृथ्वीराज के आश्रित चालुक्य नरेश भोलाराय के सात चचेरे भाइयों को दरबार में मूँछ ऐंठने के अपराध पर कन्ह चौहान का युद्ध में सब को मार डालने और अन्त में दण्ड-स्वरूप अपनी आँखों पर सोने की पट्टी चढ़वाने का प्रसंग है। छठवें 'आषेटक वीर वरदान समय' में वन में मृगया-रत पृथ्वीराज का चंद की कृपा से बावन 'वीरों' को सिद्ध करने का हाल है। सातवें 'नाहरराय समय' में मंडोवर के शासक नाहरराय द्वारा अपनी कन्या पृथ्वीराज को व्याहने का वचन पलटने के परिणामस्वरूप युद्ध तथा चौहान का विजय प्राप्त करके इंच्छिनी से विवाह करने का विवरण है। आठवीं 'मेवाती मुगल कथा' में मेवात के राजा मुगल (मुद्गलराय) से सोमेश्वर द्वारा कर माँगने पर युद्ध और उनकी विजय का वृत्त है। नवीं 'हुसेन कथा' में ग़ज़नी के शाह शहाबुद्दीन और उसके चचेरे भाई मीरहुसेन का दरबार की चित्ररेखा नामक सुन्दरी वेश्या से प्रेम, शाह के मना करने पर भी हुसेन की अवज्ञा के कारण उसका देश-निर्वासित हो पृथ्वीराज के शरणार्थी होकर ग़ोरी के आक्रमण में शौर्य दिखाकर मारे जाने और चित्ररेखा का जीवित ही उसकी कब्र में बंद हो जाने तथा वंदी ग़ोरी का सन्धि के बाद हुसेन के पुत्र ग़ाज़ी के साथ ग़ज़नी लौटने का वर्णन है। दसवें 'आषेटक चूक वर्णनं' में अपना बैर भुनाने के लिये आखेट में संलग्न पृथ्वीराज पर ग़ोरी द्वारा आक्रमण परन्तु युद्ध में उसके हारकर भाग खड़े होने का वृत्तान्त है। ग्यारहवें 'चित्ररेखा समयौ' में ग़ोरी-द्वारा आरब ख़ाँ पर आक्रमण परन्तु सुन्दरी चित्ररेखा को प्राप्त करने पर सन्धि करने और सर्वथा उसके वशीभूत होने का आख्यान है। बारहवें 'भोलाराय भीमदेव समय' में सुलतान ग़ोरी की भीमदेव पर चढ़ाई का समाचार पाकर पृथ्वीराज का अपने दोनों शत्रुओं से लड़ने के लिये सन्नद्ध होने और भोलाराय की

पराजय की वार्ता है। तेरहवें 'सलष जुद्ध समयो' में ग़ोरी के आक्रमण, पृथ्वीराज द्वारा उसका मोर्चा रोकने, सलखराज प्रमार की वीरता और सुलतान के बंदी होने के उपरान्त मुक्त किये जाने की कथा है। चौदहवीं 'इंच्छिनी व्याह कथा' सलख प्रमार की कन्या से पृथ्वीराज का विधिपूर्वक विवाह वर्णन करती है। पन्द्रहवाँ 'मुगल जुद्ध प्रस्ताव' इंच्छिनी को व्याह कर लाते हुए पृथ्वीराज पर मेवात के मुगल राजा द्वारा पूर्व वैर का बदला लेने के लिये आक्रमण परन्तु युद्ध में उसके वन्दी होने का विवरण प्रस्तुत करता है। सोलहवें 'पुंडीर दाहिमी विवाह नाम प्रस्ताव' में चंद पुंडीर की कन्या पुंडीरी दाहिमी से पृथ्वीराज का विवाह दिया गया है। सत्रहवें 'भूमि सुपन प्रस्ताव' में पृथ्वीराज को देवी वसुंधरा द्वारा खट्टू वन में असंख्य धन गड़े होने की स्वप्न में सूचना की चर्चा है। अट्ठारहवें 'दिल्ली दान प्रस्ताव' में अनंगपाल का पृथ्वीराज को अपना दिल्ली-राज्य दान करके तपस्या हेतु बद्रिकाश्रम जाने का समाचार सुनकर सोमेश्वर की प्रसन्नता का उल्लेख है। उन्नीसवीं 'माधो भाट कथा' में ग़ज़नी दरबार के कवि माधौ भाट का पृथ्वीराज के दिल्ली-दरबार में भेद-हेतु आने और धर्मायन कायस्थ से गुप्त रहस्य प्राप्त करके ग़ज़नी भेजने, जिसके फलस्वरूप ग़ोरी के आक्रमण परन्तु युद्ध में उसके वन्दी होने और एक मास पश्चात् मुक्ति पाने का प्रसंग है। बीसवें 'पद्मावती समय' में समुद्रशिखर गढ़ के यादव राजा विजयपाल की पौत्री पद्मावती का एक शुक द्वारा पृथ्वीराज को रुक्मिणी की भाँति अपना उद्धार करने का संदेश, चौहान द्वारा शिव-मंदिर से उसका हरण और युद्ध में विजयी होकर दिल्ली की ओर बढ़ना तथा इसी अवसर पर ग़ोरी का आक्रमण, युद्ध और उसके वन्दी किये जाने तथा कर देने पर मुक्ति का उल्लेख है। इक्कीसवें 'प्रिथा व्याह वर्णन' में चित्तौड़ के रावल समरसिंह का पृथ्वीराज की बहिन पृथा से विवाह दिया है। बाईसवीं 'होली कथा' में होली पर्व मनाये जाने का कारण बताया गया है। तेईसवीं 'दीपमालिका कथा' में दीपोत्सव के कारण की चर्चा है। चौबीसवीं 'धन कथा' पृथ्वीराज और रावल समरसिंह का नागौर के खट्टू वन की भूमि में गड़ा धन निकालने जाने का, धर्मायन कायस्थ द्वारा यह समचार पाकर सुलतान ग़ोरी के आक्रमण और युद्ध में पराजित होकर वन्दी होने तथा दिल्ली में कर देकर छुटकारा पाने का और इसके उपरान्त रावल और चौहान के पुनः खट्टू वन जाकर नाना प्रकार के विघ्नों को पार करने का तथा उसका

एक भाग अपने सामंतों में वितरित करके शेष अपने कोष में रखने का वृत्तान्त देती है। पच्चीसवें 'शशिवृता वर्णनं नाम प्रस्ताव' में पृथ्वीराज और शशिवृता का परस्पर रूप, गुण आदि सुनकर अनुरक्त होने, शशिवृता की सगाई कान्यकुब्ज नरेश के भतीजे से निश्चित होने पर उसके द्वारा चुपचाप पृथ्वीराज के पास हंस (रूपी दूत) भेजकर अपना हरण करने का मंतव्य देने, चौहान का अपने सात सहस्र कपट वेश धारी सैनिकों सहित आकर देवगिरि के देवालय से शिव-पूजन हेतु आई हुई राजकुमारी को लेकर चल देने तथा युद्ध में यादवराज और कमधज्ज की संयुक्त वाहिनी को परास्त करके दिल्ली पहुँच जाने का प्रसंग है। छब्बीसवाँ 'देवगिरि समयौ' जयचन्द्र द्वारा देवगिरि घेरे जाने के समाचार पर पृथ्वीराज द्वारा चामंडराय और बड़गूजर की अध्यक्षता में सेना भेजने, विकट युद्ध के उपरान्त पंगराज द्वारा मेल का प्रस्ताव करने पर शान्ति स्थापित होने तथा विजयी चामंडराय के दिल्ली लौटने का उल्लेख करता है। सत्ताईसवाँ 'रेवातट समयौ' पृथ्वीराज को रेवा नदी के तट पर मृगया-हेतु गया जानकर ग़ोरी की चढ़ाई, चौहान का लौटकर युद्ध में उसे वन्दी बनाने तथा एक मास सात दिन के बाद, कर देने पर कारागार से छोड़ने और आदर-सत्कार पूर्वक ग़ज़नी भेजने का हाल बताता है। अट्ठाईसवें 'अनंगपाल समयौ' में दिल्ली की प्रजा की पुकार सुनकर बद्रिकाश्रम में अनंगपाल के पृथ्वीराज से दिल्ली-राज्य लौटाने के लिये चढ़ाई में हार कर वापिस आने परन्तु ग़ोरी के साथ फिर आक्रमण करने पर उसके साथ वन्दी किये जाने और पृथ्वीराज द्वारा दस लाख रुपये प्राप्त करके तपस्या के लिये लौटने तथा ग़ोरी के दंड देकर छूटने का प्रसंग है। उन्तीसवें 'घघर की लड़ाई रो प्रस्ताव' में घघर नदी के तट पर साठ सहस्त्र सैनिकों सहित आखेट के लिये गये हुए पृथ्वीराज पर ग़ोरी के आक्रमण, विषम युद्ध में उसके पकड़े जाने और भविष्य में विग्रह न करने की क़ुरान की शपथ खाने पर मुक्ति का उल्लेख है। तीसवें 'करनाटी पात्र समयौ' में देवगिरि के यादवराज सहित पृथ्वीराज का कर्नाटक देश के ऊपर आक्रमण पर वहाँ के राजा द्वारा सुन्दरी कर्नाटकी वेश्या अर्पित करके सन्धि कर लेने और चौहानराज द्वारा उसे अपने महल में रखकर क्रीड़ा करने का वर्णन है। इकतीसवें 'पीपा युद्ध प्रस्ताव' में सुलतान ग़ोरी से युद्ध करते हुए सामंत पीपा परिहार द्वारा उसके वन्दी किये जाने और पृथ्वीराज द्वारा उसे मुक्त करने

की चर्चा है। बत्तीसवें 'करहे रो जुद्ध प्रस्ताव' में मालवा में मृगया-रत पृथ्वीराज का उज्जैन के भीम प्रमार को जीतकर उसकी कन्या इन्द्रावती से विवाह के लिये प्रस्तुत होने पर, भीमदेव चालुक्य द्वारा चित्तौर गढ़ घेरे जाने का समाचार पाकर, पज्जूनराय को अपना खड्ग बँधवा कर विवाह के लिये भेजने और स्वयं रावल जी की सहायतार्थ जाकर युद्ध में विजयी होने का वृत्त है। तेंतीसवें 'इन्द्रावती व्याह' में भीमदेव प्रमार का नीरस हृदय पृथ्वीराज को अपनी कन्या इन्द्रावती न देने के निश्चय के फलस्वरूप चौहान से युद्ध और उनके विजयी होने पर विवाह का हाल है। चौंतीसवें 'जैतराव जुद्ध सम्यौ' में नीतिराव खत्री द्वारा खट्टू वन में पृथ्वीराज के आखेट-मग्न होने का समाचार पाकर ग़ोरी का आक्रमण, युद्ध और उसके वन्दी होकर मुक्त किये जाने का समाचार है। पैंतीसवें 'कांगुरा जुद्ध प्रस्ताव' में काँगड़ा के राजा भान रघुवंशी पर पृथ्वीराज के आक्रमण और युद्ध में उसे परास्त कर उसकी कन्या से विवाह की कथा है। छत्तीसवें 'हंसावती विवाह नाम प्रस्ताव' में रणथम्भौर के राजा भान का अपनी कन्या हंसावती से चँदेरी के शासक पंचाइन का विवाह करने का प्रस्ताव पाने पर उसे ठुकराकर पृथ्वीराज को अपनी सहायता के लिये बुलाने, पंचाइन के ग़ोरी की सहायता सहित आ धमकने, पृथ्वीराज के आगमन पर युद्ध में उनकी विजय के बाद हंसावती से उनके विवाह और प्रेम-क्रीड़ा का प्रसंग है। सैंतीसवाँ 'पहाड़राय सम्यौ' सुलतान ग़ोरी का दिल्ली पर आक्रमण, युद्ध और पहाड़राय तोमर द्वारा उसके पकड़े जाने तथा दंड-स्वरूप कर देकर छूटने का व्यौरा देता है। अड़तीसवीं 'वरुण कथा' एक चन्द्रग्रहण के अवसर पर सोमेश्वर का यमुना में स्नान करते समय वरुण के वीरों से युद्ध में पराजित होकर अपने साथी सामंतों सहित मूर्छित होने और प्रातःकाल यह दशा देखकर पृथ्वीराज द्वारा यमुना की स्तुति से सबको चैतन्य करने का उल्लेख करती है। उन्तालीसवें 'सोमबध सम्यौ' में गुर्जरेश्वर भीमदेव चालुक्य के अजमेर के ऊपर आक्रमण पर युद्ध में सोमेश्वर की मृत्यु और उत्तर से लौटकर पृथ्वीराज का यह सुनकर बदला लेने की शपथ और उनकी राजगद्दी का विवरण है। चालिसवें 'पज्जून छोंगा नाम प्रस्ताव' में सोनिंगरा दुर्ग में स्थित भीमदेव चालुक्य पर चौहान नरेश के सामंत पज्जूनराय का छापा मारकर सकुशल लौटने की वार्ता है। इकतालिसवें 'पज्जून चालुक्य नाम प्रस्ताव' में कमधज्ज की सेना सहित ग़ोरी के दिल्ली आक्रमण और पज्जूनराय की अध्यक्षता में पृथ्वीराज की विजय वर्णित है।

बयालिसवाँ 'चंद द्वारका समयौ' दिल्ली से कविचंद की द्वारिका तीर्थ-यात्रा और चित्तौड़ में रावल जी से तथा अन्हलवाड़ा में भीमदेव चालुक्य से भेंट करके उसके दिल्ली लौटने का उल्लेख करता है। तेंतालिसवें 'कैमास जुद्ध' में ग़ोरी के आक्रमण का मोर्चा कैमास दाहिम द्वारा लिये जाने, शाह के पराजित होकर वन्दी होने तथा दंड भरने पर पृथ्वीराज द्वारा छोड़े जाने की चर्चा है। चवालिसवें 'भीमवध सम्यौ' में अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये भीमदेव चालुक्य पर पृथ्वीराज की चढ़ाई, युद्ध में चालुक्य की मृत्यु और चौहान द्वारा उसके पुत्र कचराराय का तिलक किये जाने का प्रसंग है। पैंतालिसवाँ 'संयोगिता पूर्व जन्म प्रस्ताव' इन्द्र-प्रेषित मंजुघोषा अप्सरा का सुमंत मुनि का तप भंग करने के लिये आने परन्तु प्रेम-पाश की पूर्ति के काल में अचानक मुनि के पिता जरज ऋषि के आगमन और अप्सरा को पृथ्वी पर जन्म लेने के श्राप-स्वरूप संयोगिता का अवतरण वर्णन करता है। छियालिसवें 'विनय मंगल नाम प्रस्ताव' में किशोरी राजकुमारी संयोगिता को वृद्धा मदन ब्राह्मणी द्वारा विनय पूर्ण आचरण की शिक्षा का उल्लेख है। सैंतालिसवें 'सुक वर्णन' में एक शुक और शुकी का क्रमशः ब्राह्मण और ब्राह्मणी वेश में संयोगिता और पृथ्वीराज को रूप और गुणानुवाद द्वारा परस्पर आकर्षित करने का लेख है। अड़तालिसवें 'बालुकाराय सम्यौ' में जयचन्द्र के राजसूय-यज्ञ करने, पृथ्वीराज को उसमें द्वारपाल का कार्य-भार ग्रहण करने के लिये बुलाने और उनकी अस्वीकृति पर उनकी सुवर्ण-मूर्ति उक्त स्थान पर खड़े किये जाने तथा इस समाचार को पाकर पृथ्वीराज के रोष युक्त हो कान्यकुब्जेश्वर के भाई बालुकाराय पर चढ़ाई करके उसे मारने तथा उसकी स्त्री का विलाप करते हुए कन्नौज-यज्ञ में जाकर पुकारने का लापन है। उन्चासवें 'पंग जग्य विध्वंसनो नाम प्रस्ताव' में सारी वार्ता सुनकर और अपना यज्ञ विध्वंस हुआ देख जयचन्द्र का पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने, संयोगिता की प्रीति दृढ़तर होने तथा आखेट में संलग्न चौहान का शत्रुओं से घिरने पर भी, केवल एक सौ सामंतों की सहायता से विजयी होने का हाल है। पचासवें 'संजोगता नाम प्रस्ताव' में संयोगिता का स्वयम्वर करने के विचार से उनका मन पृथ्वीराज की ओर से फेरने के लिये जयचन्द्र द्वारा एक दूती भेजने और राजकुमारी को अपने हठ पर दृढ़ जानकर गंगा-तट के एक महल में निवास देने का विवरण है। इक्यावनवें 'हाँसीपुर प्रथम जुद्ध' में मक्का जाती हुई सुलतान की बेग़मों को हाँसीगढ़ स्थित पृथ्वीराज के

सामंतों और रक्षकों द्वारा लूटने पर शाही सेना के आक्रमण परन्तु युद्ध में हारकर भाग खड़े होने का वृत्तान्त है। बावनवें 'द्वितीय हाँसी युद्ध वर्णन' में हाँसी में तातार ख़ाँ की पराजय सुनकर सुलतान का स्वयं गढ़ का घेरा डालने और उसके रक्षकों से दुर्ग का अधिकार देने के प्रस्तावस्वरूप विकट संग्राम का प्रारम्भ तथा पृथ्वीराज का स्वप्न में हाँसी की दुर्दशा देखकर रावल जी को उधर ही बुलाकर स्वयं प्रस्थित होने और यवन-सेना से भिड़कर उसे भगाने का हाल है। चौवनवें 'पज्जून पातसाह जुद्ध नाम प्रस्ताव' में धर्मायन कायस्थ द्वारा पज्जूनराय के महुवा दुर्ग से नागौर जाने का समाचार पाकर ग़ोरी शाह का नागौर पर आक्रमण, युद्ध में विषम वीरता प्रदर्शित करके पज्जून का शाह को पकड़ने और पृथ्वीराज द्वारा दंड लेकर उसे छुटकारा देने का कथन है। पचपनवें 'सामंत पंग जुद्ध नाम प्रस्ताव' में जयचन्द्र का रावल जी को अपने पक्ष में करने के प्रयत्न में असफलता, पृथ्वीराज से नाना का आधा राज्य माँगने पर गोविन्दराय का करारा उत्तर सुनकर दिल्ली राज्य के मुख्य-मुख्य स्थानों को घेरने, आखेट के कारण पृथ्वीराज के बाहर होने पर कैमास, कन्ह, अत्ताताई आदि सामंतों के दिल्ली-दुर्ग में कन्नौज की विशाल वाहिनी द्वारा घिरने और युद्ध प्रारम्भ होने पर जयचन्द्र की सेना के ऊपर बाहर से पृथ्वीराज का आक्रमण होने से उसका साहस भंग होकर तितर-बितर हो जाने की चर्चा है। छप्पनवें 'समर पंग जुद्ध नाम प्रस्ताव' में जयचन्द्र द्वारा रावल जी के चित्तौड़-गढ़ पर आक्रमण में, उनका वीरतापूर्वक मोर्चा लेकर विजयी होने का वृत्त है। सत्तावनवें 'कैमास वध नाम प्रस्ताव' में चंद पुंडीर द्वारा राजकुमार रैनसी में दुर्भावना-पोषण का संदेह पृथ्वीराज को दिलाकर चामंडराय के बेड़ियाँ डलवाने, दिल्ली-दुर्ग का भार कैमास पर रखकर चौहान के मृगया हेतु बाहर जाने, इधर कर्नाटकी और कैमास के परस्पर आकर्षित होकर रति-लीन होने का दृश्य महारानी इंच्छिनी द्वारा पृथ्वीराज को रातोरात बुलाकर दिखाने के फलस्वरूप उनका शब्द-वेधी-बाण से कैमास को मारकर भूमि में गाड़ने, राजा के वन-शिविर में लौट जाने तथा वन्दिनी कर्नाटकी के निकल भागने और दूसरे दिन दरबार में कैमास की अनुपस्थिति का कारण पूछते हुए चंद की सिद्धि को ललकारने पर रहस्योद्घाटन के फलस्वरूप सामंतों का खिन्न चित होकर अपने-अपने घर जाने और कवि द्वारा भर्त्सना करने तथा वरदायी के अनुरोध पर कैमास का शव उसके परिवार को देने परन्तु अपने को छद्म वेश में जयचन्द्र

का दरबार दिखाने का वचन देने का प्रसंग है। अट्ठावनवें 'दुर्गा केदार समय' में ग़ज़नी दरबार के भट्ट दुर्गा केदार और चंद का दिल्ली में वादविवाद में समान सिद्ध होने, धर्मायन कायस्थ द्वारा भेद पाकर ग़ोरी के आक्रमण का समाचार दुर्गा केदार द्वारा भेजे कविदास से पृथ्वीराज को मिल जाने के कारण उनका भी युद्ध-हेतु सन्नद्ध हो जाने, तुमुल युद्ध में आजानुबाहु लोहाना द्वारा ग़ोरी को वन्दी बनाने, उसकी सेना के पलायन करने और शाह के दंड अदा करने पर छुटकारा पाने का वृत्तान्त है। उनसठवें 'दिल्ली वर्णन' में दिल्ली दरबार का सौन्दर्य, निगमबोध के उद्यान की शोभा, पृथ्वीराज के मुख्य सभासदों के नाम, दिल्ली नगर का वर्णन, राजकुमार रैनसी की सवारी और उनके साथी कुमार सामंतों का उल्लेख तथा वसन्तोत्सव का विवरण है। साठवीं 'जंगम कथा' में कन्नौज के स्वयम्वर में तीन बार अपनी मूर्ति को संयोगिता द्वारा वरमाला पहिनाने के कारण, उसे गंगातट के महल में निवास देने का वृत्तान्त एक जंगम से सुनकर पृथ्वीराज राजकुमारी के प्रेम से उद्वेलित हो चंद से कन्नौज चलने का आग्रह करते हैं और मृगया के उपरान्त शिव-पूजन करके वे फिर कवि से चलने की चर्चा चलाते हैं। इकसठवें 'कनवज्ज समयो' में पृथ्वीराज का छै रानियों के साथ षट्-ऋतुयें बिताकर सौ सामंतों और ग्यारह सौ सवारों तथा चंद सहित कन्नौज गमन करने, कन्नौज के समीप पहुँचने पर सबका कवि के साथियों के वेश में रूप बदलने, चंद का अपने साथियों समेत राजा जयचन्द्र के दरबार में जाने और उनसे विनोदपूर्ण तथा प्रगल्भ वार्तालाप के उपरान्त सम्मानित होने और आदर-सत्कार से ठहराये जाने, पृथ्वीराज के छद्म वेश का उद्घाटन होने पर कवि का पड़ाव घेरने की जयचन्द्र की आज्ञा तथा युद्धारम्भ, इसी समय पृथ्वीराज का गंगा-तट के महल से संयोगिता को अपने घोड़े पर बिठाकर अपने दल में आने तथा क्रमशः दल-पंग की विशाल वाहिनी से लड़ते-भिड़ते दिल्ली की ओर प्रस्थान और सामंतों की अपार हानि सहकर अपने राज्य की सीमा में पहुँचने तब पंगराज का पश्चाताप करते हुए कन्नौज लौट जाने, दिल्ली पहुँचकर संयोगिता और पृथ्वीराज के विधिपूर्वक विवाह में जयचन्द्र द्वारा पुरोहित के हाँथ से बहुत सा दहेज भेजने तथा दम्पति-विलास और सुख का विस्तृत वर्णन है। बासठवें 'शुक चरित्र प्रस्ताव' में इंच्छिनी के प्रत्यक्षदर्शी बाचाल शुक द्वारा संयोगिता का नख-शिख और रति-क्रीड़ा वर्णन, सपत्नी-द्वेष से इंच्छिनी का संयोगिता के प्रति मनमुटाव

और पृथ्वीराज द्वारा उसके निराकारण का उल्लेख है। तिरसठवें 'आखेट चष श्राप नाम प्रस्ताव' में कन्नौज-युद्ध में अनेक सामंतों के मारे जाने से खिन्न चित्त पृथ्वीराज का मन बहलाने के लिये रानियों सहित वन-यात्रा तथा वहाँ भोज और मृगया का रस लेने, लौटते समय एक गुफा में सिंह के भ्रम से धुआँ कराने पर उससे एक क्रोधित मुनि का निकल कर पृथ्वीराज को शत्रु द्वारा चक्षु विहीन किये जाने का श्राप देने, जिसे सुनकर सबके दुखी होने और संयोगिता के विशेष पश्चाताप करने तथा दिल्ली पहुँचकर दान दिये जाने और राजा का अन्तरङ्ग महलों में निवास करने का प्रसंग है। चौंसठवें 'धीर पुंडीर नाम प्रस्ताव' में पृथ्वीराज का कन्नौज से भाग आने का पछतावा और सामंतों के बलाबल की परीक्षा के लिये जैत-खम्भ का निर्माण, जिसका वेध चंद पुंडीर के पुत्र धीर पुंडीर द्वारा किये जाने पर उसका सम्मान और जागीर प्रदान, अपने को पकड़ने की धीर की प्रतिज्ञा सुनकर ग़ोरी का उसे पकड़ने के लिये गक्खरों को नियुक्ति, जालंधरी देवी के पूजन हेतु जाते हुए धीर को वन्दी करके ग़ोरी के सम्मुख लाये जाने पर उसका बल, धैर्य और साहस देखकर सुलतान का उसे फिर अपने को पकड़ने की बात निर्भयता से कहने पर उसे मुक्त करके एक अवसर देने और उसके जाने के बाद ही पृथ्वी-राज पर चढ़ाई कर देने, वचन के पक्के धीर द्वारा शाह को वन्दी बनाने तथा बैजल खवास की प्रार्थना पर पृथ्वीराज द्वारा कर लेकर सुलतान की मुक्ति, जैतराव और चामंडराय के भड़काने पर धीर का निर्वासन तथा ग़ोरी द्वारा समादृत हो ढिल्ला नामक स्थान पर निवास प्राप्त करने और पृथ्वीराज के उसे वापिस बुलाने पर घोड़ों के सौदागरों के साथ ग़ोरी के सैनिकों द्वारा उसका छल पूर्वक वध करने, इस समाचार से पुंडीर वीरों सहित पावस पुंडीर का आक्रमण और मुस्लिम दल की भगदड़ तथा राज्य-कार्य त्यागकर संयोगिता के साथ पृथ्वीराज के रस-विलास का विवरण है। पैंसठवाँ 'विवाह सम्यो' पृथ्वीराज की रानियों के नाम और उनसे विवाह-काल में राजा की आयु की सूचना देता है। छाछठवें 'बड़ी लड़ाई रो प्रस्ताव' में रावलजी का चित्तौड़ से दिल्ली आगमन परन्तु संयोगिता के राग में रँगे पृथ्वीराज से इक्कीस दिनों तक भेंट न हो सकने, दिल्ली-राज्य की अव्यवस्था, दुर्बलता और क्षीण-शासन का भेद नीतिराव खत्री से पाकर ग़ोरी का प्रबल आक्रमण, प्रजाजन, गुरुराम और चंद का बड़ी कठिनता से रंग महल में रमे पृथ्वीराज तक इस अभियान की सूचना, राजा का शृंगार से वीर रस में परिवर्तित होना और बाहर रावल जी से क्षमा याचना करके शत्रु से लोहा लेने के लिए शक्ति-

संगठन, चामंडराय की बेड़ियाँ काटी जाने, काँगड़ा के हाहुलीराय हमीर को मनाकर अपने पक्ष में लाने वाले चंद का छल पूर्वक देवी के मन्दिर में बन्दी किये जाने और हमीर के शाह के पक्ष में जाने का समाचार पाकर पृथ्वीराज द्वारा प्रेषित पावस पुंडीर का हमीर के निकल भागने परन्तु उसके दल का सफाया कर डालने, रैन सी को राज्य-भार समर्पण, भयंकर युद्ध में पृथ्वीराज के बन्दी होने और हाथी पर ग़ज़नी ले जाये जाने, रावल जी तथा अन्य सामंतों की वीरगति, संयोगिता का प्राण-त्याग, वीरभद्र की कृपा से चंद का देवी के मन्दिर से उद्धार, दिल्ली में क्षत्राणियों का चितारोहण, पृथ्वीराज का हुजाब ख़ाँ की प्रेरणा से चक्षु विहीन किये जाने, नेत्र-हीन महाराज का पश्चाताप और वीरभद्र द्वारा शोकाकुल राजकवि को प्रबोध का चित्रण है। सरसठवें 'बान बेध प्रस्ताव' में दुखी कवि का दिल्ली पहुँचकर ढाई मास में 'पृथ्वीराज-रासो' का प्रणयन कर, उसे अपने श्रेष्ठ पुत्र जल्ह को अर्पित कर, परिवार से विदा लेकर, योगी के वेश में स्वामि-धर्म हेतु ग़ज़नी गमन, उपाय विशेष से सुलतान से मिलकर और उसे प्रसन्न करके पृथ्वीराज के शब्द वेधी बाण का कौशल देखने को प्रस्तुत करने, ग़ज़नी दरबार में नेत्र-रहित राजा को सुलतान की बैठक का पता युक्तिपूर्ण वाक्यों द्वारा देकर उनके बाण से सुलतान का बध कराने के उपरान्त अपनी जटाओं में छिपी छुरी राजा को प्राणान्त-हेतु देकर योग द्वारा अपने प्राण त्याग करने का प्रसंग है। अड़सठवें 'राजा रयन सी नाम प्रस्ताव' में दिल्ली में रैन सी की राजगद्दी और ग़ज़नी में ग़ोरी के उत्तराधिकारी की तख़्तनशीनी, पंजाब की सीमा-स्थित शाही सेना पर रैन सी के आक्रमण और लाहौर में अपने थाने बिठाने के फलस्वरूप मुस्लिम चढ़ाई तथा हिन्दू-दल का दिल्ली-दुर्ग में रहकर उससे मोर्चा लेने का निश्चय, युद्ध में दुर्ग की दीवाल टूटने पर रैन सी का वीर क्षत्रियों सहित संग्राम में वीर गति प्राप्त करने, दिल्ली के पराभव के बाद कन्नौज पर मुस्लिम अभियान और युद्ध में जयचन्द्र की मृत्यु का वर्णन है। अंतिम 'महोबा समयो' में समुद्रशिखर-गढ़ से पद्मावती का हरण करके आते हुए पृथ्वीराज पर ग़ोरी का आक्रमण और युद्ध में उसके बन्दी किये जाने तथा चौहान के कुछ आहत सैनिकों का भूल से महोबा के राज-उद्यान में ठहरने और वहाँ के माली से बतबढ़ होने पर उसे मार डालने के फलस्वरूप राजा परमाल की आज्ञा से इन सबके मारे जाने, पृथ्वीराज की महोबा पर चढ़ाई और महान युद्ध में आल्हा-ऊदल सरीखे योद्धाओं की मृत्यु के बाद महोबा-पतन तथा पज्जूनराय को वहाँ का अधिपति नियुक्त किये जाने का वृत्तान्त है।

[वस्तुत: इस 'समय' की घटना बीसवें 'पदमावती समय' के बाद की है परन्तु भाषा में अपेक्षाकृत आधुनिकता का पुट अधिक होने के कारण इसका अधिकांश अंश प्रक्षिप्त है। वैसे महोबा के शासक परमर्दिदेव उपनाम परमाल पर पृथ्वीराज का आक्रमण और युद्ध में विजय शिलालेख द्वारा सिद्ध ऐतिहासिक वार्ता है।]

अतएव रासो के सम्पूर्ण प्रस्तावों के नामों और उनमें वर्णित विविध प्रसंगों की यह विस्तृत विवेचना सिद्ध करती है कि इसमें 'सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग के नाम' वाला नियम पूरा-पूरा लग जाता है।

महाकाव्य की कसौटी पर रासो का अनुशीलन और परिशीलन करने के उपरान्त हम इस योग्य हो गये हैं कि उस पर अपना निश्चित मत दे सकें। इसमें सर्गों का निबंधन है परन्तु किंचित् शिथिलता के साथ, पृथ्वीराज चौहान इसके धीरोदात्त नायक हैं, वीर इसका प्रधान रस है, नाटक की सन्धियाँ इसके कई प्रस्तावों में पृथक रूप से सन्निविष्ट देखी जा सकती हैं, इसकी कथा ऐतिहासिक है जिस पर कल्पना का प्रचुर पुट भी दिया गया है, (धर्म पूर्वक) कर्म ही इसका फल है (जो मुक्ति-दाता सिद्ध किया गया है), इसका आरम्भ देवताओं को नमस्कार और वर्ण्य-वस्तु का निर्देश करके होता है, इसमें खलों की निन्दा और सज्जनों का गुणानुवाद वर्तमान है, इसमें ६९ समय (सर्ग) हैं जो आठ के आठ गुने से भी अधिक हैं, इसके प्रस्तावों (सर्गों) में अनेक छन्द मिलते हैं जिनके क्रम में किसी नियम विशेष का पालन नहीं देखा जाता परन्तु वे कथा की गति में बाधा नहीं डालते वरन् उन्हें साधक ही कहा जा सकता है, इसके सर्गों के अन्त में कहीं आगामी कथा की सूचना दी गई है और कहीं नहीं भी, यहाँ तक कि अनेक पूर्वापर सम्बन्ध से रहित हैं परन्तु उन्हें परस्पर जोड़ने वाला पृथ्वीराज का उत्तरोत्तर विकसित जीवन-व्यापार है, इसके वस्तु-वर्णन की कुशलता इतिवृत्तात्मक अंश को सरस करने वाली है, इसका नाम महाराज पृथ्वीराज के चरित्र के नाम से 'पृथ्वीराज-रासो' है और इसमें सर्गों का नाम उनकी वर्णनीय कथा के आधार पर रखा गया है। अस्तु कतिपय त्रुटियाँ होने पर भी हिन्दी के इस प्रबन्ध काव्य का महाकाव्यत्व निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है। पं० मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या, राधाकृष्ण दास और श्यामसुन्दर दास ने इसको महाकाव्य माना था[1], बाद

---

१. पृथ्वीराज रासो [ना० प्र० स०], (उपसंहारिणी टिप्पणी) पृ० १६५ ;

में डॉ० श्यामसुन्दर दास ने इसे महाकाव्य न कहकर 'विशालकाय वीर काव्य' कहना ही उचित ठहराया[१], बाबू गुलाबराय ने इसे स्वाभाविक विकास शील महाकाव्य (Epic of Growth) माना है[२] और प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल ने इसे साङ्गोपाङ्ग सफल एवं सिद्ध महाकाव्य बताया है[३]।

अपभ्रंश-रचना

सन् १९२८ ई० (सं० १९८५ वि०) में जब महामहोपाध्याय पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कई ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा 'पृथ्वीराज-रासो' को सर्वथा अनैतिहासिक सिद्ध करते हुए पृथ्वीराज चौहान तृतीय के दरबार में चन्द वरदायी के अस्तित्व तक पर सन्देह प्रकट कर चुके थे[४] उसके आठ वर्ष बाद सन् १९३६ ई० में मुनिराज जिनविजय जी ने सन् १२३३ ई० (सं० १२९० वि०) अर्थात् सन् ११९२ ई० में पृथ्वीराज की मृत्यु के ४१ वर्ष बाद रचित संस्कृत-प्रबन्धों में आये हुए उनसे सम्बन्धित चार अपभ्रंश छन्दों की शोध तो की ही परन्तु साथ ही उनमें से तीन नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो में भी ढूँढ़ निकाले।[५] तुलना सहित उक्त छन्द इस प्रकार हैं :—

(१) मूल

इक्कु बाणु पहुवीसु जु पइं कइंबासह मुक्कओं,
उर भिंतरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ।
बीअं करि सन्धीउं भंमइ सूमेसरनंदण !,
एहु सु गडि दाहिमओं खणइ खुद्दइ सइंभरिवणु।
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह,
नं जाणउं चन्द बलद्दिउ किं न वि छुट्टइ इह फलह ॥
—पृष्ठ ८६, पद्यांक (२७५)

---

१. हिंदी साहित्य, पृ० ८२ ;
२. सिद्धान्त और अध्ययन, भाग २, पृ० ८५ ;
३. साहित्य जिज्ञासा, पृ० १२७ ;
४. पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल; कोषोत्सव स्मारक संग्रह, सं० १९८५ वि०;
५. पुरातन प्रबन्ध संग्रह; भूमिका, पृष्ठ ८–१०, सं० १९९२ वि०;

रूपान्तर

एक बान पहुमी नरेस कैमासह मुक्यौ।
उर उप्पर थरहरयौ वीर कष्षंतर चुक्यौ॥
बियौ बान संधान हन्यौ सोमेसर नंदन।
गाढौ करि निग्रह्यौ षनिव गड्यौ संभरि धन॥
थल छोरि न जाइ अभागरौ गाड्यौ गुन गहि अग्गरौ।
इम जंपै चंद बरद्दिया कहा निघट्टै इय प्रलौ॥

—रासो, पृष्ठ १४६६, पद्य २३६

(२) मूल

अगहुम गहि दाहिमओ रिपुराय खयं करु,
कूडु मन्त्रु मम ठवओ एहु जम्बूय (प ?) मिलि जग्गरु।
सह नामा सिक्खवउं जइ सिक्खिविउं बुज्झइं,
जंपइ चंदबलिद्दु मज्झ परमक्खर सुज्झइ।
पहु पहुविराय सइंभरिधनी सयँभरि सउणइ सम्भरिसि,
कइंबास बिआस विसट्ठविणु मच्छिबंधिबद्धओ मरिसि॥

—पृष्ठ वही, पद्यांक (२७६)

रूपान्तर

अगह मगह दाहिमौ देव रिपु राइ पयंकर।
कूर मन्त जिन करौ मिले जंबू वै जंगर॥
मो सहनामा सुनौ एह परमारथ सुज्झै।
अष्षै चंद बिरद्द बियौ कोइ एह न बुज्झै॥
प्रथिराज सुनवि संभरि धनी इह संभलि संभारि रिस।
कैमास बलिष्ठ बसीठ बिन म्लेच्छ बंध बंध्यौ मरिस॥

—रासो, पृष्ठ २१८२, पद्य ४७६

(३) मूल

त्रिण्हि लक्ख तुषार सबल पषरीअइं जसु हय,
चउदसय मयमत्त दंति गज्जंति महामय।
बीसलक्ख पायक्क सफर फारक्क धणुद्धर,
ल्हूसडु अरु बलु यान सङ्ख कु जाणइ तांह पर।
छत्तीसलक्ख नराहिवइ विहिविनडिओ हो किम भयउ,
जइच्चन्द न जाणइ जल्हुकइ गयउ कि मूउ कि धरि गयउ॥

—पृष्ठ ८८, पद्यांक (२७८)

रूपान्तर

असिय लष्य तोषार सजउ पष्वर सायद्दल ।
सहस हस्ति चवसट्ठि गरुअ गज्जंत महाबल ।।
पंच कोटि पाइक्क सुफर पारक्क धनुद्धर ।
जुध जुधान बर बीर तो न बंधन सद्धन भर ।।
छत्तीस सहस रन नाइबौ विही निम्मान ऐसो कियौ ।
जै चंद राइ कवि चंद कहि उदधि बुड्डि कै धर लियौ ।।
—रासो, पृष्ठ २५०२, पद्य २१६.

(४) मूल

जइतचंदु चक्कवइ देव तुह दुसह पयाणउ,
धरणि धसवि उद्धसइ पडइ रायह भंगाणऑं ।
सेसु मणिहिं संकियउ मुक्कु हयखरि सिरि खंडिऑ,
तुट्टऑ सो हरधवलु धूलि जसु चिय तणि मंडिऑ ।
उच्छलीउ रेणु जसगिग गय सुकवि व (ज)ल्हु सच्चउं चवइ,
वग्ग इंदु बिंदु भुयजुअलि सहस नयण किण परि मिलइ ।।
—पृष्ठ ८८-६, पद्यांक (२७६)

अपभ्रंश के इन छन्दों के आधार पर मुनिराज ने लिखा, "४ पद्यों में से तीन पद्य यद्यपि विकृत रूप में लेकिन शब्दशः उसमें हमें मिल गए हैं इससे यह प्रमाणित होता है कि चंद कवि निश्चिततया एक ऐतिहासिक पुरुष था और वह दिल्लीश्वर हिंदुसम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था। उसीने पृथ्वीराज के कीर्तिकलाप का वर्णन करने के लिए देश्य प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की थी जो पृथ्वीराज रासो के नाम से प्रसिद्ध हुई।....इसमें कोई शक नहीं कि पृथ्वीराज रासो नाम का जो महाकाव्य वर्तमान में उपलब्ध है उसका बहुत बड़ा भाग पीछे से बना हुआ है। उसका यह बनावटी हिस्सा इतना अधिक और विस्तृत है, और इसमें मूल रचना का अंश इतना अल्प है और वह भी इतनी विकृत दशा में है, कि साधारण विद्वानों को तो उसके बारे में किसी प्रकार की कल्पना करना भी कठिन है।....मालूम पड़ता है कि चंदकवि की मूल कृति बहुत ही लोक प्रिय हुई और इसीलिए ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों उसमें पीछे से चारण और भाट लोग अनेकानेक नये नये पद्य बनाकर मिलाते गये और उसका कलेवर बढ़ाते गए। कण्ठानुकण्ठ उसका प्रचार होते रहने के कारण मूल पद्यों की भाषा में भी बहुत कुछ परिवर्तन

होता गया। इसका परिणाम यह हुआ कि आज हमें चंद की उस मूल रचना का अस्तित्व ही विलुप्त सा हो गया मालूम दे रहा है।"

उपर्युक्त अपभ्रंश छन्दों में से अन्तिम दो जो 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के 'जयचंद प्रबन्ध' से उद्धृत किए गये हैं, चंद द्वारा नहीं रचे गए हैं वरन् उसके 'गुन बावरो'[1] पुत्र जल्हु कइ (जल्ह कवि) प्रणीत हैं जो 'चंद छंद सायर तिरन'[2] 'जिहाज गुन साज कवि'[3] था तथा जिसके लिए 'पुस्तक जल्हन हथ्थ दै चलि गज्जन नृप काज'[4] का उल्लेख है।

मुनिराज की शोध का उल्लेख करते हुए बाबू श्यामसुन्दर दास ने लिखा—'अब प्रश्न यह उठता है कि कौन किसका रूपान्तर है। क्या आधुनिक रासो का अपभ्रंश में अनुवाद हुआ था अथवा असली रासो अपभ्रंश में रचा गया था, पीछे से उसका अनुवाद प्रचलित भाषा में हुआ और अनेक लेखकों तथा कवियों की कृपा से उसका रूप और का और हो गया तथा क्षेपकों की भरमार हो गई। यदि पूर्ण रासो अपभ्रंश में मिल जाता तो यह जटिल प्रश्न सहज ही में हल हो जाता। राजपुताने के विद्वानों तथा जैन संग्रहालयों को इस ओर दत्त चित्त होना चाहिए।"[5]

बाबू साहब की यह शंका कि कौन किसका रूपान्तर है अधिकसंगत नहीं। अनेक विद्वान् इस तथ्य से सहमत हैं कि पूर्ववर्ती भाषाओं की कृतियों के रूपान्तर परवर्ती भाषाओं में हुए हैं परन्तु परवर्ती भाषाओं की कृतियाँ पूर्ववर्ती भाषाओं में रूपान्तरित नहीं की गई हैं।[6] अस्तु यह निश्चित है की पृथ्वीराजरासो का मूल प्रणयन अपभ्रंश में हुआ था परन्तु यहाँ पर यह भी स्मरण रखना होगा कि वह उत्तर कालीन अपभ्रंश थी जिस पर तत्कालीन कथ्य देश भाषा की छाप थी। डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी ने भी अपभ्रंश छन्दों की शोध होने पर लिखा—'निर्विवाद निष्कर्ष यह है कि

१—दहति पुत्र कविचंद कै। सुंदर रूप सुजान।
इक जल्लह गुन बावरौ। गुन समंद ससि मान॥ ८४, स० ६७;

२—छंद ८३, स० ६७;

३—वही;

४—छंद ८५, स० ६७;

५—पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० प०, वर्ष ४५, अंक ४, माघ सं० १९९७ वि०, पृ० ३४९-५२;

६—डॉ० प्रबोध चन्द्र बागची;

मूल पृथ्वीराजरासो की रचना एक प्रकार का अपभ्रंश थी न कि कोई आधुनिक भारतीय भाषा और एक नवीन भाषा के आरम्भ की अपेक्षा रासो अपभ्रंश भाषा और साहित्य की परम्परा की देन है।'[1] प्रकाशित रासो व्यापक अर्थ में (राजस्थानी) हिंदी की पुरानी रचना है और कभी सुलभ होने पर उसका मूल अपभ्रंश रूप हिंदी और अपभ्रंश भाषाओं के सन्धि-युग की रचना सिद्ध होगा अस्तु उसे उत्तर कालीन अपभ्रंश अथवा प्राचीन हिंदी का महाकाव्य कहने में कोई आपत्ति नहीं दीखती।

राजपूताने के विद्वानों तथा जैन-संग्रहालयों के संरक्षकों के दत्तचित्त होकर खोज करने पर भी अभी तक अपभ्रंश-रचित मूल रासो का संधान नहीं मिला है परन्तु डॉ० दशरथ शर्मा और प्रो० मीनाराम रंगा द्वारा रासो के बीकानेरी संस्करण के 'यज्ञ-विध्वंस, सम्यौ ६' के निम्न छन्द जो सभा वाले प्रकाशित रासो के 'बालुका-राइ सम्यौ ४८' के छन्द २२-६५ के अन्तर्गत किंचित् पाठान्तर वाले रूप हैं, उनका अपभ्रंश में रूपान्तर सिद्ध करता है कि उपलब्ध रासो की भाषा तथा अपभ्रंश में बहुत ही थोड़ा अन्तर है यहाँ तक कि उनकी कई पंक्तियाँ सर्वथा समान हैं:—

बीकानेरी संस्करण	अपभ्रंश रूपान्तर
छन्द पद्धडी	पद्धटिआ
कलि अछ पथ कनउज्ज राउ।	कलिहि अच्छ पह कणउज्ज राउ।
सत सील रत धर धर्म्म चाउ॥	सत सील रत धरि धम्मि चाउ॥
वर अछ भूमि हय गय अनग्ग।	वरि अच्छ भूमि हय गय अणग्ग।
परठव्या पंग राजसू जग्ग॥	पठविअ पंग राज सुअ-जग्ग॥
सुछिय पुरान बलि वंस वीर।	सोहिवि पुराण बलि वंस वीरु।
भुवगोलु लिखित दिख्ये सहीर॥	भूगोलि लिखिअ देक्खिअ सुहीरु॥
छिति छत्रबंध राजन समान।	खिइ छत्तबंध राया समाण।
जित्तिया सयल हयबल प्रधान॥	जित्तउ सयल हयबलप्पहाण॥
पुछ्यौ समंत परधान तव्व।	पुच्छियउ सुमंत पहाण तव्व।
हम करहि जग्गुजिहि लहहि कव्व॥	करहुं जग्ग जिह लब्भइ कव्व॥
उत्तरु त दीय मंत्री सुजांन।	उत्तरु त दिण्ण मंतिअ सुजाणु।
कलजुग्ग नहीं अरजुन समांनु॥	कलिजुगइं णाहि अज्जुण समाणु॥

१. बृहत कथा कोष, हरिषेणाचार्य, सम्पादक डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, संख्या १७, सन् १९४३ ई०, रिव्यू, पृ० १३;

करि धर्म देव देवर अनेक ।	करि धम्म देअ देउल अणेअ ।
षोड़सा दान दिन देहु देव ॥	सोलसा दाण दिणि देहु देअ ॥
मो सीख मानि प्रभु पंग जीव ।	महु सिक्ख मणिण पहु पंग जीव ।
कलि अथि नहीं राजा सुग्रीव ॥	कलिहि अत्थि णाहि राआ सुगीव ॥
हंकि पंग राइ मंत्रिय समान ।	हक्कि पंग-राय मंति समाणु ।
लहु लोभ अब्ब बुल्यो नियांन ॥	लहु लोहेण तु बोल्लिउ णिआणु ॥
गाथा	गाहा
के के न गए महि महु	के के ण गय महि-मज्झि
ढिल्ली ढिल्लाय दीह होहाय ।	ढिल्ली ढिल्लाविउ दीह होहाहु ।
विहरंतु जासु कित्ती	विहरइ जाहं तु कित्ति
तं गया नहि गया हुंति ॥	ते गया वि णाहि गया हवन्ति ॥
पद्धडी	पद्धटिआ
पहु पंग राइ राजसू जग्ग ।	पहु पंग राय राजसुअ जग्ग ।
आरंभ अंग कीनौ सुरग्ग ॥	आरंभ अंग कीयउ सरग्ग ॥
जित्तिआ राइ सब सिंघवार ।	जित्तिअ राय सव्व सिंघवारि ।
मेलिया कंठ जिमि मुत्तिहार ॥	मेलिय कंठि जिमि मुत्तिअहारि ॥
जुग्गिनिपुरेस सुनि भयौ खेद ।	जोइणिपुरेस सुणिअ हुअ खेअ ।
आवइ न माल मझ हिअ भेद ॥	आवइण माल मज्झि हिअ भेअ ॥
मुक्कले दूत तब तिह समत्थ ।	मोकल्लिअ दूअ तहिं समत्थ ।
उतरे आवि दरबार तत्थ ॥	उत्तरिअ तारा यवारि तत्थ ॥
बुल्यौ न वयन प्रिथीराज ताहि ।	बोल्लिउ ण ता वयण पुहविराइ ।
सकल्यौ सिंघ गुरजन निव्याहि ॥	संकेल्लियउ गुरुयणेण वाइ ॥
उच्चरिय गरुव गोविन्दराज ।	उच्चरिअ गुरुअ गोविन्दरज्ज ।
कलि मध्य जग्ग को करै आज ॥	कलि मज्झि जग्ग को करइ अज्ज ॥
सतिजुग्ग कहहि बलिराज कीन ।	सत्तजुगि कहइ बलिराय कीय ।
तिहि कित्ति काज त्रियलोकदीन ॥	तेण कित्ति काज तिलोअ दीय ॥
त्रेता तु किन्ह रघुनंद राइ ।	तेअइ तु कीय रघुणंद राइ ।
कुब्बेर कोपि बरख्यो सुभाइ ॥	कुबेर कोइ वरसियउ सभाइ ॥
धन धर्म्मपूत द्वापर सुनाइ ।	धणि धम्मपुत्त दावरि सुणाइ ।
तिहि पछ बीर अरु अरि सहाई ॥	तहि पक्खि वीर अरु अरिसहाइ ॥
कलि मझि जग्गु को करण जोग ।	कलिमज्झि जग्गको करण जोअ ।
बिग्गरै बहु विधि हसै लोग ॥	बिगरहिं बहु विहि हसइ लोअ ॥

दलदव्व गव्व तुम अप्रमांन । दल-दव्व-गव्वेण अप्पमाणु ।
बोलहुत बोल देवनि समान ॥ बोल्लहु तु बोल्लु देवहं समाणु ॥
तुम्ह जानु नहीं नत्रिय हैव कोइ । तुम्ह जाणहु णणि खत्तिअ कोइ ।
निव्वीर पुहमि कवहुं न होइ ॥ णिव्वीर पुहवि कइआ ण होइ ॥
हम जंगलहं वास कालिंदिकूल । जंगलह वासि कालिन्दि-कूल ।
जांनहि न राज जैचन्द मूल ॥ जाणइ ण रज्ज जयचंद-मूल ॥
जांनहि तु एक जुग्गिनि पुरेस । जाणइ तु इक्कु जोइणि-पुरेसु ।
सुरइंदु वंस पृथ्वी नरेस ॥ सुरिंदवंसहिं पुहवि-णरेसु ॥
तिहु वार साहि बंधिया जेण । तिण्णि वार साहि बंधिअ जेण ।
भंजिया भूप भडि भीमसेण ॥ भंजिअउ भूव भड भीमसेण ॥
संभरि सुदेस सोमेस पुत्त । सयंभरि-देस सोमेस-पुत्तु ।
दानवतिरूप अवतार धुत्त ॥ दाणवतिरूव ओअरिअ धुत्तु ॥
तिहि कंध सीस किमि जग्य होइ । तहि खंधि सीसु किमि जग्गु होइ ॥
पृथिमि नहीय चहुआन कोइ ॥ पुहविहेण किमु चहुआण कोइ ॥
दिक्खयहिं सव्व तिहिं संघरूप । दिक्खहिं सव्व तं सिंघ-रूव ।
मांनहि न जग्गि मनि आन भूप ॥ मण्णहि ण जगि मणि अण्ण भूव ॥
आदरह मंद उठि गो वसिट्ठ । आदरहु मंद उठि गउ विसिट्ठु ।
गामिनीं सभा बुधि जनउ विट्ठ ॥ गामीणसभहे बुहजणु विट्ठ ॥
फिर चलिग सव्व कणवज्ज मंझ । फिर चलिअ सव्व कणउज्ज-मज्झि ॥
भए मलिन कमल जिमि सकलि संझ । हुअ मलिणकमल जिम सयलसंज्झि॥[१]

परन्तु इन विद्वानों का यह निष्कर्ष कि रासो के उपलब्ध विविध संस्करणों की भाषा पश्चिमी हिंदी नहीं जैसा श्री बीम्स, डॉ० ग्रियर्सन प्रभृति विद्वत् वर्ग का कथन है वरन् प्राचीन राजस्थानी है[२], वांछित प्रमाणों के अभाव में निराधार ही ठहरता है। रासो के बृहत्तम संस्करण को छोड़कर उसके अन्य संस्करण अभी देखने में नहीं आये परन्तु इन अन्य संस्करणों पर प्रकाश डालने वाले पंडितों ने यह स्वीकार किया है कि उनकी सम्पूर्ण सामग्री सभा वाले संस्करण में उपस्थित है। इस परिस्थिति में उपस्थित 'पृथ्वीराज-रासो' की भाषा-परीक्षा उसे पश्चिमी हिंदी के समकक्ष रखती

---

१. दि ओरिजनल पृथ्वीराजरासो ऐन अपभ्रंश वर्क, राजस्थान भारती, भाग १, अंक १, अप्रैल सन् १९४६ ई०, पृ० ९३-१०३;

२. वही, पृ० ९३;

है न कि राजस्थानी के। यहाँ पर जहाँ यह कहा गया कि रासो राजस्थानी या डिंगल भाषा की कृति नहीं वहाँ पर वह पश्चिमी हिंदी या व्रज-भाषा में सूर, सेनापति, रसखान, आदि की कृतियों के समान भी नहीं वरन् वह ऐसी व्रज-भाषा की कृति है जिसपर प्रादेशिक डिंगल की स्वाभाविक छाप है, इसीलिये राजस्थान में उसे पिंगल-रचना कहे जाने की प्राचीन अनुश्रुति है। पं नरोत्तम स्वामी ने रासो को पिंगल-रचना कहते हुए उपर्युक्त लेखक द्वय से रासो का व्याकरण निर्माण कर इस भ्रम का निराकरण करने का आग्रह किया था।[1] जिसके उत्तर में उन्होंने लिखा—"रासो के लघु रूपान्तरों की भाषा अधिकाधिक अपभ्रंश के निकट पहुँचने लगी। कई स्थल तो ऐसे हैं कि सामान्य परिवर्तन करते ही भाषा अपभ्रंश में परिवर्तित हो जाती है, कान्तिसागर जी ने जो प्रति ढूँढ़ निकाली है उसकी भाषा मुनि जी के मतानुसार अपभ्रंश है।....हम तो वास्तव में इस डिंगल और पिंगल के झगड़े को व्यर्थ समझते हैं। परवर्ती रूपान्तरों में भाषा एक नहीं खिचड़ी है जैसा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने (बृहद् रूपान्तर के लिये) लिखा है, 'इसकी भाषा बिलकुल बेठिकाने है। उसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नहीं। कहीं कहीं तो भाषा आधुनिक साँचे में ढली दिखाई पड़ती है। क्रियायें नये रूपों में मिलती हैं पर साथ ही कहीं भाषा अपने असली प्राचीन साहित्यिक रूप में पाई जाती है जिसमें प्राकृत और अपभ्रंश शब्दों के साथ साथ शब्दों के रूप और विभक्तियों के चिन्ह पुराने ढंग के हैं।' डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने भी इस विषय में अपनी कोई निश्चयात्मक सम्मति नहीं दी है।....वास्तविक वस्तु तो मूल ग्रंथ है और उसके विषय में सभी अधिकारी विद्वान् इस परिणाम पर पहुँचने लगे हैं कि इसकी भाषा अपभ्रंश है।....मरु, टक्क और भादानक ये तीनों मरुदेश के अंतर्गत या सर्वथा पार्श्ववर्ती थे जहाँ की मूल भाषा अपभ्रंश थी। इन प्रदेशों की देशी भाषा में रचित राजस्थान के सम्राट और सामन्तों की गौरवमयी गाथा को हम चाहे अपभ्रंश की कृति मानें चाहे प्राचीन राजस्थान की देश्य भाषा की, इसमें वास्तविक भेद ही क्या है।"[2]

---

१. पृथ्वीराज रासो की भाषा, राजस्थान भारती, भाग १, अंक २-३, जुलाई-अक्टूबर सन् १९४६ ई०, पृ० ५१-३;

२. पृथ्वीराज रासो की भाषा, राजस्थान भारती, भाग १, अंक ४, जनवरी सन् १९४७ ई०, पृ० ४९-५१ ;

मुनि कान्तिसागर की अपभ्रंश वाली रासो-प्रति उनके अतिरिक्त और किसी ने नहीं देखी तथा ऐसी कोई प्रति उनके पास है भी यह तक सन्देहास्पद है। अस्तु उसे यहाँ विचारार्थ प्रस्तुत करना असंगत ही है। मुनिराज जिनविजय जी द्वारा शोधित 'पुरातन प्रबंध संग्रह' के 'पृथ्वीराज प्रबंध' और 'जयचंद प्रबंध' से उल्लिखित छप्पय छन्दों की भाषा निश्चय ही अपभ्रंश है और वे कथा विशेष से पूर्वापर सम्बन्ध की स्पष्ट घोषणा करते हुए मूल प्रबन्ध काव्य से उद्धरण के साक्षी हैं। इन छन्दों मात्र के आधार पर डिंगल और ब्रज-भाषा में विकसित होने वाले क्रमशः गुर्जरी और शौरसेनी अपभ्रंश का निर्णय करने लगना साहस मात्र ही कहा जायगा। यों सभा वाले प्रकाशित रासो के अधिकांश गाहा या गाथा छन्द प्राकृताभास अपभ्रंश अथवा अपभ्रंशाभास देश्य भाषा में हैं।
कुछ छन्द देखिये :

पय सक्करी सुभत्तौ। एकत्तौ कनक राय भोयंसी॥
कर कंसी गुज्जरीय। रब्बरियं नैव जीवंति॥ ४३,
सत्त खनै आवासं। महिलानं मद्द सद्द नूपुरया॥
सतफल बज्जुन पयसा। पब्बरियं नैव चालंति॥ ४४,
रब्बरियं रस मंदं। क्यूं पुज्जति साध अमियेन॥
उकति जुकत्तिय ग्रंथं। नत्थि कत्थ कवि कत्थिय तेन॥ ४५,
याते बसंत मासे। कोकिल झंकार अंब बन करियं॥
बर बब्बूर बिरष्षं। कपोतयं नैव कलयंति॥ ४६,
सहसं किरन सुभाउ। उगि आदित्य गमय अंधरं॥
अय्यं उमा न सारो। भोडलयं नैव झलकंति॥ ४७,
कज्जल महि कस्तूरी। रानो रेहंत नयन शृंगारं॥
कां मसि घसि कुंभारी। किं नयने नैव अंजंति॥ ४८,
ईस सीस असमानं। सुर सुरी सलिल तिष्ट नित्यानं॥
पुनि गलती पूजारा। गडुवा नैव ढालंति॥ ४६, स० १;
तप तंदिल में रहियं। अंग तपताइ उप्परं होइ॥
जानिज्जै कसु लालं। घटनो अंग एकयौ सरिसौ॥ ३७६,
मुच्छी उच्चस बंकी। बाल चंद सुभ्भियं नभ्भं॥
गज गुर घन नीसानं। रीसानं पंग षल याई॥४११, स० २५;
सम विस हर विस गत्तं। अप्पं होइ विनय बसि वाले॥
षट नवरस दुअ सद्धं। गारुड़ विना मंत्र साझरियं॥१०४, स० ४६;

पिय नेहं विलवंती । अबली अलि गुज नेन दिट्ठाया ।।
परसान सद्द हीनं । भिन्नं कि माधुरी माध ।। ११६५, स० ६१;
(और कुछ गाथा छन्द पिंगल में भी हैं) परन्तु इनकी भाषा मात्र के आधार पर रासो की भाषा का फैसला करना अनुचित है । जैसे कोई 'रामचरितमानस' के श्लोकों की परीक्षा करके यह कह दे कि मानस की भाषा संस्कृत है वैसा ही निराधार वर्तमान रासो के गाथा छन्दों की भाषा पर आधारित निर्णय भी होगा । इस प्रसंग में इतना और ध्यान में रखना होगा कि प्रबंध की दृष्टि से रासो के गाथा छन्द महत्व नहीं रखते क्योंकि उन सबको हटा देने से कथा के क्रम में अस्तव्यस्तता नहीं होती । परन्तु यही बात उसके दूहा और कवित्त नामधारी छप्पय छन्दों के बारे में नहीं कही जा सकती; इन छन्दों से ही उसका प्रबन्धत्व है परन्तु इनकी भाषा अपभ्रंश नहीं वरन् पिंगल है ।

मूल रासो की अपभ्रंश कृति कभी सामने आने पर उस अपभ्रंश के प्रकार पर विचार करना अधिक समीचीन होगा । पृथ्वीराज के काल में अर्थात् बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संस्कृत और प्राकृत की भाँति अपभ्रंश भी क्लासिकल (सम्पुष्ट) हो गई थी[1] तथा उसमें और ग्राम्य (या देश्य) भाषा में भेद हो गया था[2] अस्तु उक्त काल में वह बोलचाल की भाषा न थी । काशी और कन्नौज के गाहड़वालों की भाँति अजमेर के चौहान शासक बाहर से नहीं आये थे वरन् उक्त प्रदेश के पुराने निवासी थे इसीसे वे साधारण जनता की भाषा की उपेक्षा नहीं करते थे, उनके यहाँ जिस प्रकार संस्कृत-रचनायें समादृत थीं, उसी प्रकार अपभ्रंश और देश्य भाषाओं की कृतियों को भी प्रोत्साहन मिलता था ।[3]

यदि डिंगल और पिंगल का भेद विद्वत् जन न करें, जो राजस्थान की बारहवीं शताब्दी से बाद की रचनाओं के उपयुक्त विभाजन के लिए बहुत समुचित ढंग से किया गया है, तब ना० प्र० स० द्वारा प्रकाशित रासो की भाषा को उत्तर कालीन अपभ्रंश की मूल रचना का कुछ विकृत

---

१. डॉ० गणेश वासुदेव तगारे, हिस्टारिकल ग्रैमर आव अपभ्रंश, भूमिका, पृ० ४;

२. आचार्य हेमचन्द्र, काव्यानुशासनम् ८-६ ;

३. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य का आदि काल, पृ० २५-३३;

रूप कहना पड़ेगा जिसमें 'बेठिकाने की भाषा' होते हुए भी उसका अधिकांश ब्रज-भाषा व्याकरण पर आश्रित है और जिस पर युगीन प्रादेशिक राजस्थानी का प्रभाव अन्य भाषागत विशेषताओं की अपेक्षा अधिक है। रासो के आदि 'समय' में लिखा है—'जो पढय तत्त रासो सु गुर, कुमति मति नहिं दरसाइय'[१] अर्थात् जो श्रेष्ठ गुरु से रासो पढ़ता है वह दुर्मति का प्रदर्शन नहीं करता। इस युग में रासो-वांछित सद्गुरु वही है जो प्राचीन व्रज, डिंगल और गुजराती भाषायें तथा उनके साहित्य, संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषायें तथा उनके साहित्य, तुलनात्मक भाषा-विज्ञान, राजस्थान की प्रादेशिक परम्परायें, इतिहास, काव्य-शास्त्र, प्राचीन कथा-सूत्र, काव्य-रूढ़ियाँ, महाभारत, पुराण और नीति-ग्रन्थों से कम से कम भलीभाँति परिचित है। वही राजस्थान के इस गौरवपूर्ण काव्य को समझने तथा प्रक्षेपों को दूर करने का वास्तविक अधिकारी है। आज हमें ऐसी प्रतिभा वाले अनेक सद्गुरुओं की नितान्त आवश्यकता है जो इस महाकाव्य का उद्धार करें।

रासो-काव्य-परम्परा

अपभ्रंश, गुजराती और राजस्थानी भाषाओं के अनेक रास, रासा और रासो काव्य-ग्रन्थ साक्षात् और सूचना रूप में प्रकाश में आ चुके हैं जो 'पृथ्वीराज-रासो' से पूर्व और पश्चात् की रासो-काव्य की अक्षुण्ण परम्परा के प्रतीक हैं।

श्रीमद्भागवत् में 'रासोत्सव: सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डित:'[२] के 'रास' शब्द का प्रयोग गीत-नृत्य के लिये हुआ है जिसका वर्णन इस प्रकार है—'जिनके मुख पर पसीने की बूँदें झलक रही हैं और जिन्होंने अपने केश तथा कटि के बन्धन कस कर बाँध रखे हैं वे कृष्ण-प्रिया गोपियाँ भगवान् कृष्ण का यशोगान करती हुई विचित्र पद-विन्यास, बाहु-विक्षेप, मधुर मुसकानयुक्त भ्रकुटि-विलास, कमर की लोच, चंचल अंचल और कपोलों के पास हिलते हुए कुंडलों के कारण मेघमंडल में चमकती हुई चपला के समान सुशोभित

---

१. छं० ८८, स० १;

२. स्कंध १०, अध्याय ३३, श्लोक ३;

हुई'[1] । 'रास' में ध्रुपद आदि अनेक रागों का प्रयोग भी किया जाता था ।[2] बारहवी-तेरहवीं शताब्दी के जिनदत्त सूरि विरचित अपभ्रंश नीति-काव्य 'चर्चरी' में लिखा है—'जहाँ रात्रि में रथ भ्रमण नहीं किया जाता, जहाँ लगुडरास करने वाले पुरुषों का निषेध है, जहाँ जल-क्रीड़ा में आन्दोलन होता है मूर्तियों का नहीं वहाँ (व्याकरण) महाभाष्य (पतंजलि) के आठ आह्निकों का अध्ययन करनेवाले के लिये माघ-मास में माला धारण करने का निषेध नहीं है'[3] तथा उनके 'उपदेशरसायनरास' में आया है—'जो सिद्धान्त के अनुसार कार्य करते हैं उन्हें स्तुति और स्तोत्र पाठ उचित रूप से देवताओं के अनुसार करना चाहिये । तालारासक भी रात्रि में नहीं करते और दिन में भी पुरुषों के साथ लगुडरास नहीं किया जाता'[4] । अस्तु लगुडरास और तालारास की विधि और निषेध की सूचना के साथ बारहवीं शताब्दी में उनका प्रचलन भी सिद्ध होता है । कृष्ण की रासलीलायें दिखाने वाली रास-मंडलियाँ आज भी उत्तर भारत में अतीत नहीं हैं । गेय-नाट्यों के आविष्कर्ता कोहल, शारदातनय,[5] आचार्य

---

१. पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै—
   र्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ।
   स्विद्यन्मुख्यः कबररसना ग्रन्थयः कृष्णवध्वो
   गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघ चक्रे विरेजुः ॥ १०-३३-८ ;

२. तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात् ॥ १०-३३-१०; श्रीमद्भागवत्;

३. जहिं रयणिहि रहभमणु कयाइ न कारियइ
   लउडारसु जहिं पुरिसु वि दिंतउ वारियइ ।
   जहिं जल कीडंदोलण हुंति न देवयह
   माहमाल न निसिद्धी कयट्ठाहियह ॥ १६;

४. उचिय थुत्ति-थुयपाढ पढिज्जहिं, जे सिद्धंतिहिं सहु संधिज्जहिं ।
   तालारासु वि दिति न रयणिहिं,दिवसि वि लउडारसु सहुं पुरिसिहिं ।३६।;

५. तोटकं नाटिका गोष्ठी संल्लाप शिल्पकस्तथा
   डोम्बी श्रीगदितं भाणो भाणी प्रस्थानमेव च ।
   काव्यं च प्रेक्षणं नाट्यरासकं रासकं तथा
   उल्लोप्यकञ्च हल्लीसमथ दुर्मल्लिकाऽपि च
   काव्यवल्ली मल्लिका च पारिजातकमित्यपि
   एतानामान्तरैः कैश्चिदाचार्यैं कथितामपि ॥
   भावप्रकाशनम्, पृ० २५५ ;

हेमचन्द्र[१], वाग्भट (द्वितीय)[२] और कविराज विश्वनाथ[३] ने नाट्य का विवेचन करते हुए उपरूपकों के अन्तर्गत 'रासक' नामक गेय-नाट्य का भी उल्लेख किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी[४] का अनुमान कि इन गेय-नाट्यों का गीत भाग कालान्तर में क्रमशः स्वतंत्र श्रव्य अथवा पाठ्य काव्य हो गया और इनके चरित नायकों के अनुसार इनमें युद्ध-वर्णन का समावेश हुआ, वास्तविकता के समीप है।

रास-काव्यों का प्रेम-काव्य और रासो-काव्यों का वीर-काव्य की श्रेणी में विभाजन कुछ संगत नहीं प्रतीत होता क्योंकि इस नियम की विपरीतता भी देखी जाती है, जैसे 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' रास होते हुए भी वीर-काव्य है और 'उपदेशरसायनरास' नीति-काव्य है तथा 'वीसलदेव रासो' रासो होकर भी प्रेम-काव्य है।

प्राकृत और अपभ्रंश के छन्द-ग्रन्थों में 'रासा' नामक छन्द का उल्लेख भी पाया जाता है। सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डॉ० हरमन याकोबी ने लिखा है कि 'रासा' नागर अपभ्रंश का प्रधान छन्द है।[५] नवीं-दसवीं शती के विरहाङ्क ने अपने 'वृत्त जाति समुच्चयः' नामक छन्द निरूपक ग्रन्थ में लिखा है कि वह रचना जिसमें अनेक दोहा, मात्रा, रड्डा और ढोस छन्द पाये जाते हैं, उसे 'रासा' कहा जाता है।[६] दसवीं शताब्दी के स्वयम्भु देव ने अपने 'श्री स्वयम्भूः छन्दः' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि घत्ता, छड्डणिया, पद्धडिया तथा अन्य रूपकों के कारण 'रासाबन्ध' जनमन

---

१. गेयं डोम्बिकाभाणप्रस्थानशिंगकभाणिकाप्रेरणरामाक्रीडहल्लीसक-
   रासकगोष्ठीश्रीगदितरागकाव्यादि। ८-४, काव्यानुशासनम्;
२. काव्यानुशासनम्;
३. नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्।
   प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यनि प्रेङ्खणं रासकं तथा॥ ४
   संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका।
   दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च॥ ५, परि० ६, साहित्य दर्पण;
४. हिंदी साहित्य का आदिकाल, पृ० ५६-६१;
५. भूमिका पृ० ७१, भविसयत्तकहा, धरवाल, (जर्मन संस्करण);
६. अडिलाह दुवह एहि व मत्ता रड्डहि तहअ ढोसाहि।
   बहुएहिं जो रइज्जइ सो भण्णइ रासओ णाम॥ ४-३८;

अभिराम होता है।[१] इसके उपरान्त उन्होंने 'रासा' छन्द के नियम दिये हैं कि इसमें इक्कीस मात्रायें, अन्त में तीन लघु और चौदह मात्राओं के बाद यति होती है।[२] आचार्य हेमचंद्र के 'छन्दोनुशासनम्'[३] तथा अज्ञात रचना 'कविदर्पणम्'[४] के 'रासावलय' नामक छन्द तथा रत्नशेखर सूरि के 'छन्दः कोशः'[५] के 'आहाणउ' (आभाणक) छंद के नियम 'रासा' से मिलते हैं जिससे ये एक छन्द के ही भिन्न नाम प्रतीत होते हैं। अद्दहमाण के 'संदेश-रासक' छंद २६ की व्याख्या में 'अहाणउ' का दूसरा नाम 'रासउ' भी मिलता है।[६] इस विषय में जर्मन विद्वान् डॉ० आल्सडोर्फ भी इसी निर्णय पर पहुँचे हैं।[७] भानु जी ने बाइस मात्राओं वाले 'महारौद्र' समूह के जिस 'रास' छंद का उल्लेख किया है वह 'रासा' से भिन्न है।[८]

'पृथ्वीराज-रासो' में 'रासा' छंद पाँच स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है।[९]

---

१. घत्ता छड्डणिआहिं पद्धडिआ (हिं) सुअण्णरूएहिं।
रासाबंधो कव्वे जणमण अहिरामओ होइ ॥८-४६;

२. एक्कवीस मत्ता णिहणउ उद्दामगिरु
चउदसाइ विस्साम हो भगण विरइ थिरु
रासाबंधु समिद्धु एउ अहिरामअरु
लहुअतिअतिअवसाणविरइअमहुर अरु ॥ ८-५० ;

३. षोऽजचः षपौ रासावलयम्। ५-२६ तथा उदाहरण छन्द ३४;

४. रासावलयं यो अजटगणः परतश्च वस्तुवदने तु।
पगणो अजटो मञ्भकटगणो अजटश्च पगणश्च ॥ V, २५; ए० बी० ओ० आर० आई०, जिल्द १६, भाग १-२, पृ० ८८ ;

५. मत्त हुवइ चउरासी चउपइ चारिकल
तेसठि जोणि निबंधी जाणहु चहुयदल।
पंचक्कलु वज्जिज्जहु गणु सुद्धुवि गणहु
सोवि अहाणउ छंदु जि महियलि बुह मुणहु ॥ १७;

६. मत्त होहि चउरासी चहु पय चारि कल
ते सठि जोणि निबद्धी जाणहु चहुअ दल।
पंचक्कलु वज्जिज्जहु गणु सुद्धि वि गणहु
सोवि आहाणउ छंदु के वि रासउ मुणहु ॥ ;

७. अपभ्रंश स्टडियन, (जर्मन), पृ० ४६;

८. छंदः प्रभाकर, पृ० ५९ ;

९. स० ५०, छं० २२; स० ५७, छं० १७६; स० ६१, छं० १६२२-२४;

'रासा' छन्द और 'रासो' काव्य भले ही सीधे सम्बन्धित न हों परन्तु विरहाङ्क और स्वयम्भु के 'रासाबंध' अवश्य ही उससे छन्दों के अनुशासन के कारण अधिक सम्पर्क में हैं। यद्यपि ये दोनों विद्वान् 'रासाबंध' के छन्दों के विषय में मतैक्य नहीं रखते फिर भी इतना तो कहा जा ही सकता है कि एक समय रासा या रासो काव्यों में अनेक विशिष्ट छन्दों का व्यवहार इष्ट होकर शास्त्रोक्त हो गया था। और छन्दों की विविधता, केदारा राग में गाये जाने वाले, आदि से अन्त तक एक छन्द में प्रणीत गीत-काव्य 'वीसलदेव रासो' तथा दो चार और को छोड़कर शेष सभी रासो-ग्रंथों में मिलती है।

चारणों, भाटों तथा जैन कवियों द्वारा रास और रासो नाम से विविध विषय और रस वाले अनेक काव्य लिखे गये जिनका अध्ययन 'पृथ्वीराज-रासो' के परिदृश्य को समझने में सहायक होगा।

अपभ्रंश में बारहवीं शती के अनेक रास-काव्य मिलते हैं। दुःखान्त प्रबन्ध काव्य 'मुंजरास' के फुटकर छन्द (जिनके प्रकार और संख्या अज्ञात हैं) 'सिद्धहेमशब्दानुशासनम्' तथा 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' (मेरुतुङ्ग) में मिलते हैं, जो मालवा के राजा मुंज और कर्नाटक के राजा तैलप की बहिन मृणालवती की कथा से सम्बद्ध हैं। कवि अद्दहमाण (अब्दुल रहमान) के सं० १२०७ वि० के सुखान्त प्रबन्ध काव्य 'सन्देश रासक' में २२ प्रकार के २२३ छन्द हैं तथा एक प्रोषितपतिका का विरह-वर्णन इसका विषय है। शालिभद्र सूरि का सं० १२४१ वि० का 'भरत बाहुबलि रास'[१] वीर रसात्मक ग्रन्थ है, जिसके २०३ छन्दों में भगवान् ऋषभदेव के दो पुत्रों भरतेश्वर और बाहुबलि का राज्य के लिये संघर्ष वर्णित है तथा ६३ छन्दों वाला शान्त रस विधायक उनका दूसरा ग्रन्थ 'बुद्धि रास'[२] है। तेरहवीं शताब्दी के कवि आसगु कृत 'जीव दयारास'[३] तथा ३५ छन्दों वाला 'चंदन-बालारास'[४] हैं। जिनदत्तसूरि के 'उपदेशरसायनरास'[५] में एक ही प्रकार के छन्द में शान्त रस की ८० चतुष्पदियाँ हैं, जिनमें जैन धर्माचार का

---

१. भारतीय विद्या, बंबई;

२. वही;

३. वही;

४. राजस्थान भारती, भाग ३, अंक ३-४, जुलाई १९५३ ई०, पृ० १०६-१२;

५. अपभ्रंश काव्यत्रयी, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज़, संख्या ३२;

वर्णन किया गया है। सं० १३०० वि० का कवि देल्हण कृत 'गयसुकुमाल-रास'[1] है जिसमें भगवान् कृष्ण के लघु सहोदर भ्राता गज सुकुमाल मुनि का चरित्र ३४ छन्दों में वर्णित है। जीवंधर का 'मुक्तावलिरासा'[2] भी इनके साथ विवेचनीय है।

गुजराती में 'गिरनार रास,' 'जंबू रास' और 'आबू रास' का उल्लेख श्री चिम्मनलाल दलाल[3] ने किया है, जिनके साथ यशोविजय कृत 'द्रव्यगुणपर्ययरासा'[4] तथा सं० १७३७ वि० रचित ज्ञानविमल सूरि कृत 'जंबू कुमार रास'[5] भी गणनीय हैं।

बारहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी के बीच में रचे गये 'जम्बू स्वामी रास'' 'रेवंतगिरि रास', 'कछूली रास', गोतम रास', 'दशार्णभद्र रास', 'वस्तुपाल तेजपाल रास', 'श्रेणिक रास', 'पेथड़ रास' और 'समरसिंह रास' भी विचारणीय हैं। सत्रहवीं शताब्दी और उसके बाद रचित डिंगल के अनेक रासो-काव्यों को प्रकाश में लाने का श्रेय पं० मोतीलाल मेनारिया, श्री अगरचंद नाहटा, पं० नरोत्तम स्वामी और डॉ० दशरथ शर्मा को है। गुर्जरेश्वर कुमारपाल चालुक्य के युद्ध आदि का वर्णन करने वाला जैन ऋषभदास रचित 'कुमारपाल राजर्षि रास या कुमारपाल रास'[6] सं० १६१७ वि० की कृति है। दधवाड़िया चारण माधौदास का राम की कथा वर्णन करने वाला 'रामरासौ'[7] सं० १६३०-६० वि० के बीच की रचना है। डूँगर सी के 'शत्रुसाल (छत्रसाल) रासो'[8] को मेनारिया जी सं० १७१० वि० के आस-पास रखते हैं। गिरधर चारण के 'सगतसिंह रासो'[9] का काल

---

१. राजस्थान भारती, भाग ३, अंक २, जुलाई १९५१ ई० ; पृ० ८७-९१ ;
२. जैन सिद्धान्त भास्कर, वर्ष ११, अंक १ ;
३. प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह ;
४. जैन साहित्य और इतिहास, पं० नाथूराम प्रेमी, पृ० १६६ ;
५. टॉड-संग्रह, जर्नल आव दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (ग्रेट ब्रिटेन), भाग २, अप्रैल १९४० ई०;
६. वही, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या ३१;
७. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पं० मोतीलाल मेनरिया, पृ० १४३ ;
८. वही, पृ० १५८ ;
९. वही, पृ० १६० ;

सं० १७२० वि० के लगभग निश्चित किया गया है। मेवाड़ के नरेशों का वर्णन करने वाला जैन दौलत विजय (दलपति विजय) कृत 'खुमान रासो'[1] मेनारिया जी के अनुसार सं० १७६७-६० वि० की रचना है। सं० १६६१ वि० का सुमतिहंस विरचित प्रेमाख्यानक काव्य 'विनोद रस'[2] और एक जैन कथा वर्णन करने वाला उन्नीसवीं शताब्दी का 'श्रीपाल रास' भी उल्लेखनीय हैं। डिंगल में गंभीर रासो-काव्यों के अतिरिक्त व्यंग्य भावात्मक रासो-काव्य भी रचे गये, जिनका श्रेय जैन कवियों को है। कवि काह्न (कीर्ति सुन्दर) का 'माकड़ रासो'[3] (खटमल रास) ऐसी ही रचनाओं में से एक है। श्री अगरचंद नाहटा ने ऐसी ही हास्यात्मक रचनाओं में 'ऊंदर रासो', 'खीचड़ रासो', और 'गोधा रासो' की भी चर्चा की है।[4]

पिंगल (राजस्थानी ब्रजभाषा) में भी अनेक रासो-काव्य रचे गये हैं। प्रबल जनश्रुति पर आधारित तथा 'प्राकृत पैङ्गलम्' द्वारा पुष्ट शार्ङ्गधर रचित रणथम्भौर के हुतात्मा शासक हम्मीर देव चौहान का कीर्ति-गायक 'हम्मीर रासो'; महोबा के अधिपति परमर्दिदेव चंदेल उपनाम परमाल के यश सम्बन्धी अज्ञात कवि की रचना 'परमाल रासो'[5]; करौली राज्य का इतिहास बताने वाला, नल्लसिंह भट्ट रचित 'विजैपाल रासो'[6] जिसका रचनाकाल मिश्रबंधु सं० १३५५ वि०, नाहटा जी १८ वीं या १६ वीं शती और मेनारिया जी सं० १६०० वि० बतलाते हैं; न्यामत खाँ उर्फ जान कवि का पितृवृत्त वर्णन करने वाला, सं० १६६१ वि० में रचित 'कायम रासा' या 'दीवान अलिफ खान रासा'[7]; रतलाम के महाराजा रतनसिंह के युद्धादि का परिचय देने वाला साँदू चारण कुंभकर्ण का सं० १७३२ वि० में रचित 'रतन

---

१. खुँमाण रासौ, ना० प्र० प०, वर्ष ५७, अंक ४, सं० २००६ वि०, पृ० ३५०-५६;
२. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १४४;
३. राजस्थान भारती, भाग ३, अंक ३-४, सन् १६५३ ई०; पृ० ६७-१००;
४. वही, पृ० ६७;
५. नागरी प्रचारिणी ग्रंथ माला २३, सन् १६१६ ई०;
६. मिश्रबंधु-विनोद, प्रथम भाग, तृतीय संस्करण, पृ० १६७; राजस्थान का पिंगल साहित्य, पं० मोतीलाल मेनारिया, पृ० ५३-५५;
७. राजस्थान भारती, भाग १, अङ्क १, १६४६ ई०, पृ० ३६-४६;

रासौ'[१]; मेवाड़ के राणा कर्णसिंह तक के शौर्य-गीत गाने वाला सं० १७३७-५५ वि० रचित सिंढायच दयालदास कृत 'राणा रासो'[२]; सं० १७८५ वि० में जोधराज कृत 'हम्मीर रासो'[३]; गुलाब कवि कृत १९ वीं शती का 'करहिया रौ रायसौ' तथा हुमायूँ के भाई कामराँ को परास्त करने वाले बीकानेर के महाराजा राव जैत सी का प्रशस्ति वाचक, पं० नरोत्तमस्वामी द्वारा प्रकाश में लाया हुआ, अज्ञात कवि रचित 'राउ जैत सी रौ रासौ'[४] सुप्रसिद्ध रचनायें हैं। इनके अतिरिक्त कृष्ण का रास वर्णन करने वाले व्यास कृत 'रास'[५] (लिपिकाल सं० १७२४ वि०) और रसिकराय कृत 'रास विलास'[६] (लिपिकाल सं० १८०० वि०) भी पिंगल की रचनायें हैं तथा सं० १६२५ वि० में कवि जल्ह द्वारा प्रणीत 'बुद्धि रासो'[७] जो रासो होते हुए भी प्रेमाख्यान है, उल्लेखनीय हैं।

यद्यपि इन सारे रास, रासा, रासो, रासौ, रायसा, रायसौ ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन अभी तक प्रकाश में नहीं आया है परन्तु काल, यश और प्रचार की कसौटी पर 'पृथ्वीराज-रासो' को जो मान प्राप्त हुआ वह इन में से किसी के भाग्य में न पड़ा। आरोहावरोहपूर्ण विशिष्ट मानव-जीवन के संघर्ष का चित्रण, वर्ण और अर्थ मूर्तियों द्वारा सृजन कर, यति-गति वाले वांछित छन्दों से अपने पात्रों के आन्तरिक उद्वेलन को शाश्वत रूप से मूर्त करते हुए कवि ने इतिहास और कल्पना के योग से उनके विजय, आल्हाद अवसाद, क्षोभ, चिन्ता, आशा, निराशा आदि के द्वारा श्रोता अथवा पाठक के चित्त को अभिभूत करने का मंत्र सिद्ध किया है। यही कारण है रासो की साहित्यिक जय-दुन्दुभी का। उसकी सुदीर्घ और सुनिश्चित परम्परा अपनी छाप सहित परवर्ती रासो-काव्य में निरन्तर प्रतिबिम्बित देखी जा सकती है।

---

१. राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १६६; राजस्थान भारती, भाग ३, अङ्क ३-४, जुलाई १९५३ ई०;

२. राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० ११५; राजस्थान में हिन्दी के हस्त-लिखित ग्रन्थों की खोज, प्रथम भाग, पृ० ११८;

३. नागरी प्रचारिणी ग्रंथ माला, १३, सन् १९०८ ई०;

४. राजस्थान भारती, भाग २, अङ्क २, सन् १९४९ ई०, पृ० ७०-८५;

५. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, प्रथम भाग, पृ० १२१;,

६. वही पृ० १२१;

७. वही, पृ० ७६-७७; राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० ७०-२;

पुरातन कथा-सूत्र

भारतीय आचार्यों ने ध्वनि, अलंकार, वक्रोक्ति, रस आदि जिसके भी लक्षणों पर प्रकाश डाला है, वे सब काव्य से सम्बन्धित हैं। अज्ञात समीक्षक ने जब अपना सुप्रसिद्ध सूत्र—'गद्यं कवीनां निकषां वदन्ति' अर्थात् 'गद्य को कवि की कसौटी कहते हैं' कहा, तब उसका अभीष्ट साधारण गद्य से नहीं वरन् गद्य-काव्य से था। कवि अपने काव्य का सृजन अपनी अनुभूति को प्रत्यय और साधर्म्य द्वारा अभिव्यक्त करके करता है। कवि के अर्थ-लोक, अनुभूति-लोक अथवा चेतना-लोक का व्यापकत्व ही आदिकवि वाल्मीकि के शब्दों में उसकी क्रान्तदर्शिता की परीक्षा है। कवि की अनुभूति को शरीर प्रदान करने वाला अलङ्कार होता है। अनजाने लोकों का अवगाहन अपनी कल्पना द्वारा करता हुआ कवि अलङ्कार द्वारा उन्हें मूर्त करता है। अस्तु, काव्य कल्पना पर आश्रित है और कल्पना अलङ्कार द्वारा साकार होती है। यही स्थिति 'कथा-काव्यों' में भी है।

कथा का उद्गम निःसन्देह अति प्राचीन है परन्तु संस्कृत के आचार्यों ने जिस 'कथा' के लक्षण दिये हैं वह साधारण कथा नहीं वरन् 'कथा-काव्य' है। छठी ईसवी शताब्दी के भामह ने आख्यायिका और कथा का भेद करते हुए कथा का निरूपण इस प्रकार किया है—'कथा में वक्त्र और अपवक्त्र छन्द नहीं होते, उच्छ्वासों में इसे नहीं विभाजित करते, संस्कृत, असंस्कृत (प्राकृत) और अपभ्रंश में इसे कहा जा सकता है, स्वयं नायक इसमें अपना चरित्र नहीं कहता वरन् किन्हीं दो व्यक्तियों के वार्तालाप-रूप में यह कही जाती है'[1]। परन्तु सातवीं शती के दण्डी ने आख्यायिका और कथा को एक पंक्ति में रखकर उनका भेद यह कहकर मिटाया—'कथा, नायक कहे चाहे दूसरा, अध्याय विभाजित हों अथवा नहीं और उनका नाम उच्छ्वास हो चाहे लम्भ तथा चाहे बीच में वक्त्र और अपवक्त्र छन्द आवें चाहे न आवें, इन सबसे कोई अन्तर नहीं

१—न वक्त्रापरवक्त्राभ्यां युक्ता नोच्छ्वासवत्यपि।
संस्कृताऽसंस्कृता चेष्टा कथाऽपभ्रंशभाक्तथा॥ २८
अन्यैः स्वचरितं तस्यां नायकेन तु नोच्यते।
स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनः॥ १, २६, काव्यालङ्कार;

पड़ सकता। इसमें कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भ आदि होते हैं'[१]। और प्राकृत-अपभ्रंश की कथाओं को सम्भवत: लक्ष्य करके महाकथा या कथा के लक्षण बताने वाले नवीं शताब्दी के रुद्रट ने—'कथा के आरम्भ में देवता और गुरु को नमस्कार, अपना तथा अपने कुल का परिचय देकर कथा का उद्देश्य कथन, प्रारम्भिक कथान्तर द्वारा प्रधान कहानी का आभास और सम्पूर्ण श्रृंगार का सम्यक्-विन्यास करते हुए कन्या-लाभ का अभीष्ट'[२] बतलाया है। बारहवीं शती के आचार्य हेमचन्द्र ने महाकाव्य के लक्षण गिना कर बाण भट्ट के 'हर्षचरित' सदृश केवल संस्कृत गद्य में

१—अपाद: पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा।
इति तस्य प्रभेदौ द्वौ तयोराख्यायिका किल ॥ २३
नायकेनैव वाच्यान्या नायकेनेतरेण वा।
स्वगुणाविष्क्रियादोषो नात्र भूतार्थशंसिन: ॥ २४
अपि त्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात्।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग्वा भेदकारणम् ॥ २५
वक्त्रं चापरवक्त्रं च सोच्छ्वासत्वं च भेदकम्।
चिह्नमाख्यायिकायाश्चेत् प्रसङ्गेन कथास्वपि ॥ २६
आर्यादिवत् प्रवेश: किं न वक्त्रा परवक्त्रयो:।
भेदश्च दृष्टो लम्भादिरुच्छ्वासो वास्तु किं तत: ॥ २७
तत् कथाख्यायिकेत्येका जाति: संज्ञाद्वयाङ्किता।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातय: ॥ २८
कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भोदयादय:।
सर्गबन्धसमा एव नैते वैशेषिका गुणा: ॥१, २९, काव्यादर्श;

२—श्लोकैर्महाकथायामिष्टान् देवान् गुरून्नमस्कृत्य।
संक्षेपण निजं कुलमभिदध्यात्स्वं च कर्तृतया ॥ २०
सानुप्रासेन ततो लघ्वक्षरेण गद्येन।
रचयेत् कथाशरीरं पुरेव पुरवर्णकप्रभृतीन् ॥ २१
आदौ कथान्तरं वा तस्यां न्यस्येत् प्रपञ्चितं सम्यक्।
लघु तावत् संधानं प्रक्रान्तकथावताराय ॥ २२
कन्यालाभफलां वा सम्यग् विन्यस्य सकलश्रृंगारम्।
इति संस्कृतेन कुर्यात् कथामगद्येन चान्येन ॥ १६, २३, काव्यालङ्कार;

लिखी जा सकने वाली 'आख्यायिका'[१] के लक्षण बताये तदुपरान्त 'कथा' के लक्षण बताते हुए लिखा—'वह गद्य या पद्य, संस्कृत, प्राकृत अथवा किसी भी भाषा में लिखी जा सकती है तथा उसका नायक धीर-शान्त होता है'[२]। और चौदहवीं शती के कविराज विश्वनाथ ने सम्भवतः बाणभट्ट के अनुपम तथा अपूर्व संस्कृत-गद्य-कथा-काव्य-ग्रन्थ 'कादम्बरी' के आधार पर यह लक्षण बना डाला—'कथा में सरस वस्तु गद्य के द्वारा ही बनती है। इसमें कहीं-कहीं आर्या छन्द और कहीं वक्त्र तथा अपवक्त्र छन्द होते हैं। प्रारम्भ में पद्यमय नमस्कार और खलादिकों का चरित्र निबद्ध होता है'[३]। इस प्रकार देखते हैं कि संस्कृत-आचार्यों ने आख्यायिका और कथा के बाहरी लक्षणों का निर्देश तो किया परन्तु उनकी 'वस्तु' के विषय में कुछ नहीं कहा। प्रतीत होता है कि इसीसे कालान्तर में संस्कृत के गद्य-लेखकों ने अलंकृत गद्य-काव्य लिखे। संस्कृत कथाकारों के आदर्श बाणभट्ट ने लिखा है—'अपने प्रियतम की शय्या पर प्रीतिपूर्वक आने वाली नवागता वधू की भाँति कथा अपने आकर्षक मधुर आलाप और कोमल विलास (अर्थात् प्रेम-क्रीड़ाओं) के कारण कौतुक-वश हृदय में राग उत्पन्न करती है। दीपक और उपमा अलंकार से युक्त, नवीन पदार्थ द्वारा विरचित, निरन्तर श्लेष के कारण सघन, उज्ज्वल दीपक सदृश उपयोगी कथा, चम्पा की कलियों से गुँथी और बीच-बीच में मल्लिका-पुष्पों से अलङ्कृत माला के समान किसे आकर्षित नहीं करती'[४]।

आठवीं शती के हरिभद्र ने कथा के चार प्रकार—अर्थ-कथा, काम-कथा, धर्म-कथा और संकीर्ण-कथा—बताते हुए प्राकृत भाषा में यत्र-तत्र पद्य-

---

१. नायकाख्यातस्ववृत्ता भाव्यर्थशंसिवक्त्रादिः सोच्छ्वासा संस्कृता गद्ययुक्ताख्यायिका ॥८, ७, काव्यानुशासनम् ;

२. धीरशान्तनायका गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा ॥ ८, ८, वही;

३. कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्। ३३२
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम् ॥६, ३३३, साहित्यदर्पण;

४. स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ॥ ८
हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः।
निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव ॥ १, ६,
पूर्वभागः, कादम्बरी ;

समाविष्ट गद्य में 'समराइच्चकहा' नामक 'धम्मकहा' का प्रणयन किया है।[१] दसवीं शताब्दी के पुष्फदंत विरचित अपभ्रंश-काव्य 'णायकुमार चरिउ' (नागकुमार चरित) में वर्णित है कि रानी विशालनेत्रा ने सपत्नीक-द्वेष-वशीभूत हो नागकुमार की माता के प्रति पर-प्रेम का दोष इङ्गित कर राजा से उसके आभूषण उतरवा लिये थे। नागकुमार ने लौटकर अपनी माता को अलङ्कारों से रहित इस प्रकार देखा जैसे कुकवि की लिखी हुई कथा हो।[२] इस उल्लेख से प्रतीत होता है कि अलङ्कारों का लाया जाना (कल्पनाश्रित) कथा-काव्य में अति आवश्यक था।

संस्कृत-विजय काव्यों, प्राकृत-अपभ्रंश के-चरिउ और-कहा काव्यों तथा राजस्थानी-गुजराती के-रासो या रास-विलास और-रूपक काव्यों पर संस्कृत-काव्यशास्त्र के कथा-काव्य के लक्षणों का प्रभाव संभव है। इन सभी कृतियों में पद और अलङ्कार योजना सरस रस की अभिव्यंजना करती हुई देखी जा सकती है।

चंद वरदायी की 'कित्तीकहा' (कीर्ति-कथा) 'पृथ्वीराज-रासो' भी युद्ध और प्रेम बद्ध कथा-काव्य है जिसकी वस्तु इतिहास और कल्पना के योग से प्रस्तुत की गई है। रासो के ६९ 'प्रस्तावों' में से दस का नाम-कथा भी है; यथा—दिल्ली किल्ली कथा, नाहर राय कथा, मेवाती मुगल कथा, हुसेन कथा, इंच्छिनि व्याह कथा, माधो भाट कथा, होली कथा, दीप-मालिका कथा, धन कथा और वरुण कथा। रामायण, महाभारत, बृहत्कथा, वासवदत्ता, कादम्बरी, लीलावई प्रभृति ग्रन्थों की श्रोता-वक्ता वाली पद्धति रासो में भी वर्तमान है जो परवर्ती कीर्तिलता और रामचरितमानस में भी पाई जाती है।

लगभग आठवीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध प्राकृत-पद्य-कथा-काव्य 'लीला वई' (लीलावती) को उसके रचयिता 'कइ कोऊहल' (कवि कुतूहल) ने एक हेमन्त ऋतु की चन्द्र-ज्योत्स्ना पूर्ण रात्रि में अपने महल में 'ऐसी दिव्य-मानुषी-कथा जो कुछ देशी शब्द मिश्रित प्राकृत भाषा में नवयुवतियों

---

१. समराइच्चकहा, (भूमिया, पृ० २-४), हरिभद्र, सम्पादक डॉ० हरमन जाकोबी;

२. जिणत्थपविरइयणियंसण, तणएं जणणि दिट्ठ णिब्भूसण।
पुच्छिय माइ काइं थिय एही, निरलंकार कुकइ कह जेही॥
३, ११, ११-१२;

को प्रिय हो' अपनी प्रिय पत्नी सावित्री के कहने पर सुनाया था[१]।

'लीलावई' की भाँति 'पृथ्वीराज-रासो' का प्रणयन भी 'एक रात्रि को दिल्लीश्वर (पृथ्वीराज) की कीर्ति आदि से अन्त तक सुनाने की कवि-पत्नी की जिज्ञासा-पूर्ति-हेतु' हुआ है :

समयं इक निस्सि चंद । वाम वत्त वद्दि रस पाई ॥
दिल्ली ईस गुनेयं । कित्ती कहो आदि अंताई ॥ १,७६१ ;

'एक दिन कवि चंद ने अपने भवन में (दिल्ली के सम्राट की) कथा कही। जैसे-जैसे सारंग नेत्री उसे सुनती और समझती जाती थी वैसे ही वैसे और पूछती जाती थी' :

एक दिवस कवि चंद कथ । कही अप्पनें भौन ॥
जिम जिम श्रवनत संभरी । तिम पुछि सारँग नैंन ॥ १,७६२,

फिर प्रियतमा ने प्रिय से पूछा कि दानव, मानव तथा राजा की कीर्ति से क्या लाभ है :

कह्यौ कंत सौं कंति इम । हौं पूछों गुन तोहि ॥
को दानव मानव सु को । को नृप कित्तिक होहि ॥ १,७६३,

(इसके बाद का कुछ प्रसंग छूटता है परन्तु छन्द-संख्या में कोई व्याघात नहीं पड़ता, वह अक्षुण्ण गति से अबाधित बढ़ती है।) चंद ने विविध उदाहरण देकर बताया कि हरि-भक्ति के बिना मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती।[२] उसकी पत्नी ने कहा कि हे समस्त विद्याओं के ज्ञाता, उस विश्व-चितेरे के चित्र बनाओ, चौहान की कीर्ति-स्तवन से क्या लाभ है; ज्ञान-तत्व से रहित यह शरीर पाँच इन्द्रियों के द्वारा पाँच विषयों में बँधकर नाच रहा है; आशा रूपी वेगवती नदी में मनोरथ रूपी जीवों का संचय हो रहा है, तृष्णा रूपी उसकी तरंगें हैं, राग रूपी ग्राह हैं; चौहान की कीर्ति-कथन से क्या होगा, त्रिभंगी (कृष्ण) का स्मरण करो; मूढ़ मन मोह में विस्तृत हो रहा है और आशा रूपिणी नदी चिन्ता-तट रूपी शरीर

---

१. एमेय मुद्ध-जुयई-मणोहरं पाययाए भासाए ।
पविरल-देसि-सुलक्खं कहसु कहं दिव्व-माणुसियं ॥ ४१
तं तह सोऊण पुणो भणियं उब्बिंब-बाल-हरिणच्छि ।
जइ एवं ता सुव्वउ सुसंधि-बंधं कहा-वत्थुं ॥ ४२ ; लीलावई, सम्पा० डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, भारतीय विद्या-भवन, बंबई, सं० २००५ वि०;

२. छं० ७६४-६५, स० १ ;

को नष्ट कर रही है; हे कवि, इसके पार जाना दुस्तर है; चौहान को प्रसन्न करने से क्या होगा ?[१] कवि ने उत्तर दिया कि तुमने बात उचित कही परन्तु मेरे हृदय में यह अंदेशा है कि मैं पिथ्थल-नरेश (चौहान) का पूर्व जन्म का ऋण चुकाता हूं।[२] उसकी पत्नी ने कहा कि यदि राजा का ऋण चुकाते हो तो गोविन्द का स्मरण क्यों नहीं करते ?[३] कवि विस्तार पूर्वक समझाता है कि कमलासन सर्वव्यापी है।[४] पत्नी कहती है कि यदि ऐसा ही है तो राजा की कीर्ति मत गाओ वरन् हरि के अंग प्रत्यंगों का रूप और उनके चरित्रों का वर्णन करके सुनाओ जिससे मुक्ति प्राप्त हो।[५] अन्ततः कवि कहता है कि हे भामिनि, मुझसे तत्व पूछती हो तो कान देकर सुनो, मैं तुमको उसका (यथावत्) वर्णन करके दिखाऊँगा :

कह्यौ भांमि सौं कंत इम। जो पूछै तत मोहि ॥
कान धरौ रसना सरस। ब्रन्नि दिषाऊं तोहि ॥ १,७८३

उपर्युक्त छन्द रासो के 'आदि समय' का अन्तिम छन्द है। इसके पश्चात् 'अथ दशम' या 'दशावतार वर्णनं नाम द्वितीय प्रस्ताव' प्रारम्भ होता है जिसका पृथ्वीराज की कथा से कोई सन्बन्ध नहीं है अस्तु 'उसके परवर्ती प्रक्षेप होने का निर्देश किया जा चुका है'[६]। विष्णु के दस अवतारों के वर्णन वाले इस द्वितीय प्रस्ताव को कभी परवर्ती काल में रासो की कथा से संलग्न करने के लिये आदि समय के निर्दिष्ट ७६२--८३ छन्दों में नर (मनुष्य) और नारायण की पृथकता तथा नारायण की महिमा सूचक आख्यान चंद और उसकी पत्नी के वार्तालाप के मिस प्रस्तुत किया गया है। आश्चर्य तो तब होता है जब कवि-पत्नी छं० ७६१ में दिल्लीश्वर का गुण-गान करने के लिये कहती है और फिर छं० ७६२ में 'निसि' के स्थान पर 'दिवस' हो जाता है तथा छं० ७६३ में वह अकारण अपनी जिज्ञासा पर ही शंका कर बैठती है। द्वितीय प्रस्ताव के उपसंहार में कवि कुछ चौंक कर कह बैठता है कि राम और कृष्ण की सरस कीर्ति-कथन हेतु अधिक समय वांछित है, आयु थोड़ी है और चौहान का भार सिर पर है:—

१. छं० ७६६-६७, स० १ ;
२. छं० ७६८, वही ;
३. छं० ७६६, वही ;
४. छं० ७७१-८०, वही ;
५. छं० ७८१--८२, वही;
६. चंद वरदायी और उनका काव्य, विपिनविहारी त्रिवेदी, पृ० ११४;

राम किसन कित्ती सरस। कहत लगै बहु वार ॥
छुच्छ आव कवि चंद की। सिर चहुआना भार ॥ २,५८५;

इसके बाद योगिनिपुर-सम्राट् की कथा बे रोक-टोक बढ़ चलती है।

भारत की अनेक प्राचीन कथानक-रूढ़ियाँ साहित्य में प्रयुक्त हुई हैं। उन पर विशद रूप से विचार करके, उनके मूल स्रोतों के अनुसंन्धान का प्रयत्न करने वाले विदेशी विद्वानों में बेनफे (Benfey), कोलर (Köhler), लिब्रेट (Liebrecht), कून (Kuhn), हर्टेल (Hertel,), मारिस ब्लूमफील्ड (Maurice Bloomfield), टानी (Tawney), पेंज़र (Penzer) प्रभृति नाम चिरस्मरणीय रहेंगे। 'पृथ्वीराज-रासो' में भी हमें इन प्राचीन कथा-सूत्रों के दर्शन होते हैं। उनमें से कुछ पर हम यहाँ विचार करेंगे।

शुक और शुकी का कथा के श्रोता और वक्ता रूप में उपस्थित किया जाना एक ऐसा ही सूत्र है। महाभारत के राजा परीक्षित को श्रीमद्भागवत् सुनाने वाले व्यास के परम ज्ञानी पुत्र का नाम शुकदेव था ही अस्तु मानव की बोली समझने और बोलने की क्षमता रखने वाले शुक को भी कवि-कल्पना ने ज्ञानी बना दिया। पुराणों में कश्यप की पत्नी (कहीं पुत्री) शुकी ही शुकों की आदि माता हैं तब इन दौहित्र पक्षियों को मानव के रहस्यों का जानकार होने में कवि कैसे सन्देह करता। शुक जब मानव की बोली का अनुकरण कर लेता है तब आठवीं शताब्दी के मंडन मिश्र के भवन में मानवीय ज्ञान-सम्पन्न शुकी 'स्वत: प्रमाणं परत: प्रमाणं' आदि दार्शनिक विचारात्मक उच्चारण क्यों न करे।[1] और बाण का वैशम्पायन शुक जब पूर्व जन्म की कथायें कह सकता है[2] तब रासो की शुकी की जिज्ञासा-पूर्ति हेतु क्या वह बहुज्ञ, पृथ्वीराज के जीवन में घटनेवाली कथाओं का वर्णन भी नहीं कर सकता? चंद के परवर्ती विद्यापति ने अपने चार 'पल्लवों' वाले अवहट्ठ-काव्य

---

१. स्वत: प्रमाणं परत: प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौक: ॥६
फलप्रदं कर्म फलप्रदोज: कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौक: ॥७
जगद्ध्रुवं स्याज्जगद्ध्रुवं स्यात् कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौक: ॥८, सर्ग: ८;

२. वैशम्पायनस्तु स्वयमुपजातकुतूहलेन सबहुमानमवनिपतिना पृष्ठो मुहुर्तमिव ध्यात्वा सादरमब्रवीत्—'देव, महतीयं कथा। यदि कौतुकमाकर्ण्यताम्—, कादम्बरी, पूर्वभाग: ;

'कीर्तिलता' [1] की कथा निर्दिष्ट श्रोता-वक्ता पद्धति पर भृङ्गी की जिज्ञासा पर भृङ्ग द्वारा कहलवाई है।

रासो में शुक और शुकी तीन रूपों में आते हैं—कथा के श्रोता और वक्ता होकर, प्रणय-दूत बनकर तथा सपत्नियों के मध्य में धृष्ट दूतत्व करते हुए। अन्तिम रूप में केवल शुक कार्य करता है।

श्रोता और वक्ता रूप में शुक-शुकी के प्रथम दर्शन रासो के 'कन्ह-पट्टी समय ५' में होते हैं। शुकी, पृथ्वीराज और भीमदेव चालुक्य के बैर का कारण पूछती है :

सुकी कहै सुक संभरौ, कहौ कथा प्रति मान।
पृथु भोरा भीमंग पहु, किम हुअ बैर बिनान ॥१,

और शुक, चालुक्य से बैर का कारण बिना किसी अन्य भूमिका के कह चलता है परन्तु न तो अगले छन्द २ में ही उसका उल्लेख होता है और न कहीं 'समय' की समाप्ति पर ही। इसके उपरान्त 'आखेटक वीर वरदान', 'नाहर राय कथा', 'मेवाती मुगल कथा', और 'हुसेन कथा' के वर्णन आते हैं। केवल 'हुसेन कथा समय ६' के आदि में कोई अज्ञात वक्ता (भले ही वह शुक हो परन्तु कवि पत्नी आदि की भी सम्भावना है) संभरेश चौहान और ग़जनीपति शाह के आदि बैर की उत्कंठापूर्ण कथा कहने का निर्देश करता है :

संभरि वै चहुआंन कै, अरु गज्जन वै साह।
कहौं आदि किम बैर हुअ, अति उतकंठ कथाह ॥१

इसके बाद 'आखेटक चूक वर्णन समय १०' आता है। तदुपरान्त 'चित्ररेषा समयौ' में चंद से कोई (संभवत: कवि-पत्नी या पृथ्वीराज आदि) सुन्दरी चित्ररेखा की उत्पत्ति और हुसेन ख़ाँ द्वारा अश्वपति (ग़ोरी) के यहाँ से उसकी प्राप्ति विषयक प्रश्न करता है :

---

[1] भृङ्गी पुच्छइ भिङ्ग सुन की संसारहि सार।
मानिनि जीवन मान सञो वीर पुरुष अवतार ॥ प्रथम पल्लव,
किमि उँपन्नउँ वैरिपण किमि उँद्धरिउँ तेन।
पुरण कहाणी पिअ कहहु सामिअ सुनओ सुहेण ॥ द्वितीय पल्लव,
कणण समाइअ अमिअ रस तुज्झु कहन्ते कन्त।
कहहु विअष्खण पुनु कहहु तो अग्गिम वित्तन्त ॥ तृतीय पल्लव,
कह कह कन्ता सच्चु भणन्ता किमि परि सेना सञ्चरिआ।
किमि तिरहुत्ती होअउँ पवित्ती, अरु असलान किङ्करिआ ॥
चतुर्थ पल्लव;

पुच्छि चंद बरदाइ नैं। चित्ररेख उतपत्ति ॥
षां हुसेन षावास कहि। जिम लीनी असपत्ति ॥१

और 'भोलाराय समय १२' में पिछले दीर्घ अन्तर के बाद शुक, शुकी का प्यार करते हुए, इंच्छिनी और पृथ्वीराज के विवाह की आदि से अन्त तक की गाथा का वर्णन सुनने के लिये कहता हुआ पाया जाता है :

जंपि सुकी सुक पेम करि। आदि अंत जो बत्त ॥
इंच्छिनि पिथ्थह व्याह विधि। सुष्ष सुनंते गत्त ॥२ ;

इस 'प्रस्ताव' के अन्त तक विवाह नहीं हो पाया था कि अचिन्त्य रूप से ग़ोरी का युद्ध बीच में आ जाता है, जिसके वर्णन की समाप्ति 'सलष जुद्ध समयो १३' के अन्तिम छन्द में शुक-शुकी के वार्तालाप में होती है :

सुकी सरस सुक उच्चरिय। प्रेम सहित आनंद ॥
चालुक्कां सोभ्रति सध्यौ। सारुंडै में चंद ॥१५६

चौदहवें समय में नींद न आने वाली शुकी की पुन: जिज्ञासा पर शुक, इंच्छिनी-विवाह का वर्णन विस्तार से सुनाने के लिये सन्नद्ध हो जाता है :

कहै सुकी सुक संभलौ। नींद न आवै मोहि ॥
रय निरवांनिय चंद करि। कथ इक पूछौं तोहि ॥ १
सुकी सरिस सुक उच्चरयौ। धरयौ नारि सिर चत्त ॥
सयन संजोगिय संभरै। मन मैं मंडिय हित्त ॥ २
धन लद्धौ चालुक संध्यौ। बंध्यौ षेत षुरसान ॥
इंछनि ब्याही इच्छ करि। कहौं सुनहि दै कांन ॥ ३,

इंच्छिनी के घर पृथ्वीराज, धन-प्राप्ति, चालुक्य-विजय और ग़ोरी-बन्धन के कारण अधिक यशस्वी अस्तु अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक हो गये हैं। इसकी चर्चा करके कवि ने आबू-कुमारी के विवाह में अधिक रस पैदा कर दिया है। इसी 'समय' के बीच में शुकी, शुक से इंच्छिनी का नख-शिख पूछती हुई पाई जाती है :

बहुरि सुकी सुक सों कहै। अंग अंग दुति देह ॥
इंछनि अंछ बषांनि कै। मोंहि सुनावहु एह ॥ १३७,

और प्रियतमा शुकी को रानी के अंग और रूप-सौन्दर्य का वर्णन सुनाते-सुनाते सारी रात्रि व्यतीत हो जाती है :

सुनत कथा अछि वत्तरी। गइ रत्तरी विहाइ ॥
दुज्ज कही दुजि संभरिय। जिहि सुष श्रवन सुहाइ ॥ १६३

शुक- शुकी का वक्ता और श्रोता रूप अभी तक विधि पूर्वक आद्यो-पान्त केवल इसी 'प्रस्ताव' में देखने को मिलता है।

आगे के 'मुगल जुद्ध प्रस्ताव १५', 'पुण्डीरी दाहिमी विवाह नाम प्रस्ताव १६', 'भूमि-सुपन प्रस्ताव १७' और 'दिल्ली दान प्रस्ताव १८' के वर्णन शुक-शुकी की वार्ता के बिना ही बढ़ते हैं। 'माधव भाट कथा पातिशाह ग्रहन राजा विजय नाम उनविंसमो प्रस्ताव' की समाप्ति पर द्विज-द्विजी रूप में शुक-शुकी का फिर उल्लेख होता है, जिसमें द्विजी, पृथा का विवाह, शाह का वन्दी होना और धन प्राप्ति की 'विगत्ति' (<विगत=कथा) पूछती है :

दुजिय सु बद्दिय प्रति दुजह। प्रिथ्था व्याह विगत्ति ॥
किमि फिर बंध्यौ साह रिन। किम धन लद्ध सुमत्ति ॥ २५१,

परन्तु द्विजी रूपी शुकी की जिज्ञासा की पूर्ति का प्रसंग 'प्रिथा व्याह समय २१' से प्रारम्भ होता है जिसके पहले समुद्रशिखर की राजकुमारी के विवाह की कथा शुक-शुकी प्रश्नोत्तर के प्रवाह के बीच में बाधक होकर आती है। बीसवें 'पदमावती समय' में भी (केवल) शुक आता है परन्तु इस बार प्रणय का दूत बन कर।

प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व के कवि-कुल-गुरु कालिदास ने अपने 'मेघदूत' [1] में मेघ को, 'महाभारत' और 'कथासरित्सागर' से नल-दमयन्ती आख्यान को अलौकिक काव्य-रूप देने की प्रेरणा पाकर कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द्र के कवि श्रीहर्ष ने अपने 'नैषधीयचरितम्' [2] में हंस को तथा

---

१. सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियाया:
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य।
मन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
वाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥ ७, पूर्वमेघ: ;

[अर्थात्—तुम्हीं अकेले संसार के तपे हुए प्राणियों को शीतलता प्रदान करने वाले हो, अस्तु हे मेघ! कुबेर के कोप से बहिष्कृत, अपनी प्रियतमा से सुदूर हटाये हुए मुझ विरही का सन्देश मेरी प्रिया तक पहुँचा दो। यह सन्देश लेकर तुम्हें यक्षेश्वर की अलका नामक पुरी को जाना होगा, जहाँ उक्त नगरी के बाहर वाले उद्यान में बनी हुई शिव-मूर्ति के सिर पर जड़ी चन्द्रिका से भवनों में सदा उजाला रहता है।]

२. अथ भीमसुतावलोकनै: सफलं कर्तुमहस्तदेव स:।
क्षितिमण्डलमण्डनतायितं नगरं कुण्डिनमण्डजो ययौ ॥ २,६४ ;

[अर्थात्—राजा नल का प्रणय-सम्वाद लेकर हंस उसी दिन दमयन्ती

बारहवीं शताब्दी के बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के कवि धोयी ने अपने 'पवनदूत'[3] में पवन को प्रणय-दूत बनाया था, तब चंद के लिये उक्त कार्य हेतु शुक की नियुक्ति कवि-परम्पराश्रित ही थी।

अब रासोकार के 'पद्मावती समय २०' के प्रणय-दूत का कौशल और साथ ही कवि-चातुर्य भी देखते चलना चाहिये। समुद्रशिखरगढ़ की राजकुमारी राज-उद्यान से एक शुक को पकड़ लेती हैं और उसे अपने महल में नग-मणि जटित पिंजड़े में रखती है :

सखियन सँग खेलत फिरत। महलनि बाग निवास ॥
कीर इक्क दिष्षिय नयन। तब मन भयौ हुलास ॥८ तथा ६,

और फिर उसका चित्त शुक की ओर कुछ इस प्रकार रम जाता है कि वह सारे खेल छोड़कर उसे राम-राम पढ़ाया करती है :

तिहीं महल रष्यत भई। गइय षेल सब भुल्ल ॥
चित्त चहुट्टयौ कीर सौं। रॉम पढ़ावत फुल्ल ॥ १०

'कादम्बरी' और 'पदमावत' (जायसी) के शुक की भाँति रासो का इस स्थल का शुक पूर्व से ही वाचाल नहीं है, परन्तु आगे तो जैसे उसका कंठ एकदम खुल जाता है। पद्मावती के रूप, गुण आदि देखकर वह अपने मन में विचार करता है कि यह पृथ्वीराज को मिल जाय तो उचित हो :

कीर कुंवरि तन निरषि दिषि। नप सिष लौं यह रूप ॥
करता करी बनाय कै। यह पदमिनी सरूप ॥११, तथा

के दर्शन से अपने को सफल करने की कामना लिये, भूमण्डल के अलङ्कार सदृश कुंडिनपुर को प्रस्थित हुआ।]

३. सारंगाक्ष्या जनयति न यद् भस्मसादंगकान्ति
त्वद्विश्लेषे स्मरहुतवहः श्वास संधुक्षितोऽपि ।
जाने तस्याः स खलु नयनद्रोणिवारां प्रभावो
यद्वाशश्वन्नृप तव मनोवर्तिनः शीतलस्य ॥ ७५ ;

[अर्थात्—(मलयाचल की गन्धर्व-कन्या कुवलयावती ने राजा लक्ष्मण-सेन के रूप पर मोहित होकर उनके चले जाने पर पवन दूत द्वारा अपना विरह-सन्ताप प्रेषित किया। पवन कहता है—) हे राजन्! तुम्हारे वियोग में यह कामरूपी अग्नि, श्वास के पवन से सुलगाई जाने पर भी उस मृगनयनी के कोमल अंगों को जलाकर राख नहीं कर देती इसके दो ही कारण संभव हैं—एक तो उसके सुन्दर नेत्रों से अनवरत अश्रुधारा बह रही है और दूसरे तुम्हारी शीतल मूर्ति उसके हृदय में प्रतिष्ठित है।]

उमा प्रसाद हर हेरियत । मिलहि राज प्रथिराज जिय ॥१२

फिर क्या था, शुक का दूत-कर्म प्रारम्भ हो जाता है । पद्मावती द्वारा अपना देश पूछे जाने पर वह कहता कि मैं हिन्दुओं के दिल्ली-गढ़ का निवासी हूँ, जहाँ के शासक सुभटों के सम्राट पृथ्वीराज मानों इन्द्र के अवतार हैं :

उच्चरिय कीर सुनि बयनं । हिंदवान दिल्ली गढ अयनं ॥
तहाँ इंद अवतार चहुवांनं । तहं प्रथिराजह सूर सुभारं ॥१५,

और पृथ्वीराज के नाम का सूत्र पकड़ते ही वह चतुर दूत दिल्लीश्वर के सौन्दर्य और शूरता की प्रशस्ति पढ़ चलता है (छं० १६-२२), जिसके पद्मावती के हृदय पर वांछित प्रभाव की सूचना देने में कवि नहीं चूकता :

सुनत श्रवन प्रिथराज जस । उमग बाल विधि अंग ॥
तन मन चित्त चहुवाँन पर । बस्यौ सु रत्तह रंग ॥२३

मुग्धा-मोहिता राजकुमारी जब कमायूँ के राजा कुमोदमनि के साथ अपना विवाह होने और बारात आने की बात सुनती है (छं० २४-३१) तब वह बिसूरती हुई शुक के पास एकान्त में जाकर उसे दिल्ली से चौहान को शीघ्र लाने की बात कहती है :

पदमावति विलषि बर बाल बेली । कही कीर सों बात होइ तब केली ॥
झटं जाहु तुम्ह कीर दिल्ली सुदेसं । बरं चाहुवानं जु आनौ नरेसं ॥३२,

तथा 'ज्यौं रुकमनि कन्हर बरी' द्वारा अपने पत्र में प्रेरणा देती हुई, शिव-पूजन के समय अपना हरण करने का मंत्र भी लिख भेजती है :

ज्यों रुकमनि कन्हर बरी । ज्यों बरि संभरि कांत ॥
शिव मंडप पच्छिम दिसा । पूजि समय स प्रांत ॥३५

और कार्य-कुशल-पटु वह शुक-दूत आठ प्रहर में ही दिल्ली जा पहुँचता है :

लै पत्री सुक यौं चल्यौ । उड्यौ गगन गहि बाव ॥
जहँ दिल्ली प्रथिराज नर । अट्ठ जाँम में जाव ॥३६,

पृथ्वीराज पत्र पाकर, शुक के दौत्य पर रीझते-मुसकाते, प्रेम के अभयदान की आकांक्षिणी के त्राण हेतु प्रस्थान की आयोजना में लग जाते हैं :

दिय कग्गर नृप राज कर । षुलि बंचिय प्रथिराज ॥
सुक देषत मन में हँसे । कियौ चलन कौ साज ॥३७

और जिस प्रकार जायसी के 'पदमावत' का शुक सिंहलद्वीप की राज-

कुमारी पद्मावती को योगी रूप में उसी के हेतु आये हुए चित्तौड़ के राजा रतनसेन का वरण करने के लिये प्रेरित करता है (१६—पदमावती-सुआ-भेंट खंड) :

तुम्ह बारी रस जोग जेहि, कँवलहि जस अरघानि ॥
तस सूरुज परगास कै, भौंर मिलाएउँ आनि ॥४,

अथवा जिस प्रकार पृथ्वीराज राठौर की 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' का ब्राह्मण दूत द्वारिकापुरी से कृष्ण को लाकर रुक्मिणी को सूचना द्वारा आश्वस्त करता है :

सँगि सन्त सखीजण गुरजण स्यामा
मनसि विचार अे कही महन्ति ।
कुससथली हूँता कुन्दणपुरि
क्रिसन पधारया लोक कहन्ति ॥७२,

उसी प्रकार अपनी प्रतीक्षा में आतुर समुद्रशिखर की विरह-विधुरा राजकुमारी को रासो का शुक अपने सम्वाद से हर्ष-विह्वल कर देता है :

दिषत पंथ दिल्ली दिसाँन । सुष भयौ सूक जब मिल्यौ आंन ॥
संदेस सुनत आनंद मैंन । उमगिय बाल मनमथ्थ सैंन ॥ ४२,

और आल्हाद-पूरिता राजकन्या प्रियतम से मिलन हेतु अपने शृङ्गार में तन्मय हो जाती है :

तन चिकट चीर डारयौ उतारि । मज्जन मयंक नव सत सिंगार ॥
भूषन मँगाय नष सिष अनूप । सजि सेन मनों मनमथ्थ भूप ॥४३

कहने की आवश्यकता नहीं, अपहरण और युद्ध के उपरान्त प्रणयिनी अपने अभीष्ट वर के साथ दिल्ली के राजमहल में विलास करती है ।

इस प्रकार देखते हैं कि रासो में शुक को प्रणय-दूत बनाकर कवि ने अपना कथा-कार्य साधा है । परन्तु इस कथा-सूत्र को रासो की पुरातनता की एक आधार-शिला बनाकर चलते हुए हमें डॉ० दशरथ शर्मा की शोध ध्यान में रखनी है । उन्होंने अपने 'सम्राट पृथ्वीराज चौहान की रानी पद्मावती'[1] शीर्षक लेख में सं० १४५५ वि० में राजा अखैराज के आश्रित कवि पद्मनाभ द्वारा रचे गये 'कान्हड़ दे प्रबंध' के आधार पर सिद्ध किया है कि पृथ्वीराज की रानी पाहलण की पुत्री पद्मावती किसी राज्य-प्रधान के हनन का कारण बनी थी और उसके इस कार्य से चाहमान राज्य को अत्यधिक क्षति पहुँची थी । उनका अनुमान है—"अपरोक्ष रूप से चाहमान-साम्राज्य के सर्वनाश

१. मरु भारती, वर्ष १, अंक १, सितम्बर १९५२ ई०, पृ० २७-८;

का सूत्रपात, प्रधान मंत्री कैमास के वध द्वारा कराने वाली आबू के परमार राजा की पुत्री, रासो की महारानी इंछिनी और पद्मावती संभवत: एक ही रही हों। उनका पृथक्करण उस समय हुआ होगा जब चारण और भाट चौहान इतिहास को अंशत: भूल चुके थे। इसीसे उन्हें इच्छनी को आबू के राजा सलख की पुत्री और जैत परमार की बहन बनाना पड़ा, यद्यपि पृथ्वीराज की गद्दी-नशीनी से लगाकर उसकी मृत्यु के बहुत पीछे तक आबू का राजा (प्रहलादन या पाहलण का बड़ा भाई) धारावर्ष था; और शायद इसी से पूर्व दिशा में उन्हें समुद्रशिखर नाम के एक ऐसे दुर्ग की कल्पना करनी पड़ी, जिसके विषय में इतिहास कुछ नहीं जानता।....सुए की कथा प्रचलित लोकाख्यानों, कल्कि पुराण, जायसी के पद्मावत से भले ही ली गई हो परन्तु पद्मावती स्वयं कल्पित न थी....साहित्य की दृष्टि से रासो का 'पद्मावती समय' बहुत सुन्दर है, किन्तु अपने सत्य और असत्य के अविवेच्य संमिश्रण के कारण ऐतिहासिक के लिये यह प्राय: निरर्थक है।"[1]

इस प्रसंग के उपरान्त शुक-शुकी का वक्ता-श्रोता रूप 'शशिवृता समय २५' में देखने को मिलता है। जिसमें देवगिरि की राजकुमारी शशिवृता का सौन्दर्य एक नट द्वारा सुनकर पृथ्वीराज उस पर आसक्त हो, उसकी प्राप्ति की चेष्टा करते हैं और कामातुर हो उसके विरह में लीन, मृगया-रत हो जाते हैं, जहाँ वन में एक वाराह का पता बताने वाले बधिक के साथ अपने अनुगामियों सहित 'तुपक'[2] धारी राजा के वर्णन के बीच में अनायास शुकी, शुक से कह बैठती है कि दिल्लीश्वर के गन्धर्व विवाह की कहानी सुनाओ :

पुच्छ कथा सुक कहो। समह गंध्रवी सुप्रेमहि ॥
स्रवन मंमि संजोगि। राज समधरी सुनेमहि ॥
.... । इम चिंतिय मन मझ्झि ॥
कै करौ पति जुग्गनि ईसह। ईस पुज्जै सु जग्गीसह ॥
शुक चिंति बाल अति लघु सुनत। ततविन विस उपजै तिहि ॥
देव सभा न जद्दुव न्रपति। नाल केर दुज अनुसरहि ॥ ६८,

और इसके बाद ही शशिवृता के पास दया-भाव से आने वाले एक हंसरूपी

---

१. वहीं, पृ० २८ ;

२. छं० ६७ में 'ग्रह करि तुपक सु राज' चरण का 'तुपक' (बन्दूक) शब्द उक्त शब्द या सम्पूर्ण छन्द के परवर्ती प्रक्षेप होने का सूचक है। इसी प्रकार पिछले छं० ५२ में 'बन्दूक' शब्द का प्रयोग है :
सर नावक बंदूक। हरित जन बसन विरज्जिय ॥

गन्धर्व का प्रेम-चर बनकर पृथ्वीराज को नाना युक्तियों से प्रबोधते, सन्तुष्ट और प्रेरित करते हुए देवगिरि लाने का वृत्तान्त कवि ने दिया है।[1]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—'पचीसवें समय के बाद बहुत दूर तक शुक और शुकी का पता नहीं चलता। सैंतीसवें समय में वे फिर द्विज और द्विजी के रूप में आते हैं।'[2] सम्भवत: तेंतीसवें समय का प्रसंग उनसे भूल से छूट गया है। इस 'इन्द्रावती व्याह समय ३३' के अन्त में उज्जैन के राजा भीम की कन्या इन्द्रावती और पृथ्वीराज का शयनागर में प्रथम मिलन और रति-क्रीड़ा के प्रसंग में नव रसों की स्फुरणा का संकेत कौशल से करते हुए—

रस विलास उप्पज्यौ। सषी रस हार सुरत्तिय॥
ठांम ठांम चढ़ि हरम। सद्द कहकह तह मत्तिय॥
सुरत प्रथम संभोग। हंह हंहं मुष रट्टयि॥
ना ना ना परि अबल। प्रीति संपति रत थट्टिय॥
श्रृंगार हास करुणा सु रुद्र। बीर भयान बिभाछ रस॥
अदभूत संत उपज्यौ सहज। सेज रमत दंपति सरस॥ ८१,

शुक दम्पति संभरेश के इस अपूर्व रस का आस्वादन करते दिखाई देते हैं:

सुकी सरस सुक उच्चरिग। गंध्रब गति सो ग्यान॥
इह अपुब्ब गति संभरिय। कहि चरित्त चहुआन॥ ८२

इसी 'समय' में—

जो मति पच्छैं उप्पजै। सो मति पहिले होइ॥
काज न विनसै अप्पनौ। दुज्जन हँसै न कोइ॥ ५०,

पढ़कर, मेरुतुङ्गाचार्य की 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' का मुञ्ज और मृणालवती सम्बन्धी निम्न छन्द स्मरण आ जाता है तथा रासो का उपर्युक्त छन्द इसी की छाया प्रतीत होता है:

जा मति पच्छइ सम्पज्जइ। सा मति पहिली होइ।
मुञ्ज भणइ मुणालवइ। बिघन न बेढइ कोइ॥

मुञ्जराजप्रबन्ध, पृ० २४,

सैंतीसवें 'पहाड़राय सम्यो' के आरम्भ में शुक और शुकी, द्विज और द्विजी के रूप में परस्पर जिज्ञासा करते हुए दिखाई देते हैं:

---

१. छं० ६६--२२५;

२. हिंदी साहित्य का आदिकाल, पृ० ६४;

दुज सम दुजी सु उच्चरिय । ससि निसि उज्जल देस ॥
किम तूं अर पाहार पहु । गहिय सु असुर नरेस ॥ १

आचार्य द्विवेदी जी का अनुमान है कि मूल रासो में शुक और शुकी के वार्तालाप-ढंग के अन्तर्गत शहाबुद्दीन के आने का यह प्रथम अवसर है ।[1]

पैंतालिसवें 'संयोगिता पूर्वजन्म प्रस्ताव' में इन्द्र की प्रेरणा से जयचन्द्र और पृथ्वीराज के बैर की कथा का सूत्रपात एक गन्धर्व द्वारा होता है । गन्धर्व शुक-वेष में कन्नौज जाता है और रात्रि में मदन ब्राह्मणी के घर जहाँ संयोगिता पढ़ती थी, जाकर ठहर जाता है तथा उक्त नगरी का माहात्म्य अनुभव करता है (छं० ५१-५२) । गन्धर्वी, संयोगिता का राजा के घर में जन्म लेने का वृत्तान्त पूछती है (छं० ५३) । वह उत्तर देता है कि संयोगिता अप्सरा का अवतार है और सुमन्त मुनि के (कारण) श्राप से शूरों का संहार करने के लिये जन्मी है (छं० ५४) । तदनन्तर शुक कहता है कि हे शुकी, जिस प्रकार अप्सरा ने मुनि को धोखे से छला था और जिसके कारण उसे श्राप मिला, वह सुनो :

सुकी सुनै सुक उच्चरै । पुब्ब संजोय प्रताप ॥
जिहि छर अच्छर मुनि छर्‌यौ । जिन त्रिय भयो सराप ॥ ५५

यहाँ शुक और शुकी वार्तालाप के प्रसंगानुसार गन्धर्व-गन्धर्वी हैं ।

कन्नौज की राजकुमारी संयोगिता का आख्यान यहीं से प्रारम्भ होता है । देवलोक की मंजुघोषा (जिसे छं० ७५ में रम्भा भी कहा गया है) देवराज की आज्ञा से मर्त्यलोक के सुमन्त ऋषि की तपस्या भंग करने के लिये आती है (छं० ७४) और अपने संगीत द्वारा वह ऋषि की समाधि भंग करती है तथा उसके रूप लावण्य और भाव-विलास को देखकर (छं० ७७-९६), मुनि आश्चर्य-चकित हो जाते हैं (छं० ९७-९९) तथा जप-तप का मोह छोड़कर कामार्त हो उसका हाथ पकड़ लेते हैं, जिसे हँसी के साथ छुड़ाती हुई वह अन्तर्द्धान हो जाती है (छं० १००) । मुनि मूर्च्छित होकर क्षण भर के लिये गिर पड़ते हैं परन्तु फिर अपने चित्त को सँभाल कर ध्यान मग्न हो जाते हैं (छं० १०१-२) । यहीं पर शुकी, शुक से मुनि का मन डिगानेवाली अप्सरा के सौन्दर्य का वर्णन पूछती है :

सुकी सुकहं पुच्छै रहसि । नष सिष बरनहु ताहि ॥
जा दिष्षन मुनि मन टर्‌यौ । रह्यौ टगट्टग चाहि ॥ १०३,

और इस मिस से कवि को रमणी-रूप वर्णन का एक अवसर मिल जाता

१. वही, पृ० ६४;

है (छं० १०४-१७) । इसी शुक-शुकी वार्तालाप-सूत्र के अन्तर्गत आगे चलकर पढ़ते हैं कि जब योगिनी रूपिणी अप्सरा के प्रति सुमन्त काम के वशीभूत हो रहे हैं (छं० १५०-५३), तब वह कहती है कि योग की उक्तियों से क्या होगा, श्यामा से प्रेम सहित रमण करो जिससे पूर्व जन्म का फल प्राप्त हो :

बनिता बदंत विप्पं । जोगं जुगति केन कम्मायं ॥
स्यामा सनेह रमनं । जनमं फल पुब्ब दत्ताइं ॥१५४,

इसी अवसर पर सुमन्त के पिता जरज ऋषि आकर अप्सरा को श्राप दे देते हैं (छं० १५८-६६) । यही श्रापित (रम्भा) अप्सरा पहुपंग (जयचन्द्र) के घर में जन्म लेकर संयोगिता के नाम से प्रसिद्ध होती है और (मदन) ब्राह्मणी के घर विनय-मंगल पढ़ने जाती है (छं० २००) ।

सुमन्त मुनि और अप्सरा के वार्तालाप में सगुणोपासना का उपदेश भी मिलता है (छं० १४३-४६) । इस चर्चा में 'भा बिन प्रीति न होइ' (छं० १४८) देखकर आचार्य द्विवेदीजी का अनुमान है—'यह प्रसंग तुलसी के मानस की कथा से प्रभावित होकर लिखा जा रहा है अस्तु यह सावधान करता है कि शुक-शुकी का नाम देखकर ही सब बातों को ज्यों-का-त्यों पुराना नहीं मान लिया जा सकता ।'[1] परन्तु संयोगिता का व्यक्तित्व और उसकी कहानी मूल रासो की कथा है जिसे डॉ० दशरथ शर्मा[2] विविध प्रमाणों द्वारा सिद्ध कर चुके हैं ।

छियालिसवें 'विनय मंगल नांम प्रस्ताव' के श्रोता-वक्ता पूर्व 'समय' के गन्धर्व-गन्धर्वी हैं :

पुब्ब कथा संजोग की । कहत चंद बरदाइ ।
सुनत सु गंध्रव गंध्रवी । अति आनंद सुहाइ ॥१,

फिर संयोगिता को शिक्षा देने के प्रकरण में शुक-शुकी आ जाते हैं । शुक-शुकी, द्विज-द्विजी और गन्धर्व-गन्धर्वी इस प्रकरण में बहुत उलझे हुए से हैं परन्तु मूलतः वे इन्द्र प्रेरित गन्धर्व-गन्धर्वी हैं, जो शेष दो रूपों में देव-राज का कार्य साधते हैं । जयचन्द्र अपनी किशोरी कुमारी संयोगिता को शिक्षा देने के लिए मदन ब्राह्मणी को नियुक्त करते हैं । एक रात्रि के पिछले प्रहर में द्विजी, द्विज से संयोगिता के विषय में प्रश्न करती है :

---

१. हिंदी साहित्य का आदिकाल, पृ० ६५ ;
२. संयोगिता, राजस्थान भारती, भाग १, अंक २-३, जुलाई-अक्टूबर १९४६ ई०, पृ० २१-२७ ;

जाम एक निसि पच्छिली । दुजनिय दुजबर पुच्छि ॥
प्रात अप्प घर दिसि उड़ै । जे लच्छिन कहि अच्छि ॥४३,

और द्विज द्वारा उसकी पूर्ति करने पर (छं० ४४-५१); द्विजी, कुमारी को युवती देखकर वधू-धर्म की शिक्षा तथा विनय की मर्यादा, गौरव और प्रशंसा का पाठ पढ़ाती है (छं० ५६-१०७) । इसी शिक्षा-काल में मदन ब्राह्मणी के घर के प्रांगण में आम्र-वृक्ष पर रहने वाले असंख्य शुक-पिक पक्षियों में से एक शुक-शुकी दम्पति संयोगिता की अपूर्व कथा के वक्ता-श्रोता के रूप में द्विज-द्विजी नाम से दिखाई पड़ते हैं :

सु धरता तर रत्तिर रत्तिय । दुज दुज्जानी बत्तर मत्तिय ।
प्रोग प्रियं रज राजन मंडिय । जीहा जाम उभै षह षंडिय ॥१०८

मदन वृद्ध बंभनिय । मार माननिय मनोबसि ॥
कामपाल संजोग । विनय मंगलति पढति रस ॥
तहां सहारंतर एक । अंग अंगन धन मौरिय ।
सुक पिक पंषि असंष । वसहि वासर निसि घेरिय ॥

इक बार दुजी दुज सों कहै । सुनहि न पुब्ब अपुब्ब कथ ॥
उतकंठ बधै मन उल्लसै । रहहि नींद आवै सुनत ॥१०६

द्विज, द्विजी को उत्तर देते हुए योगिनिपुर और अजमेर नरेश (पृथ्वीराज) के शौर्य का वर्णन करता है (छं०११०-११) । यह कथा कहते-सुनते रात्रि व्यतीत हो जाती और द्विज द्वारा कथित, श्रवणों को सुखद, यह कथा द्विजी समझती जाती है :

सुनत कथा अछिवत्तरी । गइ रत्तरी विहाइ ॥
दुज्ज कह्यौ दुजि संभल्यौ । जिहि सुख श्रवन सुहाय ॥११२,[1]

प्रातःकाल यह द्विज रूपी शुक योगिनिपुर चल दिया :

होत प्रात तब पठन तजि । धाइ हिंडोरन आइ ॥

---

१. आचार्य द्विवेदी जी का (हिंदी साहित्य का आदिकाल, पृ० ६५ पर) कथन है कि यहाँ दुज दुजी को सँभलने के लिये कहता है । परन्तु मेरा अनुमान है कि 'संभल्यौ' क्रिया यहाँ पर हिंदी की न होकर राजस्थानी की है, जिसका अर्थ होता है 'स्मरण करना', 'समझना', 'सुनना' आदि। इसी अर्थ में वेलिकार पृथ्वीराज ने इस का प्रयोग कई स्थलों पर किया है :

साँभलि अनुराग थयौ मनि स्यामा, वर प्रापति वंच्छती वर ॥
हरि गुण भणि ऊपनी जिका हरि, हरि तिणि वन्दै गवरि हर ॥२६,

इह चरित्त दुज देषि कै। पछ जुग्गिनिपुर जाइ ॥११३

सैंतालिसवें 'सुक वर्णन समय' में मदन ब्राह्मणी के घर में पढ़ने वाली संयोगिता तथा अन्य कुमारियों की तुलना क्रमशः चन्द्रमा और तारागणों से करते हुए (छं० १), पूर्व 'समय' वर्णित शुक-शुकी दम्पति के दिल्ली की ओर उड़ने का वर्णन आता है :

इति हनूफालय छंद। गुर च्यार नभ जिम चंद ॥
उड़ि चले दंपति जोर। चितइ स पिथ्थह ओर ॥४ और छं० ५;

और शुक का ब्राह्मण-वेश में पृथ्वीराज के पास जाने का समाचार मिलता है :

नर भेष धरि साकार। दुज भेज सुक्कयौ सार ॥
दिषि ब्रह्म भेस अकार। किय मान अर्ध अपार ॥६
सोई दुज दुजनी करे। बहु तरुवर उड़ि जानि ॥
सो सहार संजोग किय। तीयह रम्य सु थान ॥७, [२]

सम्भलत धवल सर साहुलि सम्भलि, आलूदा ठाकुर अलल ॥
पिंड बहुरूप कि भेख पालटे, केसरिया ठाहे क्रिगल।११३, वेलि;

तथा

गंगा करु गीताह, श्रवण सुणी अरु सौंभली।
जुग नर वह जीताह, वेद कहै भागीरथी।४, गंगालहरी;

'ढोला मारू रा दूहा' में भी इस शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग मिलता है :

ढोलइ मनि आरति हुई, सौंभलि ए विरतंत।
जे दिन मारू विण गया, दई न ग्यौंन गिणंत ॥२०८,

और सम्भवतः तुलसी ने भी अपने 'मानस' में निर्दिष्ट अर्थ में 'संभारे' का प्रयोग किया है :

बंदि पितर सब सुकृत सँभारे। जो कछु पुण्य प्रभाव हमारे ॥ दोहा २५४ और २५५ के बीच में, बालकाण्ड;

शुक-शुकी सम्बन्धित रासो के कई अन्य स्थलों पर 'संभलौ' का प्रयोग 'समझना' अथवा 'स्मरण करना' के अर्थ में हुआ है; यथा—सुकी कहै सुक संभरौ; कहै सुकी सुक संभलौ; सुक्क सुकी सुक संभरिय; आदि।

२. शुकी रूपी ब्राह्मणी संयोगिता के पास अभी नहीं जाती जैसा कि सभा वाले रासो (पृ० १२७५) के सम्पादकों ने इस छन्द के आधार पर लिखा है।

फिर ये शुक-शुकी, द्विज-द्विजी के रूप में पृथ्वीराज के पास पहुँच कर उन्हें संयोगिता के प्रति आकृष्ट करते हैं :

कहै सु दुज दुजनीय । सुनौ संभरि न्रप राजं ।।
तीन लोक हम गवन । भवन दिष्षे हम साजं ।।
जं हम दिष्षिय एक । तेह नभ तड़िक अकारं ।।
मदन बंभनिय ग्रेह । नाम संजोगि कुमारिं ।।
सित पंच कन्य तिन मध्य अव । अवर सोभ तिन समुद बन ।।
आकास मद्धि जिम उडगनिन । चंद विराजै मनों भुवन ।।८,

और कान्यकुब्ज की राजकुमारी का रूप, वय: सन्धि, वसंत सदृश अङ्कुरित यौवन तथा नख-शिख आदि का वर्णन करके पृथ्वीराज को उस पर आसक्त कर देते हैं (छं० ६-७७) ।

तदुपरान्त पृथ्वीराज द्वारा मनोवांछित द्रव्य-प्राप्ति का प्रलोभन पाकर,[१] वे शुक-शुकी कन्नौज-दिशा की ओर उड़ जाते हैं और मदन ब्राह्मणी के घर जा पहुँचते हैं :

दुज चलै उड्डि कनवज्ज दिसि । ग्रेह सपत्तिय बंभनिय ।। ७८,

और शुकी ब्राह्मणी-रूप में संयोगिता से मिलकर, पृथ्वीराज के रूप-गुणानुवाद के प्रति उसे आकृष्ट करती है (छं०७६-८७), जिसके फलस्वरूप राजकुमारी दिल्लीश्वर के वरण की अभिलाषा मात्र ही नहीं करती[२] वरन् वैसा न होने पर जल में डूब मरने का निर्णय कर लेती है:

यों वृत लीनो सुंदरी । ज्यों दमयंती पुब्ब ।।
कै हथ लेवौ पिथ करौं । कै जल मध्यें डुब्ब ।। १०१,

तथा दूसरी ओर पृथ्वीराज भी संयोगिता के प्रेम में अहर्निशि चूर हैं :

बिय पंगानि कुमारि सुमार सुमार तजि ।
घरी पहर दिन राति रहै गुन पिथ्थ भजि ।।
भेदं भंजै और जोर मन में लजिहि ।
लषि पुच्छहि त्रिय बत्त न तत्त प्रकास किहि ।। १०२,

इस प्रकार देखते हैं कि शुक-शुकी इस कथा के श्रोता-वक्ता मात्र ही नहीं रहते वरन् उसके पात्र बन जाते हैं। अवसर के अनुकूल अपना रूप

---

१. देउं द्रब्य मन वंछि । जाइ प्रमुधै तिय आजं ।। ७८ ;

२. जिमि जिमि सुंदरि दुजि बयन । कही जु कथ्थ सँवारि ।।
बरनन सुनि प्रथिराज कौ । भय अभिलाष कुँआरि ।। ८८ ;

बदल कर ये इष्ट की प्राप्ति में सफल होते हैं । गन्धर्व-गन्धर्वी का आचरण रूप-परिवर्तन सम्बन्धी कथा-सूत्र का स्मरण भी करवा देता है ।

'पज्जून महुवा नाम प्रस्ताव ५३' में फिर शाह गोरी और चौहान के महुवा में होने वाले युद्ध के कारण को जिज्ञासा करती हुई शुकी देखी जाती है :

सुक्क सुकी सुक संभरिय । बालुक कुरंभ जुद्ध ॥
कोट महुव्वा साह दल । कहौ आनि किम रुद्ध ॥ १

इस 'प्रस्ताव' के अन्त में यश-कथा कहने वाले किसी मलैसिंह का उल्लेख मिलता है :

जीति महुव्वा लीय बर । ढिल्ली आनि सुपथ्थ ॥
जं जं कित्ति कला बढ़ी । मलैसिंह जस कथ्थ ॥ ३०,

जिससे अनुमान होने लगता है कि यह प्रकरण या तो सर्वथा प्रक्षिप्त है अथवा महुवा में हुए किसी चौहान-युद्ध का कहीं संकेत पाकर प्रक्षेपकर्ता ने इसे वर्तमान रूप प्रदान किया है ।

इकसठवें 'कनवज्ज समयो' का प्रारम्भ भी शुक-मुख से संयोगिता के विरह में सन्तप्त पृथ्वीराज की आन्तरिक दशा के वर्णन से होता है :

सुक बरनन संजोग गुन । उर लग्गे छुटि बान ॥
षिन षिन सल्लै वार पर । न लहै बेद बिनान ॥ १,

परन्तु इसके उपरान्त शुकी-शुक, श्रोता-वक्ता रूप में रासो के उपसंहार तक कहीं नहीं दिखाई पड़ते । इस 'प्रस्ताव' में जयचन्द्र के दरबार में नीली चोंच और रक्तवर्ण-शरीर वाले एक शुक की केवल चर्चा मिलती है जो राजा के वाक्यों को दुहराता है :

नील चंच अरु रत्त तन । कर कर कटी भषंत ॥
जोइ जोइ अष्षै राज मुख । सोइ सोइ कीर कहंत ॥ ५२५

वृहत् रासो के शुक-शुकी सम्वाद की परीक्षा करके आचार्य द्विवेदी जी ने अपनी धारणा इस प्रकार व्यक्त की है—'यह बात मेरे मन में समाई हुई है कि चंद का मूल ग्रन्थ शुक-शुकी सम्वाद के रूप में लिखा गया था । और जितना अंश इस सम्वाद के रूप में है उतना ही वास्तविक है'[1] । इसी विचार के अनुसार उन्होंने अपने 'संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो'[2] का सम्पादन भी किया है ।

---

१. हिंदी साहित्य का आदि काल, पृ० ६३ ;

२. साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद, सन् १९५२ ई० ;

कथाओं का सम्वादात्मक रूप में प्रणयन पर्याप्त प्राचीन पद्धति है, फिर भी यह देख लेना समीचीन होगा कि क्या रासो की शेष तीन वाचनाओं में भी शुक-शुकी मिलते हैं और इन वक्ता-श्रोता का उल्लेख करने वाले छन्दों की भाषा कैसी है। इस पर भी विचार कर लेना चाहिए कि यदि शुक-शुकी का प्रसंग हटा दिया जाय तो कथा में क्या परिवर्तन हो जायगा और साथ ही इस पर ध्यान देना आवश्यक है कि क्या शुक-शुकी रासो की भिन्न कथाओं को जोड़ने वाली कड़ियों के रूप मात्र में तो नहीं लाये गये हैं। मेरा अनुमान है कि 'लीलावई' की भाँति मूल रासो भी पत्नी की जिज्ञासा-पूर्ति हेतु कवि द्वारा प्रणीत हुआ है। श्रोता-वक्ता के कई जोड़े जैसे महाभारत आदि में मिलते हैं उसी प्रकार रासो में भी वे वर्तमान हैं। उनकी उपस्थिति कहीं सम्भव है और कहीं विभिन्न कथाओं को शृंखलित करने के लिये कड़ियों के रूप में परवर्ती चातुर्य है।

प्रशस्ति-पाठ आदि का कार्य कवियों ने शुक और सारिका से भी लिया है। बारहवीं शती के श्रीहर्ष ने लिखा है—'लोगों के द्वारा नल के उद्देश्य से सिखा पढ़ाकर वन में छोड़े गये चतुर तोते उनकी स्तुति करने लगे; उसी तरह वहाँ छोड़ी गई सारिकाएँ भी उनके पराक्रम का गान करके अपने अमृत स्वर से उनकी स्तुति करने लगीं':

तदर्थमध्याप्य जनेन तद्वने शुका विमुक्ताः पढवस्तमस्तुवन्।
स्वरामृतेनोपजगुश्च सारिकास्तथैव तत्पौरुषगायनीकृताः ॥ १०३, नैषध;

परन्तु रहस्योद्घाटन करने वाले निर्दोष भेदिया के रूप में शुक और सारिका का प्रयोग भी भारत की एक प्राचीन कथा-योजना है। सातवीं ईसवी शती के पूर्वार्द्ध के (सम्राट) हर्ष रचित विलासमय प्रणय के रंगीन चित्र वाली नाटिका 'रत्नावली' की दासी रूपिणी सिंहल देश की राजकुमारी सागरिका राजा वत्सराज उदयन के प्रति विभोर होकर अपना गोपनीय प्रेम अपनी सहेली सुसङ्गता से प्रकट करती है—'दुर्लभ जन में अनुराग है, लज्जा बहुत भारी है और आत्मा परवश है; हे प्रिय सखी, विषम प्रेम है, मरण और शरण में एक भी श्रेष्ठ नहीं है':

दुल्लहजणअणुराओ लज्जा गुरुई परव्वसो अप्पा।
पिअसहि विसमं प्पेम्मं मरणं सरणं णु वरमेक्कम् ॥१, अङ्क २;

महल की सारिका उपर्युक्त कथन सुनती थी, उसने इसे दोहराना प्रारम्भ कर दिया जिसे राजा ने भी सुन लिया और अपने विदूषक वसन्तक से कहा—'कठिनाई से निवारण करने योग्य कुसुम-शर की कथा को धारण किये हुए

कामिनी के द्वारा जो कुछ सखियों के सामने कहा गया उसका पुन: शुक और शिशु सारिका द्वारा अपने श्रवण-पथ का अतिथि बनना भाग्यवानों को ही प्राप्त होता है' :

दुर्वारां कुसुमशरव्यथां वहन्त्या
कामिन्या यदभिहितं पुर: सखीनाम् ।
तद्भूय: शुकशिशुसारिकाभिरुक्तं
धन्यानां श्रवणपथातिथित्वमेति ॥ ७, अङ्क २;

सारिका द्वारा प्रकाशित इस गुप्त प्रेम का निष्कर्ष सागरिका और वत्सराज के विवाह की सुखद परिणति है ।

'सतत रसस्यन्दी' पद्यों के रचयिता, सातवीं ईसवी शताब्दी के लगभग वर्तमान, मुक्तक काव्य में शृङ्गार के अप्रतिम चित्रकार तथा आनन्दवर्द्धन के शब्दों में 'प्रबन्धायमान' रस-कवि अमरुक ने ऐसे शुक का उल्लेख किया है जो एक दम्पति का रात्रि में सम्पूर्ण प्रेमालाप सुनकर प्रात:काल उसे गुरुजनों (सास, श्वसुर आदि) के सामने दुहराने लगा था; व्रीड़ा से पूरित वधू ने उसकी वाणी निरुद्ध करने के लिये अपने कान के कर्णफूल का पद्मराग मणि उसके सामने रख दिया, जिस पर उसने दाड़िम-फल की भ्रान्ति से चोंच मारी और अपना आलाप बंद कर दिया' :

दम्पत्योर्निशि जल्पतोर्गृहशुकेनाकर्णितं यद्वच-
स्तत्प्रातर्गुरुसन्निधौ निगदित: श्रुत्वैव तारं वधू: ।
कर्णालम्बितपद्मरागशकलं विन्यस्य चञ्च्वा: पुरो
व्रीडार्ता प्रकरोति दाडिमफलव्याजेन वाग्बन्धनम् ॥१६,
अमरुशतकम्;

रासो में भी एक शुक भेदिया का कार्य करता हुआ पाया जाता है । परन्तु वह निर्दोष नहीं वरन् पूर्ण अपराधी है । सपत्नी-मर्दन के उद्देश्य से प्रेरित होकर, दूत-कर्म का कृती वह वाचाल शुक, विग्रह का मूल होकर भी अन्त में स्वयं उसकी निवृति का हेतु बनकर धृष्ट-दूतत्व करने वाला कहा जा सकता है । बासठवें 'शुक चरित्र प्रस्ताव' में इसी शुक का वृत्तान्त है । पृथ्वीराज की महारानी इंच्छिनी, संयोगिता के आगमन के उपरान्त, राजा को सर्वथा उसके वशीभूत पाकर सपत्नीक डाह से जलती हैं (छं० ३-८) । एक दिन वे अपने पालतू शुक को अपने आन्तरिक दाह की सूचना देती हैं (छं० १०-१३) । शुक पहले तो कहता है कि यदि मुझसे इस प्रकार की बातें अधिक करोगी तो मैं चौहान से कह दूँगा (छं० १४) ।

परन्तु फिर रानी को रुष्ट देखकर अपने को एक रात्रि के लिये संयोगिता के शयनागार में पहुँचाने के लिये कहता है (छं० १५)। सौत-बैर के होते हुए भी इंच्छिनी संयोगिता से कपट-प्रीति बढ़ाती हैं और शुक को पिंजड़े सहित उसे दे देती हैं (छं० २६-२८ और ४७)। सरला संयोगिता शुक को अपने शयनागार में ले जाती है और वहाँ रहता हुआ वह शुक संयोगिता के हाव-भाव, शारीरिक सौन्दर्य, रति-क्रीड़ा आदि सभी कुछ तो देखता है (छं० ६७-८६)।

पृथ्वीराज राठौर ने कृष्ण और रुक्मिणी की रति-वर्णन का प्रसंग 'दीठौ न सु किहि देवि दुजि' और 'अदिठ अस्रु त किम कहणौ आवै' कह कर टाल दिया, परन्तु इस वर्णन-हेतु ही तो रासोकार ने शुक का मिस गढ़ा था फिर उक्त विवरण वह क्यों न प्रस्तुत करता।

कई दिवस पश्चात् जब शुक इंच्छिनी के पास लौट आया तो रानी ने स्वभावत: ही संयोगिता का रति-रास पूछा (छं० ६०-१) और उस धृष्ट शुक ने उस गुप्त प्रकरण का उद्घाटन इंच्छिनी तथा उसकी सखियों के आगे करना प्रारम्भ कर दिया :—

जो रस रसनन अनुदिनह। अधर दुराइ दुराइ ॥
सो रस दुज कन कन करयौ। सषिन सुनाइ सुनाइ ॥
सषिन सुनाइ सुनाइ। हियै सुचि सुचि लज मन्नह ॥
सुथल विथल थल कंपि। नेन नटकीय नहन्नह ॥
जियन मरन मिल मेंन। कह्यौ अदभुत प्रिय रस ॥
ए रस अंतर भेद। प्रीय जानै त्रिय जौ रस ॥ १०३

इंच्छिनी द्वारा संयोगिता के प्रच्छन्न अङ्गों के विषय में पूछने पर (छं० १०४) शुक ने निम्न वर्णन किया :

क्रिसल थूल सित असित। थान चव एक एक प्रति ॥
पानि पाइ कटि कमल। सथल रंजे सुच्छिम अति ॥
कुच मंडल भुज मूल। नितंब जंघा गुरुअत्तं ॥
करज हास गोक्रन्न। मांग उज्जल सा उत्तं ॥
कुच अग्र कच्च द्रिग मद्धि तिल। स्यामा अँग सब्बं गवन ॥
षोडस सिंगार सारूव सजि। सांइ रँजै संजोगि तन ॥ १०५,

और तदुपरान्त उनके नख-शिख का विस्तृत परिचय देकर (छं० १०६-२६), दम्पति के पारस्परिक आकर्षण और अनुराग की चर्चा की (छं० १२७-४०)

तथा उनके रति-विलास की रात्रि के युद्ध से उपमा देते हुए (छं० १४१-४२ और—

मदन बयट्ठौ राज। काज मंत्री तिहि अग्गै ॥
हाय भाय विभ्रम कटाच्छ। भेद संचारि विलग्गै ॥
काम कमलनी बनिय। चक्कनिय निय नित्यं भर ॥
मोह विट्टि पिष्भ्भति। प्रज्ज मो मनिय पिंड बर ॥
बीनीति मधुर तिहि लोभ बसि। बसि संजोग माया उरह ॥
ऊथपन मग्ग गहि अँगम गति। नृप क्रम सह छुट्टिय बरह ॥ १४४),

संयोगिता की समुद्र आदि और पृथ्वीराज की हंस आदि से तुलना की :

दुहु दिसि बढ़िय सनेह सब। संजोगिय बर कंति ॥
जियन बार बिछुरत तरुनि। हंस जुगल विछुरंत ॥ १४५
रूप समुंद तरंग दुति। नदि सब की मलि मानि ॥
गुन मुत्ताहल अप्पि कै। बस किन्नौ चहुआन ॥ १४६
तथा १४७-४८;

'अमरुशतकम्' की वधू की भाँति शुक को यहाँ रोकने वाला कोई था नहीं, अस्तु उसने खूब रस लेते हुए अपनी प्रत्यक्षदर्शिता के प्रमाण सम्यक् आरोपों सहित प्रस्तुत किये।

फिर सखियों द्वारा कन्नौज की राजकुमारी की अवस्था, रूप और अनुहार पूछने पर (छं० १४६), उसने इच्छानुसार रमण करने वाली संयोगिता के अंगों पर प्रतीप करते हुए उत्तर दिया :

ससि रुन्नौ म्रग वह्यौ। काम हीनौति भीन रति ॥
पंकज अलि दुम्मनौ। सुमन सुम्मनौ पयन पति ॥
पतँग दीप लग्गिय न। मीन दुम्मनो जीअ नम ॥
सुकिय सषिय सुष दिष्ट। चित चिंतति नेह भ्रम ॥
सुष सक्ति हीन सो दान नृप। हाव भाव विभ्रम श्रवन ॥
यों रति चरित्त मंगल गवन। सुनि इंछनि इंछनि रमन ॥ १५०,

और युग की अनन्य सुन्दरी के स्वाभाविक लावण्य का उल्लेख करके (छं० १५१-६७), उसके आकर्षक नेत्रों के वर्णन से अपना प्रकरण समाप्त किया।

महारानी इंच्छिनी ने कहाँ तो शुक की नियुक्ति सपत्नी की हँसी उड़ाने के लिये की थी और कहाँ वे उसका रूप-सौन्दर्य सुनकर हतप्रभ होकर ईर्ष्या के सन्ताप-सागर में निमज्जित हो गईं (छं० १७०-७३)। तब शुक ने उन्हें प्रबोधा :

जीवं वारि तरंगं। आयासं नथ्थिवै दुष्प देहं ॥
भाविय भाविय गतनं। किं कारनं दुष्प बालायं ॥ १७४

इंच्छिनी के यह कहने पर कि सौत-क्लेश नहीं भुलाया जा सकता (छं० १७५-७६), शुक ने उन्हें राजमहल छोड़ने की सलाह दी (छं० १७७) और रानी जाने के लिये प्रस्तुत होने लगीं (छं० १७८)। यह समाचार पाकर पृथ्वीराज ने रानी से इस व्यवहार का कारण पूछा (छं० १७९), तब शुक ने उत्तर दिया कि इसका मूल संयोगिता की वक्र दृष्टि है :

वक्र दिष्ट संजोग की। सुक कहि अपहि सुनाय ॥
एक अचिज्ज इंछिनिय। में ग्रह दिट्ठी राइ ॥ १८०;

राजा ने कहा कि रे शुक! तूने ही वह मंत्र दिया और अब तू ही नाना प्रकार की बातें गढ़ता है (छं० १८१)। शुक ने कहा कि अच्छा अब आप दोनों एक दूसरे को समझा लें (छं० १८२)। और अन्ततः राजा के मनाने पर रूठी रानी ने अपना मान छोड़ दिया (छं० १८४-८५)।

यदि शुक दूत हो सकता है तो सोम और दूध को जल से पृथक् करने की शक्ति वाले, अश्विनी कुमारों और ब्रह्मा के वाहन, अपने श्वेत-निर्मल वर्ण के कारण आत्मा-परमात्मा के प्रतीक, विराज, नारायण, विष्णु, शिव और काम के पर्य्याय नाम तथा उपनिषदों में 'अहं सा' में परिणत हंस के दूतत्व में कौन सी बाधा है, क्योंकि शुक यदि ज्ञानी है तो हंस विवेकी। पेंज़र (Penzer) महोदय का अनुमान है कि नल-दमयन्ती कथा 'महाभारत' में उसी प्रकार है जैसे 'कथासरित्सागर' में उर्वशी-पुरुरवा की कथा, और यह सम्भवतः वैदिक काल से चली आ रही है।[1] अस्तु, नल-दमयन्ती कथा में हंस दूत का प्रयोग भी पर्याप्त प्राचीन होना चाहिये। 'महाभारत' में वर्णित है कि नल और दमयन्ती क्रमशः विदर्भ और निषध देश के लोगों द्वारा परस्पर रूप-गुण सुनकर अनुरक्त हो चुके थे।[2] एक दिन नल ने अपने उद्यान के हंसों में से एक को पकड़ लिया परन्तु उसके यह कहने पर कि यदि आप मुझे छोड़ दें तो हम लोग दमयन्ती के पास जाकर आप के गुणों का ऐसा वर्णन करेंगे कि वह आपका अवश्य वरण करेगी।[3] नल के छोड़ने पर वह हंस अन्य हंसों के

---

१. दि ओशेन आव स्टोरीज़, जिल्द ४, अपेंडिक्स द्वितीय, पृ० २७५;

२. तयोरदृष्टाः कामोभूच्छृण्वतो सततं गुणान्।
अन्योन्यं प्रति कौन्तेय स व्यवर्धत हृच्छयः ॥ १७, अध्याय ५७, वनपर्व;

३. दमयन्तीसकाशे त्वां कथयिष्यामि नैषध।
यथा त्वदन्यं पुरुषं न सा मंस्यति कर्हिचित् ॥ २१, वही;

साथ विदर्भ की ओर उड़ गया।[1] विदर्भ जाकर उन हंसों ने दमयन्ती को को घेर लिया और वह जिस हंस को पकड़ने के लिये दौड़ती थी, वही कहता था[2]—'हे दमयन्ती, निषध देश में नल नाम का राजा है। वह अश्विनीकुमार के समान सुन्दर है। मनुष्यों में उसके सदृश कोई नहीं है। वह साक्षात् कन्दर्प है। यदि तुम उसकी पत्नी हो जाओ तो तुम्हारा जन्म और रूप दोनों सफल हो जायें। हम लोगों ने देवता, गन्धर्व, मनुष्य, सर्प और राक्षसों को घूम-घूम कर देखा है। नल के समान सुन्दर पुरुष कहीं देखने में नहीं आया जैसे तुम स्त्रियों में रत्न हो, वैसे ही नल भी पुरुषों में भूषण है....':

> दमयन्ती नलो नाम निषधेषु महीपतिः।
> अश्विनो सदृशो रूपे न समास्तस्य मानुषाः ॥२७
> कन्दर्प इव रूपेण मूर्तिमानभवत्स्वयम्।
> तस्य वै यदि भार्या त्वं भवेथा वर वर्णिनि ॥२८
> सफलं ते भवेज्जन्म रूपं चेदं सुमध्यमे।
> वयं हि देवगन्धर्वमनुष्योरगराक्षसान् ॥२९
> दृष्टवन्तो न चास्माभिर्दृष्टपूर्वस्तथाविधः।
> त्वं चापि रत्नं नारीणां नरेषु च नलोवरः ॥३०
> विशिष्टया विशिष्टेन संग्रामो गुणवान्भवेत्।
> एवमुक्ता तु हंसेन दमयन्ती विशांपते ॥३१,

यह सुनकर दमयन्ती ने कहा—'हे हंस, तुम नल से भी ऐसे ही बात कहना'[3]। और हंस ने निषध लौट कर नल से सब निवेदन कर दिया।[4]

'श्रीमद्‌भागवत्' में कृष्ण की रानियाँ कहती हैं—'हे हंस, तुम्हारा स्वागत है, आओ यहाँ बैठो और कुछ दुग्धपान करो। हे प्रिय, हम समझती हैं कि तुम श्रीकृष्ण के दूत हो, अच्छा उनकी बातें तो सुनाओ, कहो किसी के वश न होने वाले वे प्रियतम कुशल से तो हैं'[5]।

---

१. एममुक्तस्ततां हंसमुत्ससर्ज महीपतिः।
ते तु हंसाः समुत्पत्य विदर्भानगमस्ततः ॥ २२, वही;

२. श्लोक २३-२६, वही;

३. अब्रवीतत्र तं हंसं त्वमप्येवं नले वद। ३२, वही;

४. श्लोक ३२, वही;

५. हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यङ्ग शौरेः कथां।
दूतं त्वां नु विदाम कच्चिदचितः स्वस्त्यास्त उक्तंपुरा ॥ १०-९०-२४;

'महाभारत' की नल-दमयन्ती कथा से अनेक परवर्ती कवियों ने प्रेरणा पाई, जिसके फलस्वरूप संस्कृत में 'नलोदय' (कालिदास ? नवीं शती के केरल-कवि वासुदेव ?), 'नल-विलास' (नाटक) [रामचन्द्र, बारहवीं शती], 'नैषधीय-चरितम्' (श्रीहर्ष, बारहवीं शती), 'नल-चरित' (नीलकंठ दीक्षित, सन् १६५० ई०), 'नल-राज' (तेलुगु) [राघव, सन् १६५० ई०] प्रभृति काव्य विशेष प्रसिद्धि में आये। 'नलोदय' को छोड़कर शेष सभी में हंस की कथा कतिपय मौलिक सन्निवेशों सहित देखी जा सकती है। ग्यारहवीं शती के सोमदेव के 'कथासरित्सागर' में वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त को दो स्वर्ण हंस पार्वती द्वारा अपने पाँच गणों को श्राप की कथा सुनाते हैं तथा अपने को इन पाँच में से पिंगेश्वर और गुह्येश्वर गण बतलाते हैं। 'कथासरित्सागर' तक आते-आते भारतीय काव्य-परम्परा में स्त्री-राग पहले दिखाने की रूढ़ि स्थान पा चुकी थी। इसकी नल-दमयन्ती कथा में दिव्य हंस पहले दमयन्ती द्वारा वस्त्र फेंक कर पकड़ा जाता है और वह नल का रूप-गुणानुवाद करके उनसे विवाह करने की सलाह देता है तथा प्रणय-दूत बनने के लिये प्रस्तुत हो जाता है। नल भी इस हंस को दमयन्ती की युक्ति से पकड़ते हैं, तब वह विदर्भ-कुमारी का सौन्दर्य बखान कर कहता है कि मैंने ही आपके प्रति उसे आकृष्ट किया है। नल कहते हैं कि दमयन्ती द्वारा मेरा चुनाव, मेरी आन्तरिक अभिलाषाओं का प्रतीक है। हंस लौटकर दमयन्ती को यह सब समाचार दे आता है।

नल-दमयन्ती कथा का विस्तार से विवेचन यहाँ यह दिखाने के लिये किया गया है कि कवियों को उक्त कथा के अन्य गुणों के अतिरिक्त हंस का दूत कार्य विशेष रूप से इष्ट था। अब अप्रतिम नल-दमयन्ती कथाकार श्रीहर्ष के काव्य और कथा की दृष्टि से अलौकिक महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' में भी हंस के प्रणय-दूतत्व पर किञ्चित् दृष्टि डाल लेनी चाहिये। स्त्री-राग के प्रथम दर्शन सिद्धान्त के अनुसार पूर्व दमयन्ती[1] और फिर नल[2] रूपगुणानु-वाद सुनकर परस्पर आकर्षित और अनुरक्त हो चुके हैं। वन के सरोवर में नल ने जब स्वर्ण हंस को पकड़ लिया और पुन: उसके मानव-वाणी में विलाप तथा याचना करने पर उसे मुक्त कर दिया,[3] तब तो अपने विश्वास और प्रीति का पात्र पाकर उसने राजा से दमयन्ती का सौन्दर्य-वर्णन करके

---

१. श्लोक ३३-३८, सर्ग १;

२. श्लोक ४२-४६, वही;

३. श्लोक १२५-४३, वही;

कहा—'हे राजन्, तुम्हारा यह रूप दमयन्ती के बिना इस प्रकार निरर्थक है जैसे बाँझ वृक्ष का फल-हीन पुष्प। यह समृद्ध पृथ्वी भी वृथा है तथा कोकिलों के कूजने से शोभायमान विलास-वाटिका भी व्यर्थ है' :

तव रूपमिदं तया विना विफलं पुष्पमिवावकेशिनः।
इयमृद्धधना वृथावनी स्ववनी संप्रवदत्पिकापि का॥ ४१,
सर्ग २;

परन्तु देवता भी उसको प्राप्त करना चाहते हैं अतः उसके साथ तुम्हारा सम्बन्ध उसी प्रकार कठिन है जिस प्रकार वर्षा-काल में मेघ से ढँके हुए चन्द्रमा की दीप्ति के साथ समुद्र का[1], इसलिये मैं दमयन्ती से तुम्हारी प्रशंसा इस प्रकार करूँगा कि उसके हृदय में धारण किये गये तुमको इन्द्र भी न हटा सकें[2]। फिर विदर्भ जाकर वन-विहार करती हुई दमयन्ती को उसकी सखियों से युक्तिपूर्वक पृथक करके एकान्त में अकेले लाकर[3] हंस ने उससे शुक-सदृश मानव-वाणी में नल का रूप-गुण-वर्णन[4] करके 'योगयोग्यासि नलेतरेण'[5] (अर्थात्—नल को छोड़कर तुम और किसी के साथ संयोग के योग्य नहीं हो) कहा तथा लज्जित-हर्षित दमयन्ती से स्वीकार करा लिया कि मेरा चित्त केवल नल को चाहता है और कुछ नहीं—

इतीरिता पत्ररथेन तेन ह्रीणा च हृष्टा च बभाण भैमी।
चेतो नलं कामयते मदीयं नाऽन्यत्र कुत्रापि च साभिलाषम्॥ ६७,
सर्ग ३;

तथा या तो मैं आज उन्हें प्राप्त करूँगी अथवा प्राण जावेंगे, दोनों तुम्हारे हाथ में हैं; इनमें से एक बात रह जायगी।[6] इस प्रकार हंस ने जब दमयन्ती का हृदय टटोल कर उसका नल के प्रति पूर्व-राग का आभास पा

---

१. श्लोक ४६, सर्ग २;
२. श्लोक ४७, वही;
३. श्लोक १-११, सर्ग ३;
४. श्लोक १२-४८ वही;
५. वेलातिगस्त्रैणगुणाब्धिवेणिर्न योगयोग्यासि नलेतरेण।
सन्दर्भ्यते दर्भगुणेन मल्लीमाला न मृद्वी भृशकर्कशेन॥ ४६, वही;
६. श्रुतश्च दृष्टश्च हरित्सु मोहाद्ध्यातश्च नीरन्ध्रितबुद्धिधारम्।
ममाद्य तत्प्राप्तिरसुव्ययो वा हस्ते तवास्ते द्वयमेकशेषः॥ ८२, वही;

लिया[1] तब उसने अपनी 'चञ्चुपुटमौनमुद्रा' ढीली की[2] और नल का उसके प्रति अतिशय प्रेम, रूप-विमुग्धता, परवशता, विरह-कातरता आदि का उल्लेख किया[3]। फिर उसकी सखियों के आ पहुँचने पर, हंस उससे विदा लेकर नल की राजधानी को प्रस्थित हो गया।[4] विदर्भ पहुँचने पर राजा नल ने हंस से दमयन्ती के वचन 'कैसे, कैसे' इस प्रकार आदर-पूर्वक पूछकर बार-बार दुहरवाये और फिर अत्यन्त हर्ष रूपी मधु से मत्त होकर वे वचन स्वयं भी अनेक बार कहे :

कथितमपि नरेन्द्रः शंसयामास हंसं
किमिति किमति पृच्छन् भाषितं स प्रियायाः।
अधिगतमथ सान्द्रानन्दमाध्वीकमत्तः
स्वयमपि शतकृत्वस्तत्तथान्वाचचक्षे ॥ १३५, सर्ग ३

'पृथ्वीराज-रासो' के 'शशिवृता वर्णनं नाम प्रस्ताव २५' का हंस दूत अपने कार्य में 'नैषध' के प्रणय-दूत से बहुत सादृश्यता रखता है। देवगिरि का नट दिल्ली दरबार में आया (छं० १५-१७) और पृथ्वीराज द्वारा पूछने पर कि वहाँ की कुमारी शशिवृता का विवाह किसके साथ निश्चित हुआ है (छं० १८), उसने बताया कि उज्जैन के कमधज्ज राजा के यहाँ सगाई ठहरी है परन्तु राजकुमारी को उक्त वर प्रिय नहीं है (छं० १६-२३)। फिर उसके द्वारा शशिवृता का मेनका सदृश रूप सुनकर (छं० २४, २६-२७), पृथ्वीराज उस पर अनुरक्त हो गये और नट से उसकी प्राप्ति का उपाय पूछने लगे (छं० २८)। नट ने यह कहकर कि हे राजेन्द्र, मैं कुछ उठा न रखूँगा, उनसे विदा ली (छं० २६)। राजा ने शिव से अपना मनोरथ सिद्ध होने का वरदान पाया तथा वर्षा और शरद ऋतुयें शशिवृता के विरह की काम-पीड़ा में बिताई और देवगिरि जाने का निश्चय किया (छं० ३२-४५)।

उधर जयचन्द्र के भ्रातृज वीरचन्द्र के साथ शशिवृता की सगाई का समाचार पाकर एक गन्धर्व देवगिरि गया (छं० ६६) और वन में जहाँ वह अपनी समवयस्काओं के साथ क्रीड़ा कर रही थी (छं० ७०), वह हेम-हंस के रूप में एक स्थान पर विश्राम करने लगा ; राजकुमारी ने अत्यन्त आश्चर्य से

---

१. श्लोक ८३-६८, वही;
२. श्लोक ६६, वही;
३. श्लोक १००-२८, वही;
४. श्लोक १२६, वही;

उसे देखा और बलपूर्वक पकड़ कर उससे पूछा कि तुम कौन हो, तुम्हारा स्थान कहाँ है और इस रूप में किस माया से आये हो? हंस ने उत्तर दिया कि मैं मतिप्रधान नामक गन्धर्व हूँ, सुरराज के कार्य हेतु आया हूँ और हे बाले, तीनों लोकों में जा सकने की मुझ में शक्ति है :

हेम हंस तन धरिय । बिपन मध्य विश्राम लिय ॥
दिष्षि तास शशिवृत्त । अतिहि अचरिज्ज मानि जिय ॥
बल कर गहिय सु तत्व । हत्व लै करि तिहि पुच्छिय ॥
कवन देव तुम थान । कवन माया तन अच्छिय ॥
उच्चरयौ हंस ससिव्रत्त सम । मति प्रधान गन्धर्व हम ॥
सुरराज काज आए करन । तीन लोक हम बाल गम ॥७१,

फिर उसने वीरचन्द्र की आयु केवल एक वर्ष बतला कर (छं० ७३), इन्द्र द्वारा करुणापूर्वक अपने भेजे जाने की बात कही :

तेम रहै बर बरष इक्क महि । हय गय अनत झुझ्झि हैं समतहि ॥
तिहि चार करि तुमहि पै आयौ । करि करुना यह इन्द्र पठायौ ॥७४ ;

यह सुनकर स्वाभाविक ही था कि शशिवृता का चित्त उधर से विरत हो गया, और उसने उससे अपने अनुरूप वर पूछा :

तब उच्चरिय बाल सम तेहं । तुम माता सम पिता सनेहं ॥
मुझ्झ सहाय अवरि को करिहौ । पानि ग्रहन तुम चित अनुहरिहौ ॥७५

फिर क्या था, चतुर हंस दूत तो इस ताक में था ही, अवसर मिलते ही शूरमाओं के अधिपति दिल्लीश्वर पृथ्वीराज का गुणगान कर चला (छं० ७६-७८) । उसे सुनकर शशिवृता ने कहा कि तुम जाकर उन्हें लिवा लाओ, मैं छै मास तक चौहान की प्रतीक्षा करूँगी और इस अवधि तक उनके न आने पर अपना शरीर त्याग दूँगी :

तहां तुम पिता कृपा करि जाउ । दिल्ली वै अनुराग उपाउ ॥
मांस षटऽ हों वृत्तह मंडों । थ्थुना आवै तो तन छंडौं ॥ ७६

'श्रीमद्भागवत्' की रुक्मिणी भी तो कृष्ण के प्रति अपने सन्देश में कहलाती हैं—'(यदि आप न आये तो)' मैं व्रत-द्वारा अपने शरीर को सुखा कर प्राण छोड़ दूँगी ;....' :

जह्यामसून्व्रतकृशाञ्छतजन्मभिःस्यात ॥ १०-५३-४३ ;

इस प्रकार शशिवृता को पृथ्वीराज के अनुराग में पागकर, हंस उसके पास अपनी सुन्दरी को छोड़कर उत्तर की ओर उड़ चला और योगिनिपुर जा पहुँचा, उसके सुवर्णमय शरीर पर अनेक नगों की शोभा हो रही थी :

तब उड़ि चल्यौ देह दिसि उत्तरि । ढिग ससिव्रत रष्षि निज सुंदरि ॥
जुग्गिनिपुर आय दुज राजं । सोवन देह नगं नग साजं ॥८०

वन में शिकार खेलते हुए किशोर पृथ्वीराज ने आश्चर्य के साथ इस स्वर्ण हंस को देखा और उसे पकड़ लिया तब उसने राजा से सारी कथा कह दी :

वय किसोर प्रथिराज । रम्य हा रम्य प्रकारं ॥
सेत पष्ष विय चंद । कला उद्दित तन मारं ॥
विपन मध्य चहुआन । हंस दिष्यौ अप अष्षिय ॥
चरण भग्ग दुति होत । हेम पछ्छी वियलष्षिय ॥
आचिज्ज देषि प्रथिराज बर । धाइ नृपति बर कर गहिय ॥
आपुब्ब दुज्ज गति दूत कथ । रहसि राज सों सब कहिय ॥८१ तथा ८२,

सायंकाल यादवराज के इस हंस दूत ने राजा को एक पत्र दिया (छं० ८३) तथा एकान्त की वांछना करके चुप हो गया (छं० ८४) । (अभिलषित परिस्थिति होने पर) उसने चौहान से कहा कि शशिवृता का वर्णन सुनने के लिये शारदा (सरस्वती) भी ललचाती हैं :

इह अष्षी चहुआन सों । न तो मार कहि आइ ।
सुनिवेकों ससिवृत्त गुन । सारदऊ ललचाइ ॥ ८८,

और सूर्य तथा चन्द्र के उदय और अस्त काल के मध्य में वह इस प्रकार शोभित होती है मानो शृङ्गार का सुमेरु हो :

राका अरु सूरज्ज विच । उदै अस्त दुहु बेर ॥
बर शशिवृत्ता सोभई । मनों शृङ्गार सुमेर ॥ ८६

फिर हंस ने राजकुमारी की बाल्यावस्था व्यतीत होकर किशोरावस्था के आगमन पर शिशिर और वसंत का सावयत्र आरोप करके उस अज्ञात-यौवना का रूप-चित्र खींचा :

ससिर अंत आवन बसंत । बालह सैसब गम ॥
अलिन पंष कोकिल सुकंठ । सजि गुंड मिलत भ्रम ॥
सुर मारुत मुरि चले । मुरे मुरि बैस प्रमानं ॥
तुछ कों परसिस फुट्टि । आनि किस्सोर रँगानं ॥
लीनी न अमि नक स्यांम नन । मधुप मधुर धुनि धुनि करिय ॥
जानी न वयन आवन बसत । अग्याता जोवन अरिय ॥ ६५,
पत्त पुरातन झरिग । पत्त अंकुरिय उड्ड तुछ ॥
ज्यों सैसव उत्तरिय । चढ्ढिय सैसब किसोर कुछ ॥

शीतल मद सुगंध । आइ रिति राज अचानं ॥
रोम राइ अंकुच नितंब । तुच्छं सरसानं ॥
बढ्ढै न सीत कटि छीन ह्वै । लज्ज मानि टंकनि फिरै ॥
ढंकै न पत्त ढंकै कहै । बन वसंत मंत जु करै ॥ ९६

उपर्युक्त वर्णन सुनकर पृथ्वीराज के काम-बाण लगे और वे रात्रि भर शशिवृता की चिन्ता में लीन रहे, प्रात:काल उन्होंने हंस से पुन: जिज्ञासा की (छं० ९७-९८) । उसने बताया कि देवगिरि के राजा (अर्थात् उसके पिता) द्वारा उसकी सगाई जयचन्द्र के भ्रातृज बीरचन्द्र से करने के लिये भेजी गई है, यह जानकर राजकुमारी शोक-सागर में डूब गई (छं० १०७-८), वह चित्ररेखा अप्सरा का अवतार है तथा वर-रूप में आपकी प्राप्ति के लिये प्रतिदिन गौरी-पूजन कर रही है (छं० १०९) । मैं शिवा की (पार्वती) की प्रेरणा के फलस्वरूप शिव[1] की आज्ञा से तुम्हारे पास आया हूँ :

शिवा बानि शिव वचन करि । हौ येठयो प्रति तुझ्झ ॥
कारन कुंअरि वृत्त कौं । मन कामन भय मुझ्झ ॥ ११२,

तदुपरान्त उसने निम्न छन्द में राजकन्या का नख-शिख वर्णन किया .

पीनो रूपीन उरजा, सम शशि वदना, पद्म पत्रायताक्षी ॥
व्यंबोष्ठी तुंग नासा, गज गति गमना, दक्षना वृत्त नाभी ॥
संस्निग्धा चारु केशी, मृदु प्रथु जघ्ना, वाम मध्या सु वेसी ॥
हेमांगी कंति हेला, वर रुचि दसना, काम वाना कटाक्षी ॥ ११४,

इस पर पृथ्वीराज ने शास्त्रज्ञ हंस से चार प्रकार की स्त्रियों का वर्णन पूछा (छ० ११५), और उसने उन सबका वर्णन करके (छं० ११६-२९) पुन:, परन्तु इस बार सबसे अधिक विस्तार से देवगिरि की पद्मिनी शशिवृता का नख-शिख के मिस रूप-सौन्दर्य प्रस्तुत किया (छ० १३०-५२) ।

---

१. यही गन्धर्व रूपी हंस शशिवृता से पहले कह चुका है कि मैं देव-राज का कार्य करने लिये तुम्हारे पास आया हूं .

उच्चरयौ हंस ससिव्रत सम । मति प्रधान गन्धर्व हम ॥
सुरराज काज आये करन । तीन लोक हम बाल गम ॥ ७१ ,

और फिर दूसरी बार भी कहता है कि इन्द्र ने करुणा करके मुझे भेजा है :

तिहिं चार करि तुमहि पै आयौ । करि करुना यह इन्द्र पठायौ ॥ ७४

तथा चौहान द्वारा अप्सरा के शशिवृता रूप में अवतार लेने का कारण पूछने पर (छं० १५३), उसने शाप और शिव वरदान की बात कही[1] (छं० १५५-६१) और यह भी बता दिया कि शिव की वाणी के अनुसार वह आपको (अवश्य) प्राप्त करेगी :

तुछ दिन अंतर क्रमियं । आगम भरतार यांमि उद्ध लोकं ॥
फिर अच्छरि अवतारं । पांमै तुम्भ ईस बर बांनी ॥ १६२,

फिर आगे कहा कि इस मेंनका का अवतार आपके लिये ही हुआ है :

और सुबर संकेत सुनि । हंस कहै नर राज ॥
मेंन केस अवतार इह । तुअ कारन कहि साज ॥ १६४

इस अवसर पर शशिवृता की मँगनी कमधज्ज को दी जाने, उसके दिल्लीश्वर के गुणों में अनुरक्त होने, शिव-पूजन करने और शिव की आज्ञा से ही स्वयं उन्हें बुलाने आने की बात हंस एक बार फिर दोहरा गया (छं० १६५-६८, तथा :

चढ़न कहिय राजन सो हेसं । उड्डि चलौ दच्छिण तुम देसं ॥१६६) ।

इस वर्णन से प्रतीत होता है कि पृथ्वीराज को देवगिरि ले जाने के लिये हंस दूत को अथक परिश्रम करना पड़ा था । यद्यपि प्रस्तुत 'प्रस्ताव' के प्रारम्भ में वे शशिवृता के प्रति अतिशय कामासक्त चित्रित किये गये हैं फिर भी समुद्रशिखर की पद्मावती और कन्नौज की संयोगिता को लाने के समान इस स्थल विशेष पर जो वे अपेक्षाकृत कम व्यग्र दिखाई देते हैं, इसके कई कारण भी हैं । परन्तु अन्ततः प्रेम-घटक हंस दूत सफल हुआ और दिल्लीश्वर ने दस सहस्त्र अश्वारोही सैनिकों को सुसज्जित किये जाने की आज्ञा दे दी :

सुनत श्रवन चढ्यौ नृप राजं । कहि-कहिं दूत दुजन सिरताजं ॥ १६६
भय अनुराग राज ढिल्ली वै । दस सहस्त्र सज्जी नृप हेवै ॥ १७०,

तथा हंस से देवगिरि के राजा का वृत्तान्त पूछा (छं० १७१) । उसने भानु यादव के धन, ऐश्वर्य, बल, प्रताप, सेना, पुत्र, पुत्रियों आदि का विधिवत् उल्लेख करके (छं० १७२-७४), इसी प्रसंग के साथ बतलाया कि देवगिरि के आनन्दचन्द्र की कोट-हिसार में विवाहित, गान आदि विद्याओं में पारंगत, इस समय विधवा और अपने भाई के साथ रहने वाली बहिन (छं०१७५-७६) तथा अपनी शिक्षिका के मुँह से आपके पराक्रम आदि का वृत्त सुनकर शशिवृता आप में अनुरक्त हो गई और आपकी प्राप्ति का प्रण कर बैठी :

---

१. परन्तु यहाँ पूर्व वर्णित चित्ररेखा के स्थान पर रम्भा आ जाती है ।

जब विन्निन चंद्रिका । कहै गुन नित चहुवानं ॥
जेस पराक्रम राज । तेइ बरने दिन मानं ॥
राजकुंअरि जब सुनै । तबै उब्भरै रोम तन ॥
फिरि पुच्छै ससिवृत्त । सद्दि एकंत मत्त गुन ॥
जे जे सु पराक्रम राज किय । सोइ कहै विन्निन समथ ॥
श्रोतान राग लग्यौ उअर । तो वृत लिनौ सुनी सुकथ ॥१७८ ;

युवावस्था में पदार्पण करने पर उसे काम-पीड़ा सताने लगी (छं० १७६), आप को प्राप्त करने की कामना से वह मनसा, वाचा, कर्मणा से शिव-शिवा (गौरी-शंकर) की कठोर उपासना में रत हुई (छं० १८१–८३), जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने स्वप्न में उसे मनोवाञ्छित वर प्रदान कर दिया (छं० १८४) तथा रुक्मिणी की भाँति उसका हरण करने का सन्देश देकर मुझे आप के पास भेजा :

हुअ प्रसंन सिव सिवा । बोलि हूँ पठय तुझ्झ प्रति ॥
इह बरनी तुम जोग । चंद जोसना वांन वृत ॥
ज्यों रुकमिनि हरि देव । प्रीति अति बढ़ै प्रेम भर ॥
इह गुन हंस सरूप । नाम दुजराज भनिय चर ॥१८६ ;

जयानक ने भी अपने 'पृथ्वीराजविजयमहाकाव्यम्' में लिखा है कि दमघोष के पुत्र शिशुपाल को त्यागकर रुक्मिणी ने कृष्ण का वरण किया था—

बव्रे बलादाङ्गिरसाङ्गनापि
यदेनमेषोपि कथं कलङ्कः ।
विहाय देवी दमघोषसूनुं
न रुक्मिणी किं विधुमालिलिङ्ग ॥ षष्ठसर्गः ;

राजा ने हंस से फिर पूछा कि यदि राजकुमारी की यह मनोदशा थी तो उसके पिता ने पुरोहित भेजकर विवाह क्यों रचाया (छं० १८७) ? हंस ने उत्तर दिया कि यादव राज को जयचन्द्र से ही सम्बन्ध प्रिय लगा और उन्होंने उनके पास पुरोहित के हाथ श्रीफल तथा वस्त्राभूषणों सहित लग्न भेज दी (छं० १८८-८६) ; जयचन्द्र ने पुरोहित से यह जानकर कि विवाह का मूहूर्त पास ही है अपनी चतुरंगिणी सेना सजाकर, अगणित द्रव्य सहित, उत्साहपूर्वक देवगिरि के लिये प्रस्थान कर दिया है (छं० १६०-६२), उन की दस लाख सेना विवाहोत्सव के उत्साह में स्थान-स्थान पर ठहरती आगे बढ़ रही है (छं० १६३-६४) ; हे दिल्लीश्वर ! कलियुग में कीर्ति अमर करने के लिये आप भी चढ़ चलिये, देवगिरि की मुग्धा आप ही के योग्य है,

जिसके व्रत के कारण शिव ने मुझे आप के पास भेजा है, कुमारी ने आप का ही वरण करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर रखी है, अस्तु हे राजन्, विलम्ब न करिये, एक मास की अवधि है, विवाह हेतु अपने मन को अनुरक्त कर लीजिये :

कह हंस राज राजन सु बत्त । चढ़ि चलौ कलू रष्षन सु कत्थ ॥
तुम योग नारि बरनी कुमारि । हूं पठय ईस तुअ वृत्त नारि ॥ १६५
उन लियौ वृत्त तुअ दृढ्ढ नेम । नन करि विरम्म राजन सु एम ॥
इक मास अवधि दुज कहै वत्त । व्याहन सु काज मन करौ रत्त ॥ १६६,

यह सुनकर राजा ने शशिवृता से मिलने के लिये संकेत-स्थल पूछा (छं० १६६) ।

ऐसी ही स्थिति में रुक्मिणी ने संकेत किया था—'हमारे यहाँ विवाह के पहले दिन कुल-देवी की यात्रा हुआ करती है । उसमें नववधू को नगर के बाहर श्री पार्वती जी के मन्दिर में जाना पड़ता है' :

पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा
यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ॥ १०-५३-४२ ,
श्रीमद्भागवत् ;

तब उसी परिपाटी पर विवाह की प्रेरणा और निमंत्रण देने वाला हंस पृथ्वीराज से माघ शुक्ल त्रयोदशी को हरसिद्धि के स्थान (अर्थात् पार्वती या देवी के मन्दिर) में मिलन की स्पष्ट बात क्यों न कहता :

कह यह दुज संकेतं । हो राज्यंद धीर ढिल्लेसं ॥
तेरसि उज्जल माघे । ब्याहन बरनीय थान हर सिद्धिं ॥ २००

फिर पृथ्वीराज द्वारा अपने आने का वचन दे देने पर (छं० २०१), वह कृत प्रेम-दूत उधर वापस उड़ गया :

इह कहि हंस जु उड़ि गयौ । लग्यौ राज श्रोतान ॥
छिन न हंस धीरज धरत । सुख जीवन दुख प्रान ॥ २०३ ,

और इधर पृथ्वीराज 'ज्यों रुकमनि कन्हर बरिय'[1] हेतु देवगिरि जाने का आयोजन करने लगे ।

'नैषध' के नल और दमयन्ती यदि एक दूसरे के देशों से आने वाले लोगों के द्वारा परस्पर गुण सुनकर अनुरक्त होते हैं तो 'रासो' के पृथ्वीराज और शशिवृता क्रमशः नट और शिल्पिका द्वारा पारस्परिक राग के लिये प्रेरित किये जाते हैं । 'नैषध' का हंस दूत यदि दमयन्ती को एकान्त में ले जाकर

---

१. छं० ३४, पद्मावती समय २०, 'पृथ्वीराज-रासो';

बहुत समझाता है तो एकान्त का अभिलाषी 'रासो' का हंस दूत भी पृथ्वीराज के साथ पर्याप्त माथापच्ची करता है। दशायें पृथक हैं। वहाँ स्वयम्वर होना है और वरमाला डालने का पूर्ण उत्तरदायित्व दमयन्ती का है, यहाँ हरण होना है जिसमें पराक्रम रूप में पृथ्वीराज को मूल्य चुकाना है। नारी को स्वयम्वर में परीक्षा देनी है परन्तु पुरुष को समर में। परिस्थितियाँ भिन्न हैं। 'नैषध' और 'रासो' के विवाहों में प्रधान कार्य-पात्र पृथक हैं, एक में नारी है तो दूसरे में नर, अस्तु अनुरूप दूत होकर भी उनके दूतत्व में विभेद है। प्रयोजन एक है परन्तु वातावरण भिन्न है। और इसी का ज्ञान चंद के कवि-कर्म की सफलता का रहस्य है।

प्रस्तुत 'शशिवृता विवाह नाम प्रस्ताव' में कवि ने प्रेम-वाहक हंस दूत, रूप-परिवर्तन, अप्सरा और कन्या-हरण इन चार प्राचीन कथा-सूत्रों का कुशलता से उपयोग किया है।

रासो में पद्मावती, शशिवृता और संयोगिता के विवाहों का ढंग लगभग समान है परन्तु 'श्रीमद्भागवत्' की रुक्मिणी[1] की भाँति चंद उन्हें, 'राक्षस विवाह' नहीं कहते वरन् 'गन्धर्व विवाह'[2] कहकर शूर वीरों को बढ़ावा देते हैं। अपने इन गन्धर्व विवाहों का वर्णन उन्होंने बहुत जम कर किया है तथा इनमें शृङ्गार और वीर का घटनावश अनुपम योग होने के कारण विप्रलम्भ, उत्साह, क्रोध, भय और सम्भोग आदि भावों के मनोमुग्धकारी प्रसंगों के चित्रण में उन्हें आशातीत सफलता मिली है। यहीं देखे जाते हैं कवि के लोक-प्रसिद्ध, स्वाभाविक, ललित और हृदयग्राही अप्रस्तुत, उसके वर्णों के सुघड़ संयुजन द्वारा निर्मित विस्फोटक शब्दों की अर्थ-मूर्तियाँ तथा वह ध्वनि जो हमें प्रत्यक्ष से ऊँचा उठाकर कल्पना के असीम सरस आलोक-लोक में विचरण कराती है।

श्रीहर्ष ने 'नैषध' में नल के स्वरूप की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है—'किस स्त्री ने रात को स्वप्न में उन्हें नहीं देखा? नाम की भ्रान्ति

---

१. निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य
मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्य शुल्काम् ॥१०-५३-४१,

[अर्थात्—मगध की सेना को बलपूर्वक नष्ट करते हुए, केवल वीर्य रूप मूल्य देकर मेरे साथ राक्षस-विधि के अनुसार विवाह कीजिये।]

२. सार प्रहारति भेवो। देवो देवत्त जुद्धयौ बलयं ॥
गंध्रब्वी प्रति ब्याहं। सा व्याहं सूर कलयामं ॥ छं० २६८, स० २५;

से किसके मुँह से उनका नाम नहीं निकला ? और सुरत में नल के स्वरूप में अपने पति का ध्यान करके किसने अपने काम को जाग्रत नहीं किया ?' :

न का निशि स्वप्नगतं ददर्श तं जगाद गोत्रस्खलिते च का न तम्।
तदात्मताध्यातधवा रते च का चकार वा ना स्वमनोभवोद्भवम् ॥
३०, सर्ग १;

और आगे वे लिखते हैं—'दमयन्ती, इच्छा से पति बनाये हुए नल को निद्रा में किस रात्रि में नहीं देखती थी ? स्वप्न अदृष्ट वस्तु को भी भाग्य से दृष्टिगोचर कर देता है' :

निमीलितादक्षियुगाच्च निद्रया हृदोऽपि बाह्येन्द्रियमौनमुद्रितात्।
अदर्शि संगोप्य कदाप्यवीक्षितो रहस्यमस्याः स महन्महीपतिः ॥ ४०,
वही;

स्वप्न में देखे हुए प्रिय की बहुधा प्राप्ति ने 'स्वप्न में प्रिय दर्शन' को कालान्तर में एक कथा-सूत्र बना दिया। 'श्रीमद्भागवत्' में बलि के औरस पुत्र, शंकर के परम भक्त, शोणितपुर के शासक वाणासुर के—"ऊषा नाम की एक कन्या थी। कुमारावस्था में उसने स्वप्नकाल में, अदृश्य और अश्रुत प्रद्युम्न के कुमार परम सुन्दर अनिरुद्ध से रति-सुख प्राप्त किया। फिर अचानक उन्हें न देखने पर ऊषा—'हे प्रिय, तुम कहाँ हो' इस प्रकार कहती हुई अति व्याकुल हो उठ बैठी और अपने को सखियों के बीच में देखकर अति लज्जित हुई" :

तस्योषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिम्।
कन्यालभत कान्तेन प्रागदृष्टश्रुतेन सा ॥ १२
सा तत्र तम पश्यन्ती क्वासि कान्तेति वादिनी।
सखीनां मध्य उत्तस्थौविह्वला व्रीडिता भृशम.॥ १०-६३-१३;

दमयन्ती को नल मिले और ऊषा को अनिरुद्ध। इसी प्रकार साहित्य में स्वप्न, प्रिय द्वारा प्रिया और प्रिया द्वारा प्रिय की प्राप्ति की योजना का एक मिस हो गया।

'पृथ्वीराज-रासो' में अनेक स्वप्नों का उल्लेख है परन्तु एक स्थल पर अदृश्य प्रिया को निद्राकाल में देखने के उपरान्त प्रिय को उसकी प्राप्ति स्वप्न-दर्शन-कथा-सूत्र से आलोकित है। नारी यदि स्वप्न में देखे हुए पुरुष को प्राप्त कर सकती है तो पुरुष को स्वप्न में देखी हुई नारी की प्राप्ति से कवि कैसे वञ्चित कर सकता है।

रासो के 'हंसावती विवाह नाम प्रस्ताव ३६' में रणथम्भौर के राजा

भान की सुन्दरी कुमारी पर कामासक्त होकर, शिशुपाल-वंशी चँदेरीपति पंचाइन, राजकन्या से विवाह या राज्य-हरण का प्रस्ताव और घुड़की देता है (छं० २-५) । काम-लिप्सा के नग्न प्रदर्शन में निहित यह ललकार राजा भान का क्षत्रियत्व जगा देती है और वह पंचाइन को कोरा-करारा जवाब दे देता है (छं० ६-७), जिसके फलस्वरूप पंचाइन शाह ग़ोरी की सहायता लेकर रणथम्भौर को आ घेरता है (छं० ८-१८) । इस पर भान दिल्लीश्वर चौहान से सहायता की याचना करते हैं (छं० १६-२०), और पृथ्वीराज 'भान वीर पुकार, धाइ आइ ढिल्लीवै' समाचार कन्ह द्वारा 'कालंक राइ कप्पन बिरद' चित्तौड़ के रावल के पास भेज देते हैं (छं० २१-२२) । आर्त की पुकार और शरणागत का दैन्य, दिल्ली तथा चित्तौड़ की सहायता ले आते हैं (छं० ३६) । फिर मृदंग की भाँति शत्रु को पूर्व और पश्चिम दो ओर से दबाये हुए, उस भयंकर युद्ध में कमनीय मूर्ति पराक्रमी चौहान विजयी होते हैं (छं० ४०-८५) । विजय की रात्रि में पृथ्वीराज एक हंसगामिनी और मानिनी सुन्दरी को पुष्प लिये हुए देखते हैं :

हंस सुगति माननी । चंद जामिनि प्रति घट्टी ॥
इक तरंग सुंदरि सुचंग । हथ नयन प्रगट्टी ॥
हंस कला अवतरी । कुमुद वर फुल्लि समथ्थै ॥
एक चित सोइ बाल । मीत संकर अस रथ्थै ॥
तेहि बाल संग में पूछुय लिय । बरन बीर संगति जुवह ॥
जाग्रत्त देवि बोलि न कछू । नवह देव नन मानवह ॥ ८६

यहाँ पृथ्वीराज के पास 'श्रीमद्भागवत्' की योगमाया से अनिरुद्ध को सोते ही उठा लानेवाली ऊषा की सखी चित्ररेखा सदृश कोई सखा था नहीं, अस्तु प्रात:काल राजा ने अपने चिर सहचर कविचंद को अपना स्वप्न सुनाया । जिसे सुनते ही उसने कह दिया कि स्वप्न की अश्रुत तथा अदृष्ट रमणी और कोई नहीं, आपकी भविष्य पत्नी राजकुमारी हंसावती है (छं० ८७) । तदुपरान्त दैवी प्रतिभा-सम्पन्न कवि उसका स्वरूप वर्णन करने लगा (छं० ८८-६८) । इसी बीच में राजा भान का पुरोहित लग्न लेकर आ गया (छं० ६६) ।

पुरुषार्थी वीरों को इन परिस्थितियों में स्वाभाविक रूप से पुरस्कार-स्वरूप सुन्दरियों की प्राप्ति का साक्षी मध्ययुगीन योरप का वीर-साहित्य भी है । परन्तु अवस्था विशेष में शूरता के वरदान पर भी विचार कर लेने के साथ हमारा अभीष्ट यहाँ स्वप्न में प्रिय-दर्शन विषयक कथा-सूत्र है ।

विवेचित प्राचीन कथा-सूत्रों की भाँति लिङ्ग-परिवर्तन भी एक सुप्रसिद्ध कथा-सूत्र है। इन्द्र का अपनी प्रेयसी दानवी विलिस्तेङ्गा के साथ असुरों के बीच में पुरुषों के सामने पुरुष और स्त्रियों के सामने स्त्री रूप में प्रेम पूर्वक विचरण इसका सबसे प्राचीन और अभी तक सुलभ उदाहरण है।[१] विष्णु द्वारा स्त्री-रूप धारण करके समुद्र-मन्थन से निकले हुए अमृत-कमण्डलु को दानवों से लेकर देवताओं को दे देने का वृत्तान्त भी मिलता है ('विष्णु-पुराण' १-६-१०६)। परन्तु यह सब देवता सम्बन्धी है, जो अलौकिक शक्ति-सम्पन्न होने के कारण ऐसे रूप धारण कर सकने में स्वाभाविक रूप से सक्षम समझे जाते हैं। परन्तु मानव-जगत में ये परिवर्तन अघटित, असाधारण और अपूर्व व्यापार हैं। स्त्री का पुरुष हो जाना और पुरुष का स्त्री हो जाना पाँच प्रकारों से साहित्य में उपलब्ध होता है :—

(१) इच्छा-सरोवरों में स्नान द्वारा (अचानक और अवांछित रूप से)— जैसे 'बौद्धायन श्रौत सूत्र' में शफाल देश के राजा भाङ्गाश्विन् के पुत्र ऋतुपर्ण को यज्ञ में अपना भाग न देने के कारण रुष्ट इन्द्र ने सरोवर में स्नान करते ही सुदेवला नामक स्त्री के रूप में परिवर्तित कर दिया था। पुरुष और स्त्री रूपों में उन्होंने अनेक पुत्रों को जन्म दिया और इन्द्र द्वारा पूछने पर, अपने स्त्री-रूप से हुए पुत्रों के प्रति अधिक अनुराग बताया। 'महाभारत' के शान्ति-पर्व में युधिष्ठिर द्वारा पूछे जाने पर कि रति में स्त्री को अधिक आनन्द मिलता है या पुरुष को, भीष्म ने ऋतुपर्ण की उल्लिखित कथा सुनाई थी। 'कथा-प्रकाश' में दो गर्भवती रानियाँ भिन्न योनि वाले बालकों का प्रसव करने पर उनका विवाह करने के लिये वचनबद्ध होती हैं। दोनों कन्याओं को जन्म देती हैं परन्तु उनमें से एक वास्तविकता को छिपा कर अपनी कन्या को पुत्र बतलाती है। वयस्क होने पर उनका विवाह होता है और भेद खुल जाता है जिससे युद्ध की घटायें घिर आती हैं। वर बनी हुई कन्या घोड़े पर चढ़कर भाग खड़ी होती है और अचानक एक पीपल पर बैठे हुए पक्षियों के मुँह से अपनी कथा की चर्चा के साथ सुनती है कि यदि उक्त कन्या इस वृक्ष के नीचे के कूप में स्नान कर ले और उसका जल पी ले तो वह पुरुष हो जाय। राजकन्या तदनुसार करती है और पुरुष होकर घर लौट जाती है। 'कथा-रत्नाकर' में भी लगभग इसी ढंग की कथा है।

(२) श्राप या वरदान द्वारा—जिसके अनेक उदाहरण विविध पुराणों,

---

१. रिलिजन ऐन्ड फिलासफ़ी आव दि वेद, कीथ, भाग १, पृ० १२५ ;

'रामायण' और 'कथासरित्सागर' में पाये जाते हैं। 'लिङ्ग-पुराण' में वर्णित है कि मनु की ज्येष्ठा और प्रिय कन्या इला, मित्र और वरुण के वरदान से सुद्युम्न नामक पुरुष हो जाती है। बुध के महल में वह क्रमशः स्त्री और पुरुष होती रहती है। स्त्री-रूप में बुध द्वारा वह पुरुरवा को जन्म देती है और पुरुष सुद्युम्न रूप में उससे तीन पुत्र पैदा होते हैं। सायणाचार्य ने 'ऋृकवेद' के भाष्य में देवताओं के श्राप द्वारा आसङ्ग के स्त्री होने और मेध्यातिथि के वर से उसके पुनः पुरुष होने का वृत्तान्त दिया है।

(३) मंत्र-तंत्र द्वारा—जैसे 'वैतालपंचविंशतिका' के मूलदेव की प्रसिद्ध कहानी है, जिसमें अभिमंत्रित गोलियाँ मुँह में रखने से, स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाने का कौशल मिलता है।

(४) धार्मिक-अधार्मिक विचारों के कारण—जैसे 'दिव्यावदान' की रूपावती जो एक विभुक्षिणी से अपने नव-जात शिशु की रक्षा तथा उसकी क्षुधा-तृप्ति हेतु अपने पयोधर काट कर उसे दे देती है, और अपनी इस दया तथा उच्च विचार के कारण पुरुष हो जाती है। 'धम्मपद-भाष्य' का सोरेय्य नामक व्यक्ति महाकच्चयन के वर्ण के प्रति दुर्भावना करने के कारण स्त्री हो गया था और स्त्री-रूप में छै बच्चों को जन्म देने के उपरान्त उन्हीं ऋषि की कृपा से पुनः पुरुष-रूप प्राप्त कर सका था। लिङ्ग-परिवर्तन सम्बन्धी इस प्रकार के उदाहरण केवल बौद्ध-साहित्य में प्राप्त होते हैं।

(५) यक्ष द्वारा—जैसे 'महाभारत' के शिखंडी की कथा है। 'पञ्चतंत्र' और 'गुलबकावली' में एक देव द्वारा भी लिङ्ग-परिवर्तन सम्बन्धी कथायें मिलती हैं।

डबल्यू नार्मन ब्राउन[१] ने उपर्युक्त प्रकारों की विस्तारपूर्वक विवेचना करते हुए, इस कथा-सूत्र के उद्गम में पैठने का प्रयास किया है। उनका निष्कर्ष है कि एक (लिङ्ग) वर्ग वालों की दूसरे (लिङ्ग) वर्ग वालों में होने की यदा-कदा अभिलाषा, हिजड़ों का स्त्री-रूप में विचरण, प्रेत-बाधाओं आदि के भय के कारण बहुधा बालकों के बालिकाओं सदृश नाम, भक्तों का देवता की प्रीति हेतु स्त्री-रूप धारण (परन्तु साम्ब की भाँति उसका दुरुपयोग करने पर महान् आपत्ति सूचक), स्त्री-पुरुषों में अर्द्धनारीश्वर सदृश विपरीत पक्ष के शारीरिक लक्षण आदि ने मिलकर इस लिङ्ग-परिवर्तन सम्बन्धी कथा-सूत्र को साहित्य में जन्म दिया होगा और फिर कथा अपनी स्वतंत्र प्रकृतिवश इसे अनुकूल रूप देती गई।

---

१. चैंज आव सेक्स ऐज़ ए हिन्दू स्टोरी मोटिफ़, जर्नल आव द्वि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी, जिल्द ४७, पृ० ३-२४ ;

'पृथ्वीराज रासो' में आई हुई लिङ्ग-परिवर्तन विषयक कथा, शिखंडी की कथा से मिलती-जुलती है, अस्तु हम पहले 'महाभारत' की कथा पर दृष्टि-पात् करेंगे। इस 'इतिहास-काव्य' के आदि-पर्व में काशी-नरेश की कन्या अम्बा, भीष्म द्वारा अपहृत होने पर शाल्व को पति-रूप में पूर्व ही स्वीकार किये जाने का आग्रह दिखाकर, इच्छानुसार जाने की अनुमति पा जाती है। उद्योग-पर्व में हम उसे शाल्व द्वारा तिरस्कृत, उसके लिये भीष्म से युद्ध में परशुराम की पराजय, भीष्म के वध हेतु उसकी तपस्या, अपने आधे शरीर से नदी और आधे से वत्सराज की कन्या-रूप में उसका जन्म, उसकी पुन: तपस्या और अगले जन्म में भीष्म का वध करने का उसे शंकर द्वारा वर-दान का वर्णन पाते हैं। इसी पर्व में पढ़ते हैं कि पुत्र के लिये तप करने वाले राजा द्रुपद को शंकर ने वर दिया कि तुम्हारे एक कन्या पैदा होगी जो बाद में पुरुष हो जायगी। समयानुसार द्रुपद के शिखंडी नाम की कन्या हुई परन्तु पुत्र कह कर उसकी प्रसिद्धि की गई। वयस्का होने पर, शिव के वर से आश्वस्त राजा ने दशार्ण-कुमारी से उसका विवाह कर दिया। तब रहस्य खुल गया और अपमान का प्रतिशोध लेने के लिये दशार्ण में पांचाल पर चढ़ाई की जाने की योजना प्रारम्भ हो गई। माता-पिता पर विपत्ति देखकर शिखंडी वन में चली गई और वहाँ बहुत समय तक निराहार रहकर उसने अपना शरीर सुखा डाला, तब एक दिन स्थूणाकर्ण नामक यक्ष उसपर द्रवीभूत हुआ और उसने उसके स्वसुर हिरण्यवर्मा द्वारा उसकी परीक्षा तक, उसे अपना पुरुषत्व देकर उसका स्त्रीत्व ले लिया। इस आदान-प्रदान के बाद शिखंडी पांचाल लौट आया। इसी बीच स्थूणाकर्ण को कुबेर ने शिखंडी की मृत्यु तक स्त्री बने रहने का श्राप दे दिया। परीक्षा में शिखंडी पुरुष सिद्ध हुआ और युद्ध की विभीषिका समाप्त हो गई। तदुपरान्त स्थूणाकर्ण का पुरुषत्व लौटाने वह वन में गया और वहाँ आजीवन पुरुष बने रहने का प्रसाद पाकर हर्ष से लौट आया। यह वृत्तान्त बताकर भीष्म ने दुर्योधन से कहा—"द्रोण से उसने भी शिक्षा पाई है, द्रुपद का यह पुत्र महारथी शिखंडी पहले स्त्री था पीछे पुरुष हो गया है, काशिराज की ज्येष्ठा कन्या अम्बा ही द्रुपद कुलोत्पन्न शिखंडी है, यह यदि धनुष लेकर युद्ध के लिये उपस्थित होगा तो मैं क्षण भर भी इसकी ओर न देखूँगा और न शस्त्र ही छोड़ूँगा; हे कुरुनन्दन, मेरा यह व्रत पृथ्वी पर विश्रुत है कि स्त्री, पूर्व स्त्री, स्त्री-नाम और स्त्री-स्वरूप वाले पर मैं बाण नहीं छोड़ता, इसी कारण मैं शिखंडी पर भी प्रहार नहीं करूँगा"

शिष्यार्थं प्रददौ चाथ द्रोणाय कुरुपुङ्गवः ।
शिखण्डिनं महाराज पुत्रं स्त्रीपूर्विणं तथा ॥६१···
एवमेव महाराज स्त्री पुमान द्रुपदात्मजः ।
स सम्भूतः कुरुश्रेष्ठ शिखण्डी रथसत्तमः ॥६४
ज्येष्ठा काशिपते कन्या अम्बा नामेति विश्रुता ।
द्रुपदस्य कुले जाता शिखण्डी भरतर्षभ ॥६५
नाहमेनं धनुष्पाणिं युयुत्सुं समुपस्थितम् ।
मुहूर्तमपि पश्येयं प्रहरेयं न चाप्युत ॥६६
व्रतमेतन्मम सदा पृथिव्यामपि विश्रुतम् ।
स्त्रियां स्त्रीपूर्वके चापि स्त्रीनाम्नि स्त्रीस्वरूपिणि ॥६७
न मुञ्चेयमहं बाणम् इति कौरवनन्दन ॥६८
न हन्यामहमेतेन कारणेन शिखण्डिनम् ।
एतत तत्वमहं वेद जन्म तात शिखण्डिनः ॥६६,
अम्बोपाख्यानपर्व (उद्योगपर्वणि);

रासो के 'कनवज्ज समयो ६१' की लिङ्ग-परिवर्तन सम्बन्धिनी कथा इस प्रकार है। कन्नौज और दिल्ली के मार्ग में जब कान्यकुब्जेश्वर की विशाल वाहिनी से चारों ओर से घिरे हुए पृथ्वीराज संयोगिता का अपहरण करके, उसे घोड़े पर अपने आगे बिठाये दिल्ली की ओर बढ़ रहे थे तथा उनके सामंत अपने स्वामी की रक्षा के लिये युद्ध में अपने प्राणों की आहुति दे रहे थे, उस समय अपने योद्धा वीरवर अत्ताताई चौहान को विषम रण करके वीरगति पाते देखकर (छं० १६५६-६१), दिल्लीश्वर ने चंद से पूछा—'अमित साहसी शूरमा अत्ताताई का पराक्रम देखकर दोनों दलों में टकटकी बँध गई थी ; हे कवि, तुम अतुल बल, असमान शरीर, औपमेय योद्धा और बेजोड़ युद्ध के स्वामी की उत्पत्ति की कथा सुनाओ' :

अत्ताताइ अभंग भर। सब पहु प्राक्रम पेखि ॥
लगी टगटगी दुअ दलनि। त्रिप कवि पुच्छि विसेष ॥१६७०
अतुलित बल अतुलित तनह। अतुलित जुद्ध सु विंद ॥
अतुलित रन संग्राम किय। कहि उतपति कवि चंद ॥१६७१

कवि ने उत्तर दिया—'आशापुर राज्य-मंडल के तोमरों का प्रधान (मंत्री) चौरंगी (चतुरंगी) चौहान था, उसके घर में असंख्य धन और पतिव्रता पत्नी थी, जिसके गर्भ से उत्पन्न पुत्री की ख्याति पुत्र रूप में हुई ; अत्ताताई नामकरण करके कुमारों सदृश उसके संस्कार किये गये और ब्राह्मणों को

दान दिये गये तथा अनंगपाल तोमर के दीवान के पुत्र-रूप में वह पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुई :

चौरंगी चहुआन । राज मंडल आसापुर ॥
तूंअर धर परधान । सु वर जानै वृत्तासुर ॥
धर असंष धर धरिय । एक मारिय सुचि धाइय ॥
तिहिं उर पुत्री जाइ । पुत्र करि कही वधाइय ॥
करि संसकार दुज दान दिय । अत्ताताइय कुल कुअर ॥
त्रिप अनंगपाल दीवान महि । पुत्र नाम अनुसरइ सर ॥१६७२,

उस अत्यन्त स्वरूपवान को देखकर राजा उसका उठकर सम्मान करते थे, उसके कारण चौरंगी चौहान की कीर्ति बढ़ गई, बारह वर्ष तक उसकी माता उसका रूप छिपाये रही और राज्य-कार्य में चौहान के पुत्र-रूप में उसका उल्लेख किया गया, मनुष्य और देवता उसके रूप पर विमुग्ध थे ; उसी समय उसकी माता ने हरद्वार जाकर शिव की शरण लेने का विचार किया :

अति तन रूप सरूप । भूप आदर कर उट्ठहि ॥
चौरंगी चहुआन । नाम कीरति कर पट्ठहि ॥
द्वादस बरस स पुज्ज । मात गोचर करि रष्यौ ।
राज काज चहुआन । पुत्र कहि कहि करि भष्यौ ॥
हरद्वार जाइ बुल्यौ सु हर । सेव जननि संहर करिय ॥
नर कहै रवन रवनिय पुरुष । रूप देषि सुर उद्धरिय ॥१६७३

इस कथा में 'महाभारत' के शिखंडी सदृश अत्ताताई के विवाह की विडम्बना सामने नहीं आई। 'किशोरावस्था में पदार्पण करते ही उसके स्त्रियोचित अङ्ग प्रगट होने लगे और उसकी माता अर्द्ध रात्रि में उसे लेकर शिव के आश्रय हेतु चल दी :

जब त्रिय अंग प्रगट्ट हुअ । तब किय अंग दुराइ ॥
अद्ध रयन लै अनुसरिय । सिव सेवन सत भाइ ॥१६७४

शिखंडी, माता-पिता पर आपत्ति देखकर अकेले ही वन को भाग गई थी और रासो में कन्या की माता का भी इससे आगे कोई उल्लेख नहीं मिलता ।

'भगवान् शंकर की स्तुति करते हुए (छं० १६७५-८३), उस बाला ने सारी शंकायें त्यागकर, अविचल रूप से निराहार व्रत की दीक्षा लेकर, शिव का जप आरम्भ कर दिया :

ईस जप्प उर दिन धरति । तजि संका सुर बार ॥
सो बाली लंघन किये । पानी पत्र अधार ॥ १६८४,

भयावने हिंसक पशुओं वाले वन में (छं० १६८१), शिव का ध्यान किये हुए उस कन्या को बिना अन्न-जल के छै मास बीत गये, तब उसके चित्त का निष्कपट भाव परख कर :

षट् मास गये बिन अन्न पान। दिष्यौ सु चित निह कपट मान॥ १६६२,

एक रात्रि के तीसरे प्रहर के स्वप्न में शिव उसके साक्षात् हुए :

जगि जगि निसा तज्जियं त्रिजाम। सपनंत ईस दिष्यौ प्रमान॥ १६६३,

और प्रसन्न होकर उन्होंने उससे वर माँगने की आज्ञा दी :

एक दिवस सिव रीझि कै। पूछन छेहन लीन॥
सुनि सुनि बाल बिसाल तौ। जो मंगै सोइ दीन॥ १६८६ ;

कन्या ने कहा—'मेरे पिता योगिनिपुर के स्वामी अनंगपाल के मंत्री हैं, मुझे पुत्र-रूप में प्रसिद्ध करके वे झंझट में पड़ गये हैं; हे सर्वज्ञ! सती के प्राणाधार, संगीत के अधिष्ठाता, काम को जलाने, यम का पाश काटने और तीनों लोकों को आलोकित करने वाले त्रिशूलपाणि! मेरे पिता का अपवाद मिटाइये, आप को छोड़कर अन्य कोई इस कार्य में समर्थ नहीं है' :

मुझ पित जुग्गिनिपुर धनिय। अनँगपाल परधान॥
पुत्र पुत्र कहि अनुसरिय। जानि वितड्डुर मानि॥ १६८७
विदित सकल सुनि चपल। सतीअ लंपट बिन कपटे॥
भगत उधव अरुविंद। सीस चंदह दिषि झपटे॥
गीत राग रस सार। सुभर भासत तन सोभित॥
काम दहन जम दहन। तीन लोकह सोय लोकित॥
सुर अनँग निद्धि सामँत गवन। अरि भंजन सज्जन रवन॥
मो तात दोष बर भंजनह। तुअ बिन नह भंजै कवन॥ १६८८

इसी कथा में आगे अवढर दानी शिव का कथन—'मैंने पूर्व पुत्र ही दिया था, उसे प्रमाणित करूँगा, अस्तु जो कुछ मनोकामना है उसकी पूर्ति करता हूँ' :

पुत्र लिषिनि पुब्बैं कहों। देउ सु ताहि प्रमान॥
जु कछु इंछ बंछै मनह। सो अप्पौ तुहि ध्यान॥ १६६०,

पढ़कर, शिखंडी के पिता राजा द्रुपद का स्मरण आ जाता है। उन्होंने भी पुत्र-प्राप्ति हेतु शंकर की तपस्या के फलस्वरूप पुत्री पाई थी, जिसको बाद में पुरुष हो जाने का वर था। अस्तु यह स्पष्ट है अज्ञाताई की कथा 'महाभारत' की शिखंडी-कथा की प्रणाली का सहारा लेकर लिखी गई है।

शंकर उस कन्या से उसी स्वप्नकाल में आगे कहते हैं कि तेरा नाम

में अत्ताताई रखता हूँ; हे पुत्र, तेरा स्त्री-रूप चला जायगा, तू वीर और पराक्रमी योद्धा होगा, युद्ध में कोई तेरी समानता न कर सकेगा (छं० १९९४-९८)। यह कहकर डमरूधर अन्तर्द्धान हो गये (छं० १९९८–९९)।

चंद ने कहा कि हे संभरेश चौहान् ! दिल्ली लौटने के एक मास छै दिन बाद उक्त कन्या को पुरुषत्व प्राप्त हो गया :

इक्क मास षट दिवस बर। रहि नृप दिल्ली थान ॥
सु बर वीर गुन उप्पजिय। सुनि संभरि चहुआन ॥ २००५ ;

शिव-पार्वती द्वारा सिर पर हाथ रखने के कारण परम सामर्थ्यवान् अत्ताताई अपने शरीर पर राख मले, शृङ्गी बाजा और तीक्ष्ण त्रिशूल लिये रहता था; युद्ध-भूमि में उसकी ललकार के साथ किलकिलाती हुई योगिनी साथ-साथ चलती थी :

सिव सिवाह सिर हथ्थ। भयौ कर पर समथ्थ दै ॥
सु विधि राज आदरिय। सत्ति स्वामित्त अथ्थ लै ॥
वपु विभूति आसरै। सिंगि संग्राह धरै उर ॥
त्रिजट कथं कंठरिय। तिष्ष तिरसूल धरै कर ॥
कलकंत बार किलकंत क्रमि। जुग्गिनि सह सथ्थै फिरै ॥
चौरंगि नंद चहुआन चित। अत्तताइ नामह सरै ॥ २००८

कविचंद द्वारा कही गई यह वार्ता पृथ्वीराज ने सुनी तथा अत्ताताई का शौर्य युद्ध में देखकर, उसे वीर-कार्य का कृती माना :

इह बत्ती कविचंद कहि। सुनिय राज प्रथिराज ॥
जुद्ध पराक्रम पेषि कैं। मंन्यौ सब क्रत काज ॥ २०१२

जहाँ तक शौर्य का प्रश्न है, भीष्म ने शिखंडी को 'रथसत्तम' भी कहा है। अत्ताताई की कथा का विन्यास रासो में शिथिल है। एक ही बात को पहले कहकर दूसरी बार फिर उसे विस्तारपूर्वक दोहराया गया है तथा कहीं-कहीं परस्पर विरोधी बातें भी आ गई हैं, परन्तु यह शिथिलता आद्योपान्त रासो की एक विशेषता है।

व्यतीत होती हुई ऋतु की कठोरता विस्मृत करने के उद्देश्य से वैदिक-कालीन आर्यों द्वारा पूर्ण समारोह के साथ नवीन ऋतु का अभिनन्दन कालान्तर में साहित्य में निःशेष ऋतुओं का एक साथ एक स्थान पर चित्रण करने के लिये प्रेरक रहा होगा। 'ऋक्वेद', 'अथर्ववेद', 'वाजसनेयी-संहिता', 'महाभारत' और 'मनुस्मृति' में ऋतुओं को व्यक्तित्व प्रदान करके उनका ऋचाओं द्वारा यजन तथा बलि प्रदान करने के उदाहरण अलभ्य नहीं हैं।

मानव के मिलन और वियोग के सुप्त भावों को जगाने वाले बरही के नृत्य, क्रौञ्च की क्रीड़ा, चातक की रट, कोकिल की कूज, भ्रमर के पुष्पासव-पान आदि भी प्रकृति-पट पर ऋतु-परिवर्तन के साथ सुलभ होते ही रहे होंगे। अपने मन के सुख और दुःख का स्पन्दन जड़ प्रकृति में आरोपित करके मानव ने अनुभूति की कि उसके आनन्द में चाँद हँसता है, मेघ उत्कर्ष देते हैं और विकसित पुष्प हास्य से झूम उठते हैं तथा उसके निराशा और अवसाद के क्षणों में, प्रकृति के ये विभिन्न अवयव उसके आत्मीय प्रिय सहचर की भाँति तादात्म्य भाव से प्रतिक्रिया स्वरूप तदनुसार आचरण करने लगते हैं। इस प्रकार प्रकृति के वे ही अङ्ग जहाँ दुखी विरही के लिये शूल हुए, सुखी संयोगी के लिये फूल बन गये। कवि ने अपने पात्र-पात्राओं की परिस्थिति के अनुसार साहित्य के पैतृक उत्तराधिकार में प्राप्त सम्वेदनशील प्रकृति के जड़ जगत को ही अपनी प्रतिभा के अनुसार नहीं हँसाया-रुलाया वरन् उसके आश्रित पशु-पक्षी भी अनुरूप व्यवहार कर उठे।

प्रस्रवण गिरि की गुफा में लक्ष्मण के साथ निवास करते हुए वाल्मीकि के राम ने वर्षा-ऋतु[1] का वर्णन करते हुए कहा—'यह वर्षा अनेक गुणों से सम्पन्न है। इस समय सुग्रीव अपने शत्रु को परास्त करके महान राज्य पर अभिषिक्त हो स्त्री के साथ रहकर सुख भोग रहे हैं। किन्तु मेरी स्त्री का अपहरण हो गया है, इसलिये मेरा शोक बढ़ा हुआ है। इधर, वर्षा के दिनों को बिताना मेरे लिये अत्यन्त कठिन हो रहा है'[2]। 'ब्रह्माण्डपुराण' (उत्तर-

---

१. वनोपगूढं गगनं न तारा न भास्करो दर्शनमभ्युपैति।
नवैर्जलौघैर्धरणी वितृप्ता तमोविलिप्ता न दिशः प्रकाशाः ॥४७
महान्ति कूटानि महीधराणां धाराविधौतान्यधिकं विभान्ति।
महाप्रमाणैर्विपुलैः प्रपातै मुक्ताकलापैरिव लम्बमानैः ॥ ४८
शैलोपलप्रस्खलमानवेगाः शैलोत्तमानां विपुलाः प्रपाताः।
गुहासु संनादितबर्हिणासु हारा विकीर्यन्त इवावभान्ति ॥ ४९
शीघ्रं प्रवेगा विपुलाः प्रपाताः निर्धौतशृङ्गोपतला गिरीणाम्।
मुक्ताकलापप्रतिमाः पतन्तो महागुहोत्सङ्गतलैर्धियन्ते ॥ ५०
सुरतामर्दविच्छिन्नाः स्वर्गस्त्रीहार मौक्तिकाः।
पतन्ति चातुला दिक्षु तोयधाराः समन्ततः ॥ ५१,
सर्ग २८, किष्किन्धा०, रामायण ;

२. इमाः स्फीतगुणा वर्षाः सुग्रीवः सुखमश्नुते।
विजितारिः सदारश्च राज्ये महति च स्थितः ॥ ५७

खण्ड) में वे कहते हैं–'चन्द्रमुखी सीता के विना मुझे चन्द्रमा भी सूर्य के समान (तापमान) प्रतीत होता है। हे चन्द्र, तुम अपनी किरणों से पहले जानकी को स्पर्श करो; (उनका स्पर्श करने से वे शीतल हो जावेंगी) फिर उन शीतल किरणों से मुझे स्पर्श करना'[1]। कृष्ण की रानियाँ कहती हैं— 'ऐ टिटिहरी! इस रात्रि के समय जब कि गुप्त बोध भगवान् कृष्ण सोये हुए हैं तू क्यों नहीं सो जाती? क्या तुझे नींद नहीं रही जो इस प्रकार विलाप कर रही है? हे सखि हमारे समान क्या तेरा हृदय कमलनयन के लीला-हास्यमय कटाक्ष-बाण से अत्यन्त बिंध गया है? अरी चकवी! तूने रात्रि के समय अपने नेत्र क्यों मूद लिये हैं? क्या अपने पति को न देख पाने के कारण ही तू ऐसे करुण स्वर से पुकार रही है? क्या तू भी हमारे समान ही अच्युत के दास्य भाव को प्राप्त होकर उनके चरण कमलों पर चढ़ाई हुई पुष्पमाला को अपने जूरे में धारण करना चाहती है'[2]। इसी प्रकार उन्होंने समुद्र, चन्द्र, मलयमारुत, मेघ, कोकिल, भूधर और नदी को भी सम्बोधन किया है।

कालिदास के यक्ष ने अपना विरह प्रेषित करने के लिये मेघ का पल्ला पकड़ा तो धोयी की कुवलयवती ने पवन का। ऋतु-वर्णन की साहित्य में

अहं तु हृतदारश्च राज्याच्च महतश्च्युतः।
नदीकूलमिव क्लिन्नवसीदामि लक्ष्मण॥ ५८
शोकश्च मम विस्तीर्णो वर्षाश्च भृशदुर्गमाः।
रावणश्च महाञ्छत्रुपारः प्रतिभाति मे॥ ५६,
सर्ग २८, किष्किन्धा०, रामायण;

१. चन्द्रोऽपि भानुवद्भाति मम चन्द्राननां विना॥ ६
चन्द्र त्वं जानकीं स्पृष्ट्वा करैर्मां स्पृश शीतलैः॥ ७, सर्ग ५,
किष्किन्धा०;

२. कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे
स्वपिति जगति राज्यमीश्वरो गुप्तबोधः।
वयमिव सखि कच्चिद्गाढनिर्भिन्नचेता
नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन॥
नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबन्धु-
स्त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि।
दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां
किं वा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम्॥
१०, ६०, १५-१६;

सजीवता से अनुप्राणित होकर संस्कृत के आचार्यों ने महाकाव्य के कई लक्षणों में उसके वर्णन मात्र की ही नहीं वरन् नाम ले लेकर उसके विभिन्न अङ्गों की भी गणना की है। यही कारण है संस्कृत के महाकाव्यों में अनिवार्य रूप से ऋतु-वर्णन की परिपाटी का।

स्वयम्भुदेव के वर्षा-वर्णन का एक अंश इस प्रकार है—'सीता और लक्ष्मण सहित जब दाशरथि वृक्ष के नीचे बैठे तो गगनाङ्गण में मेघ-जाल उसी प्रकार उमड़ आया जैसे सुकवि का काव्य प्रसरित होता है और जैसे ज्ञानी की बुद्धि, पापी का पाप, धर्मी का धर्म, मृगाङ्क की ज्योत्स्ना, जगत-स्वामी की कीर्ति, धनहीन की चिन्ता, कुलीन का यश, निर्धन का क्लेश, तूर्य का शब्द, आकाश में सूर्य की राशि और वन में दावाग्नि प्रसरित होते हैं वैसे ही अम्बर में मेघमाला फैल गई'[1]। अपभ्रंश कवि की इस प्रकार की योजना से तुलसी ने अपने 'रामचरितमानस' के किष्किन्धाकाण्ड में प्राकृतिक विधान करते हुए उपदेशात्मक अप्रकृतों के नियोजन की प्रेरणा पाई हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

प्रकृति के अनुरंजनकारी रूप, प्रत्येक ऋतु तथा उसके कारण लता, गुल्म, पुष्प, धान्य की उपज का सूक्ष्म और विस्तृत ज्ञान रखने वाले पुष्पदन्त का पावस-काल में प्रसाधित भूमि का वर्णन, कामनाओं को पूर्ण करने वाला और अमित सुख का स्वाभाविक दाता है।[2]

---

१. सीय स-लक्खण दासरहि, तरुवर मूलें परिट्ठिय जावेंहिं।
पसरइ सुकइहि कव्वु जिह, मेह-जालु गयणंगणे तावेंहिं॥
पसरइ जेम बुद्धि बहु जाणहों। पसरइ जेम पाउ पाविट्ठहों॥
पसरइ जेम धम्मु धम्मिट्ठहों। पसरइ जेम जोण्ह मयवाहहों॥
पसरइ जेम कित्ति जगणाहहों। पसरइ जेंम चिंता धणहीणहों॥
पसरइ जेम कित्ति सुकुलीणहों। पसरइ जेंम किलेसु णिहीणहु॥
पसरइ जेम सद्दु सुर-तूरहों। पसरइ जेंम रासि णहें सूरहों॥
पसरइ जेम दवग्गि वणंतरे। पसरिउ मेह-जालु तह अंबरे॥२८,१, पउमचरिउ;

२. मुग्ग-कुलत्थु-कंगु-जव-कलव-तिलेसी-वीहि-मासया॥
फलभर-णविय-कणिस-कण-लंपड-णिवडिय-सुय-सहासया॥
ववगय-भोय-भूमि-भव-भूरुह-सिरि-णरवइ-रमा सही।
जाया विविह-धण्ण-दुम-वेल्ली-गुम्म-पसाहणा मही॥ पृ० २९-३०, आदिपुराण;

सुरम्य वन में गुंजार पूर्वक विचरण करते हुए, मालती-पुष्पों के वक्ष देश का चुम्बन करने वाले भ्रमर के अति मुक्त रति-विलास को देखकर धनपाल ने श्रेष्ठ वसन्त का स्मरण किया जाना अनिवार्य बतलाया है।[1]

अपभ्रंश काव्य में कहीं विरहिणी चातक को सम्बोधन करके कहती है—'तुम हताश होकर कितना रोते रहोगे, तुम्हारी जल से और मेरी प्रियतम से, दोनों के मिलन की आशा पूरी न होगी'[2]। कहीं परदेशी प्रियतम मेघ-गर्जन सुनकर अपनी प्रेयसी की याद से आन्दोलित होकर कह बैठता है—'यदि वह प्रेम-पूर्ण थी तो मर चुकी है और यदि जीवित है तो प्रेम-शून्य है, दोनों प्रकार से मैंने धन्या को खो दिया, अरे दुष्ट बादल! तुम क्यों गरजते हो'[3]। कहीं अति शारीरिक कृशता वश विरहिणी को वलय गिरने के भय से अपनी भुजायें उठाकर चलते देख कवि अनुमान करता है कि वह प्रियतम के विरह-सागर में थाह ढूँढ़ रही है।[4] कहीं प्रियतम के आगमन का शकुन लेते हुए कौए को उड़ाने में क्षीण काया प्रोषितपतिका की आधी चूड़ियाँ पृथ्वी पर गिरकर टूट जाती हैं और शेष उसके उसी समय आगतपतिका हो जाने के कारण हर्षोत्फुल्ल शरीर के स्थूल हो जाने पर तड़ककर टूट जाती हैं।[5] कहीं हम विरही को अनुभव करते हुए पाते हैं कि सन्ध्या-काल भी वियोगियों को सुखद नहीं, क्योंकि उस समय मृगाङ्क वैसा ही तपता है जैसा सूर्य दिन में।[6] और कहीं एक आँख में सावन, दूसरी में भादों, नये पत्तों

---

१. जहिं मालइकुसुमामोयरउ, चुंवंतु भमइ वणि महुअरउ।
अइमुत्तए' वि जहिं रइ करइ, सो बालवसंतु को न सरइ॥ १०,
सन्धि ८, भविसयत्तकहा;

२. बप्पीहा पिउ पिउ भणवि कित्तिउ रुअहि हयास।
तुह जलि महु पुणु वल्लहइ बिहुँ वि न पूरिअ आस॥ ३८३-१,
हेमशब्दानुशासनम्;

३. जइ ससणेही तो मुइअ अह जीवइ निन्नेह।
बिहिं वि पयारेंहिं गइअ धण किं गज्जइ खल मेह॥ ३६७-४, वही;

४. वलयावलि निवडण भएँण धण उद्धब्भुअ जाइ।
वल्लह-विरह-महादहहो थाह गवेसइ नाइ॥ ४४४-२, वही;

५. वायसु उड्डावन्तिअए पिउ दिट्ठउ सहस त्ति।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तड त्ति॥ ३५२-१, वही;

६. मइँ जाणिउँ पिअ विरहिअहं क वि धर होइ विआलि।
णवर मिअङ्कु वि तिह तवइ जिह दिणयर खय-गालि॥ ३७७,१,वही;

के बिछौने में वसन्त, कपोलों पर शरद्, अङ्गों में ग्रीष्म, कटे हुए तिल-वन में अगहन रूप में हेमन्त तथा मुख-कमल पर शिशिर वाली विरह-जड़िता मुग्धा दृष्टिगोचर होती है।[1]

अब्दुलरहमान कृत 'सन्देशरासक' की प्रोषितपतिका एक पथिक द्वारा अपने प्रियतम को विरह-सन्देश भेजते हुए षट्-ऋतुओं में अपनी दशा का मार्मिक विवेचन करती है। उदाहरणस्वरूप हेमन्त में उसकी स्थिति देखिये– "सुगन्धि के लिये अगरु जलाया जाने लगा, शरीर पर केशर मली जाने लगी, दृढ़ आलिङ्गन सुखकर हुआ, दिन क्रमशः छोटे होने लगे परन्तु मेरा ध्यान प्रियतम की ओर लगा रहा। उस समय मैंने कहा, 'मैं दीर्घ श्वासों से लम्बी रातें बिता रही हूँ। तुम्हारी स्मृति मुझे सोने नहीं देती। तुम्हारा स्पर्श न पाने से ठंढक के कारण मेरे अङ्ग ठिठुर गये हैं। यदि इस शीत में भी तुम न आए तो हे मूर्ख! हे दुष्ट! हे पापी! क्या तुम मेरी मृत्यु का समाचार पाकर ही आओगे"[2]।

ऋतु-वर्णन विषयक काव्य-परम्परा का पालन करते हुए चंद ने भी रासो में ऋतुओं के अनुपम चित्र अवान्तर रूप से कहीं पुरुष और कहीं स्त्री-विरह का माध्यम बनाकर खींचे हैं, जो उसकी मौलिक प्रतिभा के द्योतक

---

१. एक्कहिँ अक्खिहिं सावणु अन्नहिं भद्दवउ।
माहउ महियल-सत्थरि गण्ड-त्थलेँ सरउ।
अङ्गिहिं गिम्ह सुहच्छी-तिल-वणि मग्गसिरु।
तहेँ मुद्धहेँ मुह-पङ्कइ आवासिउ सिसिरु॥ ३५७-२, वही;

२. धूइज्जइ तह अगरु घुसिणु तणि लाइयइ,
गाढउ निवडालिंगणु अंगि सुहाइयइ।
अन्नह दिवसह सन्निहि अंगुलमत्त हुय,
महु इक्कह परि पहिय णिवेहिय बम्हजुय॥ १८६,....
दीहउसासिहि दीहरयणि मह गइय णिरक्खर,
आइ ण णिद्दय णिंद तुज्झ सुयरंतिय तक्खर।
अंगिहिं तुह अलहंत धिठ्ठ करयलफरिसु,
संसोइउ तणु हिमिण हाम हेमह सरिसु।
हेमंति कंत विलवंतियह, जइ पलुट्टि नासासिहसि।
तं तइय मुक्ख खल पाइ मइ, मुइय विज्ज किं आविहसि॥
१६१, सन्देसरासक;

हैं। पिछले 'काव्य-सौष्ठव' और 'महाकाव्यत्व' शीर्षक प्रकरणों में उनका परिचय दिया जा चुका है।

जायसी के 'पदमावत' के बारहमासा के—

मिलहिँ जो बिछुरे साजन, अंकम भेंटि गहंत।
तपनि मृगशिरा जे सहैं, ते अद्रा पलुहंत ॥, आदि

और सूर के—

पिक चातक वन बसन न पावहिं बायस बलिहि न खात।
सूरस्याम संदेसन के डर पथिक न वा मग जात ॥, आदि

सदृश मर्म-स्पर्शी भावों के व्यक्तीकरण का श्रेय ऋतु-वर्णन विषयक काव्य-रूढ़ि को ही है।

रासो के अन्य महत्वपूर्ण कथा-सूत्र भी विचारणीय हैं। जब तक नवीन शिलालेख और ताम्रपत्र इस चरित-कथा काव्य के अनेक तथ्यों का इतिहासकारों द्वारा मनोनीत कराने के लिये नहीं मिलते तब तक कथा-सूत्रों और काव्य-रूढ़ियों के सहारे साहित्यकार कुछ निर्णय देने और विवेक जाग्रत करने का सद्प्रयास तो कर ही सकता है। यह किससे छिपा है कि उसकी इस दिशा की खोज वैज्ञानिक गुरु (Formulae) नहीं, जिनका परिणाम स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष हो जाता है वरन् ये वे मार्ग हैं जिनका सतर्क अनुसरण दुसाध्य गन्तव्य तक पहुँचने में कुछ दूर तक सहायता अवश्य कर सकता है।

प्रामाणिकता का द्वन्द्

जनश्रुति ने दिल्लीश्वर पृथ्वीराज और उनकी शूरवीरता की गाथा, हिन्दी-प्रदेशों के घर-घर में व्याप्त कर रखी थी। दिल्ली के इस अन्तिम हिन्दू सम्राट् का नाम हिन्दू जनता के लिये दान, उदारता, पराक्रम, निर्भयता, साहस और शौर्य की जाग्रति बनकर इन पौरुषेय गुणों के आवाहन का मंत्र भी हो गया था। अमित गुणों वाले इस योद्धा के कार्यों से अभिभूत होकर विमुग्ध जनता की अनुश्रुति का उनमें अन्य अश्रुत परन्तु अनुरूप तथा बहुधा अति-रंजित घटनाओं द्वारा अभिवृद्धि करना स्वाभाविक ही था। भारत की जातीय और धार्मिक नव चेतना को प्राण देने वाले शिवाजी और छत्रसाल के साथ राणा प्रताप, हम्मीरदेव तथा राणा साँगा की स्मृति सहित पृथ्वीराज का नाम भी हिन्दू, सम्मान और श्रद्धा के साथ स्मरण करता रहा। निरक्षर जनता का

सम्बल यदि पृथ्वीराज विषयक लोक-कथायें थीं तो शिक्षित जनता का कण्ठहार चंद वरदायी कृत 'पृथ्वीराज-रासो' था; जिसकी छाप एक ओर जहाँ हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी साहित्यों पर थी वहाँ दूसरी ओर उसने राजपूताना के राज्यों के इतिहास को भी प्रभावित कर रखा था। बारहवीं शताब्दी में यद्यपि भारत में युद्ध और शासन का भार क्षत्रियों पर ही था परन्तु पृथ्वीराज की जय और पराजय जनता की अत: हिन्दुओं की जीत और हार थी। रासो में हिन्दू जनता को लक्ष्य करके ही चंद ने मानों इस प्रकार के वर्णन किये हैं—
'हिंदू सेन उप्परै, साहि बज्जे रन जंगी'[1]।

'पृथ्वीराज-रासो' की कीर्ति योरप पहुँचाने का श्रेय कर्नल टॉड[2] (Colonel James Tod) को है। इस विद्या-मनीषी ने न केवल रासो के एक दीर्घ अंश का अंग्रेजी में अनुवाद किया[3] वरन् इस वीर-काव्य के आधार पर अपना 'राजस्थान' नामक विख्यात इतिहास-ग्रन्थ लिखा। 'राजस्थान' में उक्त नाम वाले प्रदेश के प्राय: प्रत्येक शासक वंश के पूर्व पुरुष का सम्बन्ध पृथ्वीराज और उनके रासो से पाकर प्राच्य विद्या-विशारद योरोपीय विद्वानों का इस महाकाव्य की ओर उन्मुख होना प्राकृतिक था। श्री ग्राउज़ (F. S. Growse)[4], बीम्स (John Beames)[5] और डॉ० ह्योर्नले (Rev. Dr.

---

१. हिन्दू सेना पर शाह ने भयानक धावा बोल दिया है;

२. राजस्थान, दो भाग, सन् १८२६ ई०; दि वाउ आव संजोगता, एशियाटिक जर्नल, (न्यू सीरीज़), जिल्द २५; तथा कनउज खंड, जे० आर० ए० एस०, सन् १८३८ ई०;

३. इस्त्वार द ला लितरात्यूर ऐन्दुई ए ऐन्दुस्तानी, गार्सां द तासी, प्रथम भाग, पृ० ३८२; तथा (हिन्दी) टाड-राजस्थान, अनु० पं० रामगरीब चौबे, सम्पा० म० म० पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, भूमिका पृ० ३३;

४. दि पोइम्स आव चंद बरदाई, जे० ए० एस० बी०, जिल्द ३७ भाग १, सन् १८६८ ई०; फर्दर नोट्स ऑन प्रिथिराज रायसा, वही, भाग १, सन् १८६९ ई०; ट्रांसलेशन्स फ्राम चंद, वही; रिज्वाइन्डर टु मिस्टर बीम्स, वही, भाग १, सन् १८७० ई०; ए मेट्रिकल वर्शन आव दि ओपिनिंग स्टैंजाज़ आव चंदस् प्रिथिराज रासौ, वही, जिल्द ४२, भाग १, सन् १८७३ ई०; तथा इंडियन ऐन्टीक्वेरी, जिल्द ३, पृ० ३४०;

५. दि नाइनटीन्थ बुक आव दि जेस्टेस आव प्रिथीराज बाई चन्द

A. F. Rudolf Hoernle)[1] के इस दिशा में प्रयास मूलत: टॉड के 'राजस्थान' की प्रेरणा के फल हैं। जिस समय इन विद्वानों को नियुक्त कर, बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने रासो के उद्धार का बीड़ा उठा रखा था, उसी समय के लगभग जोधपुर के मुरारिदान चारण[2] और उदयपुर के कविराज श्यामलदास[3] ने उक्त काव्य की ऐतिहासिकता पर शंका उठाई जिसे काश्मीर में अति अधूरे 'पृथ्वीराजविजय' की खोज करने वाले प्रो० बूलर (Bühler)[4] और उनके शिष्य डॉ० मोरिसन (Dr. Herbert Morrison)[5] का बल मिला, जिसके फलस्वरूप सोसाइटी ने रासो-कार्य बंद कर दिया।

बरदाई, इनटाइटिल्ड 'दि मैरिज विद पदमावती,' लिटरली ट्रांसलेटेड फ्राम ओल्ड हिन्दी, जे० ए० एस० बी०, जिल्द ३८, भाग १, सन् १८६६ ई० ; रेप्लाई टु मिस्टर ग्राउज़, वही ; ट्रांसलेशन्स आव सेलेक्टेड पोर्शन्स आव बुक I आव चंद बरदाईज़ एपिक, वही, जिल्द ४१, सन् १८७२ ई० ; लिस्ट आव बुक्स कन्टेन्ड इन चंदस् पोइम, दि प्रिथ्वीराज रासौ, जे० आर० ए० एस०, सन् १८७२ ई० ; और स्टडीज़ इन दि ग्रामर आव चंद बरदाई, जे० ए० एस० बी०, जिल्द ४२, भाग २, सन् १८७३ ई० ;

१. बिब्लिओथेका इंडिका, (ए० एस० बी०), न्यू सीरीज़, संख्या ३०४, भाग २, फैसीक्यूलस १, सन् १८७४ ई०, (सम्पादित पाठ पृथ्वीराज रासो समय २६-३५) ; तथा वही, संख्या ४५२, भाग २, फैसीक्यूलस १, सन् १८८१ ई०, (रेवातट समय का अंग्रेजी अनुवाद) ; तथा नोट्स आन सम प्रोसोडिकल पिक्यूलिअरिटीज़ आव चंद, इंडियन ऐंटीक्वैरी, जिल्द ३, पृ० १०४ ;

२. जे० बी० बी० ए० एस०, जिल्द १२, सन् १८७६ ई० ;

३. दि ऐन्टीकिटी, आथेन्टीसिटी ऐन्ड जिनूइननेस आव दि एपिक काल्ड दि प्रिथीराज रासा, ऐन्ड कामनली ऐसक्राइब्ड टु चंद बरदाई, जे० ए० एस० बी०, जिल्द ५५, भाग १, सन् १८८६ ई० ; तथा पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता ;

४. प्रोसीडिंग्ज़, जे० ए० एस० बी०, जनवरी-दिसम्बर सन् १८९३ ई०, पृ० ८३ ;

५. सम अकाउन्ट आव दि जीनिओलॉजीज़ इन दि पृथ्वीराज विजय, वियना ओरियन्टल जर्नल, भाग ७, सन् १८९३ ई० ;

कविराज श्यामलदास के विरोधी तर्कों का उत्तर पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या[1] ने दिया। उदयपुर के बाबू रामनारायण दूगड़[2] ने पृथ्वीराज की जीवनी पर प्रकाश डालते हुए रासो की त्रुटियों की ओर ध्यान आकर्षित किया। मुंशी देवीप्रसाद[3] ने रासो की समीक्षा करते हुए लेख लिखा। बाबू श्यामसुन्दर दास[4] ने चंद को हिंदी का आदि कवि निश्चित किया। बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी द्वारा रासो का काम बंद देखकर, नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने पं० मो० वि० पंड्या, बाबू राधाकृष्णदास, कुँवर कन्हैया जू और बाबू श्यामसुन्दर दास द्वारा उसका सम्पादन कराके प्रकाशित कराया।[5] मिश्रबन्धुओं ने चंद को हिंदी का आदि महाकवि और पृथ्वीराज का दरबारी माना।[6] महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री[7] ने चंद के वंशवृत्त पर प्रकाश डाला। डॉ० टेसीटरी (Dr. L. P. Tessitory) ने रासो की दो वाचनाओं की संभावना की ओर संकेत किया।[8] श्री अमृतलाल शील ने देवगिरि, मालवा, रणथम्भौर आदि के प्राचीन और पृथ्वीराज के समकालीन शासकों के प्रमाण देते हुए इन राज्यों से सम्बन्धित रासो की ये तथा अन्य कई चर्चायें सप्रमाण निराधार सिद्ध कीं।[9] महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने रासो को अनैतिहासिक ठहराते हुए, पृथ्वीराज के दरबार में चंद के अस्तित्व तक पर शंका उठाई और इस 'भट्ट-भणंत' को सन्

---

१. पृथ्वीराज रासो की प्रथम संरक्षा, सन् १८८८ ई०

२. पृथ्वीराज चरित्र, सन् १८९९ ई० ;

३. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० प०, भाग ५, सन् १९०१ ई०, पृ० १७० ;

४. हिंदी का आदि कवि, ना० प्र० प०, भाग ५, वही ;

५. सन् १९०१-१९१२ ई० ;

६. मिश्रबन्धु-विनोद, तृतीय संस्करण, पृ० ५९१ ; हिंदी-नवरत्न ; हिंदी का रासौ साहित्य, हिंदुस्तानी, अप्रैल १९३९ ई० ;

७. प्रिलिमिनरी रिपोर्ट आन दि आपरेशनि इन सर्च आव मैनुस्क्रिप्टस आव बार्डिक क्रानिकल्स, ए० एस० बी०, सन् १९१३ ई० ;

८. बिब्लिओथेका इंडिका, (ए० एस० बी०), न्यू सीरीज़, संख्या १४१३, सन् १९१८ ई०, पृ० ७३ ;

९. सरस्वती, भाग २७, संख्या ५, मई, पृ० ५५४-६२ तथा संख्या ६, जून, पृ० ६७६-८३, सन् १९२६ ई० ;

१५४३ ई० के आस-पास कभी रचा गया सिद्ध किया।[१] पं० रमाशंकर त्रिपाठी ने चंद के वंशजों पर प्रकाश डाला।[२] पंजाब-विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० वूलनर (Dr. A. C. Woolner) ने डॉ० बनारसीदास जैन और महामहोपाध्याय पं० मथुराप्रसाद दीक्षित को अपने विश्वविद्यालय के सात सहस्र छन्द परिमाण वाले रासो का सम्पादन करने के लिये प्रोत्साहित किया। दीक्षित जी ने उक्त हस्तलिखित ग्रन्थ का प्रथम समय 'असली पृथ्वीराज रासो'[३] के नाम से सटीक प्रकाशित किया और अपने विविध लेखों[४] में चंद और उसकी कृति को प्रामाणिक प्रतिपादित करते हुए गौ० ही० ओझा का खंडन किया। ओझा जी ने दीक्षित जी के मत का विरोध करते हुए रासो को पुन: अप्रामाणिक ही निश्चय किया।[५] हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने वालों में प्रमुख गार्सां द तासी[६], डॉ० ग्रियर्सन[७] (जो बाद में बदल गये)[८] और बाबू श्यामसुन्दर दास[९] (जिन्होंने बाद में चंद द्वारा रासो के अपभ्रंश में रचे जाने पर विश्वास प्रकट किया)[१०] को छोड़ कर

---

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग १, सन् १९२० ई०, पृ० ३७७-४५४ ; वही, भाग ६, पृ० ३३-३४ ; तथा पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, कोषोत्सव स्मारक संग्रह, सन् १९२८ ई० ;

२. महाकवि चंद के वंशधर, सरस्वती, नवम्बर सन् १९२९ ई० ;

३. मोतीलाल बनारसी दास, लाहौर, सन् १९३८ ई० ;

४. पृथ्वीराज रासो और चंद बरदाई, सरस्वती, नवम्बर सन् १९३४ ई० ; चंद बरदाई और जयानक कवि, सरस्वती, जून सन् १९३५ ई०; पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता, सरस्वती, अप्रैल सन् १९४२ ई० ;

५. पृथ्वीराज रासो के संबंध की नवीन चर्चा, सुधा, फरवरी सन् १९४१ ई०;

६. इस्त्वार द ला लितरात्यूर ऐन्दुई ए ऐन्दुस्तानी, प्रथम भाग, पृ० ३८२-८६ ई० ;

७. माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिन्दोस्तान, जे० ए० एस० बी०, भाग १, सन् १८८८ ई०, पृ० ३-४ ;

८. प्रोसीडिंग्ज, जे० ए०, एस० बी०, सन् १८९३ ई०, पृ० ११९, आबीट्यूरी नोटिस आव मिस्टर एफ० एस० ग्राउज़ ;

९. हिंदी साहित्य, (चतुर्थ संस्करण, सं० २००३ वि०), पृ० ८१-८६ ;

१०. पृथ्वीराज रासो, ना० प्र० प०, वर्ष ४५, अंक ४, माघ, सं० १९९७ वि० ;

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[1], डॉ० रामकुमार वर्मा[2] और पं० मोतीलाल मेनारिया[3] ने रासो को जाली और अनैतिहासिक माना। मुनिराज जिन-विजय[4] ने पृथ्वीराज और जयचन्द्र सम्बन्धी चार अपभ्रंश छन्दों की खोज प्रकाशित कर, चंद बलद्दिक (बरद्दिया <वरदायी) द्वारा अपना मूल ग्रन्थ अपभ्रंश में लिखने की आशा प्रकट करके इस क्षेत्र में फिर गर्मी पैदा कर दी। डॉ० दशरथ शर्मा[5] ने अथक परिश्रम करके रासो विषयक अनेक तथ्यों की

---

१. हिंदी-साहित्य का इतिहास, (सं० २००३ वि०), पृ० ४४;

२. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, (द्वितीय संस्करण), पृ० २४६;

३. राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० ५३, सन् १९५२ ई०;

४. पुरातन प्रबन्ध संग्रह, भूमिका, पृ० ८-१०, सं० १९९२ वि० (सन् १९३५ ई०);

५. पृथ्वीराज रासो की एक प्राचीन प्रति और उसकी प्रामाणिकता, ना० प्र० प०, कार्तिक सं० १९९६ वि० (सन् १९३९ ई०); अग्निवंशियों और पह्लवादि की उत्पत्ति कथा में समता, राजस्थानी, भाग ३, अङ्क २, अक्टूबर १९३९ ई०; पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार, राजस्थानी, भाग ३, अङ्क ३, जनवरी १९४० ई०; दि एज ऐंड हिस्टारीसिटी आव पृथ्वीराज रासो, इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, जिल्द १६, दिसम्बर १९४० ई०, तथा वही, जिल्द, १८, सन् १९४२ ई०; सुर्जन चरित्र महाकाव्य, ना० प्र० प०, सं० १९९८ वि० (सन् १९४१ ई०); पृथ्वीराज रासो संबंधी कुछ विचार, वीणा, अप्रैल सन् १९४४ ई०; चरलू के शिलालेख, राजस्थान भारती, भाग १, अङ्क १, अप्रैल सन् १९४६ ई०; दि ओरिजिनल पृथ्वीराज रासो ऐन अपभ्रंश वर्क, वही; संयोगिता, राजस्थान भारती, भाग १, अङ्क २-३, जुलाई-अक्टूबर सन् १९४६ ई०; चन्द्रावती एवं आबू के देवड़े चौहान, वही, भाग १, अङ्क ४, जनवरी सन् १९४७ ई०; पृथ्वीराज रासो की भाषा, वही, भाग १, अङ्क ४; पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता पर प्रो० महमूद खाँ शीरानी के आक्षेप, वही, भाग २, अङ्क १, जुलाई सन् १९४८ ई०; कुमारपाल चालुक्य का शाकंभरी के अर्णोराज के साथ युद्ध, वही, भाग २, अङ्क २, मार्च १९४९ ई०; राजस्थान के नगर एवं ग्राम (बारहवीं-तेरहवीं-शताब्दी के लगभग), वही, भाग ३, अङ्क १, अप्रैल

शोध की ओर अपने विविध लेखों द्वारा रासो के विरोधियों को अपना मत सुधारने की प्रेरणा देने का यथाशक्ति उद्योग किया। पं० झाबरमल शर्मा[1] ने चौहानों को अग्निवंशी कहलाने के प्रमाण देकर रासो वर्णित अग्नि-कुल का प्रतिपादन किया। पं० नरोत्तमदास स्वामी[2] ने पृथ्वीराज रासो की भाषा तथा पृथ्वीराज के दो मंत्रियों पर प्रकाश डाला। श्री अगरचंद नाहटा[3] ने पृथ्वीराज रासो की हस्तलिखित प्रतियों की सूचना दी और पृथ्वीराज की सभा में जैनाचार्यों के एक विनोदपूर्ण शास्त्रार्थ का उल्लेख किया। प्रो० मीनाराम रंगा[4] ने डॉ० दशरथ शर्मा के सहयोग से रासो की भाषा पर विचार प्रकट किये। श्री उदयसिंह भटनागर[5] ने 'पृथ्वीराजरासो' में चंद के वंशजों के कई नाम उसके छन्दों के रचयिता के स्वरूप में प्रयुक्त किये जाने की ओर भी ध्यान रखने का संकेत किया। कवि राव मोहनसिंह[6] ने रासो की प्रामाणिकता की परीक्षा तथा उसके प्रक्षेपों को हटाने के लिये नये विचारणीय तर्क

सन् १६५० ई० ; परमारों की उत्पत्ति, वही, भाग ३, अङ्क २, जुलाई सन् १६५१ ई० ; रासो के अर्थ का क्रमिक विकास, साहित्य-सन्देश, जुलाई सन् १६५१ ई० ; सम्राट पृथ्वीराज चौहान की रानी पद्मावती, मरु-भारती, वर्ष १, अङ्क १, सितम्बर सन् १६५१ ई०; दिल्ली का तोमर राज्य, राजस्थान-भारती, भाग ३, अङ्क ३-४, जुलाई सन् १६५३ ई० ;

१. चौहानों को अग्निवंशी कहलाने का आधार, राजस्थानी, भाग ३, अङ्क २, अक्टूबर सन् १६३६ ई० ;
२. सम्राट् पृथ्वीराज के दो मंत्री, राजस्थानी, भाग ३, अंक २, जनवरी सन् १६४० ई० ; पृथ्वीराज रासो, राजस्थान भारती, भाग १, अंक १, अप्रैल सन् १६४६ ई० ; पृथ्वीराज रासो की भाषा, वही, भाग १, अंक २, जुलाई सन् १६४६ ई० ;
३. पृथ्वीराज रासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ, राजस्थानी, भाग ३, अङ्क २, जनवरी सन् १६४० ई० ; पृथ्वीराज की सभा में जैनाचार्यों के शास्त्रार्थ, हिन्दुस्तानी, पृ० ७१-६६ ;
४. वीणा, अप्रैल १६४४ ई०, राजस्थान भारती, भाग १, अङ्क १, अप्रैल सन् १६४६ ई० ; वही, भाग १, अङ्क ४, जनवरी सन् १६४७ ई० ;
५. पृथ्वीराज रासो सम्बन्धी कुछ जानने योग्य बातें, शोध-पत्रिका, भाग २, अङ्क १, चैत्र सं० २००६ वि० (सन् १६४६ ई०) ;
६. पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता पर पुनर्विचार, राजस्थान भारती, भाग १, अङ्क २-३, जुलाई अक्टूबर सन् १६४६ ई० ;

प्रस्तुत किये। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा[१] ने रासो के महत्वपूर्ण प्रस्तावों, उसमें निहित धार्मिक भावना और उसकी भाषा का परिचय देते हुए हिन्दी-साहित्य-सेवियों को उसकी ओर अधिक ध्यान देने के लिये प्रोत्साहित किया। श्री मूलराज जैन[२] ने रासो की विविध वाचनाओं पर प्रकाश डाला। डॉ० माता प्रसाद गुप्त[३] ने रासो-प्रबन्ध परम्परा का अवलोकन करके 'पृथ्वीराज-रासो' को अधिक से अधिक विक्रम की चौदहवीं शताब्दी की कृति माना। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी[४] ने चरित और कथा काव्य के गुणों से परिपूर्ण, उपलब्ध रासो में चंद की मूल कृति गुम्फित होने का प्रगाढ़ विश्वास करके, प्राचीन कथा-सूत्रों और काव्य-रूढ़ियों के आधार पर भी इस काव्य की परीक्षा करने का परामर्श दिया तथा अपने निश्चित किये हुए सिद्धान्तों के आधार पर श्री नामावर सिंह[५] के सहयोग सहित एक संक्षिप्त रासो सम्पादित करके प्रकाशित करवा दिया। डॉ० माताप्रसाद गुप्त[६] ने आचार्य द्विवेदी जी के कार्य में शिथिलताओं का निर्देश करते हुए अपने निर्दिष्ट मत की आवृत्ति की।

'पृथ्वीराज-रासो' पर किये गये कार्य का संक्षिप्त विवरण यहाँ पर यह दिखाने के लिये दिया गया है कि गति भले ही कुछ धीमी रही हो परन्तु आज भी अधिकारी विद्वान् उस पर विचार कर रहे हैं। अनैतिहासिक समझकर हिन्दी-साहित्यकार उसकी ओर से तटस्थ नहीं हुए, उनके सद्प्रयत्न चले ही जा रहे हैं। इस समय भी जहाँ पं० मोतीलाल मेनारिया जैसे विचारक रासो की चार वाचनाओं के लिये कहते देखे जाते हैं—'वे वास्तव में रासो के रूपान्तर नहीं, प्रत्युत बृहत् अथवा सम्पूर्ण रासो (जो सं० १७०० के आस-पास बनाया गया है) के ही कटे-छँटे रूप हैं जिनको अपनी-अपनी रुचि एवं आव-

---

१. पृथ्वीराज रासो, काशी विद्यापीठ रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्रन्थ, वसंत पंचमी सं० २००३ वि० (सन् १९४६ ई०);
२. पृथ्वीराज रासो की विविध वाचनायें, प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ, अक्टूबर सन् १९४६ ई० ;
३. 'रासो'-प्रबंध-परंपरा की रूप रेखा, हिन्दी-अनुशीलन, वर्ष ४, अङ्क ४, पौष-फाल्गुन सं० २००८ वि० (सन् १९५१ ई०) ;
४. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, सन् १९५२ ई०; और हिन्दी साहित्य, सन् १९५२ ई० ;
५. संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, सन् १९५२ ई० ;
६. मूल्यांकन (संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो), आलोचना, वर्ष २, अंक ४, जुलाई सन् १९५३ ई० ;

श्यकता के अनुसार समय-समय पर लोगों ने तैयार कर लिया है'[१] ; और डॉ० माताप्रसाद गुप्त, प्राप्त वाचनाओं का कृतित्व काल-गणना से करके रासो का मूल रूप विक्रम की चौदहवीं शताब्दी का बतलाते हैं, वहाँ मुनिराज जिन-विजय, महामहोपाध्याय पं० मथुराप्रसाद दीक्षित, डॉ० दशरथ शर्मा, प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और मेरे जैसे कुछ व्यक्ति अनुमान करते हैं कि उपलब्ध रासो में पृथ्वीराज चौहान तृतीय के दरबारी (और 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार पृथ्वीभट या पृथ्वीराज के भाट अर्थात्) कवि चंद वरदायी की मूलकृति विकृत रूप में निःसन्देह उपस्थित है, जिसका पृथक् किया जाना दुसाध्य भले ही हो असाध्य नहीं। इस युग में बिना 'पृथ्वी-राज-रासो' का अवलोकन किये 'रासोसार' मात्र पढ़कर, कविराज श्यामल-दास और विशेषकर म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के रासो विरोधी तर्क जानकर तदनुसार राग अलापना अपेक्षाकृत आसान है। आज रासो की समस्या उसे अप्रामाणिक और अनैतिहासिक सिद्ध करने की इतनी नहीं है जितनी उसके अन्दर पैठ कर उसके प्रक्षेप-जाल का आवरण दूर करने की है।

रासो की ऐतिहासिकता के विरोधी जहाँ एक ओर भारतवर्ष में इतिहास लिखने की परम्परा न होने के कारण[२] चन्द द्वारा इतिहास-काव्य लिखे जाने की बात नहीं समझ सकते, वहाँ दूसरी ओर बेसिर-पैर की अनेक बातें लिखने वाले 'पृथ्वीराजविजय,[३] को क्यों प्रामाणिक समझते हैं ? तथा

---

१. राजस्थान का पिंगल साहित्य, सन् १९५२ ई०, पृ० ५३ ;

२. "The Muhammadans had a regular system of writing History, the Hindus had no such system, if there was anything of the kind, it was simply the genealogies, and very little, if any, historical accounts written in the books of the bards, are exaggerated poems of the times". Kavirja Shyamal Das, J.A.S.B., Vol. LV, Pt. I, p. 16, 1886 ; तथा 'चंद वरदाई और जयानक कवि', म० म० पं० मथुरा प्रसाद दीक्षित, सरस्वती, जून १९३५ ई०, पृ० ५५६-६१ ;

३. "Like all Indian Kavyas (including the dṛshya-kavyas) dealing with historical themes, the Pṛth-viraj Vijaya also contains an amount of unhis-

एक ओर जहाँ उनकी सम्मति से कवि इतिहास नहीं लिख सकता, वहाँ वे शिलालेखों को प्रमाण-रूप में क्यों लाते हैं, जिनका प्रणयन इतिहासज्ञ या वैज्ञानिक नहीं करते वरन् कल्पना को आश्रय बनाकर अनेक अतिशयोक्तियों से पूर्ण करके कवि ही प्रस्तुत करता है। इस विरोध से मेरा यह अभीष्ट कदापि नहीं कि रासो की असंगत बातों पर प्रकाश न डाला जाय, वरन् निवेदन इतना ही है कि यदि रासो में वर्णित कोई विवरण अन्य प्रमाणों से सिद्ध होता है तो शिलालेख मात्र के अभाव में उसे एकदम अनैतिहासिक न कह दिया जाय। भारतीय इतिहास के अन्धकार-युग में जहाँ शिलालेख और ताम्रपत्र प्राप्त नहीं हैं, वहाँ अपने इतिहास के कलेवर को प्राण-रूपी वरदान देने के लिये इतिहासकार प्रबन्ध और मुक्तक कवि के ही नहीं लोक-गीतकार तक के द्वार पर क्यों गिड़गिड़ाता है?

अब हम रासो सम्बन्धी कतिपय अनैतिहासिक कहे जाने वाले तथ्यों की परीक्षा करेंगे :—

अग्नि-वंश

चंद ने लिखा है कि आबू पर्वत पर अनेक ऋषियों को यज्ञानुष्ठान करते देखकर[1], दानवों ने उसमें नाना प्रकार से विघ्न डालने आरम्भ किये[2], यह देखकर ऋषिगण वशिष्ठ के पास गये और उनसे राक्षसों का विनाश करने की प्रार्थना की[3], तब वशिष्ठ ने अग्नि-कुंड से प्रतिहार, चालुक्य और परमार इन तीन वीर पुरुषों को उत्पन्न किया जो राक्षसों से भिड़ पड़े—

तब सु रिष्य वाचिष्ट। कुंड रोचन रचि तामह ॥
धरिय ध्यान जजि होम। मध्य वेदी सुर सामह ॥

---

torical, imaginary or legendary element." Dinesh Chandra Sarkar; Review of the Pṛthviraj Vijaya of Jayanaka, with the commentary of Jonaraj, edited by M. M. Dr. G. H. Ojha and Pandit Chandra Dhar Sharma Guleri. Indian Historical Quarterly, p. 80, vol. XVIII, March 1942.

१. छं० २४४, स० १ ;
२. छं० २४५-४७, वही ;
३. छं० २४८, वही ;

तब प्रगट्यौ प्रतिहार । राज तिन ठौर सुधारिय ॥
फुनि प्रगट्यौ चालुक्क । ब्रह्मचारी व्रत धारिय ॥
पांवार प्रगट्या बीर बर । कह्यौ रिष्ष परमार धन ॥
त्रय पुरष जुद्ध कीनौ अतुल । मह रष्षस छुट्टंत तन ॥२५०,

परन्तु असुरों का उपद्रव शान्त होते न देखकर[1], वशिष्ठ ने देवताओं का अंश ग्रहण करने वाले असुरों का दमन करने वाले शूरमा को पैदा करने का विचार किया[2], और फिर उन्होंने ब्रह्मा की स्तुति करके मंत्रों के द्वारा अनल-कुण्ड से, ऊँचे शरीर और रक्त-वर्ण के चार मुखों वाले तथा खड्ग धारण किये चार भुजाओं वाले चाहुवान को उत्पन्न किया—

अनल कुंड किय अनल । सज्जि उपगार सार सुर ॥
कमलासन आसनह । मंडि जग्योपवीत जुरि ॥
चतुरानन स्तुति सद्द । मंत्र उच्चार सार किय ॥
सु करि कमंडल वारि । जुजित आव्हान थान दिय ॥
जा जन्नि पानि श्रव अहुति जजि । भजि सु दुष्ट आव्हान करि ॥
उप्पज्यौ अनल चहुवान तब । चव सु बाहु असि बाह धरि ॥२५५
भुज प्रचंड चव च्यार मुष । रत्त व्रन्न तन तुंग ॥
अनल कुंड उपज्यौ अनल । चाहुवान चतुरंग ॥ २५६,

इन अग्नि कुलीन चारों क्षत्रियों ने ऋषियों का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त कराया।[3] इन्हीं के वंश में पृथ्वीराज का जन्म हुआ—

तिन रक्षा कीन्ही सु दुज । तिहि सु वंस प्रथिराज ॥
सो सिरषत पर वादनह । किय रासो जु विराज ॥ २८१

इस समय निर्दिष्ट चारो जातियों के क्षत्रिय अपने को अग्नि-वंशी मानते हैं।

बाँसवाड़ा राज्य के अर्थुणा ग्राम के मन्दिर में राजा मंडनदेव परमार के सन् १०७९ ई० के शिलालेख[4] में तथा पद्मगुप्त के 'नवसाहसाङ्क-

---

१. छं० २५१–५२, स० १ ;

२. छं० २५३, वही ;

३. छं० २७९-८०, वही ;

४. अस्त्युच्चैर्गगनावलंबशिखर: क्षोणी भृदस्यां भुवि–
रव्यातो मेरुमुखोच्छ्रतादिषु परां कोटिं गतोप्यर्बुद: ॥ ३···
आनतस्य जयिन: परितुष्टो वांछिताशिषमसौवभिधाय ।
तस्य नाम परमार इतीत्थं तथ्यमेव मुनिरासु चकार ॥ ११ ;

चरित"[1] में आबू के ऋषि वशिष्ठ के अग्नि-कुण्ड से एक वीर पुरुष की उत्पत्ति की कथा दी है जो विश्वामित्र के पक्ष को परास्त करके, ऋषिवर की अपहृत नन्दिनी गाय लौटा लाया था, और इस पराक्रम के फलस्वरूप उसे परमार अर्थात् शत्रु-हन्ता नाम मिला था। 'वाल्मीकि-रामायण' के सर्ग ५४ और ५५ में विश्वामित्र द्वारा वशिष्ठ की कामधेनु हरण, वशिष्ठ की आज्ञा से उसके द्वारा पह्लवों और शकों की सृष्टि तथा विश्वामित्र की सेना के संहार का विवरण मिलता है। अग्नि-वंशियों की उत्पत्ति का स्रोत रामायण की यही कथा प्रतीत होती है। डॉ० दशरथ शर्मा का कथन उचित ही है— "आज से हजारों वर्ष पूर्व जब शकादि की उत्पत्ति का समझना ऐवं समझाना आवश्यक हुआ तब वशिष्ठ एवं कामधेनु की कथा की कल्पना की आवश्यकता हुई। लगभग एक हजार वर्ष बाद जब पह्लवादि भारतीय जन समाज के अंग बन गये और परमारादि कई अन्य जातियों की उत्पत्ति को समझना समझाना आवश्यक हुआ तब इन जातियों के असली इतिहास को न जानते हुए कई कवियों ने उसी पुराने रामायण के कथानक का सहारा लिया और केवल जातियों का नाम बदल और इतस्तत: थोड़ा बहुत फेरफार कर परमारादि की उत्पत्ति कथा हमारे पूर्वजों के सामने रखी।"[2]

ग्वालियर के सन् ८४३ ई० के प्रतिहार राजा भोजदेव की प्रशस्ति[3], दसवीं शती के राजशेखर[4] द्वारा भोज के पुत्र महेन्द्रपाल का 'रघुकुलतिलक' और उसके पुत्र का 'रघुवंशमुक्तामणि' वर्णन तथा शेखावटी वाले हर्षनाथ के मन्दिर की चौहान विग्रहराज की सन् ९८३ ई० की प्रशस्ति[5] में कन्नौज के

---

१. ब्रह्माण्डमण्डपस्तम्भ: श्रीमानस्त्यबुर्दो गिरि: ।। ४६...
तत: क्षणात् सकोदण्ड: किरीटी काञ्चनाङ्गद: ।
उज्जगामाग्नितः कोऽपि सहेमकवच: पुमान् ।। ६८
दूरं संतमसेनेव विश्वामित्रेण सा हृता ।
तेनानिन्ये मुनेर्धेनुर्दिनश्रीरिव भानुना ।। ६९
परमार इति प्रापत् स मुनेर्नाम चार्थवत् ।।....।।७१, सर्ग ११ ;

२. अग्निवंशियों और पह्लवादि की उत्पत्ति की कथा में समानता, राजस्थानी, भाग ३, अङ्क २, पृ० ५५ ;

३. आर्केलाजिकल सर्वे आव इंडिया, वार्षिक रिपोर्ट, सन् १९०३ ४ ई०, पृ० २८० ;

४. १-११, बालभारत ;

५. इंडियन ऐन्टीक्वैरी, जिल्द ४२, पृ० ५८-५९ ;

प्रतिहारों के (रघुवंशी) उल्लेख से प्रतिहारों के सूर्यवंशी होने का ; राजा विमलादत्त चालुक्य के सन् १०१८ ई० के दानपत्र[१], कुलोत्तुंग चोड़देव सोलंकी (चालुक्य) द्वितीय के सन् ११७१ ई० के दानपत्र[२] और गुर्जरेश्वर भीमदेव चालुक्य को आचार्य हेमचन्द्र द्वारा 'द्वयाश्रय'[३] में सोम (चन्द्र) वंशी बताने से चालुक्यों के चन्द्रवंशी होने का तथा विग्रहराज चतुर्थ के राजकवि सोमेश्वर रचित चौहानों के 'इतिहास-काव्य'[४], जयानक के 'पृथ्वीराज-विजय'[५] और नयचन्द्रसूरि के सन् १४०३ ई० के 'हम्मीरमहाकाव्य'[६] में चौहानों के सूर्यवंशी होने के प्रमाण देकर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा[७] ने रासो की अग्नि-वंशी कथा की आलोचना की है।

चौहानों के अग्निवंशी कहे जाने के लिये १९वीं शती के कविराजा सूर्यमल्ल मिश्रण ने अपने 'वंशभास्कर' में लिखा है—'कितने ही लोग अग्नि-वंश को सूर्यवंश कहकर वर्णन करते हैं, उनमें तेज तत्व की एकता के कारण विरोध नहीं समझना चाहिये।'[८]

पं० झाबरमल शर्मा ने परमारों की उत्पत्ति कथा का अथवा अपनी मौलिक कल्पना का सहारा लेकर सम्भवतः रासोकार द्वारा अर्बुदगिरि के

---

१. एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द ६, पृ० ३५१-५८ ;

२. वही, जिल्द ६, पृ० २६९ ;

३. श्लोक ४०-५९, सर्ग ६ ;

४. राजपूताना म्यूज़ियम में चौहानों के ऐतिहासिक काव्य की प्रथम शिला;

५. काकुत्स्थमिक्ष्वाकुरघू च यद्दध-
त्पुराभवत्त्रिप्रवरं रघोः कुलम्।
कलावपि प्राप्य स चाहमानतां
प्ररूढतुर्यप्रवरं बभूव तत्॥ २-७२; तथा ७-५०, ८-५४ ;

६. अवातरन्मंडलतोथभास्वां पत्युः पुमानुद्यतमंडलाग्रः।
तं चाभिषिच्याश्वदसीयरक्षाविधौ वधादेष मखं सुखेन ॥१-१६ ;

७. पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, कोषोत्सव स्मारक संग्रह, पृ०३३-३९ तथा पृथ्वीराज रासो के संबंध की नवीन चर्चा, सुधा, फरवरी, सन् १९४१ ई०, पृ० १३-१४ ;

८. अनल अन्ववाय हि किते बरनत सौर बखानि।
तेज तत्व एकत्व करि, नहिं विरोध तहँ जानि॥
प्रथम राशि, दशम मयूख ;

यज्ञ की कथा के रचे जाने का उल्लेख करते हुए बताया है कि कर्नल टॉड और ओझा जी राव लुम्भा के शिलालेख[1] के आधार पर चौहानों को अपने को वत्स-गोत्री कहता हुआ मानते हैं। अस्तु उनके अनुसार यह वत्स-गोत्र ही चौहानों को अग्नि-वंश से सम्बन्धित करता है। अपने निष्कर्ष के प्रमाण में शर्मा जी कहते हैं— 'हिंदुओं के यहाँ ८ बड़े गोत्र-प्रवर्तक ऋषि हो गये हैं—विश्वामित्र, भृगु, भारद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप और अगस्त्य। इनमें से भृगु-गोत्र की ७ शाखाओं [(वत्स, विद, आर्ष्टिषेण, यास्क, मित्रयुव, वैन्य और शौनक) । गोत्रप्रवर निबन्ध कदम्बम्, भृगु काण्डम्, पृ० २३-२४] में से एक वत्स शाखा है। जब वत्स गोत्र के आदि पुरुष महर्षि भृगु बताये गये हैं तब यह देखना चाहिये कि भृगु किस वंश के हैं। मनुस्मृति में लिखा है—'इदमूचुर्महात्मानं अनलं प्रभवं भृगुं' (५-१)। इसमें भृगु का विशेषण अनल-प्रभव स्पष्ट है। इस सम्बन्ध में केवल मनुस्मृति ही नहीं श्रुति भी साक्षी देती है—'तस्य यद्रेतस: प्रथमं देदीप्यते तदसावादित्योऽभवत्। यद्वीतीयमासीद् भृगु:।' [अर्थात्—उसकी शक्ति (रेतस=वीर्य) से जो पहला प्रकाश (अग्नि) हुआ, वह सूर्य बन गया और जो दूसरा हुआ उसीसे भृगु हुआ]। इसी प्रमाण से भृगु को अनल-प्रभव कहा गया है। इस प्रकार भृगु अग्निवंशी हुए और भृगुवंशी हुए वत्स। वत्स गोत्री हैं चौहान। अतएव चौहानों को अग्निवंशी कहलाने में कोई तात्विक आपत्ति नहीं दिखाई देती।"[2]

'ईशावास्योपनिषद' में मरणोन्मुख उपासक मार्ग की याचना करते हुए कहता है कि हे अग्ने! हमें कर्म फलभोग के लिये सन्मार्ग से ले चल। हे देव! तू समस्त ज्ञान और कर्मों को जानने वाला है। हमारे पाखण्डपूर्ण पापों को नष्ट कर। हम तेरे लिये अनेकों नमस्कार करते हैं—

> अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
> युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम॥ १८

१. शिलालेख सं० १३७७ वि० अचलेश्वर का मन्दिर, आबू; यह शिलालेख चौहानों के पूर्व पुरुष को वत्सगोत्री मात्र ही नहीं कहता वरन् उसे चन्द्रवंशी भी बताता है। इससे यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि शिलालेखों में भी परस्पर विरोधी प्रमाण पाये जाते हैं।

२. चौहानों के अग्निवंशी कहलाने का आधार, राजस्थानी, भाग ३, अङ्क २, पृ० ७-८;

यहाँ अग्नि, सूर्य का पर्य्याय है। अस्तु अग्नि को सूर्य भी कह देने में कोई अड़चन नहीं हो सकती। अग्नि-वंशी चौहानों को भी सूर्य-वंशी लिखा गया परन्तु इसके द्वारा एक विशेष अर्थ की साधना भी इष्ट थी। इसे स्पष्ट करने के लिए हमें 'पृथ्वीराजविजय' की ओर चलना होगा। 'रासो' में चहुवान या चाहमान की उत्पत्ति दैत्यों और राक्षसों के विनाश के लिए अग्नि से होती है तो 'पृथ्वीराजविजय' में भी लगभग उसी प्रकार के हेतु का संकेत करते हुए सूर्य से इस प्रकार होती है—"पुष्कर के विषय में जब पुष्करोद्भव ब्रह्मा जी इतना कह कर चुप हुए, तब सृष्टि के आदि से ही जिनको पिशाच जनों का मर्दन इष्ट है, उन श्री जनार्दन की दृष्टि सूर्य-नारायण पर पड़ी—

व्याहृत्य वाक्यमिति पुष्कर कारणेन
तूष्णीमभूयत च पुष्कर कारणेन।
आसर्ग सम्मत पिशाचजनार्दनस्य
भास्वत्यपत्यत दृशा च जनार्दनस्य॥ सर्ग १;

तदनन्तर सूर्य-मंडल से एक तेज-पुंज उत्पन्न होकर पृथ्वी पर उतरने लगा। उसे देख आकाश के प्राणी सोचने लगे कि क्या इन्द्र के लिये प्रकल्पित आहुति सूर्य-बिम्ब को प्राप्त कर, वायु से अधिक प्रदीप्त हो, फिर पृथ्वी को लौट रही है? जिस सुषुम्ण नामक किरण की याचना प्रति अमावस्या को चन्द्र किया करता था, वह सब क्या सूर्य ने उसे दे दी है? इस कारण क्या चन्द्र उस किरण को ओषधियों को दिखायेगा? क्या उत्तरदिक्पति (काम) का पुत्र नडकूबर रम्भा के अनुराग से स्वर्ग में आकर सूर्य से सत्कार पाकर लौट रहा है? क्या भौम, म्लेच्छों के उपद्रवों का निवारण करने के लिये अपनी माता, भूमि के अङ्क में आ रहा है? कानीनता से कदर्थित, परन्तु युद्ध-क्रिया-द्वारा अर्क-मण्डल में प्रवेश कर, अयोनिजन्म से द्युतिमान हो क्या कर्ण पुनरपि पृथ्वी पर आ रहा है? इसके अनन्तर उस अर्क-मण्डल में से बहुत सुन्दर काले बालों वाला, किरीट, केयूर, कुण्डल, माला, मणिमय-मुक्ताहार आदि आभरण धारण किये, चन्दन लगाये, खड्ग और कवच से सुशोभित, वपुष्मान् लोहमय पादवाला एक त्रिभुवन-पुण्य-राशि पुरुष निकला। वह धर्म व्यवहार में मन से भी अधिक वेगवाला, कुपथ पर चलने में शनि से भी अधिक आलसी, सुग्रीव से भी अतिशय मित्रप्रिय और यम से भी अधिक यथोचित दण्डधर था। वह दान में कर्ण से भी अधिक उत्साहवान और साधुओं की मनोवेदनाओं को दूर करने में अश्विनीकुमारों से भी अधिक सावधान था। वह अश्व-

विद्या में सूर्य के प्रसिद्ध पुत्र रेवन्त से भी अधिक प्रवीण था।[१] कर में चाप ग्रहण करने, मन में हरि को धारण करने, बल में मान धारण करने तथा मंत्रियों द्वारा नय (राजनीति) धारण करने के कारण वह इन गुणों के अग्रिम वर्णों से निर्मित 'चा-ह-मा-न' संज्ञा को प्राप्त हुआ :

करेण चापस्य हरेर्मनीषा
बलेन मानस्य नयेन मंत्रिभिः।
धृतस्य नामाग्रिमवर्णनिर्मितां
स चाहमानोयमिति प्रथां ययौ ॥४५, सर्ग २;"

यह वर्णन पढ़कर जहाँ एक ओर यह ध्यान आता है कि अग्नि से प्रसूत होने वाले चाहुआन का रूप-वर्णन करते हुए रासो में इतने अप्रस्तुतों का विधान नहीं पाया जाता वहाँ दूसरी ओर एक स्वाभाविक प्रश्न भी उठता है कि जयानक ने चौहानों के मूल पुरुष 'चाहमान' को सीधे-सीधे सूर्यवंशी क्यों नहीं लिख दिया, क्योंकि सूर्यवंश प्राचीन और विश्रुत था, उसे उक्त पुरुष को सूर्य से उपर्युक्त ढंग से अवतरण कराने की क्या आवश्यकता पड़ गई? उत्तर स्पष्ट है। कर्नल टॉड द्वारा राजस्थान में अन्य क्षत्रियों की अपेक्षा चौहानों के पौरुष और पराक्रम की भर पेट कीर्ति अतिरंजित नहीं, लोकाश्रित अवश्य है। बाहर से आई हुई इस वीर जाति को यज्ञ आदि के द्वारा शुद्ध करके भारतीय बनाने का प्रयत्न अवश्य किया गया था। चंद ने चौहानों को अग्नि-वंशी बताकर वस्तुतः सत्य का अधिक प्रकाश किया है जब कि (संस्कृत) 'पृथ्वीराज विजय' के कर्ता जयानक ने ही केवल नहीं वरन् उसके पूर्ववर्ती (संस्कृत) शिलालेखकार कवियों तथा परवर्ती (संस्कृत) 'हम्मीरमहाकाव्य' के कर्ता नयचन्द्रसूरि और (संस्कृत) 'सुर्जनचरित्र-महाकाव्य'[२] के रचयिता चन्द्रशेखर ने उन्हें सूर्यवंशी बतलाकर एक ओर जहाँ अग्नि और सूर्य में तेज-रूप के कारण तत्वतः समानता का भाव होने से (सूर्य द्वारा चाहमान की उत्पत्ति आंशिक परिवर्तन सहित प्रस्तुत करके) सत्य से विरत न होने का दावा किया वहाँ दूसरी ओर उनका भारत के सुप्रसिद्ध इक्ष्वाकु-कुल वाले रघुवंशियों से गौरवपूर्ण और महिमामय सम्बन्ध भी अनायास ही स्थापित कर दिया। वास्तव में चौहानों को सूर्यवंशी बनाकर संस्कृत-कवियों की एक पन्थ दो काज सिद्ध कर लेने की कल्पना परम सराहनीय है। परन्तु इसके बाव-

---

१. पृथ्वीराजविजय, सर्ग १, तथा श्लोक १-४४, सर्ग २;
२. सर्ग ७, श्लोक ५८-६१;

जूद लोक में चौहानों की ख्याति आज तक अग्निवंशी होने की ही चली जा रही है और स्वयम् वह जाति भी यही बात गर्व से स्वीकार करती है। देश्य भाषा की कृति 'पृथ्वीराजरासो' में चौहानों का अग्नि कुलीन उल्लेख अधिक ऐतिहासिक है।

'भविष्यपुराण'[१] भी वशिष्ठ के आबू-शिखर के यज्ञ-कुंड से परमार, प्रतिहार, चालुक्य और चाहुवान क्षत्रियों की उत्पत्ति बताता है :

एतस्मिन्नेव काले तु कान्यकुब्जो द्विजोत्तमः।
अर्बुदं शिखरं प्राप्य ब्रह्म होममथाकरोत् ॥४५
वेदमन्त्र प्रभावाच्च जाताश्चत्वारक्षत्रियाः।
प्रमरः सामवेदी च चपहानिर्यजुर्विदः ॥४६
त्रिवेदी च तथा शुक्लोऽथर्वा स परिहारकः।
ऐरावत कुले जातान् गजानारुह्य ते पृथक ॥४७

पृथ्वीराज की माता

रासो में लिखा है कि दिल्लीराज अनंगपाल तोमर ने अपनी कन्या कमला का विवाह अजमेर नरेश सोमेश्वर के साथ किया था :

अनग पाल पुत्री उभय। इक दीनी विजपाल ॥
इक दीनी सोमेस कौं। बीज बवन कलिकाल ॥ ६८१
एक नाम सुर सुंदरी। अनि वर कमला नाम ॥
दरसन सुर नर दुल्लही। मनों सु कलिका काम ॥६८२, स० १[२],

---

१. "However, the text which has come down to us in manuscript under the title, Bhavishya Purana, is certainly not the ancient work which is quoted in the Apastambiya-Dharam-sutra. The Bhavishya Purana, which appeared in Bombay in 1897 in the Srivenkata Press, has been unmasked by Th. Aufrecht as a 'literary fraud'. The account of the creation which it contrains, is borrowed from the law book of Manu, whieh is also otherwise frequently used. The greater part of the work deals with the brahmanical ceremonies and feasts, the duties of the castes and so on." A History of Indian Literature. M. Winternitz, Vol. I, Cal. Uni., 1927, p. 567 ;

२. बृहत रासो, समय १ के छन्द ६७१--८४ तक पंजाब विश्वविद्यालय के रोटो वाले रासो में नहीं हैं, जिसका प्रथम समय 'असली पृथ्वी-

और उसी ने दानव कुल वाले पृथ्वीराज को अपने गर्भ में धारण किया :

सोमेसर तोंअर घरनि । अनगपाल पुत्रीय ॥
तिन सु पिथ्थ गर्भ धरिय । दानव कुल छत्रीय ॥ ६८५,

समयानुसार पुत्र का जन्म होने पर अनन्त दान दिये गये।[1] पृथ्वीराज नामक अपने इस दौहित्र को अनंगपाल ने योगिनिपुर (दिल्ली-राज्य) का दान कर दिया और स्वयं तपस्या करने चले गये :

जुग्गिनिपुर चहुआंन दिय । पुत्री पुत्र नरेस ॥
अनँगपाल तोंअर तिनिय । किय तीरथ परवेस ॥६६, स० १८,

अमृतलाल शील ने दिल्ली के अशोक स्तम्भ (जो फ़ीरोज़शाह की लाट कहलाती है) पर सोमेश्वर के बड़े भाई विग्रहराज चतुर्थ उपनाम वीसलदेव के लेख के आधार पर लिखा है—'इससे यह प्रमाणित होता है कि सन् ११६३ ई० से कुछ पहले वीसलदेव ने दिल्ली को जय किया था। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि सोमेश्वर के राज्यकाल में दिल्ली में अजमेर का कोई करदाता राजा राज्य करता था अथवा अजमेर राज्य का कोई वेतनभोगी सामन्त वहाँ का दुर्ग-रक्षक था। पृथ्वीराज अजमेर के युवराज थे। उनका अपने पिता के अधीन किसी करदाता राजा अथवा उनके नौकर दुर्ग-रक्षक के घर गोद जाना केवल असम्भव ही नहीं, अश्रद्धेय भी प्रतीत होता है'[2]।

म० म० ओझा जी[3] बिजोलियाँ के शिलालेख[4] के आधार पर विग्रहराज का दिल्ली पर अधिकार बताते हुए, चौहान और ग़ोरी के अंतिम युद्ध में 'तबकाते-नासिरी'[5] के अनुसार दिल्ली के राजा गोविंदराज की मृत्यु का उल्लेख करके निश्चित करते हैं कि पृथ्वीराज तीसरे के समय दिल्ली,

---

राजरासो' के नाम से म० म० मथुराप्रसाद दीक्षित ने हिंदी टीका सहित प्रकाशित किया है। अपनी इसी पुस्तक का उद्धरण देते हुए उन्होंने 'सरस्वती' नवम्बर सन् १९३४, पृ० ४५८ पर लिखा है कि पृथ्वीराज की माता का नाम (कमला) रोटो वाले रासो में नहीं है।

१. छं० ६८७, स० १;
२. चन्दबरदाई का पृथ्वीराजरासो; सरस्वती, भाग २७, संख्या ५, जून १९२६ ई०, पृ० ५५६ ;
३. पृथ्वीराजरासो का निर्माणकाल, कोषोत्सवस्मारक संग्रह, पृ० ४१-४३;
४. प्रतोल्यां च बलभ्यां च येन विश्रामितं यशः ।
ढिल्लिकाग्रहणश्रांतमाशिकालाभलंभितः (तं) ॥ २२ ;
५. मेजर रैवर्टी द्वारा अंग्रेजी में अनूदित ;

अजमेर के उक्त सामंत के अधिकार में थी। तदुपरान्त 'पृथ्वीराजविजय'[१], 'हम्मीरमहाकाव्य'[२] और 'सुर्जनचरित्र'[३] के आधार पर वे पृथ्वीराज की माता का नाम कपूर्रदेवी बतलाते हैं जो त्रिपुरी (चेदि अर्थात् जबलपुर के आस-पास के प्रदेश की राजधानी के हैहय (कलचुरी) वंशी राजा तेजल (अचलराज) की पुत्री थी; जिसे सुर्जनचरित्रकार चन्द्रशेखर दक्षिण के कुंतल देश के राजा की पुत्री कहते हैं।

ओझा जी के मत का खंडन करते हुए म० म० दीक्षित जी ने लिखा--'सोमेश्वर के विवाह सम्बन्ध में इतना कहना पर्याप्त है कि राजाओं के अनेक विवाह होते थे। दिल्ली को अजमेरनरेश के आधीन मान लेने पर भी दिल्ली नरेश अजमेरनरेश के यहाँ विवाह नहीं करेगा, यह नहीं सिद्ध होता है। और जिस पृथ्वीराज्यकाव्य के आधार पर वे वैसा आरोप करते हैं वही सन्दिग्धास्पद है'[४]।

---

१. इति साहससाहचर्यचर्यस्समयज्ञैः प्र [तिपादि]तप्रभावाम् ।
तनयां च सपादलक्षपुण्यैरुपयेमे त्रिपुरीपुर [न्द] रस्य ॥ [१६], सर्ग७;
पृथ्वीं पवित्रतां नेतुं राजशब्दं कृतार्थताम् ।
चतुर्वर्णधनं नाम पृथ्वीराज इति व्यधात् ॥ [३०],
मुक्तवति सुधवा वंशं गलत्पुरुषमौक्तिकं ।
देवं सोमेश्वरं द्रष्टुं राजश्रीरुदकण्ठत ॥ [५७]
आत्मजाभ्यामिव यशः प्रतापाभ्यामिवान्वितः ।
सपादलक्षमानिन्ये महामात्यैर्महीपतिः ॥ [५८],
कपूर्रदेव्यथादाय दानभोगाविवात्मजौ ।
विवेशाजयराजस्य संपन्मूर्तिमती पुरीम् ॥ [५९], सर्ग ८;

२. इलाविलासी जयति स्म तस्मात्
सोमेश्वरोऽनश्वरनीतिरीतिः ॥ ६७····
कपूर्रदेवीति बभूव तस्य
प्रिया [प्रिया] राधनसावधाना ॥ ७२, सर्ग २;

३. शकुन्तलाभां गुणरूपशीलैः
स कुन्तलानामधिपस्य पुत्रीम् ।
कपूर्रधारां जनलोचनानां
कपूर्रदेवीमुदुवाह विद्वान् ॥ ४, सर्ग १;

४. पृथ्वीराजरासो और चंद बरदाई, सरस्वती, नवंबर सन् १९३४ ई०, पृ० ४५८;

डॉ० दशरथ शर्मा[1] का (अधूरे प्राप्त) 'ललितविग्रहराज' नाटक के आधार पर अनुमान है कि दिल्ली के अन्तिम तोमर शासक ने अपना राज्य वीसलदेव चतुर्थ को अपनी कन्या के दहेज में दे दिया था; यही कथा रासो के परवर्ती संशोधन कर्ताओं द्वारा उनके छोटे भाई सोमेश्वर के साथ जोड़ दी गई है। उन्होंने बीकानेर-फोर्ट लाइब्रेरी की रायसिंह जी के समय की लगभग सं० १६५७ वि० लिखित ४००४ छन्द परिमाण वाली रासो की हस्तलिखित प्रति की प्रामाणिकता की विवेचना करते हुए यह भी लिखा है—'सोमेश्वर की स्त्री को अनंगपाल की पुत्री अवश्य बतलाया गया है। परन्तु संभव है कि वे पृथ्वीराज की विमाता हों। दिल्ली के वीसलदेव के अधीन होने पर भी तोमर राजाओं का वहाँ रहना संभव है'[2]।

कविराव मोहनसिंह दिल्ली में कुतुबद्दीन ऐबक की मसजिद के अहाते में पड़े हुए लोहस्तम्भ के लेख "संवत् दिल्ली ११०६ अनंगपाल वही" का अर्थ 'दिल्ली संवत् अथवा पंड्या जी के अनंद विक्रम संवत् ११०६ में अनंगपाल द्वारा दिल्ली बसाना' करके उक्त संवत् में ६१ वर्ष जोड़कर वि० सं० १२०० में अनंगपाल तोमर का दिल्लीश्वर होना मानते हैं और जिनपाल

---

१. " But is it not possible that Delhi might have been actually given in Dowry by the last Tomar ruler of the place to Visaldeva, the half brother of Someshvar, from whom the story might have been transferred to Someshvar by some late redactor of Raso ? We learn from the Lalitvigraharaja-nataka that Visaldeva IV had actually determined to march tawards Indraprastha, the ruler of which had a daughter who had fallen in love with Visaldeva. Unfortunataly, the drama as we have it now is not complete." The Age and the Historicity of the Prthviraj Raso, The Indian Historical Quarterly, Vol. XVI, December 1940.

२. पृथ्वीराज रासो की एक प्राचीन प्रति और उसकी प्रमाणिकता, ना० प्र० प०, कार्तिक सं० १९९६ वि०, पृ० २७५-८२ ;

रचित 'खरतरगच्छपट्टावली' के आधार पर सं० १२२३ वि० के दिल्ली के राजा मदनपाल और अनंगपाल नाम एक ही व्यक्ति के स्वीकार करते हुए लिखते हैं—'जब कि उपरोक्त प्रमाणों से और लोक प्रसिद्धि से अनंगपाल तँवर का उस समय होना सिद्ध होता है तो उसकी पुत्री कमला से पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का विवाह होने में कोई शंका नहीं होनी चाहिये और बहु विवाह की प्रथा होने से कर्पूरदेवी भी सोमेश्वर की रानी रही हो और विमाता होने से उसको भी पृथ्वीराज की माता लिखा गया हो यह संभव है। पृथ्वीराज विषयक अन्य पुस्तकादि (पृथ्वीराजविजय और हम्मीरमहाकाव्य) में लिखे गये उसके जीवन वृत्तान्त पर खूब सोचने से पृथ्वीराज का जन्म रासौ में लिखे अनुसार वि० सं० १२०५-६ में होना ही मानना पड़ता है। परन्तु विद्वानों (ओझा जी) ने सोमेश्वर का विवाह कर्पूरदेवी के साथ वि० सं० १२१८ के बाद होना माना है अत: पृथ्वीराज का कर्पूर-देवी के गर्भ से उत्पन्न होना संभव नहीं है'[1]।

समरसिंह या सामंतसिंह

रासो की ऐतिहासिकता की परीक्षा के लिये हर्षनाथ के मन्दिर की प्रशस्ति, बिजोलियाँ का शिलालेख, पृथ्वीराजविजय, प्रबन्धकोष, हम्मीरमहाकाव्य और सुर्जनचरित्र आदि प्रमाण-साक्ष्य में लाये जाने वालों में से किसी में भी पृथ्वीराज की बहिन का उल्लेख नहीं मिलता है। रासो के अनुसार दिल्ली के अनंगपाल तोमर की कन्या कमला और अजमेर-नरेश सोमेश्वर के विवाह से उत्पन्न पृथा, पृथ्वीराज की सगी बहिन थी, जिसका विवाह चित्तौड़ के रावल समरसिंह के साथ हुआ था[2] :

चित्रकोट रावर नरिंद। सा सिंघ तुल्य बल ॥
सोमेसर संभरिय। राव मानिक सुभग्ग कुल ॥
मुष मंत्री कैमास। पांन अवलंबन मंडिय ॥
मास जेठ तेरसि सु मधि। ऐन उत्तर दिसि हिंडिय ॥
सुक्रवार सुकल तेरसि घरह। घर लिन्नौ तिन बर घरह ॥
सुकलंक लगन मेवार धर। समर सिंघ रावर बरह ॥ २१-१

सत्ताइसवें समय में हम विषम मेवाड़पति को पृथ्वीराज के पक्ष से सुलतान गोरी की सेना पर भयङ्कर आक्रमण करते हुए पाते हैं :

---

१. पृथ्वीराज रासो पर पुनर्विचार, राजस्थान-भारती, भाग १, अङ्क २-३, सन् १९४६ ई०, पृ० ४३-४४ ;

२. पृथाव्याह कथा, स० २१ ;

पवन रूप परचंड। घालि असु असि वर झारै ॥
मार मार सुर वज्जि। पत्त तरु अरि सिर पारै ॥
फटकि सद्द फीफरा। हड्डु कंकर उप्पारै ॥
कटि भसुंड परि मुंड। भिंड कंटक उप्पारै ॥
बज्जयौ विषम मेवार पति। रज उडाइ सुरतान दल ॥
समरथ्थ समर सम्मर मिलिय। अनी मुष्ष पिष्षौ सबल ॥ ६६

उन्तीसवें समय में पृथ्वीराज द्वारा सुलतान से दंडस्वरूप पाया हुआ सुवर्ण रावल जी के पास भेजने का समाचार मिलता है।[1] रणथम्भौर के राजा भान की अभयदान-याचना सुनकर पृथ्वीराज, समरसिंह को भी सहायतार्थ बुलाते हैं[2] और दोनों की सेनायें आर्त का उद्धार करती हैं[3]। द्वारिका-यात्रा में चंद चित्तौड़ जाकर पृथा और समरसिंह द्वारा पुरस्कृत होता है।[4] द्वितीय हाँसीपुर युद्ध में आहुडपति रावल चित्रांग को पृथ्वीराज के मंत्री कैमास बुला भेजते हैं जहाँ युद्ध में विजयी होकर वे दिल्ली जाते हैं तथा कुछ दिन वहाँ रहकर भेंटस्वरूप सुसजित बीस घोड़े और पाँच हाथी पाकर घर लौट जाते हैं।[5] अपने राजसूय-यज्ञ के निमंत्रण का रावल जी द्वारा विरोध सुनकर[6] जयचन्द्र के चित्तौड़ पर आक्रमण में विजय-श्री समरसिंह को ही प्राप्त होती है[7]। एक रात्रि को स्वप्न में दिल्ली की मन-मलीन राज्यलक्ष्मी को देखकर[8] रावल जी अपने पुत्र रतन को राज्यभार दे देते हैं[9] जिससे उनका (ज्येष्ठ) पुत्र कुंभकर्ण (अप्रसन्न होकर) बीदर के बादशाह के पास चला जाता है[10]। दिल्ली पहुँचकर वहाँ की अव्यवस्था और पृथ्वीराज को संयोगिता के रस-रंग में निमग्न देखकर उन्हें

---

१. छं० ५६-५७ ;
२. छं० २२, स० ३६ ;
३. छं० २३-८५, वही ;
४. छं० १८-२५, स० ४२ ;
५. छं० ६४-२०३, स० ५२ ;
६. छं० २४-५१, स० ५५ ;
७. छं० १-१०६, स० ५६ ;
८. छं० १-२, स० ६६ ;
९. छं० ५, वही ;
१०. छं० ६, वही ;

बड़ा क्लेश होता है[१], इसी बीच में ग़ोरी के आक्रमण का समाचार मिलता है और पृथ्वीराज उससे मोर्चा लेने के लिये सन्नद्ध होते हैं[२], चौहान द्वारा घर चले जाने के प्रस्ताव और प्रार्थना पर रुष्ट होते हुए वे सुलतान से भिड़ने का हठ करके ठहर जाते हैं[३] तथा युद्ध में अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित कर, वीरगति प्राप्त करते हैं :

दिष्षि षान षुरसान । गुर बर जंमथ्थ उपदिय ॥
समर सिंघ मुष चहर । हिंदु मेछ्रन मिलि जुट्टिय ॥
गिद्धिनि पल संग्रहन । जुथ्थ लंबे रन आइय ॥
श्रोन परत निज्झरत । पत्र जुग्गिनि लै धाइय ॥
पल चरिय मेछ हिंदू सहर । अच्छरि मल अति जग्ग किय ॥
महदेव सीस बंधे गरां । काल झरपि लीनौ नुजिय ॥ १३८७

युद्ध का विषम परिणाम सुनकर संयोगिता के प्राण छूट जाते हैं और रावल जी की सहगामिनी पृथा सती हो जाती हैं :

निरषि निधन संजोगि । प्रिथी सज्जी सु सामि सथ ॥
हक्कि हंस तत्तारि । वीर अवरिय प्रेम पथ ॥
साजि सकल श्रृंगार । हार मंडिय मुगतामनि ॥
रजि भूषन हय रोहि । जलिज अच्छित उच्छारति ॥
है हया सद्द जंपत जगत । हरि हर सुर उच्चार वर ॥
सह गमन सिंघ रावर चले । तजि महि फूल श्रीफल सुकर ॥ १६२०

समरसिंह सम्बन्धी रासो की इस कथा का उल्लेख संक्षेप में 'राजप्रशस्ति काव्य'[४] में भी मिलता है।

रासो की विवेचना करते हुए समरसिंह के प्रसंग में अमृतलाल शील ने लिखा है—"समरसिंह और रत्नसिंह के जो कई दान पत्र मिले हैं उनसे प्रमाणित होता है कि समरसिंह पृथ्वीराज से एक शताब्दी पीछे चित्तौर के राजसिंहासन पर बैठा था और उसका पुत्र रत्नसिंह ईसा की चौदहवीं सदी में अलाउद्दीन ख़िलजी के समय विद्यमान था। इससे प्रमाणित होता है कि समरसिंह पृथ्वीराज का बहनोई अथवा

---

१. छं० ७-७०, वही ;
२. छं० १८०-३३८, वही ;
३. छं० ३३६-६५, वही ;
४. सर्ग ३, श्लोक २४-२७ ;

रत्नसिंह पृथ्वीराज का भानजा नहीं हो सकता। चित्तौर के राना वंश में एक से अधिक समरसिंह और रत्नसिंह नाम के राना हो चुके हैं।"[1]

महामहोपाध्याय ओझा जी ने भावनगर इंसक्रिप्शन्स[2], नादेसमा के शिलालेख[3], पाक्षिकवृत्ति[4], चित्तौड़ के पास गंभीरी नदी के पुल की नवीं मेहराब के शिलालेख[5], चीरवे के विष्णु-मन्दिर के समरसिंह के प्रथम[6] और अन्तिम शिलालेख[7] के प्रमाण देते हुए लिखा है—"रावल समरसिंह वि० सं० १३५८ तक अर्थात् पृथ्वीराज की मृत्यु से १०९ वर्ष पीछे तक तो अवश्य जीवित था। ऐसी अवस्था में पृथाबाई के विवाह की कथा भी कपोलकल्पित है। पृथ्वीराज, समरसिंह और पृथाबाई के वि० सं० ११४३ और ११४५ (इस संवत के दो); वि० सं० ११३९ और ११४५; तथा वि० सं० ११४५ और ११५७ के जो पत्र, पट्टे, परवाने नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिंदी पुस्तकों की खोज में फोटो सहित छपे हैं, वे सब जाली हैं, जैसा कि हमने नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण) भाग १, पृ० ४३९-५२ में बतलाया है।"[8]

शील जी रासो की कथा पर सन्देह प्रकट करके पूर्व ही यह भी लिख चुके थे कि समरसिंह और रत्नसिंह नाम के कई राना चित्तौड़ में हुए हैं। चित्तौड़ के राणाओं के विषय में पर्याप्त छान-बीन करके ओझा जी ने पहले यह अनुमान किया—'समतसी और समरसी नाम परस्पर मिलते-जुलते हैं.... अस्तु माना जा सकता है कि अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज दूसरे (पृथ्वीभट) की बहिन पृथाबाई का विवाह मेवाड़ के रावल समतसी (सामंतसिंह)

---

१. चन्दवरदाई का पृथ्वीराजरासो, सरस्वती, भाग २७, संख्या ६, जून, सन् १९२६ ई०, पृ० ६७८ ;
२. सं० १२७० वि० का लेख, टिप्पणी पृ० ९३ ;
३. सं० १२७९ वि० का लेख, भावनगर प्राचीन शोध संग्रह ;
४. पीटर्सन की तीसरी रिपोर्ट, पृ० १३० के अनुसार सं० १३०९ वि० रचित ;
५. जे० ए० एस० बी०, जिल्द ५५, भाग १, सन् १८८६ ई०, पृ० ४६-४७ ;
६. वियना ओरियंटल जर्नल, जिल्द २१, पृ० १५५-६२ ;
७. उदयपुर के विक्टोरिया हाल में सुरक्षित ;
८. पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, ना० प्र० प०, भाग १०, सं०१९८६ वि० (सन् १९२९ ई०), पृ० ४४-४५ ;

से हुआ होगा। डूँगरपुर की ख्यात में पृथाबाई का संबंध समतसी से बतलाया भी गया है'[1]। और उन्होंने फिर अनुमान किया—'समतसी और समरसी के नामों में थोड़ा सा ही अंतर है इसलिये संभव है कि पृथ्वीराज रासो के कर्ता ने समतसी को समरसी मान लिया हो। बागड़ का राज्य छुट जाने के पश्चात् सामंतसिंह कहाँ गया इसका पता नहीं चलता। यदि वह पृथ्वीराज का बहनोई माना जाय तो बागड़ का राज्य छूट जाने पर संभव है कि वह अपने साले पृथ्वीराज के पास चला गया हो और शहाबुद्दीन ग़ोरी के साथ की लड़ाई में मारा गया हो'[2]। राजस्थान के अन्य इतिहासवेत्ता जगदीशसिंह गहलोत ने भी उपर्युक्त अनुमान की पुष्टि की है।[3]

जैसा मैंने अपनी पूर्व पुस्तक[4] में दिखलाया था तथा प्रस्तुत पुस्तक[5] में विस्तार से विवेचना करते हुए सूचना दी है कि रासो के पृथ्वीराज (तृतीय) की बहिन पृथा से विवाह करने वाला, उनका समकालीन चित्तौड़ का सामंतसिंह (समतसी) था जिसके नाम का रूप लिपिकारों के अज्ञानवश समरसिंह या समरसी हो गया है। 'बड़ी लड़ाई रो प्रस्ताव ६६' का छन्द ६, जिसमें कुम्भकर्ण के बीदर जाने का उल्लेख है, परवर्ती प्रक्षेप हो सकता है। इस छन्द को हटा देने से कथा के प्रवाह में कोई बाधा नहीं पड़ती। और रासो के उन स्थलों पर जहाँ 'समरसिंघ' या 'समर' प्रयुक्त हुआ है, क्रमश: 'समतसिंघ' और 'समत' कर देने पर छन्द की गति भी भङ्ग नहीं होती। रासो में कहीं-कहीं समरसिंह के स्थान पर सामंतसिंह भी प्रयुक्त हुआ है, यथा—

सामंत सिंह रावर चवै। सुगति सुगति लभ्भै तुरत ॥६६-८५२

पृथ्वीराज के विवाह

रासो के 'विवाह सम्यो ६५' में पृथ्वीराज के चौदह विवाहों का निम्न-उल्लेख मिलता है :

प्रथम परनि परिहारि। राइ नाहर की जाइय ॥
जा पाछै इंछनीय । सलष की सुता बताइय ॥

---

१. उदयपुर राज्य का इतिहास, पहली जिल्द, पृ० १५४; सन् १९३१ ई०,
२. डूँगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५३; सन् १९३६ ई० ;
३. राजपूताना का इतिहास, पृ० १९८ ; सन् १९३७ ई० ;
४. चंद वरदायी और उनका काव्य, पृ० २७ ;
५. रेवातट, भाग २, पृ० ६८-६६ ;

जा पाछै दाहिमी । राय डाहर की कन्या ॥
राय कुँअरि अति रीत । सुता हंमीर सु मन्या ॥
राम साह की नंदिनी । बडगुज्जरि बानी बरनि ॥
ता पाछैं पदमावती । जादवनी जोरी परनि ॥१

रायधन की कुंअरि । दुति जसुगीरी सुकहियै ॥
कछवाही पज्जूनि । भ्रात बलिभद्र सुलहियै ॥
जा पाछै पुंडीरि । चंद नंदनी सु गायव ॥
ससि बरना सुंदरी । अवर हंसावति पायव ॥
देवासी सोलंकनी । सारंग की पुत्री प्रगट ॥
पंगानी संजोगता । इतें राज महिला सुघट ॥२

इससे आगे आगामी छन्द ३-१२ तक इन विवाहों में पृथ्वीराज की अवस्था का वर्णन इस प्रकार किया गया है — ग्यारह वर्ष की अवस्था में उन्होंने नाहरराय परिहार को युद्ध में मारकर उसकी कन्या से 'पुहकर' (पुष्कर) में विवाह किया, बारह वर्ष की आयु में आबू-दुर्ग को तोड़ने वाले चालुक्य को परास्त करके सलख की पुत्री और आबू की राजकुमारी इंच्छिनी से परिणय किया, उनके तेरहवें वर्ष में चामंडराय ने बड़े उत्साह से अपनी बहिन दाहिमी उन्हें व्याह दी, चौदहवें वर्ष हाहुलीराय हमीर ने अपनी कन्या का तिलक भेज कर उनके साथ विवाह कर दिया, पन्द्रह वर्ष की अवस्था में वीर चौहान ने अत्यंत गहीर (गम्भीर) बड़गूजरी को व्याहा और इसी वर्ष अत्यन्त हित मानते हुए उन्होंने रामसाहि की पुत्री से भी विवाह कर लिया, सोलह वर्ष की अवस्था में उन्होंने पूर्व दिशा के समुद्र-शिखरगढ़ के यादव राजा की कन्या पद्मावती को प्राप्त किया, सत्रहवें वर्ष वे गिरदेव[1] पर गर्जन करके रामधन की पुत्री ले आये, अठारहवें वर्ष उन्होंने वीर बलभद्र कछवाह की बहिन पज्जूनी का पाणिग्रहण किया, उन्नीस वर्ष की अवस्था में वे चंद पुंडीर की चन्द्रवदनी कुमारी पुंडीरनी से उपयमित हुए, बीस वर्ष की आयु में (देवगिरि की) शशिवृता को ले आये, इक्कीसवें वर्ष में संभर-नरेश ने (रणथम्भौर की) हंसावती से परिणय किया, बाइसवें वर्ष

---

१. रासोसार, पृ० ३८२ पर 'गिरदेव' का शब्द-विपर्यय करके 'देवगिरि' लिखा गया है, जो मेरे अनुमान से उचित नहीं है। देवगिरि की कुमारी शशिवृता भी पृथ्वीराज से विवाहित हुई हैं अस्तु 'गिरदेव' को 'देवगिरि' मानने में समस्या उलझती ही है सुलझती नहीं।

उन्होंने शूरमा सारंग की पुत्री से व्याह किया। तथा छत्तीस वर्ष और छै मास की अवस्था में वे अपने चौंसठ सामंतों की आहुति देकर, पचास लाख शत्रु-दल का सफाया करके पंग की पुत्री राठौरनी को ले आये :

छत्तीस बरस षट मास लोय। पंगानि सुता ल्याये सुसोय ॥
रट्ठौरि ल्याय चौसठि मराय। पंचास लाख अरि दल खपाय ॥१२

परन्तु उपर्युक्त विवरण में उज्जैन के राजा भीमप्रमार को जीतकर उसकी कन्या इन्द्रावती के विवाह का उल्लेख नहीं किया गया है जिसका विस्तृत वर्णन समय ३२ और ३३ में दिया है। रासो के वर्णन-क्रम में इन्द्रावती का विवाह हंसावती से पूर्व होता है अस्तु समय ६५ की सारंग की पुत्री देवासी (देवास की या देवी सदृश) सोलंकिनी कोई दूसरी ही राजकुमारी है जिसे इन्द्रावती नहीं माना जा सकता।

इस प्रकार देखते हैं कि कुल मिलाकर पृथ्वीराज के पन्द्रह विवाहों का समाचार रासो देता है। परन्तु ये सारे विवाह पृथक रूप से वर्णित नहीं हैं और इनमें से कुछ की सूचना मात्र इसी प्रस्ताव में मिलती है, जिससे इन सबकी वास्तविकता में सन्देह भी होने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जो विवाह अपहरण अथवा कन्या-पक्ष के किसी विपक्षी से युद्ध करके उसे पराजित करने के फलस्वरूप हुए हैं कवि ने उन्हीं का विस्तृत वर्णन किया है और उनमें से भी जिनमें अपहरण द्वारा कुमारियों की प्राप्ति हुई है वे विशेष चाव से लिखे गये हैं। ऐसे ही स्थलों पर रति-वश उत्साह की प्रेरणा पाकर शृङ्गार और वीर का सामञ्जस्य-विधान देखा जाता है। इन विवाहों के विषय में इतना ध्यान और रखने योग्य है कि कन्या-पक्ष की अनुमति से होने वाले पृथ्वीराज के विवाह उनके सामंती घराने से होते हैं; जहाँ कन्या-पक्ष द्वारा अपने किसी शत्रु से त्राण हेतु निमंत्रण पाकर युद्ध में उक्त विपक्षी को परास्त करके कुमारी की प्रप्ति होती है वहाँ उक्त पक्ष स्वाभाविक रूप से चिर मैत्री के बन्धन में बँध जाता है और जहाँ किसी राज-कन्या के रूप-गुण से प्रेरित हो उसकी प्राप्ति अपहरण और युद्ध करके होती है वहाँ भी अन्त में उस राज-कुल से भविष्य में सहायता के प्रमाण मिलते हैं। इन तीनों प्रकार के विवाहों द्वारा पृथ्वीराज से सम्बन्धित होकर संकटकाल में उन्हें सहायता न देने के दो अपवाद हैं—एक तो काँगड़ा के हाहुलीराय हमीर का जो अन्तिम युद्ध में ग़ोरी के पक्ष में चला गया था और दूसरा कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द्र का जो उक्त युद्ध में तटस्थ रहे।

राज-पुरुषों के बहु विवाहों के पीछे जहाँ कुमारी के प्रति आकर्षण

और शौर्य-प्रदर्शन का एक निमित्त आदि रहे होंगे वहाँ येनकेनप्रकारेण विवाह-सम्बन्ध से अन्य शासकों की मैत्री का चिर बन्धन और उस पर आधारित सहायता-प्राप्ति का अभीष्ट भी प्रेरक रहना सम्भव है। बहु विवाहों वाले उस युग में अपूर्व शूरमा पृथ्वीराज के अनेक विवाह न हुए हों यह किञ्चित् आश्चर्य-जनक है। अभी तक उनके विवाह सम्बन्धी कोई शिलालेख नहीं मिले तथा अनेक विरोधी प्रमाण मिले अस्तु इतिहासकारों को रासो-वर्णित विवाहों में से एक भी मान्य नहीं है। समय ६५ में केवल नाम देकर चलते कर दिये गये विवाहों को विवशता पूर्वक छोड़कर हम यहाँ केवल उनमें से कुछ पर क्रमश: विचार करेंगे जिनके सम्बन्ध में पृथक रूप से विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए कवि ने अन्य सूचनायें भी दे रखी हैं।

रासो में सर्व प्रथम ग्यारह वर्ष की अवस्था में पृथ्वीराज का मंडोवर के परिहार (पड़िहार) नाहरराय की कन्या से विवाह दिया है।[१] म० म० ओझा जी ने मंडोवर के पड़िहारों के सन् ८३७ ई० (वि० सं० ८९४) के शिलालेख[२] के आधार पर बताया है कि नाहरराय पृथ्वीराज से कई सौ वर्ष पूर्व हुए थे। मंडोवर के पड़िहारों का राज्य सन् ११४३ ई० से पूर्व ही नाडोल के चौहानों के हाथ जा चुका था और नाडोल के चौहान सहजपाल के शिलालेख[३] से प्रमाणित है कि पृथ्वीराज के समय वही वहाँ का अधिपति था।

पृथ्वीराज का दूसरा विवाह बारह वर्ष की अवस्था में आबू के राजा सलख परमार की पुत्री और जैतराव की बहिन इंच्छिनी से हुआ था।[४] रासो के अनुसार यह रानी इंच्छिनी ही पृथ्वीराज की पटरानी थी। अमृतलाल शील ने राष्ट्रकूट धवल के सन् ९९६ ई० के शिलालेख के आधार पर बताया है कि पृथ्वीराज से दो सौ वर्ष पूर्व आबू या चन्द्रावती का शासक धरणीवराह था जिसने गुजरात के राजा मूलराज सोलंकी (चालुक्य) की आधीनता स्वीकार कर ली थी तथा आबू के अचलेश्वर के मन्दिर और वस्तुपाल के जैन मन्दिर की सन् १२३० ई०

---

१. नाहरराय कथा वर्णनं, सातवाँ समय ;
२. एपिग्राफ़िया इंडिका, जिल्द १८, पृ० ९५-९७ ;
३. आर्केलाजिकल सर्वे आव इंडिया, एन्यूअल रिपोर्ट, सन् १९०९-१० ई०, पृ० १०२-३ ;
४. इंच्छिनि ब्याह कथा, चौदहवाँ समय ;

(वि० सं० १२८७) की प्रशस्ति[१] में गुर्जरेश्वर कुमारपाल द्वारा सपादलक्ष या शाकम्भरी-नरेश अर्णोराज को परास्त करके उनके पक्ष में चले जाने वाले अपने आबू के सामंत विक्रम परमार को गद्दी से उतार कर उसके भतीजे यशधवल को वहाँ का अधिपति बनाने का उल्लेख करके, आबू के अजारी गाँव के कुमारपाल की शास्ति सूचक सन् ११४५ ई० (वि० सं० १२०२) के लेख, सिरोही राज्य के कायद्रा ग्राम के उपकण्ठ में काशी विश्वेश्वर के मन्दिर के सन् ११६३ ई० (वि० सं० १२२०) के यशोधवल परमार के पुत्र धारावर्ष के शिलालेख[२] और 'ताज-उल-म आसीर' उल्लिखित सन् ११६७ ई० (वि० सं० १२५४) में ख़ुसरो अर्थात् कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा अन्हलवाड़ा पर आक्रमण-काल में गुजरात के रायकर्ण और धारावर्ष (परमार) सामंतों के युद्ध करने का विवरण देकर सिद्ध किया है कि पृथ्वीराज के समय में आबू पर गुर्जरेश्वर द्वारा नियुक्त परमार जातीय सामंतों का आधिपत्य था।[३] ओझा जी धारावर्ष के चौदह शिलालेखों और एक ताम्र-पत्र का उल्लेख करते हुए इनमें से राजपूताना म्यूज़ियम में सुरक्षित वि० सं० १२२० ज्येष्ठ सुदि १५[४], वि० सं० १२६५, १२७१ और १२७४[५] के शिलालेखों के प्रमाण पर पृथ्वीराज के सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व से लगाकर उनकी मृत्यु के बहुत पीछे तक आबू पर धारावर्ष (परमार) का ही शासन निश्चित करते हैं, जैत या सलख का नहीं।[६] जो कुछ भी हो प्रधान मंत्री कैमास का वध कराने वाली, संयोगिता के रूप के कारण सपत्नी-द्वेष से राजमहल त्यागने का उपक्रम करने वाली रासो की सुन्दरी, आबू की परमार राजकुमारी और पृथ्वीराज की पटरानी इंच्छिनी चरित्र-चित्रण की दृष्टि से चंद के काव्य की एक अद्भुत प्रतिमा है, जिसको डॉ दशरथ शर्मा 'कान्हड़ दे प्रबन्ध' के

---

१. एपिग्राफ़िया इंडिका, जिल्द ८, पृ० २०८-१३ ;
२. राजपूताना म्यूज़ियम अजमेर ;
३. हिस्टारसिटी आव दि एपिक, पृथ्वीराज रासो, मार्डन रिव्यू; तथा चंद बरदाई का पृथ्वीराज रासो, सरस्वती, मई, सन् १६२६ ई०, पृ० ५५८-६१ ;
४. इंडियन ऐन्टीक्वैरी, जिल्द ५६, पृ० ५१ ;
५. वही, जिल्द ५६, पृ० ५१ ;
६. पृथ्वीराज रासो का निर्माणकाल, कोषोत्सव स्मारक संग्रह, सन् १६२८ ई०, पृ० ४५-४६ ;

धारावर्ष परमार के छोटे भाई पाह्लण दे की पुत्री पद्मावती भी अनुमान करते हैं।[1]

रासो के 'विवाह सम्यो ६५' में वर्णित है कि तेरह वर्ष की अवस्था में पृथ्वीराज ने चामंडराय दाहिम की बहिन से विवाह किया था। इस विवाह की विस्तृत या सूक्ष्म सूचना पिछले किसी प्रस्ताव में नहीं है। 'कैमासबध नाम प्रस्ताव ५७' में हम पढ़ते हैं कि भानजे रयनकुमार और मामा चामंडराय में परस्पर बड़ी प्रीति थी :

दिल्लीवै चहुआन। तपै अति तेज पग्ग वर ॥
चंपि देस सब सीम। गंजि अरि मिलय धनुद्धर ॥
रयन कुमर अति तेज। रोहि हय पिट्ठ विसंमं ॥
साथ राव चामंड। करै कलि कित्ति असंमं ॥
मेवास वास गंजै द्रुगम। नेह नेह वड्ढै अनत ॥
मातुलह नेह भानेज पर। भागनेय मातुल सुरत ॥१,

और उनकी प्रीति देखकर चंद पुंडीर ने पृथ्वीराज के कान भरे थे।[2]

'बड़ी लड़ाई रो प्रस्ताव ६६' में पढ़ते हैं कि सुलतान ग़ोरी का प्रबल आक्रमण सुनकर और अपने पक्ष को निर्बल देखकर पृथ्वीराज ने रयनकुमार का राज्याभिषेक कर दिया था :

करिय सुचित भर सब्ब। राज दिन्नेव द्रव्य भर ॥
मंगि मदन श्रृंगार। गज्जबर पट्ट मद्द झर ॥
रयन कुमर आभासि। दीन माला मुत्ताहल ॥
असी बंधी निज पानि। बंदि कीनौ कोलाहल ॥
आरोहि गज्ज कुम्मार निज। पच्छ बंध सा सिंधु किय ॥
. . . जोगिनिय बंदि चहुआन पहु। क्रत्य काज मन्नेव इय ॥ ६०८

'राजा रयन सी नाम प्रस्ताव ६८' में पढ़ते हैं कि पृथ्वीराज को वन्दी करके ग़ोरी द्वारा उन्हें ग़ज़नी ले जाने का समाचार पाकर[3], शेष शूर सामंतों ने रयनसी (रैनसी) को राजगद्दी पर बिठाया[4]। चंद की युक्ति से ग़ोरी को

---

१. सम्राट पृथ्वीराज चौहान की रानी पद्मावती, मरु-भारती, भाग १, अङ्क १, सितम्बर १६५२ ई० ;

२. छं० २, स० ५७ ;

३. छं० १–५ ;

४. छं० ७–५२ ;

मारकर पृथ्वीराज के मरने का समाचार पाकर, सामंत-मण्डली ने शाही सेना से छेड़छाड़ करने की मंत्रणा की और इस निश्चय के फलस्वरूप राजा रयनसी ने चढ़ाई कर दी तथा शत्रु-सेना को भगाकर लाहौर पर अधिकार कर लिया; इसकी सूचना ग़ज़नी पहुँचने पर वहाँ की सेना ने आगे बढ़ते हुए दिल्ली-दुर्ग का घेरा डाल दिया और अपने अपूर्व पौरुष का परिचय देते हुए रयनसी ने वीर-गति प्राप्ति की।[१]

ओझा जी का कथन है कि पृथ्वीराज के पुत्र का नाम 'हम्मीर महाकाव्य'[२] में गोविन्दराज दिया है, जो उनकी मृत्यु के समय बालक था, तथा फारसी तवारीख़ों में उसका नाम गोला या गोदा पढ़ा जाता है, जो फारसी वर्णमाला की अपूर्णता के कारण गोविंदराज का बिगड़ा हुआ रूप ही है।[३] परन्तु 'सुर्जनचरित्रमहाकाव्य'[४] में पृथ्वीराज के पुत्र का नाम (बिना उसकी माता का उल्लेख किये) प्रह्लाद दिया है जिसका पुत्र गोविंदराज बतलाया गया है।

ओझा जी ने लिखा है कि सुलतान शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज के पु गोविंदराज को अपनी आधीनता में अजमेर की गद्दी पर बिठाया जिससे उनके भाई हरिराज ने उसे अजमेर से निकाल दिया और वह रणथम्भौर में रहने लगा; हरिराज का नाम पृथ्वीराजरासो में नहीं दिया है परन्तु पृथ्वीराजविजय, प्रबन्धकोश के अन्त की वंशावली तथा हम्मीरमहाकाव्य में दिया है[५] और फारसी तवारीख़ों में हीराज या हेमराज मिलता है[६], जो उसी के नाम का बिगड़ा हुआ रूप है। परन्तु 'सुर्जनचरित्रमहाकाव्य' में हरिराज के स्थान पर मानिक्यराज मिलता है।

बीकानेर-फोर्ट-लाइब्रेरी की ४००४ छन्द प्रमाण वाली रासो की प्रति में दाहिमी से पृथ्वीराज के विवाह का उल्लेख नहीं है और साथ ही शशिवृता एवं हंसावती आदि अनेक कन्याओं से भी उनके विवाह नहीं मिलते।[७] इन

---

१. छं० ५३—२१३;

२. तत्रास्ति पृथ्वीराजस्य प्राक् पित्रातो निरासित:।
पुत्रो गोविन्दराजाख्य: स्वसामर्थ्यात्तवैभव:॥ २४, सर्ग ४;

३. पृथ्वीराजरासो का निर्माण काल, कोषोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ४८;

४. श्लोक १—३, सर्ग ११;

५. जे० ए० एस० बी०, सन् १९१३ ई०, पृ० २७०-७१;

६. इलियट, हिस्ट्री आव इंडिया, जिल्द २, पृ० २१९;

७. पृथ्वीराजरासो की एक प्राचीन प्रति और उसकी प्रामाणिकता, डॉ० दशरथ शर्मा, ना० प्र० प०, कार्तिक १९९६ वि०, पृ० २७५-८२;

सारे विवाहों की स्थिति रासो की अन्य वाचनाओं में भी देखी जानी अति आवश्यक है।

शील जी ने समुद्रशिखरगढ़ की पद्मावती [१], देवगिरि की शशिवृता [२], मालवा की इन्द्रावती [3] और रणथम्भौर की हंसावती [४] के पृथ्वीराज से विवाह

---

१. "लेखक ने राढ़ के पालवंशी प्रतापी राजाओं के नाम सुने होंगे और वारेन्द्र भूमि के प्रतापी राजा विजयसेन का नाम सुना होगा, इन दोनों को मिलाकर उसने विजयपाल नाम गढ़ लिया होगा। इस विवाह की कहानी को यदि अधिक ध्यान देकर देखें तो प्रतीत होगा कि रासो के रसिक लेखक ने महाभारत में वर्णित भगवान श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के विवाह की कथा का अनुकरण कर यह एक नई कथा गढ़ कर लिख दी है। पृथ्वीराज को श्रीकृष्ण से उपमित कर उनको भी एक अवतार बनाना चाहा। रासो के इस अंश से ऐतिहासिक सत्य संवाद निकालना और मरुभूमि की बालुकाराशि से विशुद्ध पय उत्पन्न करना किसी गुप्त विद्या से ही संभव हो सकता है।" सरस्वती, सन् १६२६ ई०, भाग २७, संख्या ५, पृ० ५६१-६२ ;

२. "पृथ्वीराज की यौवनावस्था में नर्मदा से काँची तक विस्तृत कल्याण राज्य की ईंटें खिसक रही थीं उस समय देवगिरि में वहाँ का एक वेतनभोगी दुर्गपति रहता था। ११८६ ई० के उपरान्त इस दुर्गपति ने कल्याण-राज को दुर्बल देखकर स्वाधीन होने की चेष्टा की। ईसा की तेरहवीं सदी में देवगिरि के यादवों ने पूर्ण गौरव से राज्य किया।...रासो में संवत् नहीं लिखा है, तथापि शशिवृता का विवाह सन् ११८६ ई० से पहले ही हुआ होगा।" सरस्वती, भाग २७, संख्या ६, पृ० ६७६ ;
अस्तु आचार्य द्विवेदी जी के 'संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो' का 'शशिव्रता विवाह प्रस्ताव' भी द्विविधा में पड़ जाता है।

३. मालवा के लक्ष्मीवर्मा (सन् ११४३ ई०), हरिश्चन्द्र (सन् ११७६ ई०) और उदय वर्मा (सन् ११६६ ई०) के दानपत्रों को देखने पर रासो के (समय ३३) के भीमदेव, यादवराय और इन्द्रावती कल्पित पात्र प्रमाणित होते हैं। वही, पृ० ६७७ ;

४. वि० सं० १५०० रचित हम्मीरमहाकाव्य (सर्ग ४) के आधार पर पृथ्वीराज का पुत्र गोविंदराज ही रणथम्भौर का प्रथम शासक था।

विविध प्रमाणों के आधार पर अनैतिहासिक सिद्ध किये हैं[1] फिर भी इन पर और अधिक शोध की आवश्यकता है।

पृथ्वीराज की रानी और कान्यकुब्ज की राजकुमारी संयोगिता का उल्लेख नागार्जुन, भादानक जाति, महोबानरेश परमर्दिदेव चन्देल, गुर्जरेश्वर भीमदेव चालुक्य द्वितीय और आबू के धारावर्ष के साथ चौहान नरेश के इतिहास प्रसिद्ध युद्धों का नाम तक न लेने वाले 'हम्मीरमहाकाव्य' और जयचन्द्र को सूर्यवंशी, मल्लदेव का पुत्र, महोबा के मदनवर्मा को उसका आलान स्तम्भ आदि निराधार बातों का वर्णन करने वाली नाटिका 'रम्भामंजरी' में यदि नहीं है तो इसमें निराशा की कोई बात नहीं। डॉ० दशरथ शर्मा का सप्रमाण अनुमान उचित है कि 'पृथ्वीराजविजय' की तिलोत्तमा और 'सुर्जनचरित्र' की कान्तिमती ही रासो की संयोगिता है[2] जिसके कन्नौज से अपहरण का वृत्तान्त अबुलफ़ज़ल ने अपनी 'आईने-अकबरी' में भी दिया है। संयोगिता विषयक जनश्रुति इतनी प्रबल है कि अभी तक इतिहासज्ञों द्वारा मनोनीत सुलभ साक्ष्यों के अभाव में भी उसे सत्य ही मानना पड़ता है।

इनके अतिरिक्त 'पृथ्वीराज-रासो' में प्रयुक्त किये गये संवत्, वंशावली, बीसलदेव विषयक वृत्तान्त, मेवाती मुगल युद्ध, भीमदेव चालुक्य के हाथ से सोमेश्वर-वध, जिसके फलस्वरूप पृथ्वीराज द्वारा भीमदेव-वध, समरसिंह के पुत्र कुम्भा का बीदर जाना, पृथ्वीराज की मृत्यु, अरबी-फारसी शब्दों का व्यवहार आदि कई अनैतिहासिक विवरणों की ओर संकेत किया जाता है। इन पर कोई निर्णय देने लगना वर्तमान स्थिति में उचित इसलिये नहीं दिखाई देता कि इस समय रासो की चार वाचनाओं की सूचना के साथ ही यह भी ज्ञात हुआ है कि उनमें इतिहास विरोधी अनेक निर्दिष्ट वर्णन नहीं पाये जाते हैं[3] अस्तु सत्यासत्य विवेचन और रासो-कार्य बढ़ाने के लिये सबसे बड़ी आव-

---

मदनपुर का शिलालेख पृथ्वीराज को चंदेरी और महोबा का स्वामी सिद्ध करता है। अस्तु रासो के समय ३६ के पात्र कल्पित हैं। वही पृ० ६७७-७८ ;

१. चन्दबरदाई का पृथ्वीराजरासो, सरस्वती, सन् १९२६ ई०, संख्या ५, पृ० ५६१–६२, संख्या ६, पृ० ६७६-७८ ;

२. संयोगिता, राजस्थान-भारती, भाग १, अङ्क २-३, जुलाई-अक्टूबर, सन् १९४६ ई० ;

३. (अ) "बीसलदेव का चढ़ाई करना आदि नागरी प्रचारिणी सभा की

श्यकता इस बात की है कि उक्त वाचनायें आमूल प्रकाशित करवा दी जावें जिससे उन पर सम्यक् रूप से विचार करके एक निश्चित मत दिया जा सके। वृहत रासो पर तो अनेक विद्वानों ने विचार किया है परन्तु उसके अन्य छोटे रूपों को देखने और मनन करने का अवसर उनके संग्रह कर्ताओं के अतिरिक्त विरलों के भाग्य में ही पड़ा है।

अनैतिहासिक कूड़े करकट के ढेर से आवृत्त 'पृथ्वीराज-रासो' साहित्य

तरफ से छपे हुए रासो में लिखा है, जो तत्कालीन शिलालेख के संवत् विरुद्ध है इत्यादि। लेकिन हमारे पास के रोटो वाले रासो में पाटन पर चढ़ाई आदि की घटना का वर्णन नहीं है, अतः कह सकते हैं कि छपे हुए उक्त रासो में प्रक्षेप है। एवं पृथ्वीराज की माता का नाम, पृथ्वीराज का जन्म संवत् आदि जिन जिन घटनाओं का उन्होंने (ओझा जी ने) उल्लेख किया है वे सब घटनायें हमारे पास के रोटो वाले रासो ('छन्द संख्या आर्या छन्द से करीबन ७०००', 'असली पृथ्वीराज रासो' भूमिका, पृ० ३) में नहीं हैं और न हमारे पास के रासो में फारसी शब्द हैं। ओझा जी कहते हैं कि रासो में दशमांश फारसी शब्द हैं, इसका भी पूर्णतया खण्डन इस पुस्तक के प्रकाशित होते ही स्वयं हो जायगा।" महामहोपाध्याय पं० मथुरा प्रसाद दीक्षित, सरस्वती, नवंबर, सन् १९३४ ई०, पृ० ४५८ ;

(ब) "हम ऊपर बतला चुके हैं कि इस (पृथ्वीराज रासो की बीकानेर-फोर्ट लाइब्रेरी की रामसिंह जी के समय की ४००४ छन्द प्रमाण वाली लगभग सं० १६५७ वि० की हस्तलिखित प्रति) में दी हुई वंशावली विशेष अशुद्ध नहीं है। रासो को प्रायः निम्नलिखित कथानकों के कारण कृत्रिम एवं जाली बतलाया जाता है:—

१—अग्निवंशी क्षत्रियों की उत्पत्ति-कथा।

२—पृथाबाई और राणा संग्रामसिंह का विवाह।

३—भीम के हाथ सोमेश्वर की मृत्यु।

४—दाहिमा चामंड की बहिन, शशिव्रता एवं हंसावती आदि अनेक कन्याओं से पृथ्वीराज का विवाह।

हमारी प्रति में इन सब कथाओं का अभाव है।" डॉ० दशरथ शर्मा, पृथ्वीराजरासो की एक प्राचीन प्रति और उसकी प्रमाणिकता, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, कार्तिक १९९६ वि० (सन् १९३९ई०), पृ० २८२ ;

मनीषियों को उसी प्रकार अपनी ओर आकृष्ट करता है जिस प्रकार सिर पर जर्जरित लोम-पुटी डाले और गले में बोस मनकों की माला से भी रहित मुग्धा (के सौन्दर्य) ने गोष्ठ-स्थित (रसिकों) में उठा-बैठी करवा दी थी :

सिरि जर-खण्डी लोअडी गलि मणियडा न वीस ।
तो वि गोट्ठडा कराविआ मुद्धए उठ बईस ॥ ४२४-४,
हेमशब्दानुशासनम्,

और जिस प्रकार (पति के हृदय में) नव वधू के दर्शनों की लालसा लगाये अनेक मनोरथ हुआ करते हैं :

नव-वहु-दंसण-लालसउ वहइ मणोरह सोइ । ४०१-१, वही,

लगभग उसी प्रकार साहित्यकार भी रासो के रहस्य के प्रति उत्सुक और जिज्ञासु है ।

रेवा-तट

श्री जान बीम्स ने वृहत् रासो के 'आदि पर्व्व' के प्रथम १७३ छन्द सम्पादित करके एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल की बिब्लिओथेका इंडिका, न्यू सीरीज़, संख्या २६९, भाग १, फैसीक्यूलस १ में सन् १८७३ ई० में प्रकाशित करवाये थे तदुपरान्त रेवरेन्ड डॉ० ए० एफ० रुडॉल्फ ह्योर्नले ने 'पृथ्वीराज-रासो' के वृहत् रूपान्तर की विविध हस्तलिखित प्रतियों की सहायता से उसके 'देवगिरि सम्यो' से लेकर 'कांगुरा जुद्ध प्रस्ताव' तक अर्थात् दस प्रस्तावों का वैज्ञानिक संस्करण प्रस्तुत करके उक्त सोसाइटी की बिब्लिओथेका इंडिका, न्यू सीरीज़, संख्या ३०४, भाग २, फैसीक्यूलस १, सन् १८७४ ई० में प्रकाशित करवाया, और वहीं की बिब्लिओथेका, न्यू सीरीज़, संख्या ४५२, भाग २, फैसीक्यूलस १, सन् १८८१ ई० में 'रेवातट सम्यो २७' की कथा और गद्यानुवाद तथा 'अनंगपाल सम्यो २८' की कथा और उसके प्रथम तीन छन्दों का गद्यानुवाद अंग्रेजी भाषा में वांछित, भाषा-वैज्ञानिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक टिप्पणियों सहित प्रकाशित करवाया था । डॉ० ह्योर्नले के कार्य की प्रशंसा की अपेक्षा नहीं, वह एक सिद्ध शोध-कर्ता प्राच्य-विद्या-मनीषी की कृति है । 'पृथ्वीराज-रासो' पर अनुसन्धान कार्य करने और रेवातट आदि का पुन: सम्पादन करने के मूल प्रेरक डॉ० ह्योर्नले के निर्दिष्ट ग्रन्थ थे ।

यद्यपि प्रो० बूलर, कविराज श्यामलदान, डॉ० ओझा प्रभृति विदेशी

और देशी विद्वान् रासो की अनैतिहासिकता का नारा बुलंद कर चुके थे फिर भी उनका निर्णय सर्वमान्य नहीं था। भारत के विविध विश्वविद्यालयों में जहाँ कहीं हिन्दी पढ़ाने का प्रबन्ध था वहाँ हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष ने रासो के अंश एम० ए० के पाठ्य-क्रम में प्राचीन हिन्दी-प्रश्नपत्र के अन्तर्गत अनिवार्य रूप से सम्मिलित कर रखे थे। इतिहासानुरागी रासो का नाम लेते ही जहाँ नाक-भौं चढ़ाने लगता था वहाँ हिन्दी-साहित्य-सेवी उसे अपने साहित्य-कोष की अमूल्य निधि मानता हुआ उस पर गर्व करता था। दोनों पक्ष अपने अपने तर्कों और भावना में अटल थे। सन् १६३६ ई० में मुनिराज जिन-विजय जी द्वारा शोधित रासो के चार अपभ्रंश छन्दों ने म० म० गौरीशंकर हीराचंद ओझा सदृश इतिहासकार को भी रासो पर अपना पूर्व मत अंशत: परिवर्तित करने के लिए विवश कर दिया था। म० म० पं० मथुराप्रसाद दीक्षित और ओझा जी के रासो-विषयक उत्तर-प्रत्युत्तर में सरस्वती और सुधा में प्रकाशित संघर्षात्मक लेखों ने इस काव्य पर पुन: विचार हेतु नवीन प्राण फूँके। परन्तु सन् १६३६ ई० तक भावना-चेतन करने वाली इस सामग्री के अतिरिक्त 'पृथ्वीराज-रासो' पर कार्य के सहारे के लिये उसका 'सभा' द्वारा प्रकाशित बृहत् रूपान्तर मात्र ही सुलभ था। ७००० छन्द-संख्या-प्रमाण वाले रासो की चर्चा तो छिड़ी परन्तु यथेष्ट यत्न करने पर भी उसके दर्शन न हो सके। अस्तु विवश होकर डॉ० ह्योर्नले द्वारा सम्पादित रासो, सभा प्रकाशित रासो और बम्बई विश्वविद्यालय तथा रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बाम्बे ब्रांच के बृहत् रासो के हस्तलिखित ग्रन्थों से 'रेवातट सम्यो २७' के पाठान्तरों का उल्लेख करते हुए, और उनमें से अधिक अर्थ संगत को प्रधानता देते हुए, रासो का वर्तमान 'रेवातट' प्रस्तुत किया गया। डॉ० ह्योर्नले द्वारा 'रेवातट सम्यो' के अनुवाद में निर्दिष्ट ग्रन्थों को मूल रूप में देखकर तथा सन् १६४१ ई० तक प्रकाशित अन्य सम्बन्धित, सुलभ और उपयोगी ग्रन्थों से भी सहायता ली गई तथा इंडियन ऐन्टीक्वैरी और जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल के अङ्कों में प्रकाशित श्री ग्राउज़ और जॉन बीम्स के इस प्रस्ताव के आंशिक अनुवादों में ह्योर्नले से यत्र-तत्र मतभेद का भावार्थ में यथास्थान उल्लेख कर दिया गया।

'रेवातट-प्रस्ताव' में अपने गुप्तचरों द्वारा दिल्लीश्वर पृथ्वीराज चौहान को रेवा (नर्मदा) नदी-तट-स्थित वन में मृगया-मग्न सुनकर शहाबुद्दीन का सदल-बल आक्रमण और पृथ्वीराज के शीघ्र ही पलट कर उससे मोर्चा लेने और रण में उसकी सेना को विच्छिन्न करके उसको बन्दी बनाने का

विवरण है। इस प्रस्ताव का अधिक अंश युद्ध का वर्णन करता है जिससे इसके 'रेवातट' नाम की सार्थकता का साक्षात् किंचित् विभ्रम में डाल देता है परन्तु यह विचारते ही कि सुदूर रेवातट पर मृगया-विनोद-रत अचिन्त चौहान सम्राट् प्रबल विपक्षी के घातात्मक अभियान से विचलित न होकर उससे सहर्ष-सोत्साह जा भिड़े, उसका निराकरण कर देता है।

'रेवातट' नाम का कोई स्वतन्त्र समय ७००० छन्द संख्या वाली ओरियन्टल कॉलेज लाहौर की तथा ३५०० छन्द संख्या वाली बीकानेर की रासो प्रतियों में नहीं है और १३०० छन्द संख्या वाली धारणोज की प्रति में उसकी स्थिति का पता नहीं है। वर्तमान परिस्थिति में यह कहना अनिश्चित ही है कि उपर्युक्त तीनों वाचनाओं में 'रेवातट' की कथा यदि स्वतन्त्र रूप से पृथक् प्रस्ताव में नहीं दी गई है तो क्या वह अंशतः किसी अन्य कथा के साथ मिश्रित भी नहीं है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने स्वसम्पादित 'संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो' में 'रेवातट सम्यो' को स्थान नहीं दिया है। परन्तु उनका यह विचार कि 'पृथ्वीराज रासो' का मूल रूप उनके द्वारा सम्पादित रासो के आस-पास होना चाहिये, कोई विशेष विग्रह नहीं खड़ा करता जब उक्त पुस्तक की भूमिका के अन्त में हम पढ़ते हैं—'विद्यार्थी को इस संक्षिप्त रूप से रासो की सभी विशेषताओं को समझने का अवसर मिलेगा और वह उस ग्रन्थ की साहित्यिक महिमा के प्रति अधिक जिज्ञासु और आग्रहवान होगा'। 'आसपास' के घेरे की परिधि विस्तृत हो सकती है जिसका स्पष्टीकरण उनकी पुस्तक के शीर्ष 'संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो' का 'संक्षिप्त' शब्द भी करता है। मूल रासो की खोज के इस प्रकार के विद्वत् प्रयत्न सराहनीय हैं परन्तु इस समय अतीव आवश्यकता इस बात की है कि इस काव्य की चारों विश्रुत वाचनायें प्रकाश में लाई जावें तभी अधिक अधिकार पूर्वक चर्चा सम्भव और समीचीन होगी।

प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका और परिशिष्ट कवि चन्द की कृति को समझने का मौलिक प्रयास है जिसे 'कइ धणवाल' (कवि धनपाल) के विनम्र शब्दों—'बुधजन संभालमि तुम्ह तेत्थु' (अर्थात्—हे बुधजन, तुम उसे सँभाल लेना) सहित समाप्त कर रहा हूँ।

विपिन विहारी त्रिवेदी

द्वितीय भाग

।। २७ ।। अथ रेवातट सम्यौ लिष्यते ।। २७ ।।

दूहा

देवग्गिरि जीते सुभट, आयौ चामंड राइ[1] ।
जय जय न्रप कीरति सकल, कही कव्विजन गाइ[2] ।। छं० १ । रू० १।
मिलत राज प्रथिराज सों, कही राव चामंड ।
रेवातट जो मन करौ, (तौ)[3] वन अपुव्व गज झुंड ।। छं० २ । रू० २।

भावार्थ—रू० १—(जब) देवगिरि को जीतकर श्रेष्ठ वीर चामंडराय आया (तब) सब कवियों ने राजा (पृथ्वीराज) की कीर्ति का जय गान किया।

रू० २—(तद्पश्चात्) चामंडराय ने महाराज पृथ्वीराज से मिलकर कहा कि यदि आप रेवातट पर चलने की इच्छा करें तो वहाँ वन में अपूर्व हाथियों के झुंड मिलेंगे।

शब्दार्थ—रू० १—देवग्गिरि < देवगिरि = आधुनिक दौलताबाद का नाम था। दौलताबाद, निजाम राज्य में औरंगाबाद के पास और नर्मदा नदी के दक्षिण में १६°·५७′ अक्षांश उत्तर और ७५°.१५′ देशांतर पूर्व में बसा है [Hindostan. Hamilton Vol. II, p. 147]। देवगिरि नाम का नगर भी था और दुर्ग भी। [वि० वि० प० में]—'देवगिरि सम्यौ' के अनुसार पृथ्वीराज ने देवगिरि के राजा की पुत्री शशिवृता का अपहरण कर उससे विवाह किया जिसकी राजा जयचन्द को मँगनी दी जा चुकी थी। इसके फलस्वरूप पृथ्वीराज के सेनापति चामंडराय की अध्यक्षता में देवगिरि के राजा व जयचंद की संयुक्त सेना से युद्ध हुआ। चामंडराय विजयी हुआ। उसके अनुसार नर्मदा नदी दिल्ली से देवगिरि जानेवाले मार्ग में पड़ती थी जिसे हम भूगोल के अनुसार ठीक पाते हैं। चामंडराय = यह दाहरराय दाहिम का सब से छोटा पुत्र था और पृथ्वीराज का एक वीर सेनापति था। कव्विजन < कविजन = कवि (बहु वचन)। सुभट = श्रेष्ठ वीर।

---

(१) ना०—राय (२) ना०—आय (३) ना०—'तौ' नहीं है; डा० ह्योर्नले ने अपनी संपादित पुस्तक में 'तौ' लिखा है।

रू० २—प्रथिराज <पृथ्वीराज (तृतीय) चौहान जो दिल्ली का अन्तिम हिंदू सम्राट था। यह अजमेर के राजा सोमेश्वर का पुत्र था [राजपूताना का इतिहास गौ० ही० ओ०, भाग १, जिल्द ४, पृ० ७२]। रेवा—आधुनिक नर्मदा नदी का नाम था। नर्मदा मध्यप्रदेश की एक नदी है जो अमर कंटक पर्वत से निकलकर खंभात की खाड़ी में गिरती है। रेवा, भारत के उस देशखंड को भी कहते हैं जहाँ नर्मदा नदी बहती है। रीवाँ राज्य बघेलखंड में है। विंध्य श्रेणी पर विस्तृत रेवा अर्थात् नर्मदा की धार की तुलना कालिदास ने हाथी के शरीर पर खौर रेखाओं से की है—

> रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
> भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥१६॥ मेघदूत।

१२—१३ वीं शताब्दी के जैन प्राकृत ग्रंथों में रेवा अर्थात् नर्मदा नदी के तट पर स्थित कई जैन तीर्थों का उल्लेख मिलता है परन्तु १७०० मील बहने वाली इस नदी पर अन्य प्रमाणों के अभाव में अभी तक उनका स्थान निर्दिष्ट नहीं किया जा सका। एक उल्लेख दृष्टव्य होगा—

> दहमुहरायस्स सुआ कोडी पंचद्धमुणिवरें सहिया।
> रेवा उहयम्मि तीरे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥१०॥
> रेवा णइये तीरे पच्छिमभायम्मि सिद्धवर कूटे।
> दो चक्की दह कप्पे आहुट्ठयकोडिणिव्वुदे वन्दे ॥११॥
> रेवातडम्मि तीरे संभवनाथस्स केवलुप्पपत्ती।
> आहुट्ठय कोडीओ निव्वाण गया णमो तेसिं ॥१२॥ क्रियाकलाप।

रेवा के उद्‌गम अमरकंटक के समीप रावण की लंका की प्रस्थापना के लिये भी उपर्युक्त छंद १० की मुखपंक्ति विचारणीय होगी।

तट=किनारा। अपुब्ब <अपूर्व, यह 'गज' और 'गज झुंड' दोनों का विशेषण है।

नोट—"प्राकृत की अंतिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव माना जा सकता है। उस समय जैसे गाथा कहने से प्राकृत का बोध होता था वैसे ही 'दोहा' या 'दूहा' कहने से अपभ्रंश या प्रचलित काव्यभाषा का पद्य समझा जाता था।" [हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ३]। दोहा या दूहा मात्रिक छंद है। इसके विषम चरणों में १३ और सम चरणों में ११ मात्रायें होती हैं। पहिले व तीसरे चरण के आदि में जगण न होना चाहिये और अंत में लघु होना चाहिये।

कवित्त

"बिन्द ललाट प्रसेद, करयौ संकर गजराजं।
ऐरापति[1] धरि नाम, दियौ चढ़नै सुरराजं॥
दानव दल तेहिं[2] गंजि रंजि उमया उर अंदर।
होइ क्रपाल हस्तिनी संग बगसी रचि सुंदर॥
औलादि तासु तन आय कै, रेवातट वन बिथ्थरिय।
सामन्तनाथ सों मिलत इप, दाहिम्मै कथ उच्चरिय॥"छं०३। रू०३।

भावार्थ—रू० ३—"शंकर ने अपने ललाट के प्रस्वेद की बूँद से तिलक करके गज को गजराज बना दिया और ऐरापति नाम करण करके उसे सुरराज को सवारी के लिये दिया [शंकर ने अपने ललाट के पसीने की बूँद से गजराज को उत्पन्न किया—ह्योर्नले]। उसने राक्षस समूह का गंजन कर उमा के हृदय को रंजित किया (प्रसन्न किया) और उन्होंने कृपालु होकर उसे एक सुन्दर हस्तिनी (हथिनी) प्रदान की। इन्हीं (हाथियों) के शरीर से इनका कुटुम्ब बढ़ा और रेवातट के वन में फैल गया।" सामन्तों के नाथ (पृथ्वीराज) से मिल कर दाहिम (चामंडराय) ने इस कथा का वर्णन किया।

शब्दार्थ—रू० ३—विन्द<विन्दु<हि० बूँद। ललाट=माथा। प्रसेद<सं० प्रस्वेद=पसीना। संकर<सं० शंकर [वि० वि० प० में]। गजराजं=गजों का राजा। ऐरापति<सं० ऐरावत=इन्द्रहस्ती। ऐरावत शुक्लवर्ण और चतुर्दन्त विशिष्ट है। समुद्र-मंथन के समय चौदह रत्नों के साथ यह भी निकला था। यह पूर्व दिशा का गज कहा जाता है। इसके अन्य नाम अभ्रमातङ्ग, ऐरावण, अभ्रभूवल्लभ, श्वेतहस्ती, मल्लनाग, इन्द्रकुंजर, सदादान, सुदामा, श्वेतकुंजर, गजाग्रमी और नागमल्ल हैं।

"इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो देवराजोऽपि तं पुन:।
आरुह्यैरावतं ब्रह्मन् प्रययावमरावतीम्॥" **१-९-२९ विष्णु पुराण।**

सुरराजं<सं० सुरराज=इन्द्र। एक वैदिक देवता जिसका स्थान अंतरिक्ष है और जो पानी बरसाता है। यह देवताओं का राजा माना जाता है। इसका वाहन ऐरावत और अस्त्र वज्र है। इसकी स्त्री का नाम शचि और सभा का सुधर्मा है, जिसमें देव, गंधर्व और अप्सरायें रहती हैं। इसकी नगरी अमरावती और वन नंदन है। उच्चै:श्रवा इसका घोड़ा और मातलि सारथी है। वृत्र, त्वष्टा, नमुचि, शंबर, पण, बलि और विरोचन इसके शत्रु हैं। जयंत

---

(१) ना०—एरापति (२) ना०—तिहि

इसका पुत्र है। यह ज्येष्ठा नक्षत्र और पूर्व दिशा का स्वामी है। इसके अनेक नाम हैं। दानव—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री०—दानवी]—कश्यप के वे पुत्र जो दनु नाम्नी पत्नी से उत्पन्न हुए। मायावी दानवों का उल्लेख ऋग्वेद में भी है। महाभारत के अनुसार दक्ष की कन्या दनु से शंबर, नमुचि, पुलोमा, असिलोमा, केशी, विप्रचित्ति, दुर्जय, अय:शिरा, विरूपाक्ष, महोदर, सूर्य, चन्द्र इत्यादि चालीस पुत्र हुए जिनमें विप्रचित्ति राजा हुआ। दानवों में जो सूर्य चन्द्र हुए उन्हें देवताओं से भिन्न समझना चाहिये। भागवत् में दनु के ६१ पुत्र गिनाये गये हैं। मनुस्मृतियों में लिखा है कि दानव पितरों से उत्पन्न हुए। मरीचि आदि ऋषियों से पितर उत्पन्न हुए, पितृगणों से देव तथा दानव और देवताओं से यह चराचर जगत अनुपूर्विक क्रम से उत्पन्न हुआ। गंजि=गंजन कर, नाश कर। रंजि=रंजन (प्रसन्न) कर। उमया—[सं० < उमा]—शिव की स्त्री पार्वती। कालिका पुराण में लिखा है कि जब पार्वती शिव के लिये तप कर रहीं थीं उस समय उनकी माता मेनका ने उन्हें तप करने से रोका था। इसीसे पार्वती का नाम उमा पड़ गया; अर्थात् उ (हे) मा (मत)। पार्वती, गौरी, दुर्गा, शिवा, भवानी, गिरिजा आदि नामों से ये पूजी जाती हैं। उर—संज्ञा पु० [सं० उरस्] वक्ष:स्थल, हृदय, मन। [उ०—"उर अभिलाष एक मन मोरे" राम चरित मानस]। क्रपाल=कृपालु। हस्तनी=हथिनी [सं० हस्तिन् < हि० हाथी]। बगसी < फा० بخش—प्रदान की। औलादि < अ० اولاد=संतान। सामन्तनाथ=सामंतों के स्वामी अर्थात् पृथ्वीराज चौहान। इह=यह—"हिन्दी के इस रूप की संभावना अपभ्रंश तथा प्राकृत में प्रचलित किन्हीं सुसाहित्यिक रूपों से हुई है।" हिन्दी भाषा का इतिहास—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ २६७। जहाँ तक मेरा अनुमान है 'इह' शब्द से ही 'यह' निकला है। पृ० रा० में 'यह' के स्थान पर 'इह' का ही प्रयोग मिलता है। दाहिम्मै [< दाहिम]—राजपूतों की जाति विशेष। 'दाहिम्मै' यहाँ चामंडराय के लिए आया है जो दाहिम जाति का राजपूत था।

नोट—प्रस्तुत रेवातट-समय के तथा पृ० रा० के वे सारे छंद जिन्हें चंद-वरदाई ने 'कवित्त' संज्ञा दी है, वे छंद-ग्रंथों में दिये हुए कवित्त के लक्षणों से नहीं मिलते, और मिलें भी कैसे, क्योंकि वे कवित्त हैं नहीं—वे हैं 'छप्पय'। तब चंद-वरदाई ने 'छप्पय' को 'कवित्त' क्यों लिखा? इसका रहस्य पृ० रा० ना० प्र० स० पृष्ठ ६ के फुटनोट में इस प्रकार उद्घाटन किया गया है—

"सांप्रत काल में यह छप्पय, छप्पै, षट्पद, षट्पदी आदिक नामों से प्रसिद्ध है। परन्तु सत्रहवीं शताब्दी के पहिले यह कवित्त नाम से ही प्रसिद्ध

था। रूपदीप पिंगल वाले ने भी नीचे लिखा छप्पय का लक्षण कहा है उसमें उसने भी यह कहा है कि इस ग्रंथ के बनाने के समय तक 'छप्पै' का नामांतर 'कवित्त' करके प्रसिद्ध था---

छप्पै

'लघु दीरघ नहि नेम। मत्त चौबीस करीजै ॥
ऐसे ही तुक सार। धार तुक चार भरीजै ॥
नाम रसावल होय। और वस्तू कमि जानहु ॥
उल्लाला की विरत। फेर तिथि तेरह आनहु ॥
द्वै तुक बनावौ अंत की। यत यत में अठ बीस गहु ॥
सुन गरुड़ पंख पिंगल कहै। छप्पै छंद कवित्त यहु ॥'

इसके अतिरिक्त मंछकवि कृत 'रहुनाथ रूपक' में भी उसने छप्पै छंदों को कवित्त करके लिखा है।"

अरिल्ल

च्यारि प्रकार पिषि बन वारन।
भद्र मंद म्रग जाति सधारन ॥
पुच्छि चंद कवि कों[1] नरपत्तिय।
सुर वाहन किम आइ धरत्तिय ॥ छं० ४। रू० ४।

चंद कवि का उत्तर—

कवित्त

"हेमाचल उपकंठ एक बट वृष्य उतंगं[2]।
सौ जोजन परिमांन साष तस भंजि मतंगं[3] ॥
बहुरि दुरद मद अंध ढाहि मुनिवर आरामं।
दीर्घतपा री[4] देषि श्राप दीनो कुपि तामं ॥
अंबर विहार गति मंद[5] हुअ नर आरूढ़न संग्रहिय।
संभरि नरिंद कवि चंद कहि सुर गइंद इम भुवि रहिय ॥ छं० ५। रू० ५।

भावार्थ—रू० ४—[चामंडराय पृथ्वीराज से कहता है—] "(उस) वन में भद्र, मंद, मृग और साधारण—(ये) चार प्रकार के हाथी देखे जाते हैं।" (तब) नरपति (पृथ्वीराज) ने चंद कवि से पूछा कि देवताओं का वाहन पृथ्वी पर किस प्रकार आ गया।

---

(१) ना०—को (२) ना०—उतंग (३) ना०—मतंग (४) ए० मो०—तयारी
(५) को० ए०—मंड

रू० ५—[चंद कवि ने पृथ्वीराज को उत्तर दिया—] "हिमालय के समीप एक बड़ा ऊँचा वट का वृक्ष था जो सौ योजन तक विस्तृत था। मतंग ने (पहिले तो) उसकी शाखायें तोड़ीं और फिर मदांध हो उसने दीर्घतपा ऋषि का उद्यान उजाड़ डाला (जिसके फलस्वरूप) हाथी की आकाश गामी गति मंद (क्षीण) हो गई और नरों (मनुष्यों) ने उसे सवारी के लिये संग्रह कर लिया।" चंद कवि ने कहा कि हे संभल के राजा (पृथ्वीराज), इस प्रकार सुर गयंद भूमि (पृथ्वी) पर रह गया।

शब्दार्थ—रू० ४—च्यारि=चार। पिष्षि=(पेखना<सं० प्रेक्षण) देखे जाते हैं। वारन=हाथी। पुच्छि=पूछा<सं० पृच्छण। नोट—प्राय: भद्र, मंद्र या मंद और मृग इन तीन प्रकार के हाथियों का वर्णन मिलता है परन्तु कहीं कहीं चार से अधिक हाथियों की जातियों का भी उल्लेख है। कों=से। नरपत्तिय=नरपति (राजा)। सुर वाहन=देवताओं की सवारी। किम=किस प्रकार, कैसे। धरत्तिय हि० धरती<सं० धरित्री=पृथ्वी।

रू० ५—हेमाचल=[हेम (बर्फ)+अचल] हिमालय पर्वत (जो भारतवर्ष की उत्तरी सीमा पर है।)। उपकंठ=वि० (सं०) निकट, समीप। बट=बरगद। वृष्ष< सं० वृक्ष=पेड़। उतंगं=ऊँचा। जोजन <सं० योजन। परिमांन < सं० प्रमाण। साष<शाख (यहाँ 'साष' का बहु वचनांत प्रयोग है)। तस<सं०तस्य= उसकी। भंजि<सं० भंजन=तोड़ना। मतंगं=हाथी। बहुरि=फिर। दुरद<सं० द्विरद= दो दाँत वाला अर्थात् हाथी। ढाहि = गिराना। आरामं = फुलवारी बगीचा, उद्यान, उपवन [उ०—"परम रम्य आराम यह जो रामहिं सुख देत।" रामचरितमानस]। देषि<हि० देखकर। कुपि=कुपित अर्थात् क्रोधित होकर। तामं=तिसको (अर्थात्—उसको)। दीर्घतपा री=('री' शब्द ऋषि का संकेत बोधक प्रतीत होता है।) दीर्घतमस् ऋषि एक प्रख्यात ऋषि थे। ये चन्द्रवंशी पुरुरुवा के वंशज काशिराज के पुत्र, काश के पौत्र और प्रसिद्ध धन्वंतरि वैद्य के पिता थे (विष्णु पुराण)। 'अनु' के वंशज सूतपस के पुत्र बलि की स्त्री से नियोग करके इन्होंने अंग, बंग, कलिंग, सुह्म और पुण्ड्र नामक पाँच पुत्र उत्पन्न किये थे (विष्णु पुराण ४। १८। १३)। महाभारत, मत्स्य पुराण और वायु पुराण में दीर्घतमस् का जन्म वृहस्पति के बड़े भाई उजासि (या उतथ्य) और ममता द्वारा होना लिखा है। वायु पुराण में हम इनका नाम दीर्घतपस भी पढ़ते हैं। ह्योर्नले महोदय ने यू० पी० जिला फरूखाबाद के कंपिल ग्राम के जिन दीर्घतपा ऋषि का उल्लेख अपनी पुस्तक में किया है उन से यहाँ कोई संबंध नहीं समझ पड़ता। डॉ० ह्योर्नले का अनुमान है कि अगले

छठे कवित्त में आने वाले पालकाव्य ऋषि संभवत: दीर्घतमा के पुत्र धन्वंतरि ही हैं। अंबर विहार=आकाश गामी। गति= चाल। मंद हुअ=मंद [कम— (यहाँ क्षीण से तात्पर्य है)] हो गई। आरूढ़न < सं० आरोहण=चढ़ना। संग्रहिय=संग्रह किया (भूत कालिक कृदंत), यहाँ 'संग्रहिय' से पकड़ने का संकेत है। संभरि नरिंद = साँभर का राजा (पृथ्वीराज)। सुर गइंद< सं० सुर गयंद (गयंद=हाथी)। भुवि<सं० भू=भूमि, पृथ्वी। रहिय=रह गया।

नोट—अरिल्ल रूपक का लक्षण—'रूप दीप पिंगल' के अनुसार यह है—

"लघु दीरघ को नेम न कीजै।
ऐसे ही तुक चार भरीजै॥
षोडश कला कली विच धारैं।
छंद अरिल्ला शेष उचारैं॥"

'इसके किसी चौकल में 'जन' जगण (।ऽ।) न होना चाहिये।' छंद: प्रभाकर, भानु। 'प्राकृत पैङ्गलम्' में इसका निम्न नियम मिलता है—

सोलह मत्ता पाउ अलिल्लह।
वेगि जमक्का भेउ अलिल्लह॥
होण पओहर किंपि अलिल्लह।
अंत सुपिअ भण छंदु अलिल्लह॥I॥१२७॥

षोडश मात्रा: पदावली लभतां द्वेअपि यमके भेद इति गृह्यतां।
भवति पयोधर: किमपि अश्लाघ्य: सुप्रियोऽन्ते यत्र छंद: अलिल्लह॥
प्रतिपादं षोडश मात्रा:, द्वयोश्चरणयोर्यमकं, जगणो न कर्त्तव्य:,
अंते लघुद्वयं च, तत अभि [लि] ल्लह छंद इत्यर्थ: ॥२८॥(G)

कवित्त

अगदेस पूरब्ब, मद्धि वन षंड गहव्बर।
उज्जल जल दल कमल, विपुल लुहिताच्छ सरब्बर॥
आपित गज कौ जूथ, करत क्रीड़ा निसि वासर।
पालकाव्य लघुवेस, रहत एक तहाँ रुषेसर॥
तिन प्रीति बंधि अति परसपर, रोमपाद नृप संभरिय।
आखेट जाइ फंदन पकरि, दुरद आनि चंपापुरिय॥ छं०६। रू० ६।

भावार्थ—रू० ६—[चंद कवि ने फिर कहा]—"पूर्व दिशा में अंग प्रदेश के एक अति सघन वन के मध्य में लोहिताक्ष नाम का सरोवर है, जिसका जल अत्यंत स्वच्छ है और उसमें कमलों के दल प्रस्फुटित हैं। (उसी

सरोवर में आप)·पाया हुआ हाथियों का झुंड दिन रात क्रीड़ा किया करता है। वहीं पालकाव्य नामक एक युवक ऋषि कुमार रहते थे और उनसे तथा हाथियों से परस्पर बड़ी प्रीति थी। हे संभलराज! (इसी समय के अनंतर) राजा रोमपाद आखेट के हेतु वहाँ आया और फंदों द्वारा द्विरदों (हाथियों) को पकड़कर (अपनी राजधानी) चंपापुरी ले गया।"

शब्दार्थ—रू० ६—अंग देस—सूतपस के पुत्र बलि की स्त्री का 'दीर्घ-तमस' द्वारा नियोग होने पर अंग, बंग, कलिंग, सुह्म और पुण्ड्र नामक पाँच पुत्र हुए। ये पाँचों जिन पाँच प्रदेशों में बसे वे प्रदेश उसमें बसनेवाले लड़के के नाम से विख्यात हुए (विष्णु पुराण ४।१८।१३-४)। अंग जिस प्रदेश में जाकर रहे थे वह प्रदेश 'अंग प्रदेश' या 'अंग देश' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भागलपुर के चारों ओर के प्रदेश का नाम अंग था। महाभारत में लिखा है कि दुर्योधन ने यह प्रदेश कर्ण को दिया था। और आज भी यहाँ कर्ण का किला खँडहर पड़ा है। पूरब्ब < सं० पूर्व। मद्धि < सं० मध्य। गहव्वर=सघन। उज्जल < सं० उज्ज्वल। विपुल=बड़ा, बृहत। लुहिताच्छ < सं० लोहिताक्ष। सरव्वर < सरोवर। जूथ < सं० यूथ। निसिवासर=रात-दिन। लघु वेस=लघु वयस, थोड़ी अवस्थावाला, युवक। पालकाव्य—संभव है कि ये ही धन्वंतरि रहे हों। अगले गाथा छंद में हम पढ़ते हैं कि पालकाव्य ने हाथियों की चिकित्सा की और उन्हें अच्छा कर दिया। पाल कविराज द्वारा रचित 'पालकाव्य' नामक काव्य ग्रंथ में भी हाथियों की चिकित्सा आदि का वर्णन मिलता है। पालकाव्य ऋषि प्रणीत हाथियों की चिकित्सा विषयक संस्कृत ग्रंथ का हिंदी भाषांतर और टीका सहित एक हस्तलिखित ग्रंथ 'अनूप संस्कृत पुस्तकालय' बीकानेर में है। इस ग्रंथ में १४२ प्रकार के हाथियों का वर्णन और उनके रोगों के निदान तथा औषधि की व्यवस्था है। ग्रंथ परिचय देखिये—

वैद्यक ग्रंथ—(५) गजशास्त्र—(अमर सुबोधिनी भाषा टीका) सं० १७२८।

Colophon—इति पालकाव्य रिषि विरचितायां तद्भाषार्थ नाम अमर सुबोधिनी नाम भाषार्थ प्राकाशिकायां समाप्ता शुभं भवतु।

लेखन काल—सं० १७२८ वर्षे जेठ सुदी ७ दिने महाराजाधिराज महाराजा श्री अनूपसिंह जी पुस्तक लिखायितः। मथेन राखेचा लिखतम्। श्री औरंगाबाद मध्ये।

प्रति—पत्र ६५। पंक्ति ६। अक्षर ३०। आकार १०३/४×५१/४ इंच।

'राज स्थान के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज' अगरचंद नाहटा। रुषे-सर < सं० ऋषेश्वर=ऋषियों में श्रेष्ठ। परसपर < सं० परस्पर=एक दूसरे से।

रोमपाद—[या लोमपाद=पैरों में रोयें वाला ।] 'अनु' के वंशज दीर्घतमस के नियोग द्वारा उत्पन्न 'अंग' के नाम से अंग-देश प्रसिद्ध हुआ । अंग के प्रपौत्र धर्मरथ हुए और धर्मरथ के पुत्र रोमपाद नाम से विख्यात हुए । रोमपाद का दूसरा नाम दशरथ भी था । रोमपाद पुत्रहीन थे अतएव सूर्यवंशी 'अज' के पुत्र 'दशरथ' ने इन्हें अपनी कन्या शांता गोद लेने के लिये दी थी (विष्णु-पुराण ४।१८।१५-८) । वाल्मीकि रामायण में भी इस कथा का उल्लेख है । दशरथ की पुत्री शांता का विवाह शृंग ऋषि के साथ हुआ था । अग्निपुराण, मत्स्यपुराण और रामायण में हम शांता के दत्तक पिता का नाम लोमपाद ही पाते हैं । उत्तर रामचरित्र—पृष्ठ २८६ में भी 'रोमपाद' नाम मिलता है । संभरिय=संबोधन वाचक शब्द है और संभल के राजा पृथ्वीराज चौहान के लिये प्रयुक्त हुआ है । फंदन, फंदा का बहुवचनान्त प्रयोग है । चंपापुरिय [चंपापुरी या चंपापुर]—'अनु' के वंशज रोमपाद के प्रपौत्र 'चंप' ने 'चंपा' नगर बसाया (विष्णुपुराण--४।१८। १६-२०) । भागवत में चंपापुरी बसानेवाले चंप का नाम नहीं मिलता । उसमें 'चंप' का नाम इक्ष्वाकु के वंशजों में अपने उचित स्थान पर न होकर प्रथम ही लिख दिया गया है । 'चंपापुर अंग देश के जिले चंपा की राजधानी थी' [Ancient Geography of India. Cunninghan. p. 477] । 'बिहार के जिले भागलपुर में चंपा नगर एक बड़ा ग्राम है । भागलपुर से तीन मील की दूरी पर २५°. १४' अक्षांश उत्तर और ८६°. ५५' देशांतर पूर्व में बसा हुआ है' [The East India Gazetteer. Hamilton. Vol. I, p.390] । भागलपुर के समीप इस प्राचीन नगर के ध्वंसावशेष अब भी देखे जा सकते हैं । नगर का स्थान एक साधारण ग्राम ने ले लिया है ।

दूहा

पालकाव्य कैं विरह करि अंग भये अति षीन ।
मुनिवर तब तहुँ आय कैं गज चिग्गछ[1] गुन कीन ।।छं० ७ । रू० ७ ।

गाथा

कोंपर पराग पत्रं छालं डालं फलं [2]फुलं कंदं ।
फल्लि[3] कली दै जरियं कुंजर करि थूलयं तनं[4] ।। छं० ८ । रू० ८ ।

---

(१) ना०—चिगछग्गुन; हा०—चिग्ग छगुन (२) ए०—ढलं, ढालं, छुलं; हा०—फुलं (३) ना०—फली (४) हा०—तनयं

भावार्थ—रू०७—"पालकाव्य की विरह के कारण उनके (हाथियों के) शरीर अत्यन्त क्षीण हो गये तब मुनिवर ने वहाँ (चंपापुरी में) आकर उनकी भलीभाँति चिकित्सा की।

रू०८—उन्होंने कोंपलें, पराग, पत्तियाँ, छालें, डालियाँ, फल, फूल, कंद, फलियाँ, कलियाँ और जड़ियाँ खिलाकर कुंजरों का शरीर (पुन:) स्थूल कर दिया।

शब्दार्थ—रू० ७—षीन<सं० क्षीण=निर्बल। चिग्गछ<प्रा०चिगिन्छा <सं०चिकित्सा (=दवा)। गुन=गुणपूर्वक अर्थात् योग्यतापूर्वक भलीभाँति। कीन (अवधी)=किया।

रू० ८—कोंपर<सं० कोपल। पत्रं=पत्ते। कंदं=बिना रेशे की गूदेदा जड़ जैसे सूरन, शकरकंद, गाजर, मूली आदि (उ०—कंद मूल फल अमिय अहारू—रामचरितमानस)। फल्लि=फलियाँ। कली=कलियाँ। जरियं=जड़ियाँ। कुंजर=हाथी (नरो वा कुंजरो वा-महाभारत)। थूलयं<सं० स्थूल। तनं= शरीर। करि (व्रज)=किया।

नोट—रू० ७—'गज चिग्गछ गुन कीन' का अर्थ Mr. Growse ने यह किया है—"The elephants screamed again and again with delight." अर्थात् हाथी बड़ी प्रसन्नता से बार बार चिंघारे [Indian Antiquary. vol III. p. 340]।

'रासो-सार', पृष्ठ ६६ में लिखा है—"दैव योग से चंपापुरी का राजा रोमपाद वहाँ शिकार करने आया और वह ऐरावत को पकड़कर अपनी राज-धानी को ले गया। इधर हाथी के विरह में पालकाव्य दिन दिन दुबला होने लगा। अंत में वह उसी सोच में मर गया और हाथी की योनि में जन्मा।"

'रासो-सार' के लेखकों ने यदि छंद ८ के अर्थ को ध्यान में रक्खा होता तो पालकाव्य की मृत्यु का वर्णन कभी न करते। छंद ६-७-८-६-१० में कहीं भी कोई ऐसा शब्द या शब्द समूह नहीं है जो पालकाव्य मुनि की मृत्यु का द्योतक हो।

रू० ८—गाथा छंद का लक्षण यह है—

"गाथा या गाहा छंद का प्रयोग प्राकृत भाषा में बहुलता से किया गया है। गाथा छंदों की भाषा अपभ्रंश भाषा के सामान्य रूप लिये हुए प्राकृत पाई जाती है। साधारणत: गाथा छंद का नियम यह है—

प्रथम चरण ४+४+४/४+४+।ऽ।+४+ऽ

द्वितीय चरण ४+४+४/४+४+।+४+ऽ

तीन गणों के बाद विराम वाले गाथा छंद 'पथ्या' कहलाते हैं तथा बिना ऐसे विराम वाले 'विपुला'। विपुला के तीन उपभेद हैं—मुखविपुला, जघनविपुला और सर्वविपुला।" Sandesa Rāsakaed. Muni Jina Vijay. A Critical Study. p. 69—70.

'प्राकृत पैङ्गलं' नामक ग्रंथ में गाहा (अथवा गाथा) छंद का लक्षण इस प्रकार लिखा गया है—

पढमं बारह मत्ता बीए अट्ठरहेहिं संजुत्ता।
जह पढमं तह तीअं दह पंच बिहूसिआ गाहा ॥५४।

[अर्थात्—(इस चार चरण वाले) गाथा छंद के प्रथम चरण में बारह मात्रायें और दूसरे चरण में अठारह मात्रायें तथा तीसरे में बारह मात्रायें और चौथे में पंद्रह मात्रायें होती हैं।]

'रूप दीप पिंगल' में इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

"आदौ द्वादश करियैं अठारह बारह फिर तिथ धरियै,
संग्या शेस सिषाई गाथा छंद कहो इस नांम।"

कवित्त

ब्रह्म[1] रिष्ष तप करत, देषि कंप्यौ मघवानं।
छलन काज पहु पठय, रंभ रुचिरा करि मानं॥
श्राप दियौ तापसह, अवनि करनी सुअवत्तिरिं।
क्रंम बंधि इक जती, लषितहू औ सुपनंत्तरि॥
तिहि ठांम[2] आइ उहि हस्तिनी, बोर लियो पोगर सुनमि।
उर शुक्र अंस धरि चंद कहि, पालकाव्य मुनिवर जनमि॥ छं० ६। रू० ६।

भावार्थ—रू० ६—एक ब्रह्मर्षि को तपस्या करते देख कर इन्द्र काँप उठे (डर गये) [उन्हें अपने इन्द्रासन के लिये चिंता हुई कि कहीं यह उसी के लिये न तप करता हो] और उन्होंने रंभा का पूर्ण रूप से शृंगार करके मुनि को छलने भेजा। तपस्वी ने उस (रंभा) को श्राप दिया जिसके फलस्वरूप वह हथिनी होकर पृथ्वी पर अवतरित हुई। कर्म बंधन के अनुसार (भाग्य की गति देखिये) एक यती का सोते समय वीर्यपात हुआ और उस हथिनी ने उस समय वहाँ पहुँचकर अपनी सूँड़ झुकाकर उस (वीर्य) को उठा लिया

(१) ना०—ब्रह्मा (२) ना०—ठाम।

तथा अपने उदर में रख लिया। चंद कवि कहते हैं कि इस प्रकार मुनिवर पालकाव्य का जन्म हुआ।

शब्दार्थ—रू० ६-ब्रह्मरिष्ष<सं० ब्रह्मर्षि। कंप्यौ=कँप उठा, डर गया। मघवानं=इन्द्र। रंभ=रंभा(पुराणानुसार स्वर्ग की सर्व सुंदरी प्रसिद्ध अप्सरा)। काज<सं०कार्य। छलन काज=छलने के लिये। पढय=पठय, भेजकर। रंभ रुचिरा करि मानं=रंभा को अत्यन्त सुन्दरी बनाकर। तापसह=तपस्वी ने। अवनि=पृथ्वी। करनी= हथिनी। सु=वह। अवत्तरि=अवतरित हुई, जन्मी। क्रंम=कर्म। बंधि =बँधकर। जती<सं० यति। [लष्रित हूओ=Effucio siminis–वीर्यपात हो गया, Hoernle]। सुपनंतरि=स्वप्न के अंतर में अर्थात् सोते समय। इक=एक। ठांम=स्थान। उहि=वह। तिहि=उस। पोगर=मुख यहाँ सूँड़ से तात्पर्य है। सुनमि=उसको झुकाकर। शुक्र=वीर्य। अंस<सं० अंश। उर=हृदय (यहाँ 'उदर' से तात्पर्य है)।

नोट—रू० ६—ना० प्र०सं० पृ० रा० के इस नवें छंद के ऊपर लिखा है कि "उधर ब्रह्मा के तप को भंग करने के लिये इन्द्र ने रंभा को भेजा था उसे शाप वश हथिनी होना पड़ा वह भी वहीं आई।" परन्तु कहीं पुराणों आदि में ऐसा प्रसंग न मिलने के कारण हम 'ब्रह्मा' अर्थ न लगाकर 'ब्रह्मर्षि' समझेंगे जो वस्तुत: स्पष्ट रूप से माननीय है।

'रासो-सार', पृष्ठ ६६ में कवित्त ६ से इस प्रकार का सार लिया गया है—"ब्रह्मा ऋषी की तपस्या का प्रताप बढ़ा देखकर उसकी तपस्या भंग करने के लिये रंभा ने इन्द्र की आज्ञानुसार ऋषि का तप भ्रष्ट करने के लिये यथा साध्य उपाय और चेष्टा की; उससे ऋषि का चित्त तो चंचल न हुआ वरन् उसने कुपित होकर रंभा को शाप दिया कि वह हथिनी हो जाय। निदान रंभा हथिनी का रूप धारण कर वन में विहार करती हुई हाथी वेषधारी पाल-काव्य के पास आ पहुँची। उन दोनों में अत्यंत प्रीति और दाम्पत्य स्नेह बढ़ गया और वे दोनों साथ साथ रहकर रेवा के किनारे विचरने लगे; उन्हीं से उत्पन्न हुए हाथी रेवा के किनारे पाये जाते हैं।"

इस अर्थ को कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। कवित्त ६ में स्पष्ट कहा है कि पालकाव्य मुनि का जन्म हथिनी के पेट से ऋषि का वीर्य खा लेने से हुआ और फिर अगले दोहे १० में चंद कवि ने कहा है कि इसीलिये (अर्थात् हथिनी के पेट से जन्म लेने के कारण ही) मुनि (पाल-काव्य) को करिन (बहु वचनांत प्रयोग है इसलिये 'हाथियों' अर्थ लेना होगा)

से बड़ी प्रीति हो गई थी। यह ठीक है कि विज्ञान ऐसी घटनाओं की हँसी उड़ाता है—हथिनी के वीर्य खा लेने से उसके गर्भ नहीं स्थिर हो सकता और वह भी हाथी का वीर्य न होकर मनुष्य का था ; फिर यदि गर्भ स्थिर भी हो सके तो हाथी और मनुष्य के मेल से किसी विचित्र जंतु के जन्म की कल्पना ही संभव है न कि मनुष्य की—परन्तु हिन्दू पुराणों में ऐसी कपोल कल्पित गाथाओं की कमी नहीं है। उदाहरणार्थ घड़े में शुक्र रखने से कुंभज ऋषि का जन्म, कबूतर के वेश में आये हुए अग्नि पर शिव के वीर्य डालने पर कार्तिकेय का जन्म (शिव पुराण) और द्रुमिल नामक गोप की स्त्री कलावती के नारद का वीर्य खा लेने पर स्वयं नारद का जन्म (नारद पुराण) इत्यादि दन्तकथायें ऋषि पालकाव्य के जन्म से कहीं बढ़कर आश्चर्यजनक हैं।

'रासो-सार' की बात ठीक मान लेने से कि—रेवा तट पर मिलने वाले हाथी, मरकर हाथी का जन्म पाये हुए पालकाव्य ऋषि और श्रापित रंभा रूपी हथिनी की संतान थे, नकि पिछले कवित्त ३ के अनुसार ऐरावत और उमा द्वारा प्रदान की हुई हथिनी के—हाथियों की जन्म विषयक एक ही स्थान पर दो कथायें हुई जाती हैं जो अनुचित है। रासो-सार के लेखकों ने कथानक के उपकथानक के क्षेपक को क्षेपक न मानकर उसी उपकथानक में भूल से सम्मिलित कर दिया है।

'रासो-सार', पृष्ठ ६६ में लिखा है कि—"इस प्रकार ऋषि के शाप के कारण ऐरावत अपनी आकाश-गामिनी शक्ति से वंचित होकर अंग देश के पूर्व प्रदेश में स्थित गहन वन में जहाँ कि नाना प्रकार के कमल और कुमोदिनी समूह से आच्छादित निर्मल जलमय अच्छे अच्छे सुवृहत सरोवर शोभायमान हैं, आनंद से केलि क्रीड़ा करता हुआ समय व्यतीत करने लगा। उसी वन में पालकाव्य नामक एक ऋषि रहते थे। पालकाव्य और ऐरावत में ऐसी घनी प्रीति हो गई कि वे एक दूसरे को देखे बिना पल भर भी न रहते थे।" पिछले कवित्त ६ की पंक्ति—श्रापित गज कौ जूथ करत क्रीड़ा निसि वासर—का अर्थ है कि श्राप पाये हुए गजों का यूथ वहाँ क्रीड़ा किया करता था; अतएव केवल ऐरावत का वहाँ क्रीड़ा करना, लिखा जाना उचित नहीं है। एक स्थान पर रहते-रहते पालकाव्य और हाथियों में बड़ी प्रीति हो गई थी, दैवयोग से राजा रोमपाद हाथियों को पकड़ कर ले गया और पालकाव्य की विरह के कारण उन हाथियों के शरीर निर्बल होने लगे। राजा रोमपाद को यह देखकर चिंता हुई होगी कि आखिर इस दुर्बलता का

क्या कारण है ? चंपापुरी अंगदेश के जिले चंपा की राजधानी थी और लोहिताक्ष सरोवरवाले वन-खंड में पालकाव्य ऋषि रहते थे, जो इसी अंग देश के अंतर्गत था (कवित्त ६)। किसी ने पालकाव्य को उनके प्यारे हाथियों की इस अवस्था का समाचार अवश्य दिया होगा (चंद कवि ने यह नहीं लिखा कि पालकाव्य को हाथियों की चिकित्सा करने के लिये किसने बुलाया ?)। यह भी संभव है कि मुनि पालकाव्य वैद्यकशास्त्र के ख्यातनामा जानकार रहे हों या चाहे धन्वंतरि ही हों। साथ-साथ रहने से तो प्रीति होती ही है परन्तु पालकाव्य की माँ हस्तिनी थी इसलिए उनमें और हाथियों में भ्रातृप्रेम का होना भी स्वाभाविक है। समाचार मिला कि हाथी बीमार हैं, प्रेम ने ज़ोर मारा, पालकाव्य चंपापुरी पहुँचे और हाथियों को चिकित्सा द्वारा अच्छा कर दिया ("कुंजर करि थूलयं तनं")। अगले दूहा १० में लिखा है कि—तार्थं तिन मुनि करिन सों बंधि प्रीति अत्यंत—यहाँ 'करिन' बहु वचन है अतएव जैसा 'रासो-सार' के लेखकों ने एक वचन का अर्थ लिया है, वह असंगत है।

दूहा

—तार्थं[1] तिन मुनि करिन सों, बंधि प्रीति अत्यंत।
चंद कह्यौ नृप पिथ्थ सम, सकल मंडि बिरतंत[2] ॥छं०। रू० १०।

[संभवत: चामंडराय का कथन—]

कवित्त

"सुनहि राज प्रथिराज, बिपन रवनीय करिय जुथ।
रेवातट सुन्दर समूह, वीर गजदंत चवन रथ॥
आषेटक आचंभ पंथ, पावर रुकि षिल्लौ।
सिंहवट्ट दिलि समुह राज षिल्लत दोइ चल्लो॥
जल जूह कूह कस्तूरि मृग पहपंषी[3] अरु परबतह[4]।
चहुआंन मांन देषे नृपति कहि न बनत दच्छिन सुरह॥" छं० ११। रू० ११।

भावार्थ—रू० १०—यही कारण था कि मुनि को हाथियों से अत्यन्त प्रीति हो गई थी।" (इस प्रकार) चंद (कवि) ने महाराज पृथ्वीराज से सारा वृत्तांत कहा।

नोट—अगले कवित्त में कहने वाले का नाम नहीं दिया है। परन्तु जो कुछ कहा गया है उससे यही अनुमान होता है कि ये चामंडराय के वचन हैं—

---

(१) ना०-तार्थं (२) ना०-वरतंत (३) ना०-पहपंगी (४) ना० पर्वतह

रू० ११—"हे राजन्! सुनिये-(रेवातट पर विस्तृत) वन को हाथियों के यूथों ने रमणीक बना दिया है। रेवातट पर चारों ओर वीर(पराक्रमी) गजदंतों (हाथियों) के समूह हैं। वहाँ आप मार्ग रोककर कौतूहल वर्द्धक मृगया का आनंद लें (और फिर) दिल्ली के मार्ग में (दिल्ली से देवगिरि जाने वाले मार्ग में) सिंह भी मिलते हैं जिनका आप शिकार खेलसकते हैं। हे नृपति, जलाशयों, पहाड़ों और चारों ओर आप (अत्यधिक) परिमाण में कस्तूरी मृग, पक्षी और कबूतर देखेंगे, [यह सब तो है ही] परन्तु दक्षिण की सुरभि तो वर्णनातीत है या (दक्षिण के मार्ग का वर्णन नहीं किया जा सकता)।"

शब्दार्थ—रू०१०—तार्थं=इसीलिये (यही कारण था)। तिन=उन। मुनि—यहाँ मुनि पालकाव्य की ओर संकेत है। करिन सों=हाथियों से। पिथ्थ <पृथ्वीराज। सम=से। सकल=सब। मंडि=कहा। बिरतंत<सं०वृत्तांत।

रू० ११- सुनहि=सुने। बिपन< सं० विपिन=वन। रवनीय< सं० रमणीक। करिय (अवधी)=कर दिया। गजदंत=बड़े दाँत वाले, हाथी। चवन=चार। रथ<सं० रथ्य=मार्ग, रास्ता। चवन रथ=चारों ओर। आषेटक आचंभ=कौतूहल वर्द्धक आखेट (शिकार)। पंथ=मार्ग। पावर <पौर=दरवाजा। (पावर का अर्थ बाड़ा भी है, जैसे पावर रोपकर)। रुकि=रोककर। पंथ पावर रुकि=मार्ग का द्वार रोककर अर्थात् मार्ग को बंद करके। षिल्लौ=खेलो। वट्ट<बाट=रास्ता। जूह=यूथ। जल जूह= जल का यूथ अर्थात् जलाशय। कूह<फा० کوه=पर्वत। परबतह<सं० पारावत=कबूतर [परन्तु ह्योर्नले महोदय इसका अर्थ जंगली जानवर लगाते हैं]। चहुआंन=(१) चारों ओर (२) चौहान पृथ्वीराज। मांन=परिमाण; मानिये, विश्वास कीजिये। देषे=देखा है, देखिये। दच्छिन<सं० दक्षिण। सुरह=सुरही<सं०सुरभि=दक्ष कन्या, कश्यप पत्नी, पशु तथा रुद्रों की माता बहुधा ऐक मातृका समझी जाने वाली पौराणिक कामधेनु। दच्छिन सुरह= दक्षिणी गाय। [परन्तु ह्योर्नले महोदय 'सुरह' को 'स्वर' का विकृत रूप मानते हैं जो भ्रम जनित है]। सुरह गायें बद्रिकाश्रम की ओर उत्तराखंड में पाई जाती हैं। कालिदास ने वायुवेग से रगड़ खाकर देवदार की डालों का सुरह गाय की पूछें जलाकर दावाग्नि पैदा करने का वर्णन किया है—

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्ध संघट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरी बालभारो दवाग्नि: ॥५४॥ मेघदूत।

सुरह का अर्थ (सु+राह) सुन्दर मार्ग भी कुछ विद्वान करते हैं। यद्यपि इस संधि में अशुद्धि स्पष्ट है परन्तु रासो में ऐसी स्वच्छन्दता आश्चर्यजनक

नहीं कही जा सकती। 'ढोला मारू रा दूहा, में भी नाविया = न + आविया सदृश अनेक शब्द मिलते हैं।

नोट—कवित्त ११ की दूसरी पंक्ति का अर्थ [—"On the banks of Revā, there are plenty of beautiful large elephant's tusks in every direction." Hoernle. अन्तिम दो पंक्तियों का अर्थ—"At the water as well as on the mountains, there is heard in profusion the cry of the musk deer, wild beasts and birds. O king Chahuvān, believe one who has seen it; it is impossible, to describe in words the (beauty of the) southern country." Hoernle. इन पंक्तियों को Mr. Growse ने Indian Antiquary. Vol III, p. 340 में इस प्रकार लिखा है—

"Flock and fowls scream on the water, on the plane are musk deer, and on the hill birds." Kuh being the verb which is more common in the frequentative form Kokuya.

दूहा

एक ताप पहुपंग को, अरु रवनीक जु[1] थांन।
चामंडराय[2] वचन्न सुनि, चढ़ि चढ्यो चहुआंन॥ छं०१२। रू०१२।

कवित्त

चढ़त राज प्रिथिराज, वीर अगिनेव[3] दिसा कसि।
सब्ब भूमि नृप नृपति, चरन चहुआन लग्गि धसि॥
मिल्यो भान बिस्तरी, मिल्यो षट्टल गढ़ढी नृप।
मिंल्यो नंदिपुर राज, मिल्यो रेवा नरिंद अप॥
वन जूथ मृग्ग सिंघह रु गज, नृप आषेटक षिल्लई[4]।
लाहौर थांन सुरतांन तप, बर कग्गद लिषि मिल्लई॥ छं० १३। रू० १३।

भावार्थ-रू०१२—एक तो पहुपंग (जयचंद) को कष्ट पहुँचेगा दूसरे स्थान भी रमणीक है-(यह विचार कर चामंडराय के वचन सुनकर चौहान चढ़ चला (अर्थात् चौहान ने प्रस्थान की आज्ञा दे दी)।

रु० १३—वीर महाराज पृथ्वीराज के दक्षिण पूर्व पथ में सुसज्जित होकर गमन करने पर (उस मार्ग पर पड़ने वाले) देशों के राजे महाराजे उनके

---

(१) मो०—सु (२) ना०—चावंडराय (३) ना०—अगनेव (४) ना०—खिल्लई (५) ना०—सिल्लई।

चरण स्पर्श करने के लिये झुके। राजा भान दल बल सहित आकर मिला, दलगढ़ का राजा खड्ड तथा नंदिपुर का राव मिला और रेवा नरेन्द्र भी स्वयं आकर मिला। वन में अनेक मृगों, सिंहों और हाथियों के यूथ थे जिनका महाराज ने शिकार खेला। (तब) लाहौर स्थान में जो (शासक चंदपुंडीर) था और जो सुलतान को कष्ट देने वाला था उसका वर (श्रेष्ठ) पत्र मिला।

"वहीं उन्हें लाहौर से एक पत्र मिला जिसमें सुलतान की बढ़ी हुई शक्ति का वर्णन था।" ह्योर्नले। (इन्होंने 'तपवर' का अर्थ मिलाकर किया है)।

शब्दार्थ—रू० १२—ताप=कष्ट। पहुपंग=यह कन्नौज के राजा जयचंद की एक उपाधि थी। [पहु < प्रभु (=स्वामी)+पंग या पंगल(=लंगड़ा)]। और एक नाम दुल-पंगुल भी था। रासो में पहुपंग और दल-पंगुल (दुल-पंगुल) दोनों नाम मिलते हैं। जयचन्द का नाम दल-पंगुल क्यों पड़ा इसे पृथ्वीराज रासो सम्यौ ६१ छंद, १०२८ में चंद वरदाई ने इस प्रकार लिखा है—

"जैसे नर पंगुरौ। विन सु भंगुरी न हल्लहि॥
आधारित भंगरी। हरु वह वत्त न चल्लहि॥
तैपे रा जयचंद। असंष दल पार न पायौ॥
चालुक इक सर सरित। दलन हरबल्ल अघायौ॥
दिसि उभय गंग जमुना सु नदि। अद्ध कोस दल तब बह्यौ॥
कविचंद कहै जै चंद नृप। तातें दल पंगुर कह्यौ॥"

जयचंद का 'पहुपंग' नाम केवल इसी २७ वें सम्यौ में ही नहीं आया है। रासो सम्यौ २६ छंद ४—"तब पहुपंग नरिंद। कुसल जानी न गरिट्ठो॥"; छंद ६—"तब पहुपंग नरिंद प्रति। दूत सु उत्तर जप्पु॥" इसी प्रकार रासो के अनेक स्थलों पर 'पहुपंग' नाम मिलता है जो जयचंद के लिये ही प्रयुक्त हुआ है। टॉड ने अपने राजस्थान में लिखा है कि दुल-पंगुल नाम की उत्पत्ति इस प्रकार हुई—"कन्नौज राज्य के क़िले की चहार दीवारी तीस मील से भी अधिक थी और राज्य की असंख्य सेना के कारण राजा का विशेषण दुल-पंगुल हो गया। दुल-पंगुल से तात्पर्य है कि राजा लँगड़ा है या सेना की अधिकता के कारण वह नहीं चल सकता। चंद के अनुसार अगली सेना युद्ध क्षेत्र में पहुँच जाती थी तब भी पिछली सेना को आगे बढ़ने का स्थान न मिलता था और वह खड़ी ही रह जाती थी" [Annals and Antiquities of Rajasthan. Tod. Vol II, p. 7]। पृ० रासो के अतिरिक्त 'रंभामंजरी' की भूमिका पृष्ठ ४ तथा उसके प्रथम अंक, पृष्ठ ६ में भी हमें राजा

जयचंद का 'पंगु' नाम मिलता है जैसे "सैन्यातिश्यात पंगु विरुद धारक: ।" मुनिराज जिनविजय द्वारा संपादित 'प्रबंध-चिन्तामणि' पृष्ठ ११३, छंद २१० में भी जयचंद की महान सैनिक शक्ति का वर्णन मिलता है। 'सूरज प्रकाश' के अनुसार जयचंद की सेना में ८०००० सुसज्जित सैनिक, ३०००० ज़िरह बख़्तर वाले घोड़े, ३००००० पैदल सैनिक, २००००० धनुधर्र और फरशाधारी सैनिक तथा सैनिकों सहित असंख्य हाथी थे [Annals and Antiquities of Rajasthan,(Crooke.) Vol. II, p. 936 । जयचंद की सेना व राज्य विस्तार से तत्कालीन मुसलमान इतिहासकार भी प्रभावित हुए थे।

रू० १३—अगिनेव < सं० अग्निदेव = दक्षिणी पूर्वी दिशा। दिसा < सं० दिशा। कसि=कस कर अर्थात् भली भाँति सुसज्जित होकर। सब्ब < सं० सर्व = सब। भान = राज भान। विस्तरी = विस्तार से अर्थात् बड़े दल बल सहित। षट्टुलगढ्ढी—ह्योर्नले महोदय ने अपनी पुस्तक में इसे 'षट्टु दलगढी' पढ़ने के लिये अपनी सम्मति दी है जो अन्य अच्छी सम्मतियों के अभाव में मान्य है। 'दलगढ़' या तो राजा खट्टु के किले का नाम या दलगढ़ [दल= (सैनिक) + गढ़=(गढ़ने वाला)] का अर्थ पृथ्वीराज के दल को गढ़ने वाला माना जा सकता है। ["मिल्यो षट्टुलगढ्ढी नृप" का दूसरा अर्थ खट्टुलगढ़ का राजा मिला भी हो सकता है] । नंदिपुर=अयोध्या के समीप इस नाम का स्थान है। पृ० रा० सम्यौ २२ से ज्ञात हुआ कि रघुवंशी राम ने नंदिपुर का विनाश किया था। रेवा = इलाहाबाद के दक्षिण रीवाँ राज्य का प्रसिद्ध नगर है। 'रेवा नरिन्द' से तत्कालीन रीवाँ के राजा का अर्थ समझ पड़ता है। अप= अपने आप, स्वयं। मृग्ग < सं० मृग=हरिण; जानवर। खिल्लई=खेला। [सुरतांन तप= (तप=ताप, गर्मी) सुलतान की भयंकर शक्ति] ह्योर्नले। सुरतांन= सुलतान (गोरी)। तप < ताप, अर्थात् कष्ट देने वाला। बर कग्गद=श्रेष्ठ कागज़ (पत्र)। मिल्लई = मिला। चंद ने लाहौर के शासक चंद-पुडीर द्वारा भेजे गये पत्र को 'बर कग्गद' इसलिये कहा कि इसमें सुलतान गोरी का हाल था और गोरी चौहान का शत्रु था। शत्रु के रंग ढंग के समाचार लेते रहना सदैव अच्छा है इसीलिये वह 'बर कग्गद' था।

नोट—रू० १३—श्री० ग्राउज़ महोदय इस कवित्त की प्रथम पंक्ति में आये हुए 'कसि' का अर्थ 'कसना' करते हैं। उनके अनुसार 'कमर कसने' से तात्पर्य है—"The great king Pirthviraj marches south, girding up his loins." [Indian Antiquary, Vol. III, p. 340]।

प्रस्तुत कवित्त में जिस पत्र का हाल है वह पत्र पृथ्वीराज के सेनापति चामंडराय के भाई 'चंद-पुंडीर' के पास से आया था॰ जो पृथ्वीराज के सीमांत प्रदेश लाहौर का शासक या क्षत्रप था। अगले १८ वें दोहे से यह बात सर्वथा स्पष्ट हो जाती है।

इस पत्र के विषय में दो सम्मतियाँ और मिली हैं—"गुप्त रीति से संतत लाहौर में रहने वाले शहाबुद्दीन के जासूस ने ग़ज़नी को लिख भेजा कि पृथ्वीराज सेना सहित रेवातट पर शिकार खेलने गया है।" रासो-सार, पृ०१००।

"The letter was not received from Lahore, but reached the Sultan there and came from Jaychand at Kanauj." [Indian Antiquary. Vol. III, p. 340. F. S. Growse.]।

किंचित् बिचार से पढ़ने पर स्पष्ट हो जावेगा यों कि सम्मतियाँ निराधार हैं।

दूत के पत्र का हाल—

दूहा

"षां ततार मारूफ षां, लिये पांन कर सांहि।
धर चहुआंनी उप्परै, बज्जा बज्जन बाइ॥ छं० १४। रू० १४।

साटक

श्रोतं भूपय गोरियं बर भरं, बज्जाइ सज्जाइने।
सा सेना चतुरंग बंधि उललं, तत्तार मारूफयं॥
तुज्झी सार स उप्परा वस रसी[1], पल्लानयं षानयं।
एकं जीव सहाब साहि न नयं, बीयं स्तयं सेनय॥ छं० १५। रू० १५।

नोट—[चंद पुंडीर के दूत द्वारा लाये गये पत्र का हाल रू० १४ से लेकर रू० १७ तक है।]

भावार्थ—रू० १४—"ख़ाँ तातार मारूफ ख़ाँ ने शाह (गोरी) के हाथ से पान लिया है। चौहानों को उखाड़ फेंकने के लिये वायु में बाजे (युद्ध वाद्य) बज रहे हैं।

रू० १५—हे राजन्, सुनिये; गोरी के श्रेष्ठ सेनापति तातार मारूफ ख़ाँ ने (ढोल) बजाकर सारी तय्यारी कर ली है और उसकी चतुरंगिणी सेना हम लोगों पर झपटने के लिये प्रस्तुत है। आपके ऊपर भयंकर आक्रमण करने की आकांक्षा से ख़ानों ने अपने घोड़ों पर ज़ीने कस लीं हैं [या आपकी सत्ता

(१) ना०—उप्परा बस रसी।

नष्ट करने के लिए ख़ान घोड़े दौड़ा रहे हैं। (सारस=सेना इसलिए सत्ता, राज्य या बल; उप्परा< उपारना= नष्ट करना ; पल्लानयं<सं० पलायनं= दौड़ाना, भगाना)] । '(केवल) एक साहबशाह (गोरी) रहे और कोई न रहे' यह कहकर गोरी की सेना उसका स्वागत कर रही है ।

शब्दार्थ—रू० १४—षां-तातार-मारूफ-षां=यह इस युद्ध में शहाबुद्दीन गोरी का प्रधान सेनापति समझ पड़ता है क्योंकि इस सम्पूर्ण सम्यौ में हम उसे एक प्रतिष्ठित पद और मुख्य-सैन्य-संचालन में पाते हैं। ना० प्र० सं० (पृ० रा०) में इस छं० के ऊपर के नोट में एक नाम 'तातार-मारूफ-ख़ाँ' के स्थान पर तातार ख़ाँ और मारूफ ख़ाँ दो नाम पाये जाते हैं जो उचित नहीं समझ पड़ते। दोहे का अर्थ है कि ख़ाँ-तातार-मारूफ-ख़ाँ ने शाह के हाथ से पान का बीड़ा उठाया—(प्राचीन समय में यह नियम था कि जब कोई कठिन कार्य आ उपस्थित होता था तो दरबार में पान का बीड़ा रखकर अपेक्षित कार्य की सूचना दी जाती थी अतएव जो सरदार अपने को उस काम के करने के योग्य देखता वह बीड़ा उठा लेता)—जो प्रथानुसार भी ठीक है अतएव तातार-मारूफ-खाँ एक व्यक्ति है। डॉ० ह्योर्नले भी एक ही व्यक्ति मानते हैं। दो व्यक्तियों का भ्रम इस शब्द (ख़ाँ-तातार-मारूफ-ख़ाँ) के दोनों ओर ख़ाँ लगाने से हो गया है परन्तु चंद ने रासो के अनेक स्थलों पर एक ही व्यक्ति के लिये इसके अनुरूप प्रयोग किये हैं। अगले साटक छंद से भी तातार-मारूफ-ख़ाँ के एक व्यक्ति होने का आभास मिलता है। लिये पांन कर साहि=शाह के हाथ से पान लिया है; (इस भाँति पान का बीड़ा किसी दुष्कर कार्य को सम्पादित करने के लिये ही उठाया जाता था और इस समय चौहान से मोर्चा लेना साधारण बात न थी)। उप्परै धर= उपार (उखाड़) देने के लिये। धर चहुआंनी उप्परै=चौहानी को उखाड़ देने के लिए। बज्जा=फूँकने वाले बाजे जैसे तुरही, बिगुल, भोंपू आदि। बज्जन=वे बजाते हैं; (यह पंजाबी भाषा का शब्द है और यह क्रिया वर्तमान काल, बहुबचन, उत्तम पुरुष की है)। बाइ<सं० वायु। ['बज्जन बाइ' की भाँति 'पोन निसान' भी है जिस का प्रयोग रामचरितमानस में देखा जा सकता है]।

रू०—१५-श्रोतं=सुनियें। भूपय=राजन् (संबोधन)। बर=श्रेष्ठ। भरं<भट (का रूप है)=वीर। बज्जाइ=बजाकर। सज्जाइने= सजा लिया है। सा=उस (गोरी) की। सेना चतुरंग बंधि=सेना चतुरंगिणी बन कर। उललं< (हिं० क्रिया) उलरना=झपटना। तुज्झी=तुह्मारे ऊपर। सार स=सार सहित (अर्थात् शक्ति पूर्वक)। उप्परा= (१) आक्रमण (२) उखाड़ फेंकना। बस<सं० वश=इच्छा। रसी (या रसिक)=घोड़ा, हाथी। पल्लानयं=ज़ीन

कसना । एकं=एक । जीव=जिये । सहाब साहि=साहब शाह (गोरी शहाबुद्दीन) । न नयं=न न । बीयं=दूसरा । स्तयं<सं० स्तवं=स्तुति, प्रशंसा; स्वागत । सेनयं=सेना ।

नोट—रू० १४—"यह सुनते ही शहाबुद्दीन ने दरबार में पान का बीड़ा रखकर कहा कि जो इस बीड़े को खाकर पृथ्वीराज को पकड़ लावे उसे मैं बहुत कुछ इनाम दूँगा।" रासो-सार, पृष्ठ १०० ।

दूहा १४ से कुंडलिया १७ तक लाहौर के शासक चंद पुंडीर के दूत द्वारा लाये हुए पत्र का हाल है। 'रासो-सार' के लेखक इस रहस्य को सम्भवतः न समझ सके जिसके फलस्वरूप उपर्युक्त वार्ता लिख दी गई।

रू० १५—साटक छंद का लक्षण—

यह छंद आधुनिक छंद-ग्रंथों में नहीं मिलता। "गुजराती भाषा के काव्यों में इस नाम का छंद मिला और The Rev. Joseph Van S. Taylor साहब ने अपने गुजराती भाषा के व्याकरण के छंद-विन्यास नामक प्रकरण के पृष्ठ २२३ में इसका साटक नाम से ३८ अक्षरों की दो तुक का छंद होना लिखा है जिसकी प्रत्येक तुक में १२+७=१६ अक्षर होते हैं इसके अतिरिक्त प्राकृत भाषा के किसी छंद ग्रंथ से अनुवादित होकर संवत् १७७६ में "रूपदीप पिंगल" नामक छंद-ग्रंथ में साटक छंद का यह लक्षण लिखा है—

"कर्मे द्वादस अंक आद संग्या, मात्रा सिवो सागरे ।
दुज्जी वी करिके कलाष्ट दसवी, अर्कोविरामाधिकं ॥१॥
अंते गुर्व निहार धार सबके, औरों कछू भेद ना ।
तीसों मत्त उनीस अंक चने, सेसो भणै साटकं ॥२॥"

हम इस साटक छंद को पिंगल-छंद-सूत्रम नामक ग्रंथ में कहे शार्दूल-विक्रीड़ित छंद का नामान्तर होना मानते हैं और उसका लक्षण बहुत प्राचीन अमर और भरत कृत छंदों में होना अवश्य अनुमान करते हैं क्योंकि चंद कवि ने भी अपने इसी ग्रंथ (पृथ्वीराज-रासो) के आदि पर्व के रूपक ३७ में जो कुछ कहा है उससे स्पष्ट मालूम होता है कि उसने अपने इस महाकाव्य की रचना में पिंगल, अमर और भारत के छंद-ग्रंथों का आश्रय अवश्य लिया है।"[ना० प्र० सं०, पृ० रा०, फुट नोट, पृष्ठ १-२]।

दूहा

अहि बेली फल हथ्थ लै, तौ ऊपर तत्तार ।
मेच्छ मसरति सत्ति कै, बंच कुरानी बार ॥ छं० १६ । रू० १६ ।

कुंडलिया

बर मुसाफ[1] तत्तार षाँ, मरन किंत्ति तन[2] बांन ।
में[3] भंजे लाहौर धर, लैहूँ सुनि सु विहान ।
लैहूँ[4] सु निसु विहान, सुनै ढिल्ली सुरतांनं ।
लुथ्थि पार पुंडीर, भीर परिहै चौहांनं[5] ।
दुचित चित्त जिन करहु, राज आखेट उथापं[6] ।
गज्जनेस आयस्स, चले सब छूय[7] मुसाफं ॥" छं० १७। रू० १७।

भावार्थ—रू० १६—म्लेच्छ [तातार मारूफ खाँ] ने (तुम्हारे विपक्ष में दी हुई अपनी) सलाह की सत्यता प्रदर्शित करने के लिये हाँथ में पान और सुपारी ली फिर कुरान के वाक्य पढ़े ।

रू० १६—तातार खाँ ने पवित्र कुरान की शपथ ले कर कहा कि रण का वेश धारण कर फिर मरना क्या (मरने का क्या डर) । मैं लाहौर नगर को नष्ट कर तथा अधिकृत कर चौबीस घंटे में दिल्ली भी ले लूँगा । हे सुलतान सुनो, पुंडीर की लोथ गिरा कर चौहान पर आक्रमण होगा [या- मैं लाहौर नगर को नष्ट कर अधिकृत कर लूँगा और सुलतान सुनेगा कि दूसरे दिन मैंने दिल्ली भी ले ली है। पुंडीर की लोथ पार करके चौहान पर आक्रमण होगा] । आप अपने चित्त में किसी प्रकार की शंका न करें (क्योंकि) राजा [पृथ्वीराज] आखेट खेलने में संलग्न है । (तब) शाह गोरी ने (चढ़ाई बोल देने की) आज्ञा दी और सब लोग पवित्र पुस्तक [कुरान] को छू कर चल दिये ।

सूचना—यहाँ चंद पुंडीर का पत्र समाप्त हो जाता है ।

शब्दार्थः—दूहा—१६—अति बेली फल =अहिवेल या नाग बेल का फल = सुपारी । हथ्थ < सं० हस्त = हाँथ । तौ = तो = तुम्हारे (ऊपर दी हुई सलाह) । मेच्छ = म्लेच्छ (यहाँ तातार मारूफखाँ के लिये आया है) । मसूरति < अ० مشورت =सलाह । कुरानी बार=क़ुरान की (عبارت) इबारत ।

रू० १७—मुसाफ < अ० مصحف = पुस्तक या पृष्ठ—(जो धर्म पुस्तक कुरान के लिये प्रयुक्त होता है ।) उन्होंने 'ज़िहाद' करने के लिये क़ुरान की शपथ ली । [—इस कुंडलिया में दो स्थानों पर मुसाफ आया है । पहिले

(१) ए०—सुसाफ (२) ना०—नन; ए० कृ० को०—तन (३) ना०—मैं (४) ना०—लैहैं (५) ना०—चहुआनं (६) ए०—उथामं (७) ना०—छूप ।

'मुसाफ' को ह्योर्नले महोदय 'तत्तार षाँ' के साथ जोड़ कर एक नाम बना देते हैं परन्तु 'मुसाफ-तत्तार-षाँ' नाम प्रमाण रहित है। उचित यह है कि दोनों 'मुसाफ' से क़ुरान का ही अर्थ लगाया जाय]। मरन किति = मरना क्या। तनबांन=रण का बाना (वेश) धारण करके। में=मैं। भंजे=नष्ट करके। धर लैहूँ=अधिकृत कर लूंगा। निसु विहान्=दिन रात=एक दिन रात में=२४ घंटे में। ढिल्ली = दिल्ली। सुरतांनं=सुलतान गोरी। सुनै = सुनो (सम्बोधन)। लुथ्थि=लोथें। पार = डालना, गिराना, पार करना। भीर परिहै = कष्ट पड़ेगा, आक्रमण होगा। दुचित चित्त जिन करहु = शंका मत करो। राज = राजा (पृथ्वीराज)। उथापं=लगा है, संलग्न है। गज्जनेस= गजनी के ईश (शाह गोरी)। आयस्स<आयसु<सं० आदेश=आज्ञा दी। छूय=छूकर। मुसाफं=धर्म पुस्तक क़ुरान।

नोट—कुंडलिया छंद का लक्षण—

यह मात्रिक छंद है। इस में छै पद होते है। प्रत्येक पद में २४ मात्रायें होती हैं। पहले दो पदों में १३ और शेष चार में ११ पर यति होती है। एक दोहे के बाद रोला छंद जोड़ने से कुंडलिया होती है। इसमें द्वितीय पद का उत्तरार्ध तृतीय पद का पूर्वार्ध होता है। जो शब्द छंद के आरम्भ में होता है वही अन्त में आता है।

'प्राकृत पैङ्गलम्' में कुंडलिया छंद का निम्न लक्षण दिया है—

दोहा लक्खण पढम पढि कब्बह अद्ध णिरुत्त।
कुंडलिआ बुहअण मुणह उल्लाले संजुत्त॥
उल्लाले संजुत्त जमक सुद्धउ सलहिज्जइ
चउआलह सउ मत्त सुकइ दिढ बंधु कहिज्जइ।
चउआलह सउ मत्त जासु तण भूसण सोहा
एम कुंडलिआ जाणहु पढमपडि जह दोहा ॥I, १४६॥

श्री 'भानु' जी ने श्री पिङ्गलाचार्य जी के मत को आधार मान कर अपने 'छंद: प्रभाकर' में कुंडलिया का लक्षण इस प्रकार लिखा है—

दोहा रोला जोरि कै, छै पद चौबिस मत्त।
आदि अन्त पद एक सो, कर कुंडलिया सत्त॥

रेवातट सम्यौ का कुंडलिया छंद 'प्राकृत पैङ्गलम्' में दिये लक्षण के अनुरूप है।

दूहा

षट मुर कोस मुक्कांम करि, चढ़ि चल्यौ चहुआंन।
चंद वीर पुंडीर कौ, कग्गद करि परिग्रांन ॥ छं० १८। रू० १८।

दूहा

गोरी वै दल संमुहौ, गौ पंजाब प्रमांन।
पुब्ब रु पच्छिम दुहुँ दिसा, मिलि चुहांन सुरतांन ॥ छं० १९। रू० १९।

दूहा

दूत गये कनवज्ज दिसि, ते आये तिन थांन।
कथा मंडि[1] चहुआंन की, कहि कमधज्ज प्रमांन ॥ छं० २०। रू० २०।

दूहा

"रेवा तट आयौ सुन्यौ बर गोरी चहुआंन।
बर अवाज सब मिट्टि के, सजे सेन सुरतांन ॥" छं० २१। रू० २१।

दूहा

दूत बचन—"संभल नृपति, बर आषेटक षिल्ल।
रेवा तट पाधर[2] धरा, जूह (जहाँ) मृगन बर मिल्ल॥ छं० २२। रू० २२।

भावार्थ—रू० १८—वीर चंद पुंडीर के पत्र को प्रमाण मानकर छै कोस पर मुकाम करता हुआ चौहान मुड़कर चढ़ चला।

रू० १९—गोरी की सेना से (या गोरी की सेना विशेष से) भिड़ने के लिये वह सीधा पंजाब को प्रमाण करता हुआ गया और पूर्व तथा पश्चिम से चौहान और सुलतान (क्रमशः) [परस्पर] मिलने (=भिड़ने) के लिये चले।

रू० २०—जो गुप्त-चर कन्नौज चल दिये थे वे उस स्थान (कन्नौज) पर पहुँच गये और उन्होंने कमधज्ज (जयचंद) से चौहान की सारी कथा सत्य प्रमाणित कर कही।

रू० २१—[दूत वचन जयचंद से]—"श्रेष्ठ गोरी ने चौहान को रेवा नदी के तट पर गया सुनकर चुपचाप एक सेना सजा ली है।"

रू० २२—दूत ने (फिर) कहा—"(और) संभल का राजा आखेट खेल रहा है। रेवा तट पर जहाँ अच्छे जानवर मिलते हैं उसने जाल लगा रक्खे हैं।"

---

(१) ता०—मंड (२) ए०—पधार।

शब्दार्थ—रू० १८—षट=छै । मुर=मुड़ा । षट कोस=छै कोस । मुकाम करि=पड़ाव डालता हुआ । चढ़ि चल्यौ=चढ़ चला (या लौट चला)। कौ=का (सम्बन्ध कारक) । परिवांन<प्रमाण ।

रू०—१९–वै=कुछ विद्वान् इसका 'विशेष' अर्थ लगाते हैं परन्तु यह सम्बन्धकारक का चिन्ह समझ पड़ता है और रासो के अनेक स्थलों पर इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । दूसरी सम्भावना यह भी है कि यह छंद के नियम पूरे करने के लिये लगा दिया जाता होगा । दल=सेना । संमुहौ=मुकाबिला करने या भिड़ने । गौ=गया । पंजाब प्रमांन=पंजाब को प्रमाण बनाता हुआ अर्थात् सीधा पंजाब को लक्ष्य करके । पुब्ब<पूर्व । रु<अरु=और । पच्छिम <सं० पश्चिम । दुहुं=दोनों ।

रू०२०—कनवज्ज<सं० कान्यकुब्ज (=कुबड़ी कन्या)=कन्नौज [वि० वि० भौगोलिक प० में] । दूत=गुप्तचर । तिन थांन=उस स्थान पर । मंडि= रचकर कहना । प्रमांन<प्रमाण=सबूत । कमधज्ज (<कामध्वज या कन्या-ध्वज)—यह पृ० रासो में अनेक स्थलों पर जयचंद के लिये आया है [उ०— "इह कहत नृप पंग सु अष्षी । बियौ दूत नृप अंष्षन दष्षी ॥ दुचित चित्त मुक्की बर बानी । कुसल वीर कमधज्ज न जानी ॥" सम्यौ २६, छंद ८; "चढ़ि चल्यौ पंग कमधज्ज राइ । सो छिन्न भिन्न डम्मरित छाइ ॥" सम्यौ २६, छंद ३९; "आइ सँपत्ते सूर धर । सुरताना कमधज्ज ॥" सम्यौ ३१, छंद २२; "षग्ग कमधज्ज बाँह वर ।" सम्यौ ६१, छंद ३०३; "कमधज्जराज फिरि चंद कहु ।" सम्यौ ६१ छंद, ६५८—इत्यादि] । "कन्नौज वाले राठौर वंशी राज-पूत थे और कामध्वज उनका विशेषण या पदवी थी । कामध्वज का अर्थ है कि जिसकी ध्वजा में कामदेव अंकित है और कन्याध्वज का अर्थ है कि जिसकी ध्वजा में कुमारी कन्या अंकित है । संवत् ५२६ (४७० ई० पू०) में नयनपाल ने कन्नौज पर अधिकार किया और तभी से राठौरों ने 'कामधुज' पदवी ग्रहण की" [Rajasthan, Tod, Vol. II, P. 5] । परन्तु कन्नौज पर सबसे प्रमाणिक पुस्तक History of Kanauj, R. S. Tripathi, Ph. D. (London)—में ये सब प्रमाण नहीं मिलते ।

रू० २१—बर अवाज सब मिट्टि के=सब आवाज़ें मिटाकर अर्थात् चुपचाप ।

रू० २२—संभल नृपति=साँभर का राजा अर्थात् पृथ्वीराज । षिल्ल= खेलना । पाधर (या पद्धर) <सं० प्रधारणा=जाल, बाड़ा या रोक । जूह (या

जूथ) <सं० यूथ (परन्तु 'जूह' का 'जहाँ' पाठ भी असंभव नहीं है)। मृगन बर= अच्छे जानवर । मिल्लि=मिलते हैं ।

नोट रू० १८—"इधर पृथ्वीराज ने लाहौर के प्रतिनिधि शासक चंद पुंडीर को परवाना भेजकर अपने आने का समाचार जता दिया और आप कभी छै और कभी आठ कोस का मुकाम करता हुआ पंजाब की सीध में चलने लगा।" रासो-सार, पृ० १०० ।

इस दोहे में 'आठ कोस' शब्द या उसका पर्य्यायवाची अन्य कोई शब्द नहीं आया है। और 'कग्गद करि परिवांन' का अर्थ 'कागद (पत्र) को प्रमाण मानकर' है, न कि 'परवाना भेजकर' ।

रू० १६—"जिस घड़ी पृथ्वीराज ने पंजाब की भूमि में पैर रक्खा उसी समय मुसलमानी सेना ने भी वह सीमा पार की।" रासो-सार, पृष्ठ १०० ।

"Marching from two opposite directions i. e. east and west, the Chauhan and Sultan met." Growse. [Indian Antiquary. Vol. III, pp. 339-40.]

"To meet the host of Gori, he went straight to the Punjab. From both sides, the east and the west, they met, the Chahuvan and the Sultan." [Hoernle. p. 11.]

उपर्युक्त तीन अर्थ पाठकों के अवलोकनार्थ दिये गये हैं। ह्योर्नले तथा ग्राउज़ महोदय गोरी और चौहान को अभी मिलाये देते हैं जब कि युद्ध प्रारंभ काल में अभी विलम्ब है। परन्तु रासो-सार के लेखकों ने बुद्धिमानी का काम किया है, उन्होंने एक ऐसी बात कह दी है जिसकी संभावना भी है और असंभावना भी। जो कुछ भी हो रू० १६ की पंक्तियों का शब्दार्थ देखते हुए उसका दिया हुआ भावार्थ ही अधिक समुचित है।

रू० २२—ह्योर्नले महोदय इस रूपक के अंतिम चरण का अर्थ इस प्रकार करते हैं—"रेवातट पर उसने बाड़े लगा रक्खे हैं और अनेक अच्छे जानवरों को पकड़ रक्खा है।"

"पृथ्वीराज का कहना कि बहुत बड़े शत्रु रूपी मृगों का समूह शिकार करने को मिला।" (पृ० रा० ना० प्र० सं०, पृष्ठ ८८, छंद २२ की टिप्पणी)। इस रूपक का आधार क्या है इसे पृ० रा० के ना० प्र० सं० के सम्पादक ही समझ सकते हैं।

कवित्त

मिले सब्ब सामंत, मत्त मंड्यौ सु नरेसुर।
दह गूना दल[1] साहि, सज्जि चतुरंग सजिय उर ॥
मवन मंत चुक्कौ न, सोइ वर मंत विचारौ ।
बल घट्यौ अप्पन्नौ सोच, पच्छिलौ निहारौ ॥
तन सद सट्टै लीजे[2] मुगति, जुगति बंध गौरी दलह ।
संग्राम भीर प्रिथिराज बल, अप्प मत्ति किज्जै कलह ॥ छं०२३।रू०२३॥

भावार्थ—रू०२३—सब सामंत एकत्रित हुए और नरेश्वर (पज्जूनराव) ने यह सुझाव पेश किया, "शाह ने बड़े विचार पूर्वक (हम लोगों से) दस गुनी चतुरंगिणी सेना तैय्यार कर ली है (अतएव इस समय) आप शांति नीति ग्रहण कीजिये और यही श्रेष्ठ मंत्रणा है; ['सलाह देने में न चूकिये वरन् श्रेष्ठ मंत्रणा सोचिये ।' ह्योर्नले] । (साथ ही ध्यान रखिये कि) अपना बल घट गया है (तथा) पिछली लड़ाइयों का क्या प्रभाव पड़ा है इसे भी सोच लीजिये । अपने विविध अंगों को मिलाकर और युक्ति पूर्वक गोरी की सेना को घेरकर हम मुक्ति लें [अपनी बाधा को टालें—मुक्ति का अर्थ मरकर मृत्यु नहीं वरन् शत्रु से पीछा छुड़ाना है ।]—पृथ्वीराज के बल (सेना) पर इस समय संग्राम की भीर है (चारों ओर से प्रहार हो रहे हैं) अतएव अपने आप झगड़ा मोल न लीजिये [या—आप अपने में कलह न कीजिये अथवा गोरी से इस समय झगड़ा न कीजिये उसे मिलाये रहिये ।"

शब्दार्थ—रू० २३—मत्त=मत, सलाह, सुझाव । नरेसुर<नरेश्वर=राजा । पज्जूनराव की पदवी 'नरेसुर' थी । पज्जून=ये पृथ्वीराज के साले थे (Rajasthan. Tod. Vol II, pp. 350-351) । दह गूना=दस-गुना । सजिय उर=मन लगाकर, बड़े विचार पूर्वक । मवनमंत=मौन मत अर्थात् शांति नीति । चुक्कौ न= न चुको । सोइ=वही । वर मंत=श्रेष्ठ मत (सलाह, मंत्रणा) । अप्पन्नौ=अपना । घट्यौ=घट गया है । पच्छिलौ निहारौ=अंत भी देखो; पिछली (लड़ाइयों का क्या प्रभाव पड़ा है इसे भी) सोच लो । तन=अंग । सद<शत=सौ (अर्थात् अनेक) । तन सद=अनेक (विविध) अंग । सट्टैं=सटें, मिल जावें । मुगति<सं० मुक्ति । जुगति<सं० युक्ति । बंध गोरी दलह=गोरी के दल को बाँध लें । बल=शक्ति । प्रिथिराज बल=पृथ्वी-राज की शक्ति (सेना) पर । अप्प=आप । मत्ति किज्जै=मत कीजिये । कलह=झगड़ा, फूट ।

---

(१) मो०—बल (२) मो०—सट्टैं लीजै; ए०—सद सटं ।

नोट—इस कवित्त की अंतिम चार पंक्तियों का अर्थ ह्योर्नले महोदय इस प्रकार करते हैं—

"हमारी शक्ति क्षीण हो गई है इसको याद रखिये और अंत भी सोच लीजिये। शरीर से शरीर भिड़ाकर लड़िये और मुक्ति प्राप्त कीजिये। गोरी ने अपना दल बड़ी युक्ति पूर्वक सजाया है परन्तु युद्ध छिड़ने पर पृथ्वीराज की शक्ति उसके बराबर है अतएव आप युद्ध करने का दृढ़ संकल्प कर लीजिये या इस समय स्वयं अपने में फूट न डालिये।"

कवित्त

सुनिय बत्त पज्जून, राव परसंग मुसक्यौ[1]।
देवराव बग्गरी, सैन दै पाव कसक्यौ॥
तन सट्टै[2] सटि मुकति, बोल भारथ्थी बोलै।
लोह अंच उड्डंत, पत्त तरवर जिमि डोलै॥
सुरतांन चंपि मुष्यां[3] लग्यौ, दिल्ली नृप दल बानियौ।
भर भीर धीर सामंत पुन, अबै पटंतर जानिबौ॥ छं०२४। रू०२४।

भावार्थ—रू० २४—पज्जून की (उपर्युक्त) बातें सुनकर प्रसंग राव मुसकुराया और देव राव बग्गरी ने इशारा करते हुए अपना पैर खींचा (समेटा) तथा व्यंग्य पूर्वक कहा—"इस तरह आपस में मेल करके पीछा छुड़ाना क्या ही वीरोचित वाक्य हैं? ['शरीर से शरीर सटाकर वीर गति प्राप्त करने का उपदेश क्या ही वीरोचित वाणी है'—ह्योर्नले।] (स्वयं तो) जब लोहे से लोहा बजकर आँच निकलती है तो वृक्ष के पत्ते सदृश डोलने (काँपने) लगता है [अर्थात्-सामने युद्ध होते देख काँपने लगता है।] सुलतान चढ़कर हमारे सर पर आ गया है। दिल्लीराज भी एक सेना तय्यार कर लें। कठिन मोर्चों पर धैर्य धारण करने वाले हमारे सामंत (इस गिरी अवस्था में) अब भी उनसे कम नहीं हैं।" ['दिल्लीराज भी एक सेना अवश्य तय्यार कर लें। शत्रु सैनिकों की संख्या और अपने सामंतों की वीरता बराबर ही समझना चाहिये।' ह्योर्नले]

शब्दार्थ--रू० २४—सुनिय=सुनकर। बत्त=बात। पज्जून=यह अंबर या जयपुर के कछवाह राजपूतों की एक शाखा कूर्म या कूरंभ वंश का था। वीर चौहान ने ख्यातनामा एक सौ आठ सरदार उसके साथ कर दिये

---

(१) मो०—मुसक्यौ (२) ए०—सटि (३) नां०—मुष्षां।

थे। अनेक युद्धों में पृथ्वीराज की सेना के एक भाग का संचालन पज्जून की ही अध्यक्षता में हुआ था। भारत के उत्तरी आक्रमणों में दो बार पज्जून अपनी वीरता का परिचय दे चुका था। एक बार उसने शहाबुद्दीन को ख़ैबर के दर्रे में पराजित किया और ग़ज़नी तक खदेड़ा था। चंदेल राज महोबा की विजय ने पज्जून की वीरता की धाक बैठा दी थी। पृथ्वीराज की एक बहिन पज्जून को ब्याही थी और चौहान नरेश ने उसे महोबा का शासक बना दिया था। कन्नौज के संयोगिता अपहरण वाले युद्ध में चुने हुए चौंसठ सरदारों में पज्जून भी था और लौटते समय पाँच दिन के युद्ध में प्रथम दिन वीर गति को प्राप्त हुआ था। यह धूँधर या डूँडार का अधिपति था [Rajasthan. Tod. Vol. II, pp. 249, 350-361]। परन्तु ६५वें सम्यौ में हम पढ़ते हैं कि पज्जूनी पृथ्वीराज की तेरह रानियों में आठवीं विवाहिता रानी थी। पृथ्वीराज ने अठारहवें वर्ष की आयु में पज्जूनी से विवाह किया था--["अठारमैं बरस चहुआन चाहि। कछवाह वीर पज्जून ब्याहि। इक मात उदर धनि गरभ सोय। बलिभद्र कुंअर जापै संदोय ॥ सम्यौ ६५, छंद ६]। यदि ये दोनों पज्जून एक ही हैं जैसा कि टॉड और ह्योर्नले दोनों महानुभावों का कहना है तो पृथ्वीराज ने अपनी सगी भानजी से बिवाह किया। परन्तु ऐसी प्रथा न होने से शंका उत्पन्न होने लगती है अस्तु इन दोनों पज्जूनों में अवश्य भेद होना चाहिये। [कछवाहों के वि० वि० के लिये देखिये—Races of N. W. Provinces. Elliot (edited by Beams). Vol. I, pp. 157-59]। राव परसंग = इसे कीची प्रसंग भी कहते हैं। प्रसंग राव कीची चौहान वंशी कीची प्रशाखा का था [Rajasthan. Tod. Vol. I, pp. 94-97 और भी वि० वि० देखिये—Hindu Tribes and Castes. Vol. I, pp. 160, 168]। यह पृथ्वीराज के वीर सामंतों में था और संयोगिता अपहरण वाले युद्ध में आहतों में से एक था [रासो सम्यौ ६१]। देवराव बग्गरी=यह बग्गरी राव या बग्गरी देव के नाम से विख्यात है और बग्गरी जाति का राजपूत था। बग्गरी जाति का पता अब कम चलता है। संयोगिता अपहरण वाले युद्ध के आहतों में बग्गरी राव भी था [बग्गरी जाति के वि० वि० के लिये देखिये—Asiatic Journal. Vol 25, p. 104]। मुसक्यौ=मुसकुराया। सैन दै=इशारा करते हुए। पाव=पैर। कसक्यौ=खींचा। भारथ्थी <भारती=वीरोचित वाणी। उड्डंत=उड़ते ही। चंपि=चाँपकर, दाबकर। मुष्याँ <मुख। मुष्याँ लग्यौ=बिलकुल सामने (सिर पर) आ गया है। दल बानिबौ=दल बनावे (या सजावे)। भर भीर=भारी भीर

(कठिन मोर्चों पर भी) । अबै पटंतर जानिबौ=अब भी उनके बराबर जानो। पटंतर=बराबर ।

नोट—"इस बात के सुनते ही पज्जून राव, प्रसंग राव खीची, देवराव बग्गरी आदि सामंत बोले कि यह सब मंत्र तंत्र व्यर्थ है । "भरत" का बचन है कि यह जीवन अग्नि ज्वाला से झुरसे वृक्ष में लगे हुए पत्ते के समान है, न जाने कब वायु लगते ही इसका पतन हो जाय अतएव इस सुअवसर पर चूकना क्या ? जबकि शत्रु साम्हने आ गया है तो उससे लोहा लेना ही अच्छा है ।" रासो-सार, पृष्ठ १०० ।

इस 'सार' को काल्पनिकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता ।

कवित्त

कहै राव पज्जून, तार कढ्यौ तत्तारिय ।
में[१] दष्षिन वै देस, भरि जद्दव पर पारिय[२] ॥
में[३] बंध्यो जंगलू, राव चामंड सु सथ्थं[४] ।
बंभनवास विरास, वीर बड गुज्जर तथ्थं[५] ॥
भर विभर सेन चहुआन दल, गोरी दल कित्तक[६] गिना ।
जानै कि भीम कौरू[७] सुबर जर समूह तरवर किनौ ॥ छं० २५ । रू० २५।

भावार्थ—रू० २५—पज्जून राव ने उत्तर दिया—"(इससे पहिले) मैंने तातारियों से बचाकर तुम्हें निकाल लिया था । दक्षिण के यादवों पर मैंने आक्रमण किया । चामंडराय के साथ मैंने जंगलियों को हराया (और उन्हें अपने आधीन किया) । बंभनवास से मैंने बड़गूजर को निकाल बाहर किया [या—मैंने बड़गूजर के साथ बंभनवास में विहार किया] । चौहान की सेना युद्ध प्रिय वीर सैनिकों की सेना है । गोरी की सेना को तुम क्या समझते हो ? योद्धा भीम कौरवों को अनेक जड़ों वाले एक वृक्ष सदृश जानते थे ।"

शब्दार्थ—रू०२५—तार=तारना, त्राण करना । कढ्यौ=निकालना । में=मैं । दष्षिन<दक्षिण । पारिय=डाला । वै=के या को (अर्थों में रासो में आया है जैसे—'गोरी वै गुज्जर गहिय'; 'गज्जन वै पठयो सुघर';) । भीर =कष्ट । जद्दव<यादव । बंध्यो—बाँधा, पकड़ लिया । जंगलू=जंगलियों

(१) ना०—मैं (२) मो०—परिहरिय (३) ना०—मैं (४) ना०,—मो०—जु सथ्थे (५) ना—तथ्थे (६) मो०—किन्ती (७) ए०—कौरू, कौरू, कौरौं ।

को। [रासो में पृथ्वीराज का नाम भी कहीं कहीं 'जंगलेश या जंगली राव' मिलता है। "जंगलदेश पृथ्वीराज के पैतृक राज्य का नाम था," Asiatic Journal. Vol. 25]। सथ्थं=साथ। बंभनवास (<ब्राह्मण वास)="यह सिंध का किसी समय का प्रसिद्ध परन्तु अब उजड़ा हुआ नगर है। बंभनवास और यूनानी हरमतेलिया (Harmatelia) एक ही हैं [Ancient Geography of India. Cunningham. Vol. I, pp. 267, 277]। चंद ने पृथ्वीराज रासो के अनेक स्थलों पर बंभनवास का प्रयोग किया है, (उ०—"बंभन सु वास पट्टन प्रजारि। ता समह भीम मण्डन सु रारि॥"—रासो सम्यौ ११, छंद ८)। ह्योर्नले महोदय ने जयपुर से कुछ मील की दूरी पर स्थित देवसा नामक एक साधारण ग्राम के वर्णनात्मक नाम को ही भ्रमवश बंभनवास मान लिया है। विरास=(१) निर्वासित करना (२) विलास (विहार)। बड गुज्जर=बड़गूजर छत्तीस राजपूतों की वंशावली में हैं। अंबर और जयपुर में इनका राज्य था परन्तु कछवाहों ने इन्हें वहाँ से निकाल दिया था। कूरंभ वंशी पज्जून भी कछवाह था। तथ्थं=वहाँ से। कित्तक=कितना। भीम=पाँच पांडवों में से एक जो वायु के संयोग द्वारा कुंती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ये युधिष्ठिर से छोटे और अर्जुन से बड़े थे तथा बहुत बड़े वीर और बलवान योद्धा थे [वि० वि०—महाभारत]। कौरु<कौरव<सं० कौरव्य=ये कुरु राजा की सन्तान थे [वि० वि०—महाभारत]। कुछ विद्वान 'भर विभर सेन चहुआन दल' का अर्थ "चौहान का दल कठिन मोर्चा लेने में दक्ष है'—(भर विभर=भर भीर= बड़ी आपत्ति, कठिन मोर्चा; सेन=चतुर, दक्ष)—भी करते हैं।

कवित्त

तब कहै जैत पंवार सुनहु प्रिथिराज राजमत।
जुद्ध साहि गोरी नरिंद लाहौर कोट गत॥
सबै सेन अप्पनौ राज एकठ सु किज्जै।
इष्ट भ्रत्य सगपन सुहित (बीर)[1] कागद लिषि दिज्जै॥
सामंत सामि इह मंत है अरु जु[2] मंत चिंतै नृपति।
धन रहै ध्रम्म जस जोग है (अरु) दीप दिपति दिवलोक पति[3]॥छं०२६।रू०२६।

भावार्थ—रू० २६—तब जैत पँवार (प्रमार) ने कहा कि हे पृथ्वीराज राजमत यह होना चाहिये। नरेन्द्र को लाहौर के दुर्ग में पहुँच कर शाह गोरी

(१) हा०—(बीर) पाठ मानते हैं जो छंद भंग करने के अतिरिक्त ना० प्र० स० वाली प्रतियों में भी नहीं पाया जाता (२) ए०—अरु जुद्ध (३) ना०—दिपति दीप दिव लोक पति।

से युद्ध करना चाहिये । ['हे राजन् , पृथ्वीराज, मेरी सलाह सुनिये । लाहौर के दुर्ग में पहुँचकर युद्ध में आप शाह गोरी को पकड़ लें ।' ह्योर्नले] । अपने राज्य की समस्त सेना एकत्रित कर लेना चाहिये और अपने इष्टों, भृत्यों, सगों और सुहितों को पत्र लिख देना चाहिये । हे सामंतों के स्वामी, यही राजमत होना चाहिये फिर जो कुछ आप और विचारें । धर्म और यश का योग ही आपका मुख्य धन होना चाहिये क्योंकि आपका तेज इंद्र के समान अक्षय है । ['हे सामंतों के स्वामी, यह तो हम सामंतों का मत है और जो बात आप उचित समझें वह की जाय । स्वामिधर्म (स्वामिभक्ति) एक पवित्र वस्तु है और राजपूत के लिये यश के योग्य होना ही कल्याण है । राजन् पृथ्वी पर इन्द्र सदृश तेजस्वी हों ।' ह्योर्नले] ।

शब्दार्थ—रू० २६—जैत पंवार < जैत प्रमार—इसका पूरा नाम जैत सिंह प्रमार था और यह प्रसिद्ध आबूगढ़ का अधिपति था । जैसा कि इसी सम्यौ में आगे पढ़ेंगे कि जैत का संबंधी या भाई मारा गया—(जैत बंध गिरि पर्यौ सुलष लष्पन कौ जायौ) । उसके पुत्र का नाम सुलख था और पुत्री का इंच्छिनी जिसका विवाह पृथ्वीराज से हुआ था (रासो सम्यौ २४) । पृथ्वीराज ने बारह बर्ष की आयु में इंच्छिनी से विवाह किया था और वह उनकी दूसरी रानी थी—["बारमै बरस का सलष सोय । दिन्नी सु आय इंछनी लोय । आबू सु तोरि चालुक्क गंजि । किन्नौ सु ब्याह परिभाव भंजि"—रासो सम्यौ ६५,छं० ४] । जैत ने बराबर पृथ्वीराज का साथ दिया था । संयोगिता अपहरण बिषयक युद्ध में वह भी आहत हुआ था (रासो सम्यौ ६१) । वह प्रमार वंशी राजपूत था । प्रमार के बदले पंवार, परमार, पवार, पुआर नाम भी रासो में पाये जाते हैं । चार अग्निकुल क्षत्रियों में प्रमार भी हैं (रासो सम्यौ१) । "यह (प्रमार जाति) अग्निकुलों में सबसे अधिक शक्तिशाली जाति थी और ८५ शाखाओं में विभक्त थी" (Rajasthan. Tod. Vol. I, pp. 90-91) । प्रमार जाति का वर्णन Hindu Tribes and Castes. Sherring. Vol. I, pp. 143-49 में भी मिलेगा । गत=जाकर । एकट्ठ=इकट्ठा । सगपन=अपने सगे । मंत < सं० मंत्रणा=सलाह । दीप=तेज। दिपति=दीप्तिमान । दिवलोक पति=इंद्र (वि० वि० प० में देखिये) ।

कवित्त

बह बह कहि रघुबंस रांम हक्कारि स उठ्यौ ।
सुनौ सब्ब सामंत साहि आयें बल छुट्यौ [1] ॥

(१) ए०—वठ्यौ ।

गज रु सिंघ सा पुरिष जहीं रुंधै तहं झुज्झै[१] ।
समौ[२] असमौ जांनहि न लज्ज पंकै आलुज्झै ॥
सामंत मंत जानै नहीं मत्त गहैं इक मरन कौ ।
सुरतान सेन पहिले बंध्यौं फिर बंध्यौं तौ[३]करन कौ ॥ छं० २७। रू० २७।

कवित्त

रे गुज्जर गांवांर राज लै मंत न होई ।
अप्प मरै[४] छिज्जै नृपति कौन कारज यह जोई ॥
सब सेवक चहुआंन देस भग्गै धर षिल्लै ।
पच्छि कांम कहँ[५] करै स्वामि संग्रांम इकल्लै ॥
पंडित भट्ट कवि गाइना नृप सौदागर वारि हुअ ।
गजराज सीस[६] सोभा भंवर क्रन उडाइ वह सोभ लह ॥ छ०२८। रू०२८।

भावार्थ—रू०२९—रघुवंशी राम चिल्लाता हुआ उठा और (व्यंग्य पूर्वक) बोला सामंतो सुनो, शाह आ गया और वाह वा तुम्हारा बल (=साहस) छूट गया (=भंग हो गया)। वीर (पुरुष) हाथी और सिंह सदृश जहाँ कहीं रुँध (=घिर) जाता है वहीं युद्ध में जूझ पड़ता है, वह समय असमय का विचार नहीं करता और लज्जा के कीचड़ में नहीं फँसता। सामंतों का एक ही मत है और वह है मरना। इसके अतिरिक्त वे दूसरा मत नहीं जानते। सुलतान की सेना को मैंने पहिले बाँध लिया था और अबकी न पकड़ लूँ तो करन (कर्ण) का बेटा नहीं। [सुलतान ने तो अपनी सेना पहले ही से बाँध ली है अब तुम भी एक तय्यार करना चाहते हो इससे क्या लाभ होगा—ह्योर्नले]।

रू० २८—ऐ गँवार गूजर, राज्य पा जाने से मंत्रणा देना नहीं आ जाता। तुम स्वयं मरोगे और महाराज का भी विनाश करोगे। (ऐसी सलाह देने से) तुम क्या फल देखते हो ? चौहान के सब सेवक घर चले जावेंगे और महाराज के घर में फूट पड़ जावेगी। तब फिर क्या होगा ? क्या स्वामी अकेले युद्ध करेंगे ? जिस तरह गजराज अपने मस्तक के भौंरों को कान फड़फड़ा कर उड़ाता हुआ शोभित होता है उसी प्रकार राजा अपने पंडित, भट्ट, कवि गायक, सौदागर, वारिवनिताओं आदि सेवकों को भगाकर क्या कभी शोभा पा सकता है ?

---

(१) ना०—सुज्झै (२) ए० कृ० को०—समौ, असमो (३) ना०—बंधौं तौ (४) ना०—अप मर (५) ना०—कंह (६) सा०—सोस ।

शब्दार्थ—रू० २७—वह वह=वाह वा। रघुबंस राम—रघुवंशी राम के लिये आया है जिसके विषय में रासो में लिखा है—'जिहि नंदिपुर भंजि'। "रघुवंशी राजपूत अपनी उत्पत्ति अयोध्या के रघुवंशी राजा रघु से बताते हैं। रघुवंशी राजपूतों की जाति उत्तरी पश्चिमी प्रदेशों में फैली हुई है। मैनपुरी और एटा के रघुवंशियों का कथन है कि वे राजा जयचन्द के समय कन्नौज से आये थे" [Hindu Tribes and Castes. Sherring. Vol. I, pp. 210-11]। हक्कारि स उठ्यौ= चिल्लाता हुआ उठा। साहि आये= शाह के आने पर। बल छुट्यौ = तुम्हारा बल छूट गया अर्थात् तुम्हारा साहस जाता रहा। [साहि आये बल छुट्यौ=शाह आ गया है उसकी सेना चल चुकी है—ह्योर्नले]। 'न'—काकाद्व अलंकार है; (न समौ असमौ जानहि न लज्ज पंकै आलुज्झै)। आलुज्झै=उलझना, फँसना। पंकै=कीचड़ में। लज्ज=लज्जा। मत्त=मत। गहैं=पकड़ना। तौ करन कौ=तभी कर्ण का बेटा हूँ।

रू० २८—रे=ऐ। गुज्जर गांवांर—यह रघुवंशी राम के लिये यहाँ प्रयुक्त हुआ है। यद्यपि कविता में वक्ता का नाम नहीं दिया पर जहाँ तक सम्भव है यह जैत प्रमार ही है। अप्प मरै=आप मरोगे। छिज्जै=विनाश करना। कौन कारज यह जोई=इससे तुम क्या कार्य होता देखते हो। घर षिल्लै=(१) खिल जाना, फूट जाना (अर्थात् महाराज के घर में फूट पड़ जाय) (२) घर में जाकर आनंद करें—ह्योर्नले। कारज < कार्य। पच्छि=पीछे। काज < कार्य। इकल्लै=अकेले। गाइना=गायक। वारि=वेश्या। भंवर < सं० भ्रमर। क्रन < सं० कर्ण=कान। वह सोभ लह= (Does he get beauty ? No.) Growse.

प्रस्तुत कवित्त की अंतिम चार पंक्तियों का अर्थ ह्योर्नले महोदय ने इस प्रकार किया है—"All servants of the Chahuvan will betake themselves to their own country and enjoy themselves at home; afterwards what can the king accomplish being alone in the war ? Scholars, soldiers, poets, singers, princes, merchants constitute (the king's) court, adorning it like the black bees on the head of an elephant; when he makes them fly around by flapping his ears, he gets beauty."

नोट—रू० २३ से रू० २८ तक पृथ्वीराज के लाहौर लौटते समय उनके दरबार की युद्ध विषयक मंत्रणा का हाल है। दरबार में दो प्रकार के सुझाव रखे गये। एक मत यह था कि शीघ्र ही जो कुछ सेना है उसे लेकर पृथ्वीराज

गोरी से युद्ध छेड़ दें और दूसरा मत यह था कि पहले पृथ्वीराज अपने इष्ट, मित्र, सामंत आदि सबको बुलावें फिर एक बड़ी सेना तैयार कर शाह से युद्ध करें। इन दोनों मतों पर विवाद होकर पहले मत की विजय रही और शीघ्र ही युद्ध छेड़ने की तैयारी होने लगी, जैसा कि हम आगे पढ़ेंगे।

दूहा

"परी षोर तन दंग मम[1], अग्ग जुद्ध सुरतांन।
अब इह मंत बिचारिये लरन मरन परवांन॥" छं० २९। रू० २९।

दूहा

गजन सिंह[2] प्रथिराज कै, है दिष्षिय परवांन।
बज्जी पष्षर षंडरै, चाहुवांन सुरतांन॥ छं० ३०। रू० ३०।

दूहा

ग्यारह अष्षर पंच षट, लघु[3] गुरु होइ समांन।
कंठ सोभ बर छंद कौ, नाम कह्यौ परवांन॥ छं० ३१। रू० ३१।

भावार्थ—रू० २९—[दरबार में इन दो विभिन्न मतों पर विवाद बढ़ते देखकर पृथ्वीराज ने कहा]—"तुम लोगों के मतभेद की बातें सुन सुन कर मैं परेशान हो गया हूँ। सामने सुलतान से युद्ध है (अतएव) अब इसी मत पर विचार करो कि लड़ना और मरना ही निश्चित है।"

रू० ३०—पृथ्वीराज का (यह) सिंह गर्जन सुनकर यह बात निश्चित हो गई कि चौहान सुलतान के विरुद्ध घोड़ों के ज़िरह बख़्तर खड़खड़ाये (या कसे)।

रू० ३१—पाँच और छै के क्रम से ग्यारह अक्षर (जिस छंद में) हों (तथा जिसमें) लघु और गुरु समान हों, ऐसे श्रेष्ठ छंद का नाम कंठशोभा निश्चित है।

शब्दार्थ—रू० २९—षोर<खोर <सं० खोट=दोष, बुराई [उ०—"कहौं पुकारि खोरि मोहिं नाहीं।" रामचरित मानस]। यहाँ 'षोर' का बुराई अर्थ लेकर 'मतभेद' अर्थ लिया गया है क्योंकि सामंतों में वादविवाद होते-होते बुराई होने लगी थी। वैसे 'बुराई' शब्द का व्यवहार भी अनुचित न होगा। अग्ग<सं० अग्र=आगे। इह=यह। परवांन<सं० प्रमाण=निश्चित। दंग< फा० پریشان (परेशान)।

रू० ३०—गजन=गर्जन। कै=का। है दिष्षिय परवांन=प्रमाणित (निश्चित) दिखाई दिया। बज्जी<सं० बाजि=घोड़ा। पष्षर<सं० पक्ष=

(१) ए०—मम ; ना०—गम ; हा०—गम (२) ना०—गजत संग ; ए० कृ० को०—गजन सिंग (३) ना०—लहु।

ज़िरह बख़तर (घोड़ों का जो बहुधा चमड़े का हुआ करता था)। षंडरै=खड़-खड़ाना अर्थात् कसना।

रू० ३१—ग्यारह<प्रा० एयारह<पा० एकादस<सं० एकादश। अष्षर<सं० अक्षर। षट<सं० षट् (√ षष)> प्रा० छ>हि० छः=छै। पंच (√ पंचन्) >प्रा० पञ्च> हि० पाँच।

नोट रू० २६—"Disgrace has fallen upon us by going into this contention; before us is the war with the Sultān. Now think only of this advice, namely to fight and die." [Bibliotheca Indica. No. 452. p. 15].

रू० ३०—The horses of the lion of Ghaznī and of Prithiraj are clearly seen. Their quilted mail resounds as both gallop about the Chahuvān and the Sultān. [Bibliotheca Indica. No. 452. p. 15].

अभी अगले दोहों और कवित्तों में पृथ्वीराज की तयारी का ही वर्णन है तब गोरी और चौहान के घोड़े अभी किस प्रकार देखे जा सकते हैं।

छंद कंठशोभा

फिरे हय बष्षर पष्षर से। मनों फिरि इंदुज पंष कसे।
सो ई उपमा कवि चंद कथे। सजे मनों पोन[1] पवंग रथे॥ छं० ३२।
उरप्पर[2] पुट्ठिय दिट्ठियता। विपरीत पलंग तताधरिता[3]।
लगैं उड़ि छित्तिय चौन लयं[4]। सुने खुर केह अबत्तनयं॥ छं० ३३।
अग बंधि सु हेम हमेल घनं। तव चामर जोति पवंन रुनं।
ग्रह अट्ठ सतारक पीत पगे[5]। मनो सु त के उर भांन उगे॥ छं० ३४।
पय मंडिहिं अंसु धरै उलटा। मनो विट[6] देषि चली कुलटा।
मुष कट्ठिन घूंघट अस्सु बली। मनों घूंघट दै कुल बद्धु चली॥ छं० ३५।
तिनं उपमा बरनं न धनं। पुजै नन बग्ग पवंन मनं॥छं०३६॥ रू०३२।

भावार्थ—रू० ३२

नोट—सुलतान से युद्ध होना निश्चित जानकर युद्ध की तय्यारियाँ होने लगीं। इस छंद में चंद ने घोड़ों की शोभा का वर्णन किया है।

---

(१) ना०—पोम (२) ए० कृ० को०—उर उप्पर पुट्ठिय दिट्ठियत ; ना०—उर पुट्ठिय सुट्ठिय दिट्ठियता (३) ना०—वपरी पय लंगत ता धरिता (४) ए०—दो नलंय, दौ नलयं (५) ना०—ग्रह अट्ठस तारक वीत षगे ; ए० कृ० को०—पीत पगे (६) ए०—उड़े ; ना०—विंटय।

घोड़े अपने बाखरों-पाखरों सहित ऐसे फेरे जाते हैं मानो गरुड़ (पक्षी) अपने पंख समेटे उड़ रहे हों। चंद कवि उसी की उपमा कहते हैं कि मानो वे प्लवंग के रथ के घोड़ों की तरह सरपट दौड़ रहे हों। उनकी छाती और पुट्ठे ऐसे सुन्दर दिखाई पड़ते हैं मानों पलंग उलट कर रख दिये गये हों। जब वे चौकड़ी भरते हुए पृथ्वी से उछलते हैं तो उनके सोने के खुर खुल जाते हैं (अर्थात् दिखाई पड़ जाते हैं)। उनके आगे (गरदन में) सोने की घनी हमेलें बँधी हुई हैं जो उनकी चमकती हुई कलँगी के साथ हवा में बजती हैं (और हमेलों के गोल टुकड़े ऐसे मालूम होते हैं) मानो आठ ग्रह उनकी छाती पर पीली पाग बाँधे अपने तारक मंडल सहित चमकते हुए निकल आये हैं। घोड़े अपने पैर ऐसे बना कर चलाते हैं जैसे कुलटा (स्त्री) अपने (वैशिक) नायक को देखकर चलने लगती है। बलवान घोड़ों के मुँह पर झालर पड़ी है और ऐसा मालूम होता है मानो घूँघट खींचे हुए कुल बधुयें चली जा रही हैं। उनकी अनेक उपमाओं का वर्णन नहीं हो सकता और उनकी चाल का कितना ही वर्णन किया जाय मन को संतोष नहीं हो सकता (या—उनकी सरपट चाल की तुलना मन में नहीं आती)।

शब्दार्थ—रू० ३२—फिरे=फेरे गये। हय=घोड़े। बष्षर पष्षर < बाखर पाखर [दे० Plate No. I]; [बाखर (बखरी)=घर+पाखर < सं० पक्ष= ज़िरह बख्तर]। इंदुज=गरुड़। (ह्योर्नले महोदय "फिरि इंदुज" का पाठ "फिरिम दुज" करके "चिड़ियों का फिरना" अर्थ करते हैं)। आचार्य केशवदास ने अपनी रामचंद्रिका के सुंदरकांड में श्री रामचन्द्र की वानर सेना की उपमा पंख रहित पक्षियों से दी है। यथा—

तिथि विजयदसमी पाइ। उठि चले श्री रघुराइ।
हरि यूथ यूथय संग। बिन पच्छ के ते पतंग॥ ७५। ना० प्र० सं०।

पंष कसे=पंख समेटे हुए। कथे=कहता है। पोन < सं० प्लवन= सरपट चाल। पवंग < सं० प्लवंग (या प्लवग)=सूर्य के सारथी और सूर्य के पुत्र का नाम। उरप्पर=उर के ऊपर। पुट्ठिय = पुट्ठे। सुट्ठिय= सुन्दर। दिट्ठियता= दिखाई पड़ते हैं। विपरीत पलंग तताधरिता=पलंग उलट कर रख दिये गये हों। घोड़ों के पुट्ठों की चौड़ाई की उपमा पलंग से देना भाषा का मुहावरा है। छित्तिय < सं० क्षिति=पृथ्वी। चौन लयं=चौकड़ी भरते हैं। सुने=सोने के। अवत्तनयं < सं० आवर्तन = खुलना। अग बंधि=आगे बँधी हुई। हेम=सोना। हमेल < अ० حمایل = गले में पहिनने का आभूषण।

(दे०Plate No. III)। चमर=चँवर (यहाँ कलँगी से तात्पर्य है)। जोति=चमकती हुई। पवंन<सं० पवन=वायु। रुनं = बजना। ग्रह अट्ठ = आठ ग्रह। सतारक=तारक मंडल सहित। पीत पगे=पीले रंग की पाग। उर=हृदय, वक्षस्थल। भांन=चमकना। विट=वैशिक नायक; कामतंत्र की कला में निपुण नायक का सहायक सखा। कुलटा=दुराचारिणी स्त्री। मुष<मुख। कढ्ढिन=काढ़ना, खींचना। घूंघट=यहाँ घोड़ों की झालर से तात्पर्य है। अस्सु<सं० अश्व। बली=बलवान। कुलबद्धु=कुल बधुयें। बरनं<वर्णन। घनं=अधिक। पुजै=बराबरी। न न=नहीं। बग्ग पवंन<वर्ग प्लवन (यहाँ घोड़ों की सरपट चाल से तात्पर्य है)। बग्ग<सं० वर्ग=समुदाय समूह। मनं=मन।

कुंडलिया

नव बज्जी घरियार घर, राजमहल उठिं जाइ।
निसा अद्ध बर उत्तरे, दूत संपते आइ॥
दूत संपते आइ, धाइ चहुआंन सुजग्गिय।
सिंह बिहथ्थें मुक्कि, साहि साही उर तग्गिय॥
अट्ठ सहस गजराज, लष्ष अट्ठारसु[1] ताजिय[2]।
उभै सत्त बर कोस, साहि गोरी नव बाजिय॥ छं० ३७। रू० ३३।

दूहा

बँचि कागद चहुआंन नै, फिर न चंद सह[3] थांन।
मनों वीर तनु अंकुरै, सुगति भोग बनि प्रांन॥ छं० ३८। रू० ३४।

दूहा

मची कूह दल हिंदु कै, कसैं[4] सनाह सनाह।
बर चिराक दस सहस[5] भइ, बजि निसांन अरि दाह॥छं० ३९। रू० ३५।

भावार्थ—रू०३३—घर में घड़ियाल ने (रात्रि के) नौ बजाये (और पृथ्वीराज) उठकर राजमहल में गये। जब अर्द्ध रात्रि भली भाँति बीत चुकी थी तब अचानक एक दूत ने आकर शीघ्र चौहान के पास पहुँच उन्हें जगाकर कहा कि अब सिंहों के साथ छेड़छाड़ छोड़ कर शहंशाह ग़ोरी की ओर ध्यान दीजिये। आठ हज़ार हाथी और अठारह लाख घोड़े लिये हुए ग़ोरी नौ बजे चौदह कोस की दूरी पर देखा गया है।

---

(१) ना०—अठारह (२) ए० कृ० को—राजिय (३) कृ०—सर (४) ए० कृ०—करै सनाह सनाह (५) ए० कृ० को० दस-दस;

रू० ३४—चौहान ने पत्र पढ़ा—[यह पत्र लाहौर के शासक चंद पुंडीर द्वारा भेजा गया था जो चिनाब नदी के तट पर गोरी का मार्ग रोके खड़ा था]—कि चंद (पुंडीर) अपने स्थान से फिरेगा नहीं, उसके शरीर में (मानो) वीरत्व अंकुरित हो गया है जिससे उसके प्राण मुक्ति का भोग भोगें।

रू० ३५—(पत्र सुनकर) हिन्दुओं के दल में कोलाहल मच गया, सबने कवच कस लिये, (चारों ओर) दस सहस्त्र (अर्थात् अनेकों) मशालें जल उठीं (और) अरि दाह (अर्थात् शत्रु को कष्ट देने वाले) निशान (=नगाड़े) बज उठे।

शब्दार्थ—रू० ३३—नव बज्जी=नौ बजे। घरियार=घड़ियाल। निसा <सं० निशा। अद्ध<सं० अर्द्ध। वर उत्तरे=भली भाँति उतरी या बीत गई। संपते=अचानक; <सं० संप्राप्त। जग्गिय=जगाया। बिहथ्थे<सं० विहस्त=छेड़छाड़; व्यस्तता। मुक्कि<मुक्ति=रोकना, छोड़ना। साहि साही=शहंशाह गोरी। उर तग्गिय=हृदय में तागो (=ध्यान दो)। अट्ठ सहस=आठ हज़ार। लष्य=लाख। अट्ठारसु=अठारह। ताजिय<अ० تازی (ताज़ी)=घोड़ा विशेष अरब का। उभै<उभय=दो। सत्त=सात। महल<अ० محل=राजभवन। नव बाजिय=नव बजे।

रू० ३४—बँचि=बाँचकर, पढ़कर। कागद=पत्र। नै=ने। सह <सं० सा=उस, वह। थांन<स्थान। वीर=वीरत्व। तन अंकुरै=शरीर में अंकुरित हो गया। मुगति<सं० मुक्ति। मुगति भोग बनि प्रांन=प्राण मुक्ति का भोग भोगें।

रू० ३५—कूह=कोलाहल (<हि० कूक), चिल्लाहट। कै=के। सनाह=कवच। कसै=कस लिये। (ह्योर्नले महोदय ने 'करै' पाठ माना है, और 'करै सनाह सनाह' का अर्थ 'कवच लाओ, कवच लाओ', करते हैं, जो संभव है)। चिराक<फा० چراغ (चिराग़)=दीपक (यहाँ मशालों से तात्पर्य है)। दस सहस=दस सहस्त्र अर्थात् अनेकों। निसांन<फ़ा० نشان=नगाड़े (दे० Plate No. IV)। अरि=शत्रु। दाह=जलाना (यहाँ 'कष्ट देने' से तात्पर्य है)।

दूहा

बाबस्सू नृप मुक्कतें, दूत आइ तिहिं बार
"सजी सेन गौरी सुबर[1], उत्तरयौ नदि[2] पार ॥छं० ४० ।रू० ३६ ।

दूहा

पंचा सजि गोरी नृपति, बंधि उतरि नदि पार[3] ।
चंद वीर पुंडीर ने, थटि मुक्के दरबार[4] ॥छं० ४१ । रू० ३७ ।

---

(१) ना०—सुभर (२) ना०—नहिं (३) ए०—उत्तर यौ नदि पार
(४) मो०—घट मुक्यौ दरबार।

कवित्त

षां मारूफ ततार, षान खिलची बर गट्टे ।
चामर छत्र मुजक्क, गोल सेना रचि गट्टे ॥
नारि गोरि जंबूर, सुबर कीना गज सारं ।
नूरी षां हुज्जाब, नूर महमुद सिर भारं ॥
वज्जीर षांन गोरी सुभर, षांन षांन हजरत्ति षां ।
विय सेन सज्जि[1] हरबल करिय, तहाँ उभौ सजिरत्ति षां ॥छं० ४२। रू० ३८।

भावार्थ—रू० ३६—उसी समय बावस्सू नृप द्वारा (पृथ्वीराज के पास) भेजा हुआ दूत आया और बोला कि योद्धा गोरी ने सेना सजाकर(चिनाब) नदी पार कर ली है ।

रू० ३७—[दूत का वर्णन कि गोरी ने किस प्रकार चिनाव नदी पार की]—हे नृपति, गोरी ने अपनी सेना को पाँच भागों में बाँटकर नदी पार की और उतरने के बाद वे पाँचों भाग फिर एक में बँध (=मिल) गये । वीर चंद पुंडीर ने अपने साथियों सहित (गोरी से) डटकर मोर्चा लेने के लिये (अपने स्थान से) प्रस्थान किया ।

रू० ३८—तातार मारूफ खाँ और खिलची खाँ मिल गये । सेना को व्यूह बद्ध किये वे खड़े थे ; उनके ऊपर चँवर और छत्र था जिसके द्वारा वे पहिचाने जा सकते थे। (या—विशेष छत्र और चमर सहित वे सेना के गोल बनाये हुए खड़े थे) । हुजाब नूरी खाँ तथा नूर मुहम्मद को बड़ी तोपों, गोलों, छोटी तोपों और हाथियों के विभाग का उत्तरदायित्व सौंपा गया । गोरी के बीर योद्धा वज़ीर खाँ ने और ख़ानख़ाना हजरत्ति खाँ ने दूसरी सेना का हरा-वल सजा दिया । वहीं सजरत्ति (=शज़रत) खाँ भी उपस्थित था ।

शब्दार्थ—रू० ३६—बावस्सू—यह पृथ्वीराज के किसी सामंत का नाम जान पड़ता है जो चंद पुंडीर के साथ चिनाब नदी के तट पर गोरी से मोर्चा लेने के लिये खड़ा था । 'सामंत चार भागों में विभाजित थे उनमें एक भाग का नाम बबस (=पैदल) था और 'बबस' चौहान वंश की प्रशाखा की एक शाखा के राजपूत हैं" (Rajasthan. Tod. Vol. I, p. 142) । "यह भी संभव है कि 'बाब्बसू' चंद पुंडीर द्वारा भेजे हुए दूत का नाम हो"—ह्योर्नले । मुक्तें <मुख ते=ओर से । सुबर=सुभट, श्रेष्ठ योद्धा । नदि=नदी (चिनाब) ।

---

(१) ना०—विय सज्जि सेन ।

नोट—अगले रू० ५० तक पढ़ने से ज्ञात होता है कि गोरी ने चिनाब नदी रात में पार की थी।

रू० ३७—पंचा सजि=पाँच भागों में सजाकर। नृपति=राजा (पृथ्वी-राज के लिये आया है)। थटि=डटकर। मुक्के (<सं० मुक्ति)=छोड़ा। दरबार-यहाँ चंद पुंडीर के साथियों के लिये आया जान पड़ता है। बंधि=बँध जाना।

रू० ३८—ततार<तातार (देश का रहने वाला)। तातार तुर्क थे। तुर्क जाति की दो मुख्य शाखायें तातार और मंगोल (=मुग़ल) हैं। खिलची <ख़िलजी—ये तुर्कों की प्रशाखा में हैं। ख़िलजियों का संबंध तातारियों और मुग़लों से मिलना अनिश्चित है। (Tabaqat-i-Nasiri. Trans. Raverty, pp 873-78 में ख़िलजियों का वि० वि० मिलेगा)। गड्डे=एकत्र होना चामर छत्र=चाँवर और छत्र। मुजक्क अ०<مضايقه=फल, पहिचान, विशेष। गोल<अ० غول=विभाग, व्यूह। नारि<नालिक=बड़ी तोप। गोरि=गोली, गोला। जंबूर<अ० زنبوره=छोटी तोप। सुबर=सुसज्जित किया। गज सारं=गज विभाग, ('चुने हुए हाथी', ह्योर्नले)। हुजाब<अ० حجاب=खवासों का सरदार। सिर भारं=सिर पर भार रक्खा (या—उत्तरदायित्व सौंपा)। वज्जीर—यह वज़ीरस्तान का निवासी हो सकता है। बहुत संभव है कि तबकाते नासिरी वाला असदउद्दीन शेर वज़ीरी यही हो। विय = दूसरी। सेन सज्जि=सेना सजाई। हरबल<तु० هراول (हरावल)=सेना का अग्र भाग, सेना के अग्र गामी सैनिकों का समूह; (ह्योर्नले महोदय ने हरबल का अर्थ 'हलबल' करके 'जल्दी या शीघ्रता करना' लिखा है जो यहाँ सार्थक नहीं है)। रासो में हरबल शब्द तुर्की हरावल के अर्थ में अनेक स्थानों पर आया है। उभौ=उपस्थित था।

नोट—(१)—"उसने कहा कि इस प्रकार शाह की अवाई का समाचार सुनकर पचास हज़ार सेना के साथ चंद पुंडीर ने नदी का नाका जा बाँधा है और मुझे आपके पास भेजा है। चंद पुंडीर को रास्ते में डटा हुआ देखकर शहाबुद्दीन ने मारूफ ख़ाँ, तत्तार ख़ाँ, खिलची ख़ाँ, नूरी ख़ाँ, हुजाब ख़ाँ, महम्मद ख़ाँ आदि सरदारों से गोष्ठी करके अपने सरदारों को दो भागों में बाँटा। महमूद ख़ाँ, मंगोल लल्लरी, सहबाज ख़ाँ, जहाँगीर ख़ाँ, आदि सेना नायकों और निज पुत्र सहित एक सेना को लेकर सुलतान ने तो चिनाब पार करने की तय्यारी की और आलम ख़ाँ, मारूफ ख़ाँ, उजबक ख़ाँ आदि तीस यवन वीरों को कुछ सेना सहित उस पार अपनी सहायता के लिये रक्खा।" रासो-सार, पृष्ठ १००-१०१।

स्मरण रहे कि दूसरे दूत के वचन आधे रू० ३६ से प्रारंभ होकर अगले रू० ४१ की समाप्ति की एक पंक्ति कम तक जाते हैं। 'रासो-सार' में केवल एक ही दूत के आने का वर्णन है जबकि दूसरे दूत के आने का हाल रू० ३६ से स्पष्ट है। 'रासो-सार' का उपर्युक्त वर्णन पढ़ने से पता लग जाता है कि उक्त सार लेखक दूसरे दूत के आगमन का हाल नहीं समझ सके और न उसके वर्णन के क्रम का ही। उन्होंने रू० ३८, ३९, ४० और ४१ में आये हुए नाम मात्र समझ पाये हैं।

(२) "दोहा और दूहा की मात्रा में कुछ भेद नहीं है। दूहा पुराना और दूहा नया प्रयोग है। उनमें से दूहा "दु+ऊह" से बना है अर्थात् जिसमें दो ऊह हों उसे दूहा कहते हैं। और हिन्दी दोहा शब्द संस्कृत द्वोहा से इस प्रकार बना हुआ जान लेना चाहिए—द्+अ+उ=द्+अ+व=द्व। द्व+ऊहा =द्व+अ+ऊहा=द्व+ओ+हा=द्वोहा=हिन्दी दूहा। षटभाषा के प्रचार के समय इसको दूहड़िका वा दोहड़िका भी कहते थे। उसका संस्कृत में लक्षण और उदाहरण यह है—"मात्रा त्रयोदशकं यदि पूर्व्वं लघुक विराम। पश्चदि-कादशकंतु दोहड़िका द्विगुणेन॥" तथा उसका प्राकृत उदाहरण यह है:— "माई दोहडि पठण शुण हसिओ काण गोआल। वृन्दावण घणकुंज चलिओ कमल रसाल।" अस्यार्थ:—हे मात:। दोहड़िका पाठं श्रुत्वा कृष्ण गोपालो हसित्वा कमपि रसालं चलित: कुत्र वृन्दावन घन कुंजे वृन्दावनस्य निविड़ निकुंजे। राई इति क्वचित पाठ: तन्मतेन राधिकाया दोहड़िका पाठं श्रुत्वा। गुरु लघु व्यत्ययेन बहुधा भवति॥

यह २४ मात्रा का छंद है। उसमें यति १३।११, १३।११ पर हैं। और उसमें ६ ताल होते हैं—४ ४', २ १२", ४ ४'—, ऐसा दोहा गाने में ठीक दीपता है॥" [पृ० रा० ना० प्र० सं०, पृष्ठ २८१]।

दोहा छंद की विस्तृत विवेचना मेरी पुस्तक "चंद वरदायी और उनका काव्य" पृष्ठ २२० - २१ पर जिज्ञासु देख सकते हैं।

कवित्त

रचि हरबल सुरतांन, साहिजादा सुरतांनं।
षां पैदा महमूदं, बीर बंध्यौ सु विहानं॥
षां मंगोल लल्लरी, बीस टंकी बर षंचै।
चौतेगी सब्बाज[1] बांन अरि प्रांन सु अंचै॥

---

(१) ना०—चौ तेगी सहवाज।

जहगीर षान जहगीर बर, षां हिंदू बर बर बिहर।
पच्छिमी षांन पट्ठान सह, रचि उपभै हरबल गहर ॥ छं० ४३। रू० ३९।

कवित्त

रचि हरवल पट्ठान, षांन इसमांन रु गष्षर।
केली षां कुंजरी, साह सारी दल पष्षर ॥
षां भट्टी[1] महनंग, षान षुरसानी बब्बर।
हबसषांन हबसी हुजाब, गब्ब आलम्म जास बर ॥
तिन अग्ग अट्ठ गजराज बर[2], मद सरक्क पट्टेतिनां।
पंच बिन पिंड जो उप्पजै[3], (तौ) जुद्ध होइ लज्जी बिनां ॥छं० ४४। रू० ४०।

भावार्थ—रू० ३९—सुलतान ने हरावल रचा और सुलतान के शाहज़ादे ख़ाँ-पैदा-महमूद ने प्रातःकाल ही वीरों को (कतार में) बाँध लिया। बीस ख़ंजरों को खींचने वाला ख़ाँ मंगोल लल्लरी, चार तलवारों का बाँधने वाला तथा बाणों से शत्रुओं के प्राण खींचने वाला सब्बाज, विजयी जहाँगीर ख़ाँ, दगाबाज़ हिन्दू ख़ाँ, पश्चिमी ख़ाँ तथा पठान हरावल रचकर उपस्थित हुए।

रू० ४०—इसमान ख़ाँ के पठानों और गष्षरों (गक्खरों) के हरावल रचते ही केली-ख़ाँ-कुंजरी ने शाह की ज़िरह बख़्तर से सुसज्जित सेना का संचालन किया। ख़ाँ भट्टी महनंग, ख़ाँ खुरासानी बब्बर और संसार में सबसे अभिमानी हबशियों का सरदार हबश ख़ाँ वहाँ थे। उनके आगे आठ श्रेष्ठ गजराज थे जिनकी कनपटियों से मद जल श्रवित हो रहा था। यह शरीर यदि पंच-तत्वों का मोह छोड़ दे तभी युद्ध में लज्जा बच सकेगी (या तभी योद्धा की लज्जा की रक्षा हो सकेगी)।

["यदि चार तत्वों के बिना कोई वस्तु बन सकती है तभी बिना लज्जित हुए युद्ध हो सकता है—अर्थात् इस युद्ध में लज्जा बचना कठिन है।" ह्योर्नले।]

शब्दार्थ—रू० ३९—षां-पैदा-महमूद—यह सुलतान ग़ोरी के शाहज़ादे का नाम है। वीर=सैनिक। बँध्यो = कतारमें बाँधकर खड़ा किया। विहानं= प्रातःकाल। टंकी = तलवार (टंक) या खंजर। षंचै = खींचने वाला या बाँधने वाला। चौतेगी = चार तलवारें बाँधने वाला। बांन < बाण। अरि प्रान सु अंचै = उनसे शत्रुओं के प्राण खींचने वाला। जहगीर षान = जहाँगीर ख़ाँ। जहगीर<जहाँगीर = विश्व विजयी। हिन्दू षाँ—ख्वारज़म और ख़ुरासान के सुलतान तकिश का पोता और मलिकशाह का ज्येष्ठ पुत्र था। उसने अपने चाचा सुलतान महमूद से ख़ुरासान का सूबा लेना चाहा

(१) हा०—सट्टी (२) ना०—बल (३) ना०—ऊपजै।

परन्तु असफल रहा। अंत में अपने देश के शत्रु सुलतान ग़ोरी के यहाँ उसने नौकरी कर ली। इसीलिए शहाबुद्दीन के अन्य अफ़सरों के साथ उस का भी नाम आया है। 'तबक़ाते नासिरी' में उसकी बड़ी प्रशंसा की गई है। पच्छिमी षांन = यह पश्चिमी दिशा का ख़ाँ हो या संभव है कि इसका नाम 'पश्चिमी ख़ाँ' ही रहा हो। पठान सह = पठानों के साथ। बिहर=दगाबाज़।

रू० ४०—गष्षर—पृथ्वीराज रासो में गष्षर और षोष्षर दो नाम अनेक स्थलों पर आये हैं। ये दो भिन्न पहाड़ी जातियाँ थीं। अनेक लेखकों ने खोक्खर और गक्खर को एक ही मान लिया है। खोक्खर और गक्खर का मतभेद रैवर्टी महोदय ने 'तबकाते नासिरी' के अनुवाद पृष्ठ ४८४, ५३७, ११३२, ११३६ की टिप्पणियों में बिलकुल मिटा दिया है। अंत में आप लिखते हैं—

"Khokhars are not Gakhars, I beg leave to say, although the latter are constantly confounded with them by writers who do not know the former." Tabaqat-i-Nasiri. Raverty, p. 1136, note 7.

'आइने-अकबरी' में Blochmann ने पृष्ठ ४५६, ४८६ और ६२१ में तथा History of the Rise of the Mahomedan Power in India till....1612 (Firishta) Briggs ने pp. 182-86 में खोक्खरों का हाल लिखा है परन्तु उन्हें खोक्खर न कहकर गक्खर कहा है। [...."गक्खरों की जाति-पाँति का पता नहीं चलता। यह बर्बर जाति ग़ज़नी और सिंधु नदी के बीच की पहाड़ियों में रहती थी। सन् १०१८ ई० में ये मुसलमान बना लिये गये थे। ग़ोरी को इन्होंने बड़ा कष्ट दिया और अंत में सन् १२०६ ई० में सिंधु तट के रोहतक ग्राम में रात्रि में सोते समय अचानक उसकी हत्या कर डाली।...." Briggs. (Firishta). Vol. I, pp. 182-86]। सुलतान ग़ोरी ने खोक्खरों का दमन किया था [Tabaqat-i-Nasiri. Raverty. pp. 481-83—"उस समय लाहौर और जूद की पहाड़ियों पर रहने वाली पहाड़ी जातियों ने जिनमें स्वेच्छाचारी खोक्खर भी थे विद्रोह किया। उसी वर्ष जाड़े की ऋतु में सुलतान हिन्दुस्तान आया और इसलाम के नियमों के अनुसार युद्ध करके उसने इन विद्रोहियों के रक्त की नदी बहाई...."]। चंद ने रासो में गक्खरों को सुलतान गोरी के पक्ष वाला ही कहा है। रासो सम्यौ ६१ में हम गष्षरों को जयचंद की ओर से लड़ते हुए पाते हैं। जहाँ तक मेरा अनुमान है चंद वरदाई ने भी भ्रमवश खोक्खरों और गक्खरों को एक ही समझ लिया। वे 'गष्षर' लिखकर 'षोष्षरों' का ही वर्णन करते हैं।

साह सारी दल षष्षर=शाह का ज़िरह-बख़्तर वाला दल (या सेना)। भट्टी—राजपूतों की एक जाति जो ई० सन् १५ में ग़ज़नी से आई और पंजाब में बसी तथा वहाँ से पश्चिमी राजपूताना पहुँचकर सन् ७३१ ई० में तनौट बसाया। कुछ समय तक लोडोरवा उनकी राजधानी थी। सन् ११५७ ई० में जेसल ने अपने भतीजे भट्टी (रावल) का राज्य ग़ोरी की सहायता से छीन लिया और नई राजधानी जैसलमेर की नींव डाली (Rajasthan. Tod. Vol. II. pp. 219, 232, 238, 242-43)। वर्तमान रेवातट सम्यौ वाले युद्ध काल में जेसल का पुत्र सालवाहन राज्य कर रहा था और उसका भाई अचिलेस पृथ्वीराज का मुख्य सामंत था। भट्टी महनंग, सालवाहन का दूसरा सम्बन्धी था जिसका वर्णन प्राय: पृथ्वीराज की ओर मिलता है—[परि भट्टी महनंग। छत्र नष्षौ अरि सक्रिय॥ रासो सम्यौ ३२, छंद ७७]। इसका पिता ग़ोरी का सामंत था। ग़ोरी के पक्ष का होने के कारण ही चंद ने 'भट्टी महनंग' के पहिले 'षाँ' लगा दिया है। षुरसानी<ख़ुरासान देश का। बब्बर <बबर (शेर)। हबस (व हबसी)<अ० حبش और حبشي। ग्रब्ब< गर्व। आलम्म<आलम=संसार। सरक=श्रवित होना, चूना। पट्टेतिनां=कन-पटी (ब० व०)। डा० ह्योर्नले संभवत: 'पट्टेतिनां' से 'तलवार चलाने वाले' अर्थ लेकर इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार करते हैं—'In front of them are eight elephants before whose rage swordsmen give way.' पंच=पंच तत्व (=क्षिति, जल, अग्नि, आकाश और वायु)। पिंड= शरीर। जुद्ध=(१) युद्ध (२) योद्धा। लज्जी=लज्जा।

कबित्त

करि तमा इ चौ साहि[1], तीस तहँ रषि फिरस्ते।
आलम षां आलम गुमांन[2], षांन उजबक्क निरस्ते॥
लहु मारूफ गुमस्त, षांन दुस्तम वजरंगी।
हिंदु सेन उप्परे, साहि बज्जै रन जंगी॥
सह सेन टारि सोरा रच्यौ, साहि चिन्हाब सु उत्तरयौ।"
संभले सूर सामंत नृप, रोस बीर बीरं दुरयौ॥ छं० ४५। रू० ४१।

दूहा

तमसि तमसि सामंत सब, रोस भरिग प्रिथिराज।
जब लगि रुपि पुंडीर ने रोक्यौ गोरी साज॥ छं० ४६। रू० ४२।

(१) ए०—करत माइ चौसाहि; ना०—करित माय वहु साहि।
(२) ना०—आलम षान गुमान।

भावार्थ रू० ४१—चार भागों को पूर्ण कर शाह ने तीस अफ़सर नियुक्त किये जिनके साथ विश्व में अभिमानी आलम ख़ाँ, निर्वासित उजबक ख़ाँ, उपनायक छोटा मारूफ़ और पहलवान दुस्तम ख़ाँ थे। शाह ने अपने इन सैनिकों के साथ (या—अपनी सेना लेकर) हिंदुओं पर कठिन चढ़ाई कर दी है। शोर मचाते हुए उसने अपनी सेना को आगे बढ़ाया है और इस प्रकार चिनाब नदी पार की है।" [दूत की यह वार्ता सुनकर] साँभल के शूर, सामंतों के स्वामी और श्रेष्ठ वीर (पृथ्वीराज) का क्रोध फूट पड़ा।

रू० ४२—सब सामंत क्रोधित हो उठे और पृथ्वीराज रोष (क्रोध) से भर गये। इस अरसे तक चंद पुंडीर ने ग़ोरी की सेना को डटकर रोका।

शब्दार्थ—रू० ४१—तमा < फा० تمام (तमाम) = पूरा, कुल। चौ=चार। साहि <शाह (ग़ोरी)। [रासो की कुछ प्रतियों में 'चौ' के स्थान पर 'तौ' पाठ भी मिलता है। गोरी की सेना के पाँच भाग थे और चार का वर्णन हो चुका है अतः 'चौ' पाठ अधिक उचित होगा। ह्योर्नले तथा ग्राउज़ ने भी यह पाठ स्वीकार किया है]। रष्षि=रखकर। तीस < प्रा० तीसा, तीसआ < सं० त्रिंशत्। फिरस्ते<फा०=فرشته = देवदूत या दूत। निरस्ते= निर्वासित। गुमान<फा० گمان=राय, विचार। आलम<अ० عالم = संसार। आलम गुमान=संसारका गर्व; विश्व में सबसे अधिक अभिमानी। लहु < लघु= छोटा। गुमस्त<फा०४ گماشته=एजेन्ट, उपनायक। वजरंगी=वज्र के समान अंगों वाला (अर्थात् पहलवान)। साहि बज्जै रन जंगी=शाह ने जंग बजा दी अर्थात् कठिन चढ़ाई कर दी। सोरा रच्यौ=शोर करते हुए। सोरा<फा० شور। उत्तर्यौ=उतरा, पार किया। संभले सूर = साँभर का शूरमा; शूर सम्हल गये। रोस<सं० रोष, क्रोध। वीर वीरं=वीरों में वीर (अर्थात् पृथ्वीराज)। ढुर्यौ=फूट फड़ा। जंगी=ज़बरदस्त। बज्जै रन जंगी=ज़बरदस्त रण बजा दिया अर्थात् भयानक चढ़ाई कर दी।

रू० ४२—तमसि तमसि=क्रोध युक्त हो। रोष भरिग=रोष में भर गये। रुपि=जमकर, डटकर। गोरी साज=ग़ोरी का दल।

नोट—रू० ४१—"करि तमाय चौ साहि =the Shah formed four squadrons." Growse. Indian Antiquary. Vol III.

चिन्हाव [चनाव या चिनाव]<फा० चिनाब=(चीनी + आब)–पंजाब की पाँच नदियों में से एक जो लद्दाख़ के पर्वतों से निकल कर सिंध में जा गिरी है। यह प्रायः छै सौ-मील लम्बी है। हिमालय के चन्द्रभाग नामक खंड से निकलने के कारण इसका नाम संस्कृत में चन्द्रभागा था।

भुजंगी

जहाँ उत्तरयौ साहि चिन्हाव मीरं।
तहाँ नेज गड्यौ ठठुक्के पुण्डीरं।
करी आनि साहाब सा बंधि गोरी।
धकें धींग धींगं धकावै सजोरी।। छं० ४७।
दोऊ दीन दीनं कढी वंकि अस्सीं[1]।
किधौं मेघ में बीज कोटिन्निकस्सीं[2]।।
किये सिप्परं कोर ता सेल अग्गी।
किधौं बद्दरं कोर नागिन्न नग्गी।। छं० ४८।
हबक्कै जु मेछं भ्रमंतं जु छुट्टै।
मनो घेरनी घुम्मि पारेव तुट्टै।।
उरं फुट्टि बरछी बरं छब्बि नासी।
मनों जाल में मीन अद्धी निकासी।। छं० ४९।
लटक्कै जुरंनं उड़ै हंस हल्लै।
रसं भीजि सूरं चवग्गांन षिल्लै।।
लगे सीस नेजा भ्रमैं भेज तथ्यं[3]।
भषै बाइसं भात दीपत्ति सथ्यं[4]।। छं० ५०।
करै मार मारं महाबीर धीरं।
भये मेघधारा बरष्षंत तीरं।।
परे पंच पुंडीर सा चंद कढ्यौ।
तबै साहि गोरीस चिन्हाव चढ्यौ।। छं० ५१। रू०४३।

भावार्थ—रू० ४३—

जहाँ पर गोरी के सेनानायकों ने चिनाब नदी पार की वहीं पुंडीर बरछी गाड़े डटा हुआ था। गोरी सहाब शाह ने हाथियों की सेना तय्यार की [या-सहाब शाह गोरी ने आक्रमण करने वाली सेना ठीक की या सा (=पुंडीर) ने सहाब गोरी को बाँध लेने की आज्ञा दी]। (तदुपरांत) धक्का-मुक्की करते गरजते चिल्लाते वे आगे बढ़े। छं० ४७।

दोनों (हिन्दू और मुसलमानों) ने अपने अपने धर्म का नाम लिया और टेढ़ी तलवारें खींच लीं (उस समय ऐसा विदित हुआ कि) मानों बादलों से करोड़ों बिजलियाँ निकल पड़ी हों। सिपर (ढालों) को छेदकर उन बरछियों की नोकें उनमें उसी प्रकार से घुस गईं मानों बादलों में पर्वतों की अनेकों चोटियाँ घुस गई हों। छं०४८।

---

(१) हा०—अस्सिं (२) हा०—निकस्सिं (३) ना०—भेजि तथ्थं (४) ना०—सथ्थं

म्लेच्छों ने (हिन्दुओं की सेना पर अपनी सेना से उसी प्रकार) बड़े उत्साहपूर्वक घेरा डाला मानो घेरनी पक्षी फेरा देकर कबूतर पर झपटा हो। वक्षस्थल को फोड़कर उसकी शोभा नष्ट करती हुई बरछी दूसरी ओर निकल आई मानो जाल से स्वतन्त्र होने के प्रयत्न में आधी निकली हुई मछली हो। छं० ४६।

एक दूसरे से मिले हुए (एक पंक्ति में) हंस आदि जिस प्रकार शोर करते हुए आगे बढ़ते हैं उसी प्रकार रौद्र रस में भीग कर शूरवीर (युद्धभूमि में क्या बढ़ रहे हैं) मानो चौगान खेल रहे हैं। सर में बरछी लगते ही वहाँ पर भेजा निकल पड़ता है जिसको कौए बड़े आनन्दपूर्वक भात की तरह खाते हैं। छं० ५०।

धैर्यवान् योद्धा मारो-मारो कहते हैं। (युद्धभूमि में) बाण वर्षा की झड़ी के समान बरस रहे हैं। (अंत में) पुंडीर वंशी पाँच वीरों के गिरने पर चंद पुंडीर ने मुकाबिला छोड़ दिया और तभी शाह ग़ोरी चिनाब से आगे बढ़ा। छं० ५१।

शब्दार्थ—रू० ४३—मीरं < फा० میر (मीर)=सेनानायक। नेज < फा० نیزه (नेज़ा)=बरछी [दे० Plate No. III]। गड्यौ=गाड़े हुए था। ठठुक्के=ठिठुके हुए। पुंडीर=पुंडीरवंशी। करी=की, ठीक की। आनि=आज्ञा; [आनि < अनी=सेना। करी < करि=हाथी]। करी आनि साहाब सा बंधि गोरी=ग़ोरी साहाब शाह ने आक्रमणकारी सेना ठीक की—ह्योर्नले। सजोरी=बलपूर्वक। दीन < अ० دین (दीन)=धर्म। दीन दीनं=दीन दीन चिल्लाते हुए। कढ़ी=निकाली। बंकि < सं० वक्र=टेढ़ी। अस्सीं < सं० असि=तलवार। बीज=बिजली। बीजकोटिन्निकर्स्सी=करोड़ों बिजलियाँ निकल आईं। सिप्पर < फा० سپر (सिपर)=ढाल विशेष [दे० Plate NO. III]। कोर=छेदकर। सेल=बरछी। अग्ग=अगली। बद्दरं=बादल। नागिन=अनगिनती। नग्गी [< नाग (पर्वत)]=पर्वतों की चोटियाँ। किधौं बद्दरं कोर नागिन्न नग्गी=मानों बादलों को छेदकर अनगिनती बादलों की चोटियाँ घुस गई हों; (मानों नंगी नागिनें बादलों में घुस गई हों—ह्योर्नले)। हबक्कै=हबककर (=बड़े लालच से या बड़े उत्साह से)। मेछं < सं० म्लेच्छ। भ्रमंतं जु छुट्टै=छूटकर जो घूमे (अर्थात् जो अपनी सेना से उन्होंने हिंदुओं को घेरा)। घेरनी=पक्षी विशेष। घुम्मि=घूमकर। पारेव < पारावत=कबूतर। तुट्टै=टूटना, झपटना। उरं फुट्टि=वक्षस्थल को फोड़कर। लटक्कै जुरंनं=एक दूसरे से संबद्ध। उड़ै हंस हल्लै=हंस (आदि चिड़ियाँ जिस प्रकार) शोर करते हुए उड़ते हैं। रसं भीजि=(रौद्र) रस में भीगकर। सूरं=शूरवीर। चवग्गान=चौगान, पोलो [दे० Plate No. II]।

भ्रमें भेज तथ्यं=वहीं पर भेजा निकल पड़ता है। भषै=खाता है। बाइसं<सं० वायस=कौआ। भात=उबले हुए चावल। दीपत्ति सथ्थं=प्रसन्नता के साथ। महाबीर धीरं=धैर्यवान महान योद्धा। बरष्षंत=बरसते हैं। परे=गिरने पर। पंच पुंडीर=पुंडीर वंशी पाँच वीर। चंद कढ्यौ=चंद पुंडीर (निकल) हट आया (अर्थात् मुक्राबिला छोड़ दिया)। चिन्हाव चढ्यौ=चिनाब नदी पार की।

नोट—भुजंगी छंद का लक्षण—"भुजं प्रयातं यः।" पिंगलमुनि। अर्थात् जिसके छंद में चार यकार हों वह भुजंगप्रयात् छंद कहा जाता है।

ह्योर्नले महोदय ने रू० ४३ का इस प्रकार अर्थ किया है—

"Where the chiefs of the Shah crossed over the Chenab, there the Pundir, awaiting (the enemy) had posted himself. The Gori Sahab Shah formed his attacking column. Pushing, shoving, with yells and shouts they press forward in close array. Both Hindus and Musalmans have drawn their curved swords (which appear) like millions of lightning darting in the clouds. The points of their spears pierce through the (interposed) shields, resembling naked Naga women piercing through the clouds. As the infidels with a rush greedily fall (upon the Hindus), they resemble pigeons which, turning a circuit, settle down. Spears crashing through breasts destory their good shape, and resemble fishes that have half escaped from the net. While they are absorbed in the fight, they go along like geese that fly. Excited by the fight, the warriors as it were play at Chaugan. On spears striking heads, brains are scattered about appearing like rice on which crowds of crows feed. The gallant warriors valiantly cry: Slay! Slay! The arrows are (plentiful) like a rain shower from the clouds. On five men of Pundir's race falling, Chand (Pundir) himself withdrew; then only the Shah Gori marched onward from the Chenab." [Bibliotheca Indica. No. 452, pp. 23-4.]

कवित्त

उतरि साहि चिन्हाव, घाय पुंडीर लुथ्थि पर।
उप्पारयो बर चंद, पंच बंधव सुपथ्थ धर॥

दिषि दूत वर चरित, पास आयो चहुआनं।
[तौ] उप्पर गोरी नरिंद, हास बढ्ढी सुरतानं॥
बर मीर धीर मारूफ ढुरि, पंच अनी एकठ जुरी।
मुर पंच[1] कोस लाहौर तें, मेच्छ मिलानह सो करी॥ छं० ५२। रू० ४४।

दूहा

बीर रोस बर बैर बर, झुकि लग्गौ[2] असमांन।
तौ नन्दन सोमेस को, फिरि बंधौं सुरतांन॥ छं० ५३। रू० ५४।

दूहा

चंद्र ब्यूह नृप बंधि दल, धनि प्रथिराज नरिंद।
साहि बंधि सुरतांन सों, सेना बिन विधि कंद॥ छं० ५४। रू० ४६।

भावार्थ—रू० ४४—पुंडीर वंशियों की घायल लोथों पर शाह ने चिनाब नदी पार की। पाँच भाइयों के सुन्दर पथ ग्रहण करने पर (अर्थात् मरने पर या वीरगति प्राप्त करने पर) चंद पुंडीर ने मुक़ाबिला छोड़ दिया। यह वीर चरित्र देखकर एक दूत चौहान के पास गया और यह समाचार दिया कि ग़ोरी आप के बिलकुल ऊपर आ गया है और सुलतान (को अपनी शक्ति) का हौसला बढ़ गया है। श्रेष्ठ धैर्यवान वीर मारूफ ख़ाँ ने शीघ्रता पूर्वक पाँचों सेनायें एकमें कर ली हैं और म्लेच्छ (मारूफ ख़ाँ) ने यह मिलान लाहौर से पाँच कोस आगे किया है [तात्पर्य यह कि म्लेच्छ सेना लाहौर के बिलकुल समीप आ गई है]।

रू० ४५—वीर (पृथ्वीराज) का क्रोध और बैर धधक उठा (जल उठा) (और उसकी ज्वाला) आकाश को छूने लगी—[वीर का क्रोध प्रबल हो आकाश में लग गया—ह्योर्नले] (और उसने कहा) 'अब मैं गोरी को फिर बाँध लूँ तभी सोमेश्वर का बेटा हूँ।'

रू० ४६—[यह बचन सुनकर] नृप की चन्द्राकार व्यूह में बँधी सेना ने पृथ्वीराज को धन्य धन्य कहा। और उन्होंने (सैनिकों ने) क़सम खाई (प्रतिज्ञा की) कि सुलतान की सेना को छिन्न भिन्न करके शाह को बाँध लेंगे।

[ह्योर्नले महोदय के अनुसार यह अर्थ है कि स्वनामधन्य महाराज पृथ्वीराज ने अपने सामंतों को चन्द्राकार व्यूह बनाकर खड़ा किया परन्तु सुलतान शाह ने अपनी सेना को अस्त व्यस्त बिना किसी व्यूह के ही रहने दिया।]

शब्दार्थ—रू० ४४—चिन्हाब=(चिनी + आब) चिनाब (फारसी)। घाय पुंडीर लुथ्थि पर=पुंडीर वंशियों की घायल लोथ पर। उप्पार्यौ=

(१) ए०—खंच (२) ना०—लग्गै।

(अपना सीमा) उखाड़ दिया; अपनी रोक हटा दी। पंच बंधव=पाँच बाँधवों के। सुपथ्थधर=सुन्दर पथ ग्रहण करने पर अर्थात् मरने पर। दिष्षि=देख कर। तौ उप्पर=तुम्हारे बिलकुल ऊपर। हास बढ्ढी (<आस बढ़ी=हौसला बढ़ गया है); हास्य बढ़ गया है। बरमीर=श्रेष्ठ नायक। ढुरि=दौड़ कर, जल्दी से। पंच अनी=पाँच सेनायें। एकठ जुरी=एक कर लिया। मुर=मुड़कर, पीछे। मिलानह=मिलान।

रू० ४५—वीर=योद्धा पृथ्वीराज। बर=श्रेष्ठ। बैर=शत्रुता। बर=बरने (जलने) लगा, धधक उठा। असमान<फा० آسمان (आकाश)। झुकि=बढ़ कर। तौ नंदन सोमेस को=तभी सोमेश्वर का बेटा हूँ। बंधौं=बाँध लूँ।

रू० ४६—सों<सौंह<सौगंद=क़सम (प्रतिज्ञा की)। सेना बिन=सेना रहित। विधिकंद=कर डालना।

कवित्त

बर मंगल पंचमी[१] दिन सु दीनौ प्रिथिराजं[२]।
राह केतु[३] जप[४] दीन दुष्ट टारे सुभ काजं॥
अष्ट चक्र जोगिनी भोग भरनी सुधिरारी[५]।
गुरु पंचमि[६] रवि पंचम अष्ट मंगल नृप भारी॥
कैइन्द्र बुद्ध भारथ्थ भल कर त्रिशूल चक्राबलिय।
सुभ घरिय राज बर लीन बर चढ्यौ उदै कूरह बलिय॥

भावार्थ—रू० ४७—पंचमी तिथि मंगलवार को पृथ्वीराज ने चढ़ाई की आज्ञा दी। शुभ कार्य में दुष्ट फल को टालने के लिये (महाराज ने) राहु और केतु का जप कराया। [इस पंचमी तिथि को] (शुभ फल देने वाली) **अष्टचक्र योगिनी** [१] तथा (हनन कार्य के कारण शुभ) **भरणी नक्षत्र** [२] युद्ध में शुभ फल देने वाले थे। [शुभ फलदायक] पंचम स्थान में **गुरु** [३] तथा सूर्य [४] थे, और नृप के लिए अशुभ [परन्तु शुभ होने वाले] अष्टम स्थान में **मंगल** [५] थे। युद्ध में भला करने वाले **केन्द्र स्थान में** बुध [६] थे जो हाथ में त्रिशूल चिन्ह [७] और मणिबंध में **चक्र**[८] वाले के लिये शुभ थे। इस शुभ मिती से लाभ उठाकर, क्रूर और बलवान ग्रह (**सूर्य या मङ्गल**[९]) के उदय होने पर महाराज ने चढ़ाई बोल दी।

---

(१) हा०—पंचमि सजुद्ध (२) हा०—प्रथिराजं (३) हा० और ना०—केत।
(४) ना०—जय (५) सुभ रारी (६) ना०—पंचम।

शब्दार्थ—रू० ४७—दीनौ=दिया [युद्ध के लिये आज्ञा दी]। प्रिथिराजं<पृथ्वीराज। राह केतु=राहु और केतु युद्ध लाने वाले पाप ग्रह हैं। जप दीन=जप दिया अर्थात् जप कराया। दुष्ट टारे=दुष्ट फल टालने के लिये (=बुरे फल को हटाने के लिये)। सुभ काज<शुभ कार्य। जोगिनी<योगिनी, [ज्योतिष के अनुसार ६४ योगिनियाँ हैं जो पूर्व, उत्तर, अग्नि कोण, नैॠत्य कोण, दक्षिण, पश्चिम, वायव्य, ईशान (या-प उ अ न द प वा ई) इन आठ स्थानों में घूमती हैं। ये आठ स्थान 'अष्ट चक्र' कहलाते हैं]। भभोग=भ (नक्षत्र) + भोग। भरनी<सं० भरणी [अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों में से दूसरा नक्षत्र]। सुधिरारी=यह 'सुभ रारी' के स्थान पर लिखा गया जान पड़ता है। (सुभरारी<शुभरारी=युद्ध में शुभ है जो)। गुरु=बृहस्पति। गुरु पंचमि=पंचम स्थान के गुरु। रवि पंचम=पंचम स्थान के सूर्य। अष्ट मंगल=अष्टम स्थान के मंगल। नृप भारी=नृपके लिये अशुभ। कैइन्द्र<केन्द्र। बुद्ध=बुध ग्रह। भारत>प्रा० भारथ्थ<हिं० भारथ=युद्ध। भल=भला, अच्छा। कर त्रिशूल=हाथ में त्रिशूल चिन्ह। चक्रावलिय=वलय (या मणिबंध) में चक्र, [या—चक्र अवली=चक्र की पंक्ति]। सुभ घरिय<शुभ घड़ी, शुभ मिती। राज बर=श्रेष्ठ राजा (पृथ्वीराज)। लीन बर=श्रेष्ठ या वरदान लेकर अर्थात् लाभ उठा कर। चढ्यौ=चढ़ाई बोल दी। उदै<उदय होने पर। क्रूरह बलिय=क्रूर और बलवान।

नोट—रू० ४७ का उपर्युक्त भावार्थ निम्नलिखित प्रमाणिक आधारों से अभिज्ञ हो जाने पर स्पष्ट हो जावेगा।
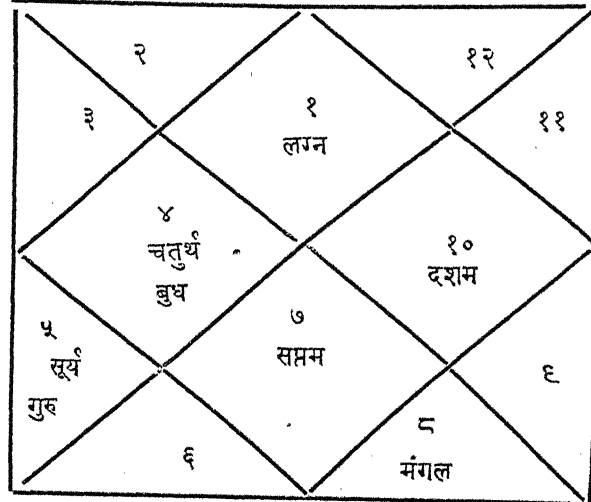
उपर्युक्त दी हुई कुंडली के द्वादश स्थानों के फला देश को कहने के लिए इन स्थानों की संज्ञा हुई जो इस प्रकार है :—

लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम [ल च स द]–इनकी केन्द्र संज्ञा है।

द्वितीय, पंचम, अष्टम और एकादश–इनकी पणफर संज्ञा है।

तृतीय, षष्टम, नवम और द्वादश–इनकी आपोक्लिम संज्ञा है।

(१) अष्ट चक्र योगिनी—पृथ्वीराज को पश्चिम जाना था और योगिनी (जो तिथि के अनुसार विचारी जाती है) पंचमी तिथि को ज्योतिष के अनुसार दक्षिण दिशा में स्थित थी, अतएव पृथ्वीराज के बाम भाग में पड़ी और काशी नाथ भट्टाचार्य विरचित 'शीघ्र बोध' के श्लोक—

योगिनी सुखदा बामे पृष्ठे वांछितदायिनी।
दक्षिणे धनहंत्री च संमुखे प्राणनाशिनी ॥
के अनुसार शुभ हुई।

(२) भरणी नक्षत्र—भरणी नक्षत्र यात्रा के लिये अशुभ है। यथा—

पूर्वासु त्रिषु याम्यर्क्षे ज्येष्ठायां रौद्रभौरगे।
सर्वाशासु गते यात्रां प्राणहानिर्भविष्यति ॥ ११ । ६, टीका ॥
(यात्रा प्रकरण) 'मुहुर्तचिन्तामणि'।

उस दिन भरणी नक्षत्र का भोग था और मंगलवार था अस्तु दोनों की उग्र (क्रूर) संज्ञा थी। यथा—

पूर्वात्रयं याम्यमघे उग्रं क्रूरं कुजस्तथा।
तस्मिन्वाताग्निशाठ्यानि विषशास्त्रादि सिध्यति ॥ २ । ४ ॥
(नक्षत्र प्रकरण), मुहूर्तचिंतामणि, रामदैवज्ञ।

परन्तु यहाँ युद्धरूपी हनन कार्य था इसीलिए भरणी नक्षत्र शुभ हुआ। यथा—"पूर्वात्रित पित्र्भ्यमुग्राख्यमिदं च पंचकं जाम्यम् मारणभेदनबन्धनविषहननं पंचभे कार्यम" (वशिष्ठ)—और पृथ्वीराज ने यात्रा की।

(३) पंचम स्थान के गुरु—पंचमस्थ गुरु त्रिकोण में थे इसलिए लक्ष दोषों के नाश करने वाले थे। यथा—

त्रिकोणे केन्द्रे वा मदनरहिते दोषशतकं
हरेत्सौम्यः शुक्रो द्विगुणमपि लक्षं सुरगुरुः ॥....। ६ । ८६ ॥
(विवाह प्रकरण), मुहूर्तचिंतामणि'।

पंचमस्थ गुरु इसी से शुभ हुए।

(४) पंचम स्थान के सूर्य—पंचमस्थ सूर्य सिंह राशि के थे और उस राशि के स्वामी भी थे इसलिए शुभ फल देने वाले थे। यथा—"यौ यौ भावः स्वामी सौम्याभ्याम दृष्टो युक्तोय मेधते"—(जातक)।

(५) अष्टम स्थान के मंगल—इस यात्रा लग्न में मंगल अष्टम थे और ज्योतिष के अनुसार अशुभ थे । यथा—

"खेटा सर्वे महादुष्टा: अष्टम् स्थानमाश्रिता:"—(जातक) ।

परन्तु मंगल वृश्चिक राशि के थे [क्योंकि मेष लग्न थी और मेष के वृश्चिक राशि अष्टम पड़ती है] इसलिए उसके स्वामी थे । यथा—" मेष, वृश्चिकयौ भौम:"—(जातक) ; अस्तु अशुभ होते हुए भी शुभ थे । यही विचार करके तत्कालीन ज्योतिषियों ने महाराज को चढ़ाई करने की अनुमति दी होगी ।

(६) केन्द्र स्थान में बुध—सूर्य, बुध और शुक्र की गति प्राय: बराबर रहती है । कभी कभी ये परस्पर आगे पीछे हो जाया करते हैं । दी हुई कुंडली के अनुसार बुध कर्क राशि के थे, और कर्क राशि चतुर्थ स्थान में है, जिसकी केन्द्र संज्ञा है, अतएव इस समय बुध का केन्द्र स्थानाभूत होना प्रमाणित हुआ ।

(७) हाथ में त्रिशूल चिन्ह—सामुद्रिक शास्त्र के श्लोक—

'त्रिशूलं कर मध्ये तू तेन राजा प्रवर्तते ।
यज्ञे धर्मे च दाने च देव द्विज प्रपूजक: ॥'—के अनुसार शुभ होता है ।

(८) चक्र चिन्ह—'रथ चक्र ध्वजाकार: स च राज्यं लभे नर: ॥'

सामुद्रिक शास्त्र ।

इस श्लोक से स्पष्ट है कि चक्र चिन्ह शुभ होता है ।

(९) उदै क्रूरह बलिय—ह्योर्नले महोदय इससे बली शनि ग्रह का अर्थ लेते हैं परन्तु शनि की पाप संज्ञा है । ज्योतिष के आधार पर शनि, राहु और केतु पाप ग्रह हैं; सूर्य और मंगल क्रूर हैं ; बुध, बृहस्पति, शुक्र और चंद्र सौम्य ग्रह हैं, अतएव यहाँ 'शनि ग्रह' अर्थ लेना समुचित नहीं है । सूर्य और मंगल क्रूर ग्रह हैं, और इन्हीं का उस समय उदय होना सम्भव है ।

नोट—ग्राम असनी, ज़िला फतेहपुर (उ० प्र०) के ज्योतिषाचार्य पं० शिवकुमार द्विवेदी शास्त्री से परामर्श करके इस रूपक का अर्थ निर्णय किया गया है । प्राय: प्रत्येक विषय विवादग्रस्त है परन्तु बहुमत मान्य होता है । जहाँ तक संभव हो सका है इस कवित्त के अर्थों का प्रतिपादन ज्योतिष ग्रंथों की सहायता से किया गया है और प्रकरणानुसार उनका उल्लेख भी कर दिया गया है ।

ज्योतिष चक्र

राशियों के नाम, नक्षत्रों के नामों की भाँति तारा समूह की आकृति के अनुसार ही रखे गये हैं । बारह राशियाँ ये हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन ।

ज्योतिष चक्र

रवि	चंद्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु	ग्रह
आफ़ताब	माहताब	मिरीख़	उतारुद	मुश्तरी	ज़ोहरा	ज़ोहल	रास	जनब	सितारा
Sun सन	Moon मून	Mars मार्स	Mercury मरकरी	Jupiter जुपिटर	Venus वेनस	Saturn सैटर्न	Ascending node असेंडिंग नोड	Descending node डेसिंडिग नोड	Planets प्लैनेट्स
मास १	दिन २।	मास १॥	मास १	मास १३	मास १	मास ३०	मास १८	मास १८	ग्रहाणां एकराशि भुक्त प्रमाण
सिंह	कर्क	मेष वृष	मी० क०	ध० मी०	वृ० तु०	म० कु०	कन्या	मीन	स्वगृहाणि
उग्र	सौम्य	उग्र	शुभ	शुभ	शुभ	पाप	पाप	पाप	सौम्यादि
पूर्व	वायव्य	दक्षिण	उत्तर	ईशान्य	आग्नेय	पश्चिम	नैऋत्य	नैऋत्य	दिशा

चंद्रमा के मार्ग को २७ बराबर भागों में बाँट दिया गया है जिन्हें नक्षत्र कहते हैं और प्रत्येक भाग में पड़ने वाले तारा पुंजों की आकृति के अनुसार उनका नामकरण किया गया है। उनकी संख्या २७ है तथा नाम इस प्रकार हैं—"श्रविष्ठा या धनिष्ठा, शतभिशक्, पूर्व भाद्रपद, उत्तर भाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी या ब्राह्मी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्व फलगुनी, उत्तर फलगुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा या राधा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, और श्रवण"—बृहत् संहिता, वाराह मिहिर। चंद्रमा प्राय: २७ दिनों में पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमा कर लेता है। खगोल में यह भ्रमण पथ इन्हीं तारों के बीच से होकर निकलता और सारा पथ इन २७ नक्षत्रों में विभक्त होकर नक्षत्र-चक्र कहलाता है।

नक्षत्र (Stars) ग्रहों (Planets) से भिन्न होते हैं। नक्षत्रों की आपेक्षिक (Relative) गति नगण्य होती है। ग्रहों की संख्या हिंदू ज्योतिष के अनुसार ६ है, यथा—सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु (तथा पाश्चात्य ज्योतिष के अनुसार १० है, यथा—सूर्य, मंगल, बुध गुरु, शुक्र, शनि, पृथ्वी, यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो)।

नोट—रू० ४७ का ह्योर्नले महोदय के अनुसार यह अर्थ है—

"Tuesday the fifth was the day on which Prithviraj gave battle ; to Rahu and Ketu he prayed, to avert evil and obtain luck. The eight Chakra Joginis and the position of Bharani are auspicious for the battle, (so also) are Jupiter and Sol both in the fifth compartment, (but) Mars in the eighth is inauspicious for the king. In the central part Mercury is good for fighting for one who bears the marks of the trident and discus in his hand. Taking advantage of this auspicious hour, the king set forth at the rise of the powerful Saturn."

श्री ग्राउज़ महोदय ने Indian Antiquary. Vol. III, p. 341 में डॉ० ह्योर्नले के इस अर्थ की अलोचना करते हुए अपना अर्थ इस प्रकार लिखा है—

"The company of the eight Yoginis is auspiciously placed and auspicious for battle is the Nakshatra Bharni. The conjunction of Jupiter and the Sun in the fifth house and Mars in the eighth house are also auspicious

for the king. Mercury falling in the Kendra is good for fighting for one who bears the marks of the trident and discus on his hand (an allusion to the art of palmistry or Samudrik). At a favourable hour the great king marched forth with his forces, at *sunrise,* with *"cruel might"*. The meaning of the words with cruel might is a little obscure. 'Krur' is a technical term for the three evil planats the Sun, Mars and the Saturn, and in this sense it seems Professor Hoernle takes it : but questionably, since the 'dies martis' has been specified above as favourable to the king. As to the Yoginis further explanation may be necessary. They are belived to be eight in number and to occupy in succession the different points of the compass, moving all together in a body. It is unlucky to face them or have them on the right hand, but lucky to move in such a direction that they are left in the rear or to the left.

उपर्युक्त दोनों अर्थों में श्री० ग्राउज़ महोदय का अर्थ अधिक स्पष्ट और आधार भूत है।

दूहा

सो रचि उद्ध अबद्ध अध, उग्गि[1] महंवधि मंद[2]।
बर निषेद नृप बंद्यो, को ज भाइ[3] कवि चंद ॥ छं० ५६ । रू० ४८ ।

कबित्त

(यों) [4] प्रात सूर बंछई, (ज्यौं) चक्क चक्किय रवि बंछै ।
(यों) प्रात सूर बंछई, (ज्यौं) सुरह बुद्धि बल सो इंछै ॥
(यों) प्रात सूर बंछई, (ज्यौं) प्रातवर बंछि वियोगी ।
(यों) प्रात सूर बंछई, (ज्यौं) सु बंछै बर रोगी ॥
बंछयौ प्रात ज्यों त्यों उनन, (ज्यौं) बंछै रंक करन्न बर।
(यों)बंछयौ प्रात प्रथिराज ने,(ज्यौं) सती सत्त बंछैति उर ॥छं०५७। रू०४९।

भावार्थ—रू० ४८—जब महान अवधि वाला मंद [शनि] ग्रह उदय हुआ तो पृथ्वीराज ने अपने हाथ नीचे से ऊपर उठाये (अर्थात् प्रणाम किया) [और]

---

(१) ए०—लगी (२) ए०—मंडि; कृ०-मंदि, मंड; ना०-विधि कंद (३) ना०—भाय कवि ४) 'यों' और 'ज्यौं' अन्य प्रतियों में नहीं हैं, ह्योर्नले महोदय ने इन्हें अपनी पुस्तक में केवल लिखा है।

नृप ने अत्यन्त निषिद्ध (ग्रह शनि) की वंदना की। चन्द कवि कहते हैं कि ऐसा किसे न भावेगा [अर्थात्—पृथ्वीराज की ऐसी दीन भावना किसे न भावेगी]।

नोट—[महान अवधि वाला मंद ग्रह ज्योतिष में शनि ही कहा जाता है। शनि तीस मास में एक राशि का भोग करता है। और १०७५९ दिनों में सूर्य की परिक्रमा कर पाता है। विवरण के लिए रू० ४७ में दिया हुआ ज्योतिष-चक्र देखिये।

रू० ४९—शूरवीर प्रातःकाल की उसी प्रकार इच्छा करते हैं जैसे चकवा चकई सूर्य की (अर्थात् दिन निकलने की—क्योंकि रात में उनका वियोग हो जाता है और प्रातः फिर संयोग होता है)। शूरवीर प्रातःकाल की उसी प्रकार इच्छा करते हैं जिस प्रकार सुरह (देवता, महात्मा या विद्वान्) अपने बुद्धि बल संवर्द्धन् की। शूरवीर प्रातःकाल की उसी प्रकार इच्छा करते हैं जिस प्रकार वियोगी जन [क्योंकि वियोगावस्था में प्रेमियों को रात्रि अति कष्ट दायिनी हो जाती है]। शूरवीर प्रातःकाल को उसी प्रकार इच्छा करते हैं जिस प्रकार कठिन रोगी [क्योंकि प्रातःकाल रोग कम हो जाता है]। उन्होंने भी प्रातःकाल की उसी प्रकार वांछना की जिस प्रकार दरिद्री दानी-कर्ण से मिलने की करता है। (और) पृथ्वीराज ने भी प्रातःकाल की उसी प्रकार इच्छा की जैसे सती स्त्री अपने सतीत्व की।

शब्दार्थ—रू० ४८—उद्ध<सं० ऊर्ध्व=ऊपर। अबद्ध=(१) खुले हुए (२)<आयुध=हथियार—परन्तु यहाँ हाँथों से तात्पर्य है। अध=नीचे। उग्गि=उगना, निकलना, उदय होना। महंवधि<मह अवधि=बड़ी अवधि वाला, [ज्योतिष में सब ग्रहों से शनि की अवधि सब से अधिक अर्थात् तीस मास है। तीस मास तक यह एक राशि का भोग करता है। रू०४७ की टिप्पणी में दिए हुए ज्योतिष चक्र को देखने से भिन्न ग्रहों का भोग समय विदित हो जावेगा]। बर=श्रेष्ठ। निषेद < निषिद्ध=बुरा। बर निषेद=भारी निषिद्ध अर्थात् बड़ा ही बुरा। [ह्योर्नले महोदय ने 'महंवधि' का अर्थ 'महासागर' किया और 'वर निषेद' का पाठ 'वरनि षेद' करके उसका अर्थ 'अपना खेद (चिन्ता) वर्णन' किया है]। मंद <मन्द=शनि ग्रह से तात्पर्य है। बंदयो=वंदना की। को न=कौन नहीं। भाइ=भाई; (क्रि०) भाना, अच्छा लगना।

रू० ४९—प्रात=प्रातःकाल। सूर <सं० शूर। बंछई=वांछना करते हैं। चक्क चकिय=चक्रवाक। रवि=सूर्य। सुरह=(१) देवता (२)<सुराह, पर जाने वाले अर्थात् महात्मा (३) <स्वर—विद्वान् (ह्योर्नले)। सु=उसको

अर्थात् प्रात:काल को। बर रोगी=श्रेष्ठ रोगी अर्थात् कठिन रोगी। [वैद्यक ग्रन्थों में कहा गया है कि रात्रि में रोग बढ़ता है और प्रात:काल अर्थात् सूर्य निकलने पर कम हो जाता है। बहुत कम रोगियों की मृत्यु सूर्य निकलने पर होती हुई देखी जाती है। यह वैज्ञानिक आधार भूत बात भी है। विषम बीमारी वाले रात्रि भर यही वांछना किया करते हैं कि कब प्रात:काल होगा]। संस्कृत में जिस प्रकार 'भारी बदमाश' के लिये साहित्यिकों ने 'सुदुष्ट' शब्द का प्रयोग किया है उसी प्रकार चंद ने रासो में 'बर निषेद' अर्थात् 'अत्यंत निषिद्ध' और 'बर रोगी' अर्थात् 'कठिन रोगी' का। उनन=उन्होंने। रंक= दरिद्री। करन्न<कर्ण—ये सूर्य के वरदान द्वारा उत्पन्न हुए कुंती के पुत्र थे। कुमारी कुंती ने इन्हें नदी में बहा दिया और अधिरथ राधा ने इन्हें पाला। दुर्योधन ने इनका बड़ा सत्कार किया और उच्च पद दिया। ये बड़े वीर योद्धा थे। सूर्य ने इन्हें एक अमोघ कवच और कुंडल दिये थे। महाभारत के अवसर पर कृष्ण ने ब्राह्मण का रूप रखकर कर्ण से कवच और कुंडल माँगे और दानी कर्ण ने सारी बातें विचारते हुए भी उन्हें दे दिया। युद्ध भूमि में कर्ण आहत पड़े थे अंतिम साँसें चल रहीं थीं। कृष्ण ने अर्जुन को कर्ण की दानशीलता दिखाने के लिये फिर जाकर दान माँगा। अब बेचारे कर्ण के पास क्या था? हाँ, याद आया। दाँतों में दो लाल जड़े थे और वाहरे दानी कर्ण, पत्थर से दाँत तोड़कर लाल निकाले और कृष्ण को देने लगे। कृष्ण ने मक्कारी की और बोले कि रक्त से सिक्त वस्तु दान नहीं की जाती। कर्ण ने लेटे लेटे सारी बची खुची शक्ति बटोरकर एक बाण भूमि में मारा, गंगा की धार निकली उसमें लाल धोकर कृष्ण को दे दिये और दम तोड़ दी। [इस महान दानी का विशेष हाल महाभारत में देखिये]। सती=पतिव्रता स्त्री; जो अपने मृतक पति के शव के साथ जलने जा रही हो। सत्त<सत्य (यहाँ सती के सतीत्व से तात्पर्य है)। उर=हृदय।

नोट—रू० ४८—He raised aloft his arms from below, (while) Saturn rose form the ocean. Speaking his anxiety, the king prayed (to the planet). "Who will not do so, oh brother!" says the poet Chand. [Hoernle, pp. 26-27.]

श्री ग्राउज़ महोदय ने अपना मत इस रूपक पर इस प्रकार प्रकट किया है—"उद्ध अध mean 'up and down, 'avadh' round about; in the second line the alternative reading 'bidhi' should be substituted for 'badhi; and 'kaun bhai' in the last line is 'which you please.' The general meaning and style

of expression will be best represented by a verse in ballad measure,—

For high and low and every where,
In every kind of way,
I cull some emblem of his care
Take which you will I pray."
[Iudian Antiquary. Vol III, p. 341.]

रू० ४६—श्री० ग्राउज़ महोदय ने इस छंद का अत्यंत सुंदर अनुवाद अँग्रेज़ी पद्य में इस प्रकार किया है,—

"So pants the warrior for the break of day.
As parted love birds for the sun's first ray.
So pants the warrior for the close of the night.
As saints on earth crave heaven's full power and light.
So pants the warrior for the battle morn,
As restless lovers, of their love forlorn.
So pants the warrior for the rising sun
As sick men pray that the long night be done.
So longed the warrior camp for break of day
As beggars long a prince might pass their way.
So longed the monarch for the orient fire
As faithful widows for the funeral pyre."

F. S. Growse. M. A., B. C. S.
[Indian Antiquary. Vol III, p. 341.]

"यों प्रात सूर बंछई ज्यौं सु बंछै बर रोगी"—इस पंक्ति का सार 'रासो-सार' पृष्ठ १०२ में यह है कि—"इतना कहकर पृथ्वीराज रात्रि के शेष दो पहर व्यतीत कर सूर्योदय की इस प्रकार इच्छा करने लगा जैसे कठिन व्याधि पीड़ित रोगी जन वैद्य के द्वार पर जानेके लिए।" रासो-सार के लेखकों ने सोचा होगा कि आखिर कठिन-व्याधि-पीड़ित-रोगी सूर्योदय की इच्छा क्यों करेगा और बिना थोड़ा बहुत विचार किये ही लिख दिया होगा—वैद्य के द्वार पर जाने के लिये। किंचित् शब्दों के अर्थ का विचार कीजिये—जो कठिन-व्याधि-पीड़ित है वह शय्या पर करवट तो ले नहीं सकता फिर वैद्य के द्वार तक जाने की सामर्थ कौन देगा।

श्री ह्योर्नले महोदय 'बर-रोगी' का लाक्षणिक अर्थ न समझ कर 'बर' का वाचिक अर्थ 'वरदान' लगाते हैं और लिखते हैं कि—"शूरवीर प्रात:काल की उसी प्रकार इच्छा करते हैं जैसे रोगी वर (blessing) की।

रू० ४६ की इस पंक्ति का 'सु' शब्द बड़ा अर्थ पूर्ण है,—"शूर-वीर प्रात:काल की उसी प्रकार वांछना करते हैं जैसे सु (=उस अर्थात् प्रात:-काल) की वांछना वर रोगी।"

इस रूपक की अंतिम पंक्ति का सार 'रासो-सार' में इस प्रकार लिखा गया है—"(पृथ्वीराज सूर्योदय की उसी प्रकार इच्छा करने लगा)—जिस प्रकार पति विहीना स्त्री संसार को असार जानकर पति की मृत्यु के साथ साथ अपने भस्मीभूत शरीर को भी भस्म कर देने की इच्छा करती है।"

छंद दंडमाली

भय प्रात रत्तिय जु रत्त दीसय, चंद मंदय चंदयौ।
भर तमस तामस सूर बर भरि, रास तामस छंदयौ॥
बर बज्जियं नीसांन धुनि घन, बीर बरनि अकूरयं।
धर धरकि धाइर करषि काइर, रसमि सूरस कूरयं॥ छं० ५८।
गज घंट घन किय रुद्र भनकिय[1], षनकि संकर उद्दयौ।
रन नंकि भेरिय[2] कन्ह हेरिय[3], दंति दांन धनं दयौ[4]॥
सुनि वीर सद्दइ सबद पढ्ढइ, सद्द सद्दइ छंडयौ[5]।
तिह ठौर अद्भुत होत न्रप दल, बंधि दुज्जन षंडयौ॥ छं० ५९।
सन्नाह सूरज सज्जि घाटं, चंद ओपम राजई।
[कै][6] मुकुर में प्रतिव्यंब राजय, [कै] सत्त धन ससि साजई॥
बर फल्लि बंबर टोप ओपत,[7] रीस[8] सीसत आइयें।
नष्षित्र हस्त कि भांन चंपक, कमल सूरहि साइये॥ छं० ६०।
बर बीर धार[9] जुगिंद पंतिय, कब्बि ओपम पाइयं।
तजि मोहमाया छोह कल बर,[10] धार तिथ्थह[11] धाइयं॥
संसार संकर बंधि गज जिमि, अप्प बंधन हथ्थयं।
उनमत्त गज जिमि नंषि दीनी, मोहमाया सथ्थयं॥ छं० ६१।
सो प्रबल महजुग बंधि जोगी, मूनि आरम देवयो।
सामंत धनि जिति षित्ति कीनी, पत्त तरु जिमि भेवयो॥ छं० ६२। रू० ५०।

---

(१) ए०—भनषिय (२) ए०—भोरिय (३) ना०—होरिय (४) ए०—धनंजयौ (५) ना०—सद्द असद्दइ छंडयौ (६) [कै]—पाठ अन्य प्रतियों में नहीं है। ह्योर्नले महोदय ने अपनी पुस्तक में इसे लिखा है (७) ना०—आयो (८) ना०—त रोस (९) ना०—धा (१०) ना०—करबल (११) ना०—तित्थह।

भावार्थ—रू० ५०—जब प्रात:काल हुआ और रात रक्तमय दीखने लगी [ऊषाकाल देख पड़ा], चंद्रदेव मंद होकर अस्त हो गये तब तामसिक वृति वाले योद्धा क्रोध से भर गये। नगाड़ों के ज़ोर ज़ोर बजते ही वीरों में वीर वर्ण अंकुरित हो उठा, पृथ्वी काँपने लगी पर जब चारणों ने कड़खा गाया तो कायरों की दृष्टि भी रौद्र व वीर रस पूर्ण हो गई (उनकी आँखों से भी वीरता टपकने लगी, जोश बढ़ आया)। हाथियों के घंटे घनघोर शब्द करते हुए बजने लगे और जंज़ीरें खनखनाने लगीं। [पृथ्वीराज के चाचा] कन्ह को हाथियों और धन का दान करते देखकर युद्ध के नगाड़े बजने लगे (जिसे सुन कर) वीर गरजने लगे और (ब्राह्मण) मंत्रोच्चार करने लगे। उस स्थान पर नृप [पृथ्वीराज] का दल दुर्जनों का नाश करने के लिये अद्‌भुत रूप से सुसज्जित हुआ। शूरों के शिरस्त्राणों पर लगे हुए उड़ते तुर्रे उनके सिर पर उसी प्रकार से गिरते थे जैसे मानो सूर्य के हस्त नक्षत्र में स्थित होने से चंपा और कमल के फूल बिखर गये हों। श्रेष्ठ वीरों की पंक्तियाँ योगियों की पंक्तियों सदृश थीं और कवि को ऐसी उपमा जान पड़ी कि मानो वे (योद्धा, योगियों की भाँति) माया मोह और छोह का परित्याग कर तलवार की धार रूपी तीर्थ स्थान पर (की ओर) दौड़ रहे हों (क्योंकि योद्धाओं के लिये तलवार की धार से मरना ही तीर्थ है]। सांसारिक शृंखलाओं में अपने हाँथों (=अपने आप) हाथी सदृश जंज़ीरों से जकड़ा जाकर जिस प्रकार योगी अपनी प्रबल तपस्या द्वारा उन्मत्त हाथी के समान मोह रूपी जंज़ीरों को तोड़कर देवतुल्य आनन्द प्राप्त करता है उसी प्रकार सामंतों का स्वामी वृक्ष के पत्तों सदृश पृथ्वी (अर्थात् पृथ्वी पर रहने वाले दुष्टों) को कुचल कर विजय प्राप्त करता है।

शब्दार्थ—रू० ५०—रत्तिय < रात्रि = रात। जु = जब। रत्त < रक्त। रत्त दीसय = रक्त वर्ण दीखने लगी अर्थात् ऊषाकाल देख पड़ा। चंद < सं० चंद्र। मंदय = मंद होकर। चंदयौ = अस्त हुआ। तमस = क्रोध। तामस सूर = तामसिक वृत्ति वाले योद्धा। रास तामस = रौद्र और वीर रस। छंदयौ = गान। बीर बरनि < वीर वर्ण। अकूरयं = अंकुरित हो उठा। धर = धरती। नीसांन < फा० = نشان (नगाड़े)। धुनि घन्न = घनी धुन से अर्थात् बड़े ज़ोर से। धाइर = चारण (युद्ध वाले)। करषि = कड़खा (युद्धोत्साह का गीत विशेष)। रस कूरयं = क्रूर रस अर्थात् वीर व रौद्र रस। रसमि < सं० रश्मि = किरण (परन्तु यहाँ दृष्टि से तात्पर्य है)। रुद्र भनकिय = रौद्र शब्द करने लगे। काइर = कायर। घनकि = खनखनानीं। संकर < सांकल = जंज़ीरें। रन < सं० रण। नंकि = नगाड़े। भेरिय = बज उठे। कन्ह = सोमेश्वर के छोटे भाई अर्थात् पृथ्वीराज के

चाचा [रासो सम्यो १; संयोगिता नेम समय; Asiatic Journal. Vol. XXV, p. 284] । दंति = हाथी । सद्दइ = शब्द किया (यहाँ वीरों ने जयध्वनि की) । सबद पढ्ढइ = शब्द पढ़े—अर्थात् मंत्रोच्चारण किया । सद्द सद्दइ छंडयौ = (दूसरे लोगों ने भी) वीर नाद किया । दुज्जन <सं० दुर्जन=दुष्ट (यहाँ शत्रुओं की ओर संकेत है) । षंडयौ=खंडन हेतु, विनाश करने के लिये । सन्नाह (सं०)<हि० सनाह=कवच । सज्जि घाटं=घाट सजाना (सुशोभित होना) । चंद ओपम राजई=चंद को ऐसी उपमा सुन्दर लगी । फल्लि बंबर=उड़ते हुए तुर्रे । टोप = शिरस्त्राण [दे० Plate No. I] । औपत = पहिनना, ओढ़ना; आभा । रीस सीसत आइये=उनके सर पर झुकते आते हैं । नष्यित्र हस्त <हस्त नक्षत्र । भानु=सूर्य । चंपक=पुष्प विशेष (चंपा) । सूरहि साइये (सायए)=शूरोंपर छा गए हैं या बिखर गए हैं । रीस <रीसना या रिसना=धीरे धीरे चूना या गिरना । जुगिंद पंत्तिय = योगियों की पंक्तियाँ । कब्बि <कवि । ओपम=उपमा । कलबर <करवल = तलवार । कलबर धार तिथ्यह धाइयं = तलवार की धार रूपी तीर्थ पर दौड़ते हैं । संकर < हि० सीकड़, साँकल <सं० शृंखला । नंख दीनी = नष्ट करना । प्रबल मह जुग= महान् प्रबल योग (शक्ति) । बंधि जोगी = बंधा हुआ योगी । मूनि <सं० मुनि [तपस्वी, त्यागी सत्यासत्य का विचार करने वाला] । आरम देवयो=देव तुल्य आनन्द पाता है । सामंत धनि = सामंतों में धन्य या सामंतों के स्वामी [—यहाँ पृथ्वीराज की ओर संकेत है] । धनि=धनी, स्वामी, राजा । जिति षित्ति=पृथ्वी को जीत कर । षित्ति< सं० क्षिति । पत्त तरु जिमि भेवयो = वृक्ष के पत्तों सदृश कुचल करके ।

नोट—रू० ४०—"वे सच्चे स्वामि सेवी एवं समरभूमि में शरीर त्याग कर स्वर्ग में अप्सराओं से मिलने की अभिलाषा से भरे हुए राजपूत बच्चे उत्साह ओज और आतंक सूचक ध्वनि करते हुए शत्रु सेना की तरफ इस तरह बढ़ते जाते थे जैसे मद से भीगे हुए गण्डस्थल वाला मदोन्मत्त मातंग मेघस्पर्शी उत्तुंग तरुवर की तरफ उसे तोड़ने के लिये बढ़ता जाता है।" 'रासो-सार', पृष्ठ १०१ ।

उपर्युक्त विवेचना का भ्रम स्पष्ट है ।

दंडमाली छंद—यह हरिगीतिका या महीसरी छंद के बिलकुल अनुरूप है । हरिगीतिका मात्रिक सम छंद है । रामचरित मानस में यह छंद हमें अनेक स्थलों पर मिलता है । छंद के प्रत्येक चरण में सोलह बारह के विश्राम से अट्ठाइस मात्रायें होती हैं और अन्त में लघु गुरु होते हैं । 'इसका रचना

क्रम यों है—२, ३, ४, ३,४, ३, ४,५=२८। जहाँ २ चौकल हैं उनमें 'जन', जगण (।ऽ।) अति निषिद्ध है, अन्त में रगण कर्ण मधुर होता है।' छंद: प्रभाकर, भानु। रासो में आया हुआ दंडमाली छंद इन लक्षणों से मिल जाता है अतएव यही संभावना होती है कि चंद के काल में हरिगीतिका या महीसरी छंद को दंडमाली छंद भी कहते रहे होंगे। आधुनिक छंद ग्रंथों में यह छंद अपने 'दंडमाली' नाम से नहीं मिलता।

दूहा

क्रयं[1] गाह इक मुगति की, क्यौं करिजै बाषांन।
मन अनंष सामंत नै, (ज्यौं) कच करवति[2] पाषांन॥ छं० ६३। रू० ५१।

दूहा

बाइ[3] बीष धुंधर परिय, बद्दर छाये भांन।
कुन घर मंगल बज्जहीं, कै चढ़ि मंगल आंन॥ छं० ६४। रू० ५२।

दूहा

दिष्ट देषि सुरतांन दल, लोहा चक्कत बांन।
षहक फेरि उड़गन चले, निसि आगम फिरि जांन[4]॥ छं० ६५। रू० ५३।

दूहा

धजा बाइ बंकुर उड़ति, छवि कविंद इह आइ।
उड़गन चंद निरिंद विय, लगी मनो[5] अइ पाइ॥ छं० ६६। रू० ५४।

दूहा

सेसनि संकहि बज्जतहि, बाजे कुहक सुणंग[6]।
मेटै सद्द निसांन के, सुने न श्रवन ति[7] अंग॥ छं० ६७। रू० ५५।

दूहा

अनी दोउ घन घोर ज्यौं, धाइ मिलैं कर घाट[8]।
चित्रंगी रावर बिना, करै कोन दह बाट॥ छं० ६८। रू० ५६।

भावार्थ—रू० ५१—यह (युद्ध-क्षेत्र) मुक्ति क्रय करने का बाज़ार है जिसका वर्णन नहीं हो सकता। सामंतों का क्रोध इस समय आरे के सिल्ली चढ़ जाने के समान हो गया (अर्थात्-वे बलवान और वीर तो थे ही इस क्रोध के आवेश में उनका पौरुष और भी प्रचंड हो उठा)।

---

(१) हा० ना०—क्रंम (२) मो०—ज्यौ कचकरवती (३) ना०—बाई (४) को० ए०—जाम (५) ए० मो०—मानौं, मानो (६) ना०—सुरंग (७) ला० सी०—श्रवननि (८) ना०—धाय मिले कर घाट; ए० कृ० को०—धाधा मिले क थाट कर थाट।

रू० ५२—तूफ़ान उठा और चारों ओर अँधेरा छा गया (मानो) बादलों ने सूर्य को ढक लिया हो। [इसे क्या कहा जाय] यह मंगल सूचक है अथवा अमंगल सूचक ?

रू० ५३—सुलतान के दल वालों ने लोहे के चमकते हुए बाणों को देखकर अनुमान किया कि क्या गरदिश ने चक्कर खाया है जो रात को आया जानकर तारे निकल आये हैं।

रू० ५४—रण बाँकुरों की ध्वजा को वायु में उड़ते देख कवि को यह जान पड़ा कि मानों वह तारों और चंद्र देव के पैरों में लग गई है।

रू० ५५—असंख्य शंख बजते ही अनेक सुरंग बाजे बज उठे जिससे नगाड़ों का शब्द भी दब गया और कानों को कुछ न सुनाई दिया।

रू० ५६—दोनों ओर की सेनाऐं कर्तव्य के घाट [अर्थात् युद्ध-क्षेत्र] पर काले घन घोर बादलों के समान आ मिलीं। चित्रांग [=चित्तौर] रावर [= राजा] (समर सिंह) के बिना (शत्रु सेना को) दह बाट [=दस बाट=दस मार्ग—अर्थात् तितर बितर] कौन कर सकता है। [या—चित्रांग के रावर के बिना कौन मार्ग दिखा सकता है या कौन सेना का संचालन कर सकता है ?]

शब्दार्थ—रू० ५१—क्रयं=क्रय करना (=खरीदना)। गाह<फा० [illegible]=जगह। बाषांन=वर्णन। इक=एक। मुग ते<सं० मुक्ति=आवागमन के बंधन से छूटना। करवति<सं० करपत्र=आरा। पाषांन<पाषाण=पत्थर।

रू० ५२—बाइ बीष=विषैली वायु, तूफान, अंधड़। धुंधर=अँधेरा। परिय=पड़ गया। बद्दर छाये भान=बादलों ने सूर्य को ढक लिया। कुन=क्या। मंगल=(१) शुभ घड़ी (२) युद्ध कारक अशुभ मंगल ग्रह। आंन=आया।

रू० ५३—दिष्ट देषि=दृश्य देखकर; दृष्टि से देखकर। लोहा चक्कत बांन=लोहे के चमकते हुए बाण। षहक फेरि=आसमान उलट गया, गरदिश ने चक्कर खाया। उडगन=तारे। निसि आगम्म फिरि जान=रात को फिर आया जानकर।

रू० ५४—धजा<ध्वजा=झंडा, पताका। बाइ<वायु। बंकुर<वक्र =टेढ़ी; ['बंकुर' का अर्थ 'रण बाँकुरे' भी हो सकता है।]। इह=यह। छबि—यही ध्वजा की ऊँचाई या विशालता से तात्पर्य है। निरिन्द<नरेन्द्र। विय=दो। पाइ=पैर ; 'पाकर' अर्थ भी संभव है।

रू० ५५—सेसनि=अशेष, बेशुमार। संकहिं=शंख। बज्जतहिं=बजते ही। कुहक=तुरही; मधुर स्वर; कुहक बाण। सुरंग<सुरंग=सुंदर। मेटै सद्द=शब्द मिटाता है। निसांन के=नगाड़ों के। स्रवन<सं० श्रवण=कान। ति=उनके।

रू० ५६—अनी=सेना। दोउ=दोनों। घन घोर=घोर (अर्थात् काले) बादल। धाइ=दौड़कर। कर=करना (अर्थात् कर्तव्य)। कर घाट=कर्तव्य के घाट पर। चित्रंगी रावर—['रावर' या 'रावल'<सं० राजकुल]—को सन् १२०१ में समरसी के भाई सूरजमल के पौत्र राहुप ने राना कर दिया [(Rajasthan. Tod. Vol. I, pp. 260-61)]। चित्रांगी रावर समरसिंह (११४६-११६२)-यह वीर गोरी के उस युद्ध में मारा गया जिसने भारतवर्ष में हिन्दू साम्राज्य का अंत कर दिया। रासो सम्यौ २१ में हम पढ़ते हैं कि पृथ्वीराज की बहिन पृथा इन्हें व्याही थीं। चौहान इनसे बराबर सलाह लिया करते थे। [Rajasthan. Tod. Vol. I, pp. 254, 256-57 तथा पृ० रा० में]।

नोट रू० ५३—"सुलतान ने पृथ्वीराज के दल के अगणित दैदीप्यमान बाणों को देखा और शत्रु के इस प्रबल दल को देखकर उसे प्रतीत होने लगा कि मानों रात्रि का अंधकार चारो ओर से घिरता चला आता है, आकाश बदल गया और उसमें फिर से तारे चमकने लगे हैं।" इस दोहे में इस अर्थ के अनुसार बड़ी ही सुन्दर ध्वनि लक्षित हो जाती है अर्थात् अभी तक सुलतान विजयी होता हुआ ही चला आता था किन्तु इस दल को देखकर उसके छक्के छूटने से लगे। अपनी पराजय की शंका उसे रात्रि के अंधकार के आगमन की सूचना देने लगी। 'ग्रहक फेरि' जिसका अर्थ गरदिश के बदल जाने का है और जिसका प्रयोग अनेक ध्वन्यार्थों में फारसी और उर्दू साहित्य में निरंतर किया जाता है, यहाँ उसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—अर्थात् सुलतान को आशंका हो रही है कि उसके ग्रह अस्त हो रहे हैं और चमक के मिस मानों शत्रु के सितारे चमक उठे हैं।

रू० ५४—कवि केशवदास ने रामचंद्रिका में लिखा है कि रथों की पताकायें सूर्य के घोड़ों के पैरों में लगती हैं। चंद ने भी उसी ध्वनि का प्रयोग इस दोहे में किया है। यहाँ सूर्य के स्थान पर चंद्र लिखा गया है क्योंकि चंद बरदाई "निसि आगम" रू० ५३ में लिख चुके थे। ध्वनि यह है कि सैनिकों की ध्वजायें 'चंद्र नरिंद' के पैरों में लगती हैं अर्थात् वे बहुत ऊँची हैं।

रू० ५३ और ५४ से 'रासो-सार' के लेखकों ने पृ० १०१ पर यह सार निकाला है—"उधर यवन सेना में ऊँचे हाथियों पर बैठे हुए योद्धाओं के

मणिमय वस्त्र एवं स्वच्छ चमकीले हथियार ऐसे सुशोभित होते थे मानों मंद ज्योति उड़गन समूह सूर्य के प्रखर ताप से उत्तापित होकर पृथ्वी की ओर आ रहे हों।"

कबित्त

पवन रूप परचंड, घालि असु असिबर झारै।
मार मार सुर बज्जि, पत्त तरु अरि सिर पारै॥
फट्टकि[1] सद्द फोफरा[2], हुड्डु कंकर उष्षारै।
कटि भसुण्ड परि मुंड, भिंड कंटक उप्पारै॥
बज्जयो विषम मेवारपति, रज उड़ाइ सुरतांन दल।
समरथ्थ समर मनमथ[3] मिलिय अनी मुष्य पिष्यौ सबल ॥छं० ६६।रू५७।

भावार्थ—रू० ५७—वह [चित्रांगी रावर समरसिंह] अपने वायु वेगी अश्व पर चढ़कर (शत्रुओं के) बीच में कूदता है और तलवार से वार करता है। उसके मुँह से मारो मारो शब्द घोषित होता है और वह शत्रुओं के मस्तकों को वृक्ष के पत्तों के सदृश तोड़ कर अलग कर रहा है। सैकड़ों फेफड़े फाड़ता हुआ वह हड्डियों को कंकड़ों सदृश उखाड़ता है। उसके भुशुंड से कट कर (शत्रुओं के) मस्तक गिरते हैं जिनको वह काँटों की भीट सदृश फेंकता जाता है। भयंकर मेवाड़पति सुलतान की सेना में धूल उड़ाता हुआ आया। (इस प्रकार पृथ्वीराज की) सेना के आगे मन्मथ के समान आता हुआ अपने सामंतों सहित सामर्थ्यवान समरसिंह देखा गया।

शब्दार्थ—रू० ५७—पवन रूप परचंड=वायु सदृश प्रचंड वेग वाला। घालि= कूदना, डालना। असु<सं० अश्व=घोड़ा। असिबर=श्रेष्ठ तलवार। झारै= झाड़ता हुआ अर्थात् वार करता हुआ। सुर<सं० स्वर। बज्जि=बजना। पारै =अलग करना। फट्टकि=फाड़ता हुआ। सद्द<शत=सौ (यहाँ सैकड़ों से तात्पर्य है। फोफरा=फेफड़ा। हुड्डु=हड्डी। कंकर=कंकड़। उष्षारै=उखाड़ता है। कटि=कटकर। भसुंड<सं० भुशुण्ड=एक काटने वाला अस्त्र। परि=गिरना। मुंड=सिर। भिंड=भीट, ढेर। कंटक=काँटे। उप्पारै=उपारना, नोच फेंकना। बज्जयो=युद्ध करने वाला; बजा [—यहाँ विषम मेवाड़ पति बज्जयो (=आ-धमका, आया)]। रज उड़ाइ=धूल उड़ाता हुआ। समरथ्थ<सं० समर्थ=परा क्रमी। समर=समरसिंह मेवाड़पति—चित्रांगी रावर—पृथ्वीराज का बहनोई

---

(१) हा०, ना०—फट्टकि (२) ए० कृ० को०—फीफरा (३) ए० कृ० को०—मनमथ मिल, मिली, मिल्यौ ; ना०—सम्मर मिलिय।

समरसिंह—"मेवाड़ एवं समस्त राजपूताने में यह प्रसिद्ध है कि अजमेर और दिल्ली के अंतिम हिंदू सम्राट् चौहान पृथ्वीराज (तीसरे) की बहिन पृथाबाई का विवाह मेवाड़ के रावल समर सी (समरसिंह) से हुआ, जो पृथ्वीराज की सहायतार्थ शहाबुद्दीन गोरी के साथ की लड़ाई में मारा गया। यह प्रसिद्धि 'पृथ्वीराज रासो' से हुई, जिसका उल्लेख 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' में भी मिलता है ["ततः समर सिंहाख्यः पृथ्वीराजस्य भूपतेः। पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यतिहार्दतः ॥२४॥ भाषा रासा पुस्तकेस्य युद्धस्योक्तोस्ति विस्तरः ॥२७॥ राजप्रशस्ति, सर्ग ३], परन्तु उक्त पृथ्वीराज की बहिन का विवाह रावल समरसी (समरसिंह) के साथ होना किसी प्रकार संभव नहीं हो सकता ; क्योंकि पृथ्वीराज का देहांत वि० सं० १२४६ (ई० स० ११६१-६२) में हो गया था, और रावल समरसी (समरसिंह) वि० सं० १३५८ (ई० स० १३०२) माघ सुदी १० तक जीवित था (ना० प्र० प० ; भाग १, पृ० ४१३, और टिप्पण ५७, पृ० ४४६) जैसा कि आगे बतलाया जायगा। सांभर और अजमेर के चौहानों में पृथ्वीराज नामक तीन और बीसलदेव (विग्रहराज नामधारी चार राजा हुए हैं (हिन्दी टॉड राजस्थान, पृ० ३६८-४०१), परन्तु भाटों की ख्यातों तथा 'पृथ्वीराज रासो' में केवल एक पृथ्वीराज और एक ही बीसलदेव का नाम मिलता है, और एक ही नाम वाले इन भिन्न भिन्न राजाओं की जो कुछ घटनायें उन को ज्ञात हुईं, उन सबको उन्होंने उसी एक के नाम पर अंकित कर दिया। पृथ्वीराज (दूसरे) के जिसका नाम पृथ्वीभट भी मिलता है, शिलालेख वि० सं० १२२४, १२२५ और १२२६ (ई० स० ११३७, ११६८ और ११६६) के, और मेवाड़ के सामंतसिंह (समतसी) के वि० सं० १२२८ और १२३६ (ई० स० ११७१ और ११७६) के मिले हैं; ऐसी दशा में उन दोनों का कुछ समय के लिये समकालीन होना सिद्ध है। मेवाड़ के ख्यातों में सामंत सिंह को समतसी और समरसिंह को समरसी लिखा है। समतसी और समरसी नाम परस्पर बहुत कुछ मिलते जुलते हैं, और समरसी नाम पृथ्वीराज रासा बनने के अनंतर अधिक प्रसिद्धि में आ जाने के कारण—इतिहास के अंधकार की दशा में—एक के स्थान पर दूसरे का व्यवहार हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अतएव यदि पृथाबाई की ऊपर लिखी हुई कथा किसी वास्तविक घटना से संबंध रखती हो तो यही माना जा सकता है कि अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज दूसरे (पृथ्वीभट) की बहिन पृथावाई का विवाह मेवाड़ के रावल समतसी (सामंत सिंह) से हुआ होगा। डूँगरपुर की ख्यात में पृथावाई का संबंध समतसी से बतलाया भी गया है। [उदयपुर राज्य का इतिहास, गौरीशंकर हीराचंद ओझा,

पहली जिल्द, पृ० १५३-५४]। "रावल समर सिंह के समय के आठ लेखों से यह निश्चित है कि वि० सं० १३५८ (ई० स० १३०१) अर्थात् पृथ्वीराज के मारे जाने से १०९ वर्ष पीछे तक वह (रावल समर सिंह) जीवित था" [राजपूताना का इतिहास, गौ० ही० ओझा, जिल्द ३, भाग १, पृ० ५१-५२]। समतसी तथा समरसी के नामों में थोड़ा सा ही अंतर है इसलिये संभव है कि पृथ्वीराज रासो के कर्ता ने समतसी को समरसी मान लिया हो। बागड़ का राज्य छूट जाने के पश्चात् सामंतसिंह कहाँ गया इसका पता नहीं चलता। यदि वह पृथ्वीराज का बहनोई माना जाय, तो बागड़ का राज्य छूट जाने पर संभव है कि वह अपने साले पृथ्वीराज के पास चला गया हो और शहाबुद्दीन ग़ोरी के साथ की पृथ्वीराज की लड़ाई में लड़ता हुआ मारा गया हो" [डूँगरपुर राज्य का इतिहास, गौ० ही० ओ०, पृष्ठ ५३]। अतएव रासो में आये हुए समरसिंह को सामंतसिंह ही मानना उचित होगा। मनमथ < सं० मन्मथ = कामदेव का एक नाम। स्त्री पुरुष संयोग की प्रेरणा करने वाला एक पौराणिक देवता जिसकी स्त्री रति, साथी बसंत, वाहन कोकिल, अस्त्र फूलों का धनुषबाण है। उसकी ध्वजा पर मछली का चिन्ह है। कहते हैं कि जब सती का स्वर्गवास हो गया तब शिव जी ने यह विचार कर कि अब विवाह न करेंगे समाधि लगाई। इसी बीच तारकासुर ने घोर तप कर के यह वर माँगा कि मेरी मृत्यु शिव के पुत्र से हो और देवताओं को सताना प्रारम्भ किया। इस दुःख से दुखित होकर देवताओं ने कामदेव से शिव की समाधि भंग करने के लिए कहा। उसने शिव जी की समाधि भंग करने के लिये अपने बाणों को चलाया। इस पर शिव जी ने कोपकर उसे भस्म कर डाला। उसकी स्त्री रति इस पर रोने और विलाप करने लगी। शिव जी ने प्रसन्न होकर कहा कि कामदेव अब से बिना शरीर के रहेगा और द्वारिका में कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के घर उसका जन्म होगा। प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध कामदेव के अवतार कहे गये हैं। चंद बरदाई ने समरसिंह की कामदेव से उपमा दी है जिससे अनुमान होता है कि चित्रांगी रावर वीर तो था ही बड़ा स्वरूपवान भी था। अनी = सेना। मुष्य < मुख। अनी मुष्य = सेना के मुख पर अर्थात् सेना के आगे। पिष्यौ = देखा गया। सबल = बल सहित अर्थात् अपने सामंतगणों के साथ।

नोट—"पावस के प्रबल दल बद्दल रूपी यवन सेना को देखते ही प्रचंड पवन रूपी मेवाड़ पति रावल समरसिंह जी ने उस पर इस वेग से आक्रमण किया कि वे छिन्न भिन्न होने लगे।" रासो-सार, पृष्ठ १०१।

कबित्त

रावर उप्पर धाइ परयौ, पाँवार जैत षिझि।
तिहि उप्पर चामंड, करयो हुस्सेन षांन सजि॥
धक्काई धक्काइ, दोउ[1] हरबल बल मंज्झे।
पच्छ सेन आहुट्टि, अनी बंधी आलुज्झे॥
गजराज बिय सु सुरतांन दल, दह चतुरंग बर बीर बर।
धनि धार धार धारह धनी, बर भट्टी उप्पारि करि॥ छं० ७०। रू० ५८।

भावार्थ—रू० ५८—रावर के पीछे क्रोधित जैत प्रमार था और उसके पीचे चामंडराय और हुसेन खाँ थे। ये दोनों (चामंड और हुसेन) हरावल (सेना) के बीच में थे। सेना के पिछले भाग से आकर इन्होंने अनी (=सेना के सिपाहियों की पंक्ति) को बाँधा और (युद्ध में) उलझ गये। दो हाथियों पर चढ़कर इन श्रेष्ठ वीरों ने सुलतान की चतुरंगिणी सेना को अच्छी तरह व्याकुल कर दिया। (और) अनेक तलवारों के बाँधने वाले स्वनामधन्य धार देश के अधिपति तथा श्रेष्ठ भट्टी ने उन्हें उखाड़ फेंका।

शब्दार्थ—रू० ५८—रावर=चित्रांगी रावर समरसिंह। उप्पर धाइ परयौ=ऊपर (=पीछे) दौड़ता हुआ। पाँवार जैत=जैतसिंह प्रमार। षिझि =क्रोधित। तिहि उप्पर=उसके पीछे। चामंड=चामंडराय दाहिम। सजि= सजा हुआ। हुस्सेन षांन=हुसेन खाँ—यह मीर हुसेन का पुत्र जान पड़ता है और संभव है कि उसी वंश का कोई अन्य संवन्धी हो। जैसा रासो सम्यौ ६ में हम पढ़ते हैं कि मीर हुसेन ग़ोरी के भारत पर आक्रमणों का कारण था। मीर हुसेन, शाह हुसेन या हुसेन ख़ाँ एक वीर योद्धा था जो ग़ोरी का चचाज़ाद भाई था और उसी (ग़ोरी) के दरबार में रहता था। चित्ररेखा जिसका वर्णन रासो सम्यौ ११ में है, सुलतान की रूपवती प्रेयसी वेश्या थी। उसकी आयु पंद्रह वर्ष की थी और वह गान विद्या में निपुण थी। शाह उसको बहुत चाहता था। हुसेन भी चित्ररेखा से प्रेम करने लगा और वह भी हुसेन को चाहने लगी। शाह को यह खबर लगी तो उसने हुसेन को बहुत बुरा भला कहा परन्तु हुसेन और चित्ररेखा का प्रेम कम न हो सका। अंत में हुसेन ख़ाँ को ग़ज़नी छोड़ देनी पड़ी। वह अपना धन, परिवार और चित्ररेखा को लेकर भाग निकला और पृथ्वीराज की शरण में आया। पृथ्वीराज ने कुछ पशोपेश के बाद उसे अभयदान दिया। यह सुनकर ग़ोरी आग बबूला हो गया और चौहान पर

(१) ना०—दोइ।

चढाई कर दी। युद्ध में बडी वीरता दिखाकर हुसेन ख़ॉ वीर गति को प्राप्त हुआ। गोरी पकड लिया गया। चित्ररेखा हुसेन की कब्र मे दफन हो गई। पॉच दिन का क़ैदखाना भुगत कर गोरी हुसेन ख़ॉ के पुत्र ग़ाजी को लेकर और कभी युद्ध न करने का वचन देकर ग़ज़नी लौट गया, गाजी (या हुसेन ख़ॉ) को ग़ोरी ने ग़जनी जाकर कैद मे डलवा दिया। एक महीने पॉच दिन बाद हुसेन ग्वॉ क़ैदखाने से भाग निकला और पृथ्वीराज के पास आ गया [मास एक दिन पंच रहि बद्धि धाइ हूसैन, पग लग्गौ चौहान कै राज प्रसन्निय वैन॥" समय १०, छं० २]। मीरहुसेन 'तबकाते नासिरी' मे वर्णित नासिरुद्दीन हुसेन है जिसे फारसी इतिहासकारो ने छिपाने का बडा प्रयत्न किया है [Tabaqat-1-Nasiri, Raverty, pp. 322-23, 332]। धक्काइ धक्काइ=धक्का मुक्की करते हुए। दोउ हरबल बल मज्झे=दोनो हरावल सेना के बीच मे, [दोनो हलबल मचाती हुई सेना के बीच से'–ह्योर्नले]। पच्छ सेन=सेना के पीछे। आहुट्टि=दौडकर, आकर; ('आहुट्टि' एक योद्धा भी है)। अनी बंधी=सेना को बॉधा। आलुज्झे=उलझ गये। विय=दो। सुलतान दल दह=सुलतान की सेना को कष्ट देते हुए। बर=भलीभॉति, अच्छी तरह। बीर बर=श्रेष्ठ वीर। धार धार=तलवारे। धारह धनी=धार देश का अधिपति (जैतसिह प्रमार)। बर भट्टी=श्रेष्ठ भीमराव भट्टी। उप्पारि करि=उखाड फेंका।

कवित्त

छत्र मुजीक सु अप्पि, जैत दीनो सिर छत्रं।
चन्द्रव्यूह अङ्कुरिय राजु, हुअ तहॉ इकत्रं॥
एक अग्र हुस्सैन[1], वीय अग्रह पुण्डीरं।
मद्धि भाग रघुवंस, राम उप्भो[2] बर बीरं॥
सांषलौ सूर सारंग दे, उररि षांन गोरीय मुष।
हथ नारि जोर[3] जंबूर घन, दुहूँ बॉह उप्भेति[4] रुष[5]॥ छं०७१। रू०५६।

कवित्त

छट्टि अद्ध बरघटिय, चढ्यौ मध्यांन भांन सिर।
सूर कंध बर कट्टि[6] मिले काइर •कुरंग बर॥
घरी अद्ध बर अद्ध, लोह सो, लोह जु[7] रुक्के।
मन अग्गै अरि मिले, चित्त में कंक षरक्के॥

(१) ना०—हूसैन (२) ना०—उब्भौ (३) ना०—गोर; ए० कृ० को—जो, जोरो (४) ना०—उब्भंति (५) ना०—रष; कृ०—सख (६) ना०—कट्टिड (७) हा०—हे।

पुंडीर भीर भंजर भिरन, लरन तिरच्छो लग्गयो।
नव बधू जेम संका सुबर, उद्दौ जानि जिमि भग्गयौ ॥छं० ७२। रू० ६० ।

भावार्थ—रू० ५६—दृढ़ (=मुख्य) छत्र अपने सर पर धारण कर जैत सेनापति बना और उसने सेना को चन्द्रव्यूह में खड़ा किया। वहाँ सब राजे महाराजे एकत्रित हुए। एक सिरे पर हुसेन ख़ाँ था और दूसरे सिरे पर पुंडीर था और बीच में वीर योद्धा रघुवंशी राम था। साँखल का योद्धा और सारंग दे गोरी के संमुख पड़े (या गोरी के ख़ानों पर सामने से आक्रमण करने के लिये प्रस्तुत थे)। वे दोनों (चामंड और हुसेन ख़ाँ) दोनों सिरों पर बहुत सी छोटी और बड़ी तोपें लिये हुए क्रोधित खड़े थे।

रू० ६०—छठी घड़ी आधी बीती थी कि मध्याह्न का सूर्य सर पर आ गया। शूरों ने कायरों के कंधे सर से काट दिये जब वे हरिणों के समान उन के आगे पड़ गये। पूरी आधी घड़ी तक तलवार से तलवार बजती रही। (शूरवीरों की) अभिलाषा थी कि सामने शत्रु मिले और उनका ध्यान तलवारों की मूठों पर था। युद्ध में शत्रु के दल का नाश करने वाले पुंडीर ने जब एक पक्ष से वार किया तो गोरी की सेना इस प्रकार भाग खड़ी हुई जिस प्रकार नव वधू सूर्योदय देखकर अपने पति के पास से लज्जावश भाग जाती है।

शब्दार्थ—रू० ५६—मुजीक <अ० مضقة (मुज़क्क़ा)=दृढ़; यहाँ मुख्य से तात्पर्य है); ह्योर्नले ने<अ० مضايقة (मुज़ायक़ा) से जो उत्पत्ति की है वह यहाँ ठीक नहीं है। सु=वह। अप्पि=अपना; अर्पित। दीनों सिर छत्रं= सिरपर छत्र लगाया अर्थात् सेनापति बना। अङ्कुरिय=अङ्कुरित हुआ। राजु= राजा गण। हुअ तहाँ इकत्रं=वहाँ एकत्रित हुए। एक अग्र=एक सिरे पर। बीय अग्रह=दूसरे सिरे पर। पुंडीरं=चंद पुंडीर। मधि=मध्य। उप्भो (या उभ्भो) =उपस्थित। सांषलो सूर=साँखलका योद्धा; साँखलौ—राजपूतों की एक जाति भी कही जाती है जिसका ठीक पता नहीं चलता। टॉड ने (Rajasthan. Vol. I, p. 93 में) और उनके अनुकरण पर शेरिंग ने (Hindu Tribes and Castes. Vol. I, p. 146 में) इन्हें प्रमार जाति की ३५ शाखाओं में से एक तथा मारवाड़ निवासी और पूगल का अधिपति बताया है। दूसरी ओर (Asiatic Journal. Vol. XXV, pp. 106 में) टॉड का कथन है कि साँखला, परिहार जाति की एक प्रशाखा है और शेरिंग ने (वही, पृ० १५१ में) झाँसी ज़िले के परिहारों के पूर्वजों में एक 'सारंग दे' का नाम लिया है। सारंग दे=यह वीर Hindu Tribes and Castes. p. 151 और

Asiatic Journal. Vol. XXV, p, 106 में वर्णित परिहार जाति का नहींहै वरन् कोई दूसरा वीर है जो सोलंकी या चौहान वंश का था। उररि < उलरे = झपटना। दुहूँ बाँह = दोनों सिरों पर। उपभेति रुष = क्रोधित उपस्थित थे।

रू० ६०—छट्टि=छठवीं। घटिय=घड़ी। कंध=कंधे। कट्टि=काटना। कुरंग = हरिण। लोह सों लोह जु रुक्के= लोहे से लोहा रुकता रहा। कंक = तलवार की मूठ। षरक्के=खरकती थी। चित्त में कंक षरक्के=चित्त में तलवार की मूठ खटकती थी अर्थात् ध्यान तलवार की मूठ पर था। भीर=दल के दल। भंजर=भंजन करने वाला। लरन तिरच्छो लग्गयो = जब उसने तिरछे पक्ष से लड़ना प्रारंभ किया अर्थात् जब उसने एक पक्ष से वार किया। जेम = जिस प्रकार। संका < सं० शंका (शंकित होकर या लज्जित होकर)। सुवर = स्वामी, पति। उदौ<उदय (सूर्योदय)। जानि=जानकर। जिमि = जैसे। भग्गयौ = भाग जाती है।

नोट—रू० ६०–की अंतिम दो पंक्तियों का अर्थ ह्योर्नले महोदय ने इस प्रकार किया है—

"Pundir seeing the slaying and fighting multitude, drew aside from fighting, just as a newly married woman, from shyness towards her husband, makes off on noticing the sun's rising."

"चंद पुंडीर ने छक पाकर यवन सेना पर तिरछे रुख से इस प्रकार धावा किया कि उनके पैर उखड़ गये।" रासो-सार, पृ० १०१।

छंद भुजंगी

मिले चाइ चहुआंन सा चाँपि गोरी।
स्वयं पंच कोरी निसांनं अहोरी॥
बजे आवधं संभरे अद्ध कोसं।
तिनं[1] अग्ग नीसांन मिलि अद्धकोसं॥ छं० ७३।
बरं बंबरं चौंर माहीति साई।
हले छत्र पीतं वले यार धाई॥
बुलै सूर हक्के हहक्के[2] पचारं।
घले बथ्थ दोऊ धरं जा अषारं[3]॥ छं० ७४।

(१) ना०—घने (२) ना०—दहक्के (३) ए०—अपारं।

उतंमंग तुट्टै परै श्रौन धारी।
मनो दंड सुक्की अगी बाइ बारी॥
नचै कंध बंधं हकैं सीस भारी।
तहाँ जोगमाया जकी सी[१] विचारी॥ छं० ७५।
बढ़ी सांग लग्गी बजी धार धारं।
तहां सेन दूनूं करै मार मारं॥
नचै रंग भैरूं गहै ताल वीरं।
सुरंग अच्छरी बंधि नारद्द तीरं॥ छं० ७६।
इसी जुद्ध वद्धं उबद्धे उ भानं।
भिरै गोरियं सेन अरु चाहुआनं॥
करै कुंडली तेग वग्गी प्रमानं[२]।
मनो मंडली रास तं कन्ह ठानं[३]॥ छं० ७७।
फुटी आवधं माहि सामंत सूरं।
बजै गोर ओरं मनो बज्ज भूरं॥
लगै धार धारं तिनै धरह तुट्टै।
दुहूँ कुम्भ भग्गै करंकं अहुट्टै॥ छं० ७८।
फुटी श्रोन भोमं अपी[४] बिंब राजं।
मनो मेघ बुड्ढें प्रथम्मी[५] समाजं॥
पराक्रम्म राजं प्रथीपत्ति रूठ्यौ।
रनं रुंधि गोरी समं[६] जंग जुठ्यौ॥ छं० ७९। रू० ६१।

दूहा

तेज छुट्टि गोरी सुबर, दिय धीरज तत्तार।
मो उपभै[७] सुरतान को, भीर[८] परीइ न बार॥ छं०८०। रू० ६२।

भावार्थ—रू० ७३—

गोरी चौहान से भिड़ने की इच्छा से बढ़ा। उसके साथ पाँच कोड़ी धनुर्धर थे। साँभर के सैनिकों के आयुधों की खनखनाहट आधे कोस तक जाती थी और इस (आधे कोस) के आधे कोस और आगे नगाड़े सुन पड़ते थे। छं० ७३।

---

(१) मो०—जुकीयं विचारी (२) ए० कृ०—पमानी (३) ना०—वानं
(४) कृ० ए०—अपी ; ना—अपं (५) ना०—प्रथीमी (६) ना०—सहं
(७) ना—उभ्भै (८) ए०—भरी।

अनेकों तुरें व चँवर सूर्य किरणों से उनकी छाया कर रहे थे। पीले छत्र हिल रहे थे। शूरवीर उत्साह से पुकार कर मारो मारो कहते थे। दोनों ओर की सेनायें युद्ध भूमि में उसी प्रकार दौड़ रहीं थी मानों अखाड़े में उतर रहीं हों। या—दोनों ओर के शूरवीर (परस्पर) चिल्लाकर बुलाते और गरजते हुए ललकारते थे और (मल्लों सदृश) कमर में हाथ डाले (युद्ध भूमि रूपी) अखाड़े में जा धरते (=लड़ने लगते) थे। छं० ७४।

सर कटते ही रक्त की धारा बह निकलती थी मानों आग की ज्वाला निकल रही हो। कबंध नाचते थे और कटे हुए सिर चिल्लाते थे। वहाँ योग माया (दुर्गा) भी (यह दृश्य देखकर) स्तंभित हो विचार में पड़ जाती थीं। छं० ७५।

साँग बढ़कर घुस जाती थी, तलवार से तलवार बज रही थी और दोनों सेनायें मारो मारो चिल्ला रहीं थीं। भैरव प्रसन्न होकर नाच रहे थे, गण ताल दे रहे थे और सुंदर अप्सरायें नारद के समीप खड़ी थीं। छं० ७६।

इसी युद्ध काल में सूर्य अस्त हो रहे थे तथा गोरी और चौहान की सेनायें लड़ रहीं थीं। सैनिक तलवार को ऐसा कुंडलाकार घुमाते थे मानों कृष्ण ने रास-मंडल ठाना हो। छं० ७७।

सामंतों और शूरों द्वारा फेंके आयुध गोरी की ओर जलते हुए वज्र के समान लगते थे। तलवारों से तलवारें बजकर धड़ कटते थे, दोनों कुंभ फूटते थे और खोपड़े टूटते थे। छं० ७८।

पृथ्वी पर रक्त की बहती हुई धार ऐसी सुंदर मालूम होती थी मानों बर्षा काल में बीरबहूटियाँ इकट्ठी हो गई हों। पराक्रमी महाराज पृथ्वीराज युद्ध में गोरी से क्रोध पूर्वक भिड़े रहे। छं० ७९।

रू० ६२—छं० ८०—सुभट गोरी का तेज (=साहस) छूट गया [तब] तातार [मारूफ खाँ] ने [यह कहकर] धैर्य दिया (=प्रबोधा) कि मेरे रहते सुलतान पर भीर पड़ी ही नहीं (या—मेरे रहते हुए सुलतान पर कष्ट नहीं पड़ सकता)। ["जब तक मैं उपस्थित हूँ तब तक सुलतान के पास सेना है"—ह्योर्नले]।

शब्दार्थ—रू० ६१—मिले चाइ=मिलने के चाव से। चाँपि=दबाना, बढ़ना। पंच कोरी=पाँच कोड़ी=सौ। निसानं अहोरी (निशान अहेरी)=अचूक निशाना मारने वाले अर्थात् धनुर्धर सैनिक। आवधं<आयुध=अस्त्र शस्त्र। नीसान<फा० نشان=नगाड़े। तिनं अग्ग=उनके आगे। बंबरं=तुरें। चौंर=

चँवर । हीति=सूर्य किरण । साई=छाया । हले=हिलते हैं । छत्र पीतं=पीले छत्र । वले<फा० ولے=अच्छा; बोले । यार<फा० یار=मित्र । यार घाई= यार घाव करो । हक्के=बुलाना । पचारं<प्रचारना=ललकारना । हहके पचारं= उत्साह से चिल्लाना । घले=डालकर । बथ्थ<सं० वस्ति=कटि । अषारं= अखाड़ा । उतं=उस ओर । मंग=माँग, सर । उतमंग (डिं०)<सं० उत्त-माङ्ग=शीर्ष, सिर, मस्तक; (उतमँगि किरि अम्बरि आधोअधि माँग समारि कुमारमग । ८५ । वेलि क्रिसन रुकमणी री) । तुट्टै=टूटता है । अगी बाइ बारी=आग जल रही हो । बंधं सीस=कटे हुए सर । भारी हकैं=जोर से चिल्लाते हैं । कंध=कंधे, यहाँ कवंध, धड़ । जकी=स्तब्ध ; स्तम्भित । जोगमाया=योगमाया दुर्गा जो योगिनियों के साथ युद्ध भूमि में घूमने वाली कही जाती हैं (वि० वि० प० में देखिये) । साँग=एक प्रकार का शस्त्र [दे० Plate No. III] । बजी धार धारं=तलवार से तलवार बजी, (धड़धड़ा कर घुस गई—झोर्नले) । मार मारं=मारो मारो । भैरूं [<भैरव]-शिव के एक प्रकार के गण जो उन्हीं के अवतार माने जाते हैं । पुराणानुसार जिस समय अंधक राक्षस के साथ शिव का युद्ध हुआ था, उस समय अंधक की गदा से शिव का सिर चार टुकड़े हो गया था और उसमें से लहू की धारा बहने लगी थी । उसी धारा से पाँच भैरवों की उत्पत्ति हुई थी । तांत्रिकों के अनुसार और कुछ पुराणों के अनुसार भी भैरवों की संख्या साधारणत: आठ मानी जाती है जिनके नामों के संबंध में कुछ मतभेद है । कुछ के मत से महा भैरव, संहार भैरव, असितांग भैरव, रुरु भैरव, काल भैरव, क्रोध भैरव असितांग भैरव, ताम्रचूड़ और चंद्रचूड़ तथा कुछ के मत से असितांग, रुरु, चंद, क्रोध, उन्मत्त, कपाल, भीषण और संहार ये आठ भैरव हैं । तांत्रिक लोग भैरवों की विशेष रूप से उपासना करते हैं । गहै ताल वीरं=गण ताल दे रहे हैं । सुरंग = सुन्दर । अच्छरी <अप्सरा=स्वर्ग की नर्तकी । इंद्र की सभा में नृत्य करने वाली देवांगना परियाँ जो समुद्र मंथन काल में समुद्र से निकलीं थीं और इंद्र को मिलीं थीं (विष्णु पुराण—१।९।९९ । नारद देवर्षि का नाम जो ब्रह्मा के मानस पुत्र कहे जाते हैं (वि० वि० प० में) । तीरं =समीप । बद्धं=बँधकर, लगकर । उबद्धेउ<सं० उपार्द्धितक>प्रा० अप० उबधिओ ; [या—उबद्धेउ<सं० अपवाधितक>प्रा० अप० ओबधिओ] । उबद्धेउ भानं=सूर्य अस्त होते हैं । कुंडली=कुंडलाकार । वग्गी <वर्गी= सैनिक (Growse) । मंडली रास=रास मंडल । कन्ह=कृष्ण । ठानं=ठाना हो । फुठी=फूटी, फूटना । माहिं<सं० मध्य=में । बजै गोर ओरं=गोरी की

ओर लगते हैं। बज्ज<वज्र। भूरं=सूखे (यहाँ 'जलते हुए' का संकेत है)। तिनं धरह तुट्टै=उनके धड़ टूटते हैं। दुहूँ=दोनों। कुम्भ=कनपटी। भग्गै <सं० भग्न। करंकं=हड्डी; (उ०—'लेखनि करौं करंक की' जायसी)। अहुट्टैं=फूटना। श्रोन<श्रोणित=रक्त। भोमं=पृथ्वी। अपी बिंब राजं= ऐसी सुन्दरता हो जाती है। मेघ बुड्ढे=मेघ की बुढ़ियाँ, बीर बहूटियाँ। पराक्रम्म राजं=पराक्रमी राजा। प्रथीपत्ति<पृथ्वीपति=पृथ्वीराज। रूठ्यौ= रूठना (यहाँ 'क्रोध पूर्वक' का संकेत है)। रुंधि=रुँधकर। समं=साथ। जंग<फा० جنگ=युद्ध। जंग जुथ्यौ=युद्ध में भिड़ा रहा।

रू० ६२—तेज छुट्टि=साहस भंग हो गया। सुवर<सुभट=श्रेष्ठ वीर। दिय धीरज=धैर्य दिया, प्रबोधा। तत्तार=तातार मारूफ खाँ। मो=मेरे। उप्भै (उब्भै)=उपस्थित होते। भीर=कष्ट। परीइ न बारु=इसबार पड़ी ही नहीं।

छंद मोतीदाम

रतिराज रु जोवन राजत जोर।
चंप्यौ ससिरं उर सैसव कोर॥
उन मधि मद्धि मधू धुनि होय।
तिनं उपमा बरनी कवि कोय[1]॥ छं० ८१।
सुनी बर आगम जुब्बन[2] बैन।
नच्यौ कबहूँ न सु उद्दिम मैंन॥
कबहुँ दुरि क्रंनन पुच्छत[3] नैन।
कहौ किन अब्ब दुरी दुरि बैन॥ छं० ८२।
ससि रोरन सैसव दुंदुभि बज्जि।
उभै रतिराज स जोवन[4] सज्जि॥
कही बर श्रौन सुरंगिय रज्जि।
चपे नर[5] दोउ बनं बन भज्जि॥ छं० ८३।
इय् मीन नलीन भये अति[6] रज्जि।
भय् बिभ्रम भारु परीवहि[7] नज्जि॥
मुर् मारुत फौज प्रथंमं चल्लाइ[8]।
गति लज्जि सकुच्छि[9] कछे मिलि आइ॥ छं० ८४।

---

(१) ए० कृ० को०—कोह, कोय, होइ; ना०—जोय (२) ए०—जुद्धन (३) मो० ए० को०—पुच्छन (४)—सुजोवन; ए०-सजीवन (५) ना०—रन; ए० कृ० को०—नर (६) ना०—रत (७) ना०—परी गहि नज्ज; हा०—परी न हि नंजि (८) हा०—चहाइ(९) ना०—सँकुच्चि; हा०—सँकुच्चि।

दहि सीतम धूप न कंदहि जीव।
प्रगटै उर तुच्छ सोऊ उर भीव॥
बिन पल्लव कोर हिता रहि संभ[1]।
गहना बिन बाल बिराजत अंभ॥ छं० ८५
कलि कंठन कंठ सज्यौ अलि पंष।
न उड्डिय भंग नवेलिय अंष॥
सजी चतुरंग सज्यो बनराइ।
बजी इन उप्पर सैसब जाइ॥ छं० ८६।
कवि मत्तिय जूह तिनं वहु घोर।
अनंत[2] वैसंधय चंद कठोर॥ छं० ८७। रू० ६३।

भावार्थ—रू० ६३—

जिस तरह ऋतुराज (वंसत) ने शिशिर को दबा लिया है उसी प्रकार यौवन ने शैशवावस्था को दबा दिया है और अब ऋतुराज और यौवन का जोड़ा सुशोभित हो रहा है। उन (वसंत और यौवन) के बीच मधुर वार्तालाप होता है और उनकी कुछ उपमायें कवि वर्णन करता है। छं० ८१।

यौवन का सुंदर आगमन जानकर क्या कामदेव उत्साहपूर्वक नहीं नाचने लगता? कभी कान नेत्रों से जाकर पूछते हैं कि देखो दौड़ता हुआ कौन आ रहा है? छं० ८२।

यह शिशिर का शब्द है या शैशव की दुंदुभी बज रही है? या दोनों ऋतुराज और यौवन (युद्ध के लिये) सज रहे हैं? (नेत्र कानों को उत्तर देते हैं कि) लाल रंग से अलंकृत होकर (या सुंदर वस्त्राभूषणों से सजकर) दोनों (मनुष्य) [ऋतुराज और यौवन] बन को भाग गये हैं। छं० ८३।

नोट—['इय मीन नलीन भये अति रज्जि' इस पंक्ति से प्रस्तुत रूपक की अंतिम पंक्ति तक एक पंक्ति में यौवन और दूसरी में ऋतुराज या वसंत का क्रमशः वर्णन है।]

(वसंत ऋतु में) मछलियाँ (कमल के डंठलों के समीप) रहकर प्रसन्न होती हैं। (यौवन काल में) भय और विभ्रम (=संदेह) का भार लज्जा ढोती है। (वसंत में) अपनी बारी पर प्रथम मारुत देव अपनी (मृदुल वायु) चलाते हैं। (यौवन में) लज्जित चाल और संकोच इकठा हो जाते हैं।

---

(१) ना०—कोरहि तारहि रंभ; ए०—कोरहि तारै संभ (२) ना०—वर्म तब संधय चंद कठोर।

(वसंत में) शीत से दग्ध प्राणियों को धूप से कष्ट नहीं होता है। (यौवन में) प्रेम का संचार मन में होता है और वही उर (हृदय) में भय का संचार करता है। (वसंत में) वृक्षों में पतझड़ हो जाता है परन्तु पत्तों के निकलने की फिर आशा रहती है। (यौवन में) आभूषण विहीन होने पर भी बाला का मुँह सुंदर रहता है। (वसंत में) कोयलें अपना स्वर और भ्रमर अपने पंख सजाते हैं। (यौवन में) उड़ते हुए भौंरों के स्थान पर नवेलियों की काली आँखें दिखाई पड़ती हैं। अपने लिये चतुरंगिणी सेना सजाने के लिये (वसंत ने) वन के वृक्षों की पंक्तियाँ सजाई हैं और (यौवन पर) आक्रमण करने के लिये शैशव ने (दुंदुभी या ढोल) बजा दिया है। कवि की बुद्धि अनेक उपमाओं का कथन नहीं कर सकती। इन दो अवस्थाओं (शैशव और यौवन) के मिलन (वय:संधि) का वर्णन चंद के लिये कठिन है।

शब्दार्थ—रू० ६३—रतिराज < ऋतुराज=वसंत (कामदेव का साथी)। जोबन<यौवन। राजत=सुशोभित। जोर=जोड़ा। चँप्यौ = दाबकर, समाप्त करके। ससिरं=शिशिर ऋतु। उर शैशव कोर=शैशव के हृदय को छेदकर अर्थात् शैशव काल को दबाकर। उनी मधि मद्धि=उन (ऋतुराज और यौवन) के बीच में। मधू धुनि होय=मधुर वार्तालाप होता है। जुब्बन<योवन। बैन <वचन= शब्द। उद्दिम<सं उद्यम (उत+यम+अल)=उत्साह पूर्वक। मैंन <सं० मयन=कामदेव। ढुरि=दौड़कर। क्रंनन<कर्ण=कान। ढुरी ढुरि= आता हुआ; दौड़ता हुआ। ससि रोरन=शिशिर का शब्द। उभै<उभय= दोनों। श्रौन < श्रवण=कान। सुरंग्गिय= सुरंग (लाल रंग जो होली के अवसर पर फेंका जाता है)। रज्जि=सजकर। नर दोउ=दोनों मनुष्य (ऋतुराज और यौवन)। चपे=दब गये (यहाँ छिप गये से तात्पर्य है)। मीन=मछलियाँ। नलीन< नलिन=कमल। अति रज्जि=अत्यंत (रंजित) प्रसन्न होकर। बिंभ्रम=संदेह। भारु=भार, बोझ। परीवहि<परिवाह=वहन करना, ढोना। भीव=भय। तुच्छ—यह 'प्रेम' के लिये प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है। नज्जि <सं०√नज=शरमाना, लजाना; लज्जा। मारुत=वायुदेव का नाम। मुर= मुड़ना; अपनी बारी आने पर। फौज< अ० فوج = सेना। सकुच्छि< संकोच। कछे<कठे = एक साथ, इकट्ठे। दहि=जलाना। कंदहि=कष्ट पहुँचाना; नाश करना। सीतम=शीत। अंप=आँखें। मत्तिय=मति, बुद्धि। जूह < सं० यूथ >जूथ=समूह। ब्रनंत=वर्णन। वैसंधय<सं० वय:.संधि=दो अवस्थाओं—शैशव और यौवन का—मिलन। चंद कठोर=चंद कवि के लिये कठिन विषय है।

नोट—मोतीदाम छंद का लक्षण—

यह वार्णिक छंद है। इसके प्रत्येक छंद में चार जगण होते हैं।

(१) 'प्राकृत पैङ्गलम्' में मौक्तिकदाम [> ———मोतिअदाम > ———मोतियदाम मोतीदाम=मोतियों की माला] छंद वर्णवृत्त के अंतर्गत माना गया है और इसका लक्षण इस प्रकार कहा गया है—

पओहर चारि पसिद्धह ताम
ति तेरह मत्तह मोत्तिअ दाम।
ण पुब्बहि हारु ण दिज्जइ अंत
बिहू सअ अग्गल छप्पण मत्त॥ II, १३३॥

(अर्थात् चार पयोधर वाला, तेरह मात्राओं का मोतीदाम छंद होता है। प्रत्येक चरण के आदि अंत में लघु रहते हैं। १६ चरणों के इस छंद में कुल २५६ मात्रायें होती हैं।)

(२) रूप-दीप-पिंगल में इसका निम्न लक्षण दिया है—

'कली मधि च्यार जगन्न बनाय
करो षिण मत्त सें षोडश पाय।
बतावत शेस सुनो शुभ नांम
कहावत छंद सु मोतियदाम।'

(३) 'भानु' जी ने अपने 'छंदः प्रभाकर' में इस छंद को चार जगण (।ऽ।) वाला मात्र कहकर समाप्त कर दिया है।

छंद रसावला

बोल षुच्चै घनं। स्वामि जंपे मनं।
रोस लग्गे तनं। सिंह मद्दं[1] मनं॥ छं० ८८।
छोह मोहं षिनं। दांन छुट्टे ननं।
नाम राजं घनं। ध्रंम सातुक्कनं॥ छं० ८९।
मेच्छ बाहं बिनं। रत्त कंधं न नं।
ढल्ल जा ढाहन्नं। जीव ता सा हनं॥ छं० ९०।
बांन जा संधनं। पंषि जा बंधनं।
श्याम सेतं अनी। पीत रत्तं घनी॥ छं० ९१।
बूह मच्ची षरी। रोस दंती फिरी।
फौज फट्टी पुनं। सूर उप्भे[2] घनं॥ छं० ९२।

(१) ना – मदं (२) ना० – उब्भै।

लेहु लेहु करी। लोह काढे अरी।
कन्ह जा संभरी। पाइ मंडै फिरी॥ छं० ६३।
बीर हक्कें करी। नेंन रत्तं बरी।
षंड जा षोलियं। बीर सा बोलियं॥ छं० ६४।
बीर बज्जे धुरं। दंति कट्टे छुरं।
भार संकोरियं। फौज विप्फौरियं॥ छं० ६५।
दंति रुद्धी परे। अग्ग फूलं झरे।
हेम पन्नारियं। जावकं ढारियं॥ छं० ६६।
आननं हंकयं। अंग जा नंचयं[1]।
सत्त सामंतयं। बांन सा पथ्थयं॥ छंद ६७।
फौज दोऊ फटी। जांनि जूनी टटी।
....। ....॥ छं०६८। रू०६४।

भावार्थ—रू० ६४—खच्च खच्च का शब्द अत्यधिक बढ़ गया। स्वामी (पृथ्वीराज) अपने मन में प्रार्थना करने लगे। उनको क्रोधावेश हो आया और मन में सिंह का साहस भर गया तथा माया मोह क्षीण हो गये। खूब दान दिये गये। राजा की प्रशंसा होने लगी। योद्धाओं ने सात्विक धर्म का ध्यान रक्खा। म्लेच्छों के हाथ काट डाले गये और उनके कंधों से रक्त की धारा बहने लगी। जिसकी ढाल गिर पड़ी उसके प्राण चले गये। (धनुष में) प्रत्यंचा पर संधाने हुए बाण जाल में फँसे हुए पक्षियों सदृश लगते थे। काली और सफेद (श्वेत) सेनायें थीं तथा पीले व लाल रंग की भरमार थी [काली पोशाक यवनों की, सफेद क्षत्रियों की तथा लाल पीला रंग रक्त व मांस का जान पड़ता है]। घोर कोलाहल मचने लगा, (गोरी के) हाथी क्रोधित होकर इधर उधर दौड़ने लगे (जिसके कारण) फौजें फट गईं और शूर वीर स्थान स्थान पर झुंडों में खड़े हो गये। पकड़ो पकड़ो की पुकार मच गई (और) तलवारें निकल आईं। [यह देखकर] कन्ह (अपने धनुष की) प्रत्यंचा सँभाल इधर उधर दौड़ने लगे। वीर गरजे और उनके नेत्र रक्त वर्ण हो गये। खाँड़े निकल आये (और सैनिक गण) वीरों के समान बोलने लगे तथा क्रूरता पूर्वक लड़ने लगे। तलवारों के इधर उधर वार पड़ने से हाथी घायल हो गये तथा फौज छितरा गई। (अंत में) हाथी अवरुद्ध हो गये (तब उनपर) आग के शोले फेंके गये। सोने की पनारियों से गुलाल डाला गया। (कटे हुए) मुँह (सिर) चिल्लाने लगे और

---

(१) ए०—जामं चयं।

कबंध नाचने लगे। सात सामंतों ने शाह का मार्ग (खाई सदृश) रोक बन कर रोका और दोनों सेनायें अपने सामने टट्टी अड़ी देख कर अलग हो गईं।

शब्दार्थ—रू० ६४—बोल=शब्द। घुच्चै=खच खच–अस्त्र द्वारा मांस कटते समय की आवाज़। घनं=घना, अधिक। स्वामि<स्वामी (पृथ्वी-राज)। जंपे मन=मन में जपने लगे या प्रार्थना करने लगे या मन में कहने लगे। मद्दं=मद; साहस। सिंह मद्दं मनं=मन में सिंह का सा साहस भर गया। छोह=ममता। छोह मोहं=माया मोह। षिनं<क्षीण=कम हो गया। दांन छुट्टे ननं=खूब दान दिये गये [—युद्ध के अवसर पर शकुन के लिए तथा देवताओं को प्रसन्न करने के लिये ब्राह्मणों को दान दिये जाने के वर्णन मिलते हैं]। राजं=राजा (पृथ्वीराज)। ध्रंम<धर्म। सातुक्कनं<सात्विक। ध्रंम सातुक्कनं=सात्विक धर्म पर दृष्टि रक्खी गई अर्थात् योद्धाओं ने सात्विक धर्म (—युद्ध में विपक्षी के कमर से नीचे वार न करना आदि–) निबाहा। बाहं=बाँह, भुजायें। मेछ बाहं बिनं=म्लेच्छ हाथ रहित हो गये अर्थात् उनके हाथ काट दिये गये। ['म्लेच्छ बाहन (=सवारी) रहित कर दिये गये'—ह्योर्नले]। रत्त कंधं ननं=कंधों से अत्यधिक रक्त बहने लगा; ['अनेक गरदनें रक्त से लाल हो गईं'—ह्योर्नले]। ढल्ल=ढाल। जा=जिसकी। ढाहनं=गिर गई। जीव=प्राण। ता=उसका। हनं=मारना। संधनं=संधानना (=बाण को धनुष पर चढ़ाना)। पंषि<पक्षी। बंधनं=जाल; बँधे हुए। सेतं<श्वेत=सफेद। पीत रत्तं=पीला और लाल। फौज फट्टी पुनं=फौज फट गई; [–हाथियों के क्रोधपूर्वक दौड़ने से सेना में भगदड़ मच गई]। उप्भे (उब्भे)=उपस्थित। सूर उप्भे घनं=शूर घने उपस्थित हुए अर्थात् योधागण झुंडों में खड़े हो गये। लेहु लेहु करी=(करि=) हाथियों को लो लो (पकड़ो पकड़ो); [या–लो लो करने लगे]। लोह काढे अरी=शत्रु ने तलवारें खींच लीं या शत्रु के विपक्ष में तलवारें खिंच गईं। कन्ह=पृथ्वीराज के चाचा। 'कन्ह जा संभरी। पाइ मंडै फिरी'=कन्ह अपना धनुष सम्हाले हुए पैर अस्थिर करने लगे अर्थात् इधर उधर दौड़ने लगे। जा< सं० ज्या=प्रत्यंचा। हक्के=चिल्लाना। नैंन<नयन=नेत्र। रत्तं बरी=रक्तवर्ण होना। खंड<खाँड़ा=सीधी दुधारी तलवार [दे० Plate No. III]। सा=समान। बीर सा बोलियं=वे वीरों के समान बोलने लगे। बीर बज्जे धुरं=वीर क्रूरता पूर्वक लड़ने लगे। दंति कटटे छुरं=हाथियों को छूरों (=तलवारों) से काट दिया। झार संकोरियं=इधर उधर से वार करके। बिप्फौरियं=फोड़ना। फ़ौज बिप्फौरियं=फौज को छितरा दिया। रुद्धी परे=अवरुद्ध हो गये। अग्ग

फूलं झरे=आगे आग के फूल या शोले झाड़े (डाले) गये। हिम=सोना। पन्नारियं=पनारियों से। जावकं ढारियं=आलता डाला गया। जावकं<प्रा०; अप० जावय<सं० यावक=आलता, लाख का रंग। आनंनं हंकयं=मुख चिल्लाये। अंग=शरीर। अंग जा नंचयं=कवंध नाचने लगे। सत्त सामंतयं=सात सामंतों ने [शाह की प्रथम बाढ़ में इन्हीं सात सामंतों को वीर गति प्राप्त हुई थी]। बांन=जाल, चटाई। बांन सा पथ्थयं=शाह के पथ को रोक सी बनकर रोका। सा=वह; सदृश। पथ्थयं=पथ, मार्ग। फौज दोऊ फटी= दोनों फौजें अलग अलग हो गईं। जानि जूनी टटीं=टट्टी अड़ी हुई जान कर।

नोट—रसावला छंद का लक्षण—

इस नाम के छंद का पता उपलब्ध छंद ग्रंथों में नहीं लगता परन्तु इसका लक्षण विमोहा छंद के सर्वथा अनुरूप है। 'विमोहा के नाम जोहा, विजोहा द्वियोधा और विजोदा भी मिलते हैं'—छंद: प्रभाकर, भानु। 'विमोहा' वर्ण वृत्त है।

'प्राकृत पैङ्गलम्' में इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

अक्खरा जं छआ पाअ पाअं ठिआ।
मत्त पंचा दुणा बिण्णि जोहा गणा॥ II, ४५॥

[अर्थात्—जिसके प्रत्येक चरण में छै अक्षर दस मात्रायें और दो रगण (ऽ।ऽ) हों।]

संभव है कि रासोकार के समय में यह विमोहा छंद 'रसावला' नाम से भी प्रख्यात रहा हो।

कवित्त

सोलंकी माधव नरिंद, [षांन[1]] षिलची मुष लग्गा।
सुबर बीर रस बीर, बीर बीरा रस पग्गा॥
दुअन बुद्ध जुध तेग, दुहूँ हथ्थन उप्भारिय[2]।
तेग तुट्टि चालुक, बथ्थ परि कढ्ढि कटारिय॥
अग अग्ग रुक्कि ठिल्ले बलन, अधम जुद्ध लग्गे लरन।
सारंग बंध घन घाव परि, गोरी वै दिन्नौ[3] मरन॥ छं० ६६। रू० ६५।

भावार्थ—रू० ६५—सोलंकी माधव राय का खिलजी ख़ाँ से मुक़ाबिला पड़ा। दोनों श्रेष्ठ वीर थे (अत: आमने सामने आते ही) वीर रस में पग

---

(१) 'षांन' पाठ अन्य प्रतियों में नहीं है परन्तु डा० ह्योर्नले ने इसे दिया है
(२) ना०—उभ्भारिय (३) ए० कृ० को०—दीनौ; ना०—दिन्नौ।

गये। युद्ध में प्रबल दोनों वीरों ने दोनों हाथों से तलवारें उठा लीं। (अंत में लड़ते लड़ते) चालुक्य की तलवार टूट गई और तब उसने कमर से कटार खींच ली। परन्तु बैरियों ने उसे चारों ओर से घेर लिया और अधम युद्ध होने लगा। सारंग के बंधु के अनेक घाव लगे जिससे वह गिर पड़ा और ग़ोरी ने उस पर मरने वाला वार किया (अर्थात् ग़ोरी ने उसे मार डाला)।

शब्दार्थ—रू० ६५—सोलंकी (या चालुक्क)—राजपूतों की जाति विशेष। अन्हिलवाड़ापट्टन गुजरात में राज्य करने वाले इसी राजपूत कुल के थे। भीमदेव द्वितीय उपनाम भोला जयचंद के बाद पृथ्वीराज का भयानक प्रतिद्वंदी था। अपने पिता सोमेश्वर की हत्या का बदला लेने के लिये चंद कवि का कथन है कि पृथ्वीराज ने भीमदेव को युद्ध में मार डाला (रासो-सम्यौ ४४)। यह बात 'रासमाला' (Rasmala. Forbes Vol. I, pp. 221-30) से भी प्रतिपादित होती है। साथ ही चंद ने भीमदेव के पुत्र कचरा चालुक्कराव या कचराराय-चालुक्क-पहु के विषय में लिखा है कि संयोगिता अपहरण वाले युद्ध में वह भी पृथ्वीराज के साथ था और उसी युद्ध में गंगा में डूब गया [रासो सम्यौ ६१ तथा Asiatic Journal, Tod, Vol. XXV, pp. 106, 282]। कुछ भी हो यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि सोलंकी वंश के अनेक राजकुमार पृथ्वीराज के सामंत थे। माधव सोलंकी भी इन्हीं में था और दूसरा सारंग था जिसका वर्णन अगले छं० ७० में आता है। सोलंकी या चालुक्य राजपूत वंश छत्तीस उच्च राजघरानों में था तथा चार अग्नि कुलों में एक था। [सोलंकियों का वि० वि० देखिये—Rajasthan Tod. Vol. I, pp. 27, 100; Hindu Tribes and Castes. Sherring. Vol. I, pp. 156-58; Races of N. W. India. Elliot. Vol. I, p. 50]। खिलची=खिलजी ख़ाँ। मुष लग्गा=सामने आया; मुक़ाबिला हुआ। सुबर बीर रस बीर=सुभट वीररस में तो वीर थे ही। बीर बीरा रस पग्गा=वीर वीर-रस में पग गये। दुअन बुद्ध जुध=युद्ध में दक्ष दोनों ने। तेग = तलवार। उप्भारिय = उभारी अर्थात् उठाई। तुट्टि=टूट गई। चालुक्य—सोलंकी माधव राय के लिये आया है। बथ्थ <सं० वस्ति=कमर। [बथ्थ <वक्षस्थल=छाती]। कढ्ढि=काढ़ना, खींच लेना। कटारिय= कटार [दे० Plate NO. III]। सारंग बंध=सारंग का संबंधी; सारंग (तलवार)+बंध (बाँधने वाला); सारंग (तलवार)+बंध (वार, घाव)। दिन्नौ मरन=मरने वाला आघात किया।

कवित्त

खग्ग[1] हटक्कि जुटिक, जमन सेन समुंद[2] गजि।
हय गय बर हिल्लोर, गरुअ गोइंद दिष्षि सजि॥
अगम[3] अठेल अभंग, नीर असि मीर समाहिय।
अति दल बल आहुट्टि, पच्छ लज्जी परवाहिय॥
रज तज्ज रज्ज मुक्कि न रह्यौ, रज न लगी रज रज भयौ।
उच्छंगन अच्छर सों लयौ, देव बिमानन चढ़ि गयौ॥ छं०१००। रू०६६।

भावार्थ—रू० ६६—जब वह (ख़ान ग़ोरी या खिलजी ख़ाँ) तलवार रोक कर खड़ा हुआ तो यवन सेना समुद्र की भाँति गरजने लगी। हाथी और घोड़ों को बड़ी लहर सदृश आते देख गरुअ गोइंद ने अपने को (आगे बढ़कर युद्ध करने के लिये) सजाया। अगम्य, अठेल, अभंग जल की धार सदृश मीर सामने आये [या—अगम्य अठेल अभंग जल की भाँति अस्सी मीर आगे बढ़े] और अत्यधिक दल बल से आहुट्टि (गरुअ गोइंद) को लज्जित कर प्रवाहित कर दिया [अर्थात् आहुट्टि को मार डाला]। यद्यपि उसका (पृथ्वी का राज्य) चला गया परन्तु राजा होने से वह न रुक सका। उसके धूल नहीं लगी (अर्थात् इस प्रकार के विषम युद्ध से वह भयभीत हो विमुख नहीं हुआ वरन् वीरता पूर्वक युद्ध करके वीर गति को प्राप्त हुआ; या—'रजन लगि' का अर्थ 'धूल में लगकर या गिरकर' भी लिया जा सकता है) या [—वैरी के बड़े दल बल को रोकने में समर्थ होकर उसने अपने पक्ष की लज्जा को धो दिया]। राज्य (वैभव) त्याग रूपी रज्ज (<रज्जु=रस्सी) उसे रोक न सकी, वह रज रज (टुकड़े टुकड़े) हो गया परन्तु उसने अपने रज (धूल) न लगने दी; (और) वह रज (=आकाश=स्वर्ग) में पुनः रज (=राजा या राज्यपद पर) हो गया। अप्सराओं ने उसे गोद में ले लिया और देवताओं के विमान पर चढ़कर वह (स्वर्ग लोक) चला गया।

नोट—"यवन सेना के कई एक सिपाहियों ने मिलकर माधवराय को मार डाला। यह देखते ही गोइंद राव का भाई यवन दल रूपी समुद्र को दीर्घकाय मगर की भाँति मथता हुआ खिलजी खाँ के ऊपर टूट पड़ा परन्तु उसे भी कई एक मुसलमान सिपाहियों ने काट कर टूक टूक कर दिया।" रासो-सार, पृष्ठ १०२। प्रस्तुत कवित्त में दीर्घकाय मगर या उसका पर्य्याय-वाची कोई शब्द नहीं है। रासो-सार लेखकों की 'मगर' की उपमा सचमुच

---

(१) ना०—षग्ग, हा०—थग्ग (२) ना०—समंद (३) ना०—अनम।

अनूठी है। पानी की धार का वर्णन ता इस रूपक में है ही अब पानी में रहने वाला भी कोई होना चाहिये और वह 'दीर्घकाय मगर' से अच्छा और कौन कहा जा सकता था।

शब्दार्थ—रू० ६६—खग्ग <सं० खड्ग=तलवार [दे० Plate NO. III]। हटक्कि=रोकना। टिक्क=टिकना—(यहाँ स्थिर होकर खड़े होने से तात्पर्य है)। जमन <सं० यवन। समुंद (समंद) <समुद्र। गजि=गरजना। हय =घोड़े। गय <सं० गज=हाथी। वर हिल्लोर=श्रेष्ठ हिलोर अर्थात् बड़ी लहर। गरुअ गोइंद—यह पृथ्वीराज के प्रसिद्ध सामंतों में था। अन्य राजाओं के साथ इसने भी रावल समरसिंह को दहेज दिया था ["दियौ राज गोइंद=आहुट्ठ राजं। दियं तीस हथ्थी महा तेज साजं।" सम्यौ २१, छं० १०८]। इसने दो बार गोरी को पकड़ा था ["गोयंद राव गहिलौत नेस। जिन दोय फेर गज्जन गहेस" ॥ सम्यौ २१, छं० ६३८]। साधारणत: इसके ये नाम मिलते हैं—गोविन्द राव, गोविंद राय, गोविन्द राज। यह गुहिलोत (=गुहिल पुत्र) वंश का था अतएव गुहिलोत राजवंशी उपाधि 'आहुट्ठ' भी इसको मिली थी ("गोयंद राजा आहुट्ठ पति")। गरुअ गोइंद की मृत्यु इसी कवित्त में स्पष्ट वर्णित है इसलिये यह प्रसिद्ध गोविन्दराज गुहिलोत नहीं है वरन् उसका भाई या अन्य संबंधी है। प्रसिद्ध गोविन्दराज संयोगिता अपहरण के अवसर पर पृथ्वीराज के साथ था ["मतौ गरुअ गोयंद कहि। वर ढिल्ली सुर पान॥ हथ्थ वीर विरुझाइ चलि। धर लग्गै सुरतान॥" सम्यौ ६१]। चंद बरदाई ने उसकी प्रशंसा इस प्रकार की है ["गुरू राव गोयंद बंदै सु इंदं। सुतं-मंडलीकं सबै सेन चंदं॥" सम्यौ ६१, छं० १११]। अंत में इसी युद्ध में बड़ी वीरता से लड़कर वह पंचत्व को प्राप्त हुआ ["उठे हक्कि करि झारि कोपेज डालं। हये च्यार मीरं दुवाहंड ढालं॥ उरं लग्गि जंबूर आरास बानं। पर्‍यौ राव गोयंद ढिल्ली कुजानं॥" सम्यौ ६१, छंद १४७२]। वह पृथ्वीराजके बहनोई समरसिंह गुहिलोत का निकट संबंधी रहा होगा। "उसने पृथ्वीराज की बहिन से विवाह किया", [Races of N. W. Provinces of India, Elliot. Vol. I, p. 90]। इलियट महोदय ने समरसिंह गुहिलोत तथा गोविंद गुहिलोत नामों को समझने में भूल कर दी इससे भ्रमवश ऐसा लिख गये हैं। अगले रू० ८४ में हत वीरों के साथ प्रस्तुत कवित्त में वर्णित गरुअ गोइंद, 'जैत गोर (गरुआ)' के नाम से आता है। दिष्षि सजि=सजा हुआ दिखाई पड़ा। नीर=जल। असि= (१) धार (२) अस्सी (३) तलवार। समाहिय (<सं० समाधित=समाधिस्थ)= इकट्ठे हुए, दौड़े, सामने आये। लज्जी=लज्जित कर दिया। परवाहिय=

प्रवाहित कर दिया, बहा दिया। रज=पाँच 'रज' आये हैं जिनके अर्थ क्रमशः इस प्रकार किये गये हैं—(१) रज = राज्य, वैभव (२) रज्ज=राजपद, रस्सी (३) रज=धूलि, (४) रज = प्रकाश (स्वर्ग), धूलि कण (५) रज = राजा, धूलि कण। 'रज–रज' का 'टुकड़े टुकड़े' अर्थ भी किया गया है। उच्छंग<सं० उत्संग=गोद; [कुछ विद्वान् उच्छंग का संबंध सं० उत्साह से भी अनुमान करते हैं]। अच्छर<अप्सरा। सों लयो=[ह्योर्नले महोदय इसका 'सो लयम' पाठ करके 'सुला लिया' अर्थ करते हैं]। अच्छर उच्छंगन सों लयो=अप्सराओं ने उसे गोद में ले लिया; अप्सराओं ने उसे बड़े उत्साह से उठा लिया। देव बिमानन चढ़ि गयो=देव विमानों में चढ़ कर गया।

कवित्त

परि पतंग जै सिंघ, (पै) पतंग अप्पुन तन दज्झे।
(इन) नव पतंग गति लीन, करे अरि अरि[1] धज धज्जे॥
(उह) तेल ठांम बाति,[2] अगनि[3] एकल विरुज्झाइय।
(इह) पंच अप[4] अरि पंच, पंच अरि पंथ[5] लगाइय॥
आ रन्नि कूंआरी बर बरयौ, दैइ[6] दाहन दुज्जन दबन।
जीतेव असुर महि मंडलह, और ताहि पुज्जै कवन॥ छं०१०१। रू०६७।

भावार्थ—रू० ६७—पतंग जयसिंह मारा गया। उसने अपना शरीर पतिंगे के समान [युद्ध रूपी दीपक की लौ पर कूद कर] जला दिया। शत्रुओं की धज्जी धज्जी उड़ाकर वह पतंग (=सूर्य) की गति में लीन हो गया [अर्थात् सूर्य लोक को चला गया]। जिस प्रकार [जुगनू] अकेले ही दीपक बुझा देता है उसी प्रकार उसने भी [मरते मरते] अपने पाँच शत्रुओं के पंच (=पंच तत्वों से निर्मित शरीर) को पंच (=पंच तत्वों) में मिला दिया, तथा दुर्जनों (=शत्रुओं) को दवन (=अग्नि) का दाहन (=आहुति) देकर रण रूपी श्रेष्ठ कुमारी (कन्या) का वरण किया, महि मंडल के असुरों (= यवनों) को उसने जीता (अर्थात् पराजित कर दिया), कौन उसकी बराबरी कर सकता है?

नोट—(पै), (इन), (उह) पाठ ना० प्र० स० की प्रतियों में नहीं हैं, डॉ० ह्योर्नले ने इन्हें दिया है।

(१) 'अरि अरि' के स्थान पर अन्य प्रतियों में केवल एक 'अरि' मिलता है (२) ना०—बात्तीय (३) ना०; मो०—अगन्नि (४) ना०—अप्प (५) ना०—पंच (६) ना०—दै।

शब्दार्थ—रू० ६७—परि=गिर पड़ा अर्थात् मारा गया। पतंग जैसिंव= पतंग जयसिंह नामक पृथ्वीराज का वीर सामंत था। पतंग का एक अर्थ सूर्य भी होता है जिससे अनुमान होता है कि जयसिंह सूर्यवंशी राजपूत था। पतंग= पतिंगा। अप्पुन तन=अपना शरीर। दज्झै <दह्=जलाना। नव=नया। पतंग=सूर्य। गति लीन=गति में लीन होकर। (नोट—भारतीय शूरवीरों का यह विश्वास था कि वीर गति पाकर योद्धा सूर्य लोक जाते हैं और सूर्य लोक की प्राप्ति बड़े ही पुण्य व तपस्या द्वारा होती मानी गई है। "बेधे जात मंडल अखंड अरकन के।" गंगा-गौरव, जगन्नाथदास रत्नाकर)। ठांम<थान <स्थान। तेल ठांम=तेल का स्थान अर्थात् दीपक। वाति=बत्ती। अगनि <सं० अग्नि; अगनि=जुगुनू। 'तेल ठांम बाति अगनि सकल विरुज्झाइय'= जुगुनू जलता हुआ दीपक अकेले बुझा देता है। [नोट—जुगुनू का दीपक बुझाना अशुभ सूचक माना गया है]। एकल=अकेले। अप<अप्प= अपना। विरुज्झाइय=बुझा देना। रन्नि <रण। कूंआरी=कुमारी कन्या। 'पंच लगाइय' का 'पंथ लगाइय' पाठ भी मिलता है, जिसका अर्थ मार्ग पर लगा दिया अर्थात् 'मार डाला' होगा। बर=श्रेष्ठ। बर्यौ=वरण किया। दैइ=देकर। दाहन=(संज्ञा) जलाने का (समिधा या आहुति से तात्पर्य है)। दुज्जन<दुर्जन=शत्रु। दबन<दव=दावाग्नि। जीतेव=जीत लिया। ताहि= उसकी। पुज्जै=बराबरी। कबन=हि० कौन<प्रा० कवन, कवण, कोउण <सं० कः पुनः।

नोट—इस रू० का ह्योर्नले महोदय द्वारा किया हुआ अर्थ जान लेना भी उचित होगा—

"Patang Jaysingh fell; he burns his body like a moth (into a flame); a new existence he obtained in the sun having torn many enemies in shreds. (Just as that (moth) by itself puts out the flame of the wick of on oil lamp (by falling into it) ; so (he), while being killed himself, also killed the enemy, felling five of them to the ground. War he wedded as a virgin, scorning fate and destroying enemies, he defeated the demons on earth. Who else can equal that." pp. 42-43.

कवित्त

रुप्पौ बीर पुंडीर, फिरी पारस सुरतांनी।
सस्त्र[1] बीर चमकंत, तेज आरुहि सिर ठांनी[2]॥

---

(१) ना०—शस्त्र (२) ए०—तानी।

टोप औप तुटि किरच, सार सारह जरि भारे।
मिलि नच्छित्र रोहिनी, सीस ससि उडगन चारे॥
उठि परत भिरत भंजत अरिन, जै जै जै सुरलोक हुअ।
उठ्यौ कमंध[1] पल पंच चव, कौंन भाइ कंप्पौ[2] जु धुअ॥छं० १०२। रू० ६८।

भावार्थ—रू० ६८—जहाँ वीर [भान] पुंडीर डटा हुआ था वहाँ सुलतान की सेना ने उसे घेर लिया और अपने चमकते हुए तेज़ शस्त्रों से उसके सिर पर वार किया। उन्होंने अपने भालों से उसका चमकदार टोप टुकड़े टुकड़े कर दिया (उस समय ऐसी शोभा हुई मानों) रोहिणी नक्षत्र के योग से सर रूपी चंद्रमा के चारों ओर तारे घूम रहे हों। वह गिरता पड़ता और भिड़ता हुआ शत्रुओं का नाश कर रहा था, [यह दृश्य देखकर] सुरलोक में जय जय की ध्वनि हो उठी। [अंत में मारे जाने पर] उसका कबंध चार पाँच पल तक खड़ा रहा। हे भाई, ध्रुव को कौन टाल सकता है?

शब्दार्थ—रू० ६८—रुप्पौ=रोपना, स्थापित करना (यहाँ 'डटे रहने' से तात्पर्य है)। बीर पुंडीर—यह न तो चंद पुंडीर है और न चामंडराय पुंडीर है वरन् पुंडीर वंशी कोई अन्य वीर है। जहाँ तक अनुमान है अगले रू० ८४ में वर्णित यह भान पुंडीर है। फिरी=घूमी। पारस=चारों ओर; (<पार्श्व=निकट); (सं०<पारस्य=पारसी); [<अप० पालास<प्रा० पल्लास<सं० पर्यास (√परि+अस=घूमना)= घेरा (जिससे मंडल, चक्र की भाँति जत्था या सेना अर्थ निकाले जा सकते हैं)]। [नोट—चंद ने 'पारस' शब्द का व्यवहार रासो के अनेक स्थलों पर किया है। उ०—सम्यौ ६१, छं० १६२२-१६२३—" इसी राति प्रकासी। सर कुमुदिनी विकासी॥ मंडली सामंत भासी। कविन कल्लोल लासी॥ **पारसं** रज्जि चंदम्। तारस्सं तेज मंदम्॥" (प्रभात की शोभा वर्णन)—अर्थात्—इस प्रकार रात्रि प्रकाशित हुई, सरों में कुमुदिनी विकसित हुई, सामंतों की मंडली भासित हुई, कवियों ने अपनी कल्लोलें सुनाई, चंद्रदेव का पारस (=घेरा) रुपहला हो गया, तारागणों का तेज मंद हो गया। सम्यौ ६१, छं० १६२६—"**पारसयं** पसरी रस कुंडलि। जानकि देव कि सेव अपंडलि॥ हालि हलाल रही चव कोदिय। दीह मयौ निस की दिसि मुंदिय॥" और सम्यौ ६१—"फिरि रुक्यौ प्रथिराज, सबर **पारस** पहुपंगिय।" 'पारस' का अर्थ 'पारसी' नहीं लिया जा सकता। सच बात तो यह है कि 'पारस' शब्द के व्यवहार में न होने के कारण उचित

(१) ना० कबंध (२) ना०—कौन भाइ कप्यौ।

अर्थ नहीं किये जा सके। 'फिरी पारस सुरतानी' का अर्थ 'सुलतान की सेना ने उसे घेर लिया' ही उपयुक्त होगा]। तेज <फा० تیز (तेज़)। आरुहि < सं० आरोह=उठाना। औप<ओप=प्रकाश। सार सारह=टुकड़े टुकड़े। मिलि=मिलने पर। नच्छित्र रोहिनी—रोहिणी नक्षत्र। ससि<शशि= चंद्रमा उडगन<उडुगण=तारे। [नोट—रोहिणी नक्षत्र तलवार है, पुंडीर का सर चंद्रमा है, टोप के टुकड़े तारे हैं]। कवंध=धड़। पंच=पाँच। चव (चौ)=चार। पल पंच चव=चार पाँच पल तक। कौंन=कौन। भाइ= भाई। कंप्पौ=हिलाना, कँपाना, डिगाना। धुअ<ध्रुव। कौंन भाइ कंप्पौ धुअ=हे भाई ध्रुव को कौन टाल सकता है। उठ्यौ=उठा रहा अर्थात् खड़ा रहा। जरि=जड़ना, मारना। भारे<भाले=बरछे। जरि भारे=भाले जड़ कर या मार कर। तेज<सं० तेजस्=आभा, प्रकाश।

कबित्त

दुज्जन सल कूरंभ, बंध पल्हन हक्कारिय[1]।
सम्हो षां षुरसांन, तेग लंबी उपभारिय[2]॥
टोप टुट्टि बर करिय, सीस पर तुट्टि कमंधं।
मार मार उच्चार, तार तं नंचि कमंधं॥
तहँ देषि रुद्र रुद्रह हस्यो[3], हय हय हय[4] नंदी कह्यौ।
कवि चंद सयल[5] पुत्री चकित, पिष्षि बीर भारथ नयौ॥छं०१०३। रू०६६।

कबित्त

सोलंकी सारंग, षांन षिलची मुष लग्गा।
वंह पंगा नौ भत्त इतें चहुआन बिलग्गा॥
है कंधन दिय पाय, कन्ह उत्तर बिय बाजिय।
गज गुंजार हुँकार, धरा गिर कंद्र गाजिय॥
जय जय ति देव जय जय करहि, पहुपंजलि पूजत रिनह।
इक परयौ षेत सोधै सकल, इक्क रह्यौ बंधे धुनह॥छं०१०४। रू०७०।

भावार्थ—रू० ६६—दुर्जनों को सालने वाले पल्हन के बंधु (=भाई या संबंधी] कूरंभ ने हाँक लगाई (या चुनौती दी)। खुरासान खाँ ने उसका सामना किया और (अपनी) लंबी तलवार ऊपर उठाई तथा (उस पर वार किया जिससे उसका) टोप [=शिरस्त्राण] टूट कर बिखर गया और कबंध से

(१) ना०—सक्कारिय (२) ना०—उब्भारिय (३) मो०—भयौ; हा०—हहरच्यौ
(४) मो०—हयं हयं (५) ना० शैल; ए०—सवल; कृ० को०—सयल।

सर टूट गया [अर्थात् धड़से सिर कट गया] । (फिर जब तक कटे हुए लुंठित सिर से) मारो ! मारो ! की ध्वनि उच्चरित होती रही (तब तक उसका) धड़ (इस आवाज़ की) ताल पर नाचता रहा । यह दृश्य देखकर रुद्र ने भयंकर अट्टहास किया—['वहाँ भयंकर रुद्र यह दृश्य देखकर दुख के आवेग में रो उठे'— ह्योर्नले । नोट—'रुद्र का रोना' अर्थ समुचित नहीं है क्योंकि ऐसा वर्णन हमें पुराणों आदि में नहीं मिलता, शिव का अट्टहास ही प्रसिद्ध है ।] और नंदी हाय हाय करने लगा । चंद कवि कहते हैं कि शैल पुत्री (पार्वती जी) यह नया महाभारत देखकर चकित रह गईं ।

रू० ७०—[अपने हत बंधु के शव को ढूँढ़ते हुए] सोलंकी सारंग (अचानक) खिलजी ख़ाँ के सामने आ गया । वह पहले पंगा (जयचंद) का भृत्य था परन्तु इस अवसर पर चौहान की ओर था । कन्ह (सारंग के प्राण संकट में देख) दो घोड़ों के कंधों (=पीठ) पर पैर रखकर खड़े हो गये और हाथी के समान चिग्घारने और गरजने लगे जिससे पृथ्वी, पर्वत और कंदरायें गूँज उठीं । (शत्रु का ध्यान अवश्य ही बँट गया और सारंग बच गया । यह कौतुक देखकर) देवताओं ने जय जय का घोष किया और युद्ध की पूजा में (अर्थात् प्रशंसात्मक युद्ध के लिये) पुष्पांजलि दी । एक (सारंग) सारा खेत (=क्षेत्र, युद्ध क्षेत्र) ढूँढ़ता रहा और एक (कन्ह) चिल्लाने की धुन बाँधे रहा ।

शब्दार्थ—रू० ६९—दुज्जन<दुर्जन । सल=सालना, कष्ट देना, छेद करना; (सल<सं० शल्य=भाला) । कूरंभ—अगले रू० ८४ की २१वीं पंक्ति में हमें इसका दूसरा नाम माल्हन मिलता है । कूरंभ, पल्हन का भाई या निकट संबंधी था । बंध<बंधु=भाई, संबंधी । पल्हन—पृथ्वीराज का वीर लड़ाकू सामंत था । और संयोगिता अपहरण वाले युद्ध में मारा गया था [रासो सम्यौ ६१, छं० १४९०-९१ तथा—

परे मध्य विप्पहर । पल्ह पज्जून बंध बर ।
रज रज तन किय हटकि । कटक कमधज्ज कोटि भर ।।
ईस सीस संहर्‌यौ । हथ्थ सों हथ्थ न मुक्‍यौ ।
सूर मुओ सुख हओ । वीर वीरा रस तक्‍यौ ।।
मारत अरिन कूरंभ झुकि । ते रवि मंडल भेदियै ।
डोल्यौ न रथ्थ संमुप चल्यौ । किंत्ति कला नह देषियै ।।छं० १४९२।
गंग डोलि ससि डोलि । डोलि ब्रह्मंड सक्र डुल ।
अष्ट थान दिगपाल । चाल चंचाल विच्चल थल ।।

फिरि रुक्यौ प्रथिराज । सबर पारस पहु पंगिय ।
च्यारि च्यारि तरवारि । बीर कूरंभति सज्जिय ॥
नंषिय पहुप्प इक चंदनें । एक कित्ति जंपत बयन ।
बे हथ्थ दरिद्री द्रव्य ज्यौं । रहे सूर निरषत नयन ॥छं० १४६३।सं० ६१।

सम्हो=सामने । उप्भारिय=उभारी, उठाई । बर करिय=बरकना, बिखरना-टुट्टि=टूटना । तुट्टि=टूटना, कटना । सीस<सं० शीश=सर । टोप= शिरस्त्राण [दे० Plate No. I, राजपूत योद्धाओं के शिरस्त्राण लगे हैं] । कमंधं <कबंध=धड़ । तार<ताल । नंचि=नाचता रहा । रुद्र=एक प्रकार के गण । शिव का एक नाम ; (वि० बि० प० में देखिये) । रुद्रह हस्यो=भयानक रूप से हँसने लगे (अर्थात् भयंकर अट्टहास करने लगे) । नंदी—[<सं० नंदिन]—(१) शिव के एक प्रकार के गण । ये तीन प्रकार के होते हैं—कनक-नंदी, गिरिनंदी और शिवनंदी । (२) यह शिव के द्वारपाल बैल का नाम भी है जिसे नंदिकेश्वर कहते हैं । प्रस्तुत कवित्त में शिव के गण से ही तात्पर्य समझ पड़ता है । सयल पुत्री< शैल पुत्री=पार्वती; ये हिमालय की कन्या प्रसिद्ध हैं । पिष्षि<सं० प्रेक्ष्य=देखकर । वीर=वीरों का । भारथ (अप०) [<प्रा० भारह<सं० भारत=युद्ध, संग्राम]=महाभारत । (उ०—'भारथ होय जूझ जो ओधा । होहिं सहाय आय सब जोधा ।' जायसी) । नयो=नया ।

रू० ७०—सोलंकी सारंग=इस वीर के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि यहीं मारा गया और वे प्रस्तुत कवित्त की अंतिम पंक्ति का अर्थ "एक सब के सामने खेत रहा और एक गरजने की धुन बाँधे रहा"— करते हैं ; परन्तु इस वीर की मृत्यु यहाँ नहीं हुई है । अगले रासो-सम्यौ में हम उसे पाते हैं । संयोगिता अपहरण वाले युद्ध में वह पृथ्वीराज की ओर से बड़ी वीरता पूर्वक लड़कर मारा गया था—

"ब्रह्म चालुक ब्रह्म चार । ब्रह्म विद्या बर रष्षिय ॥
केस डाभ अरि करिय । रुधिर पन पत्र विसिष्षिय ॥
षग्ग गहिग अंजुलिय । नाग गहि नासिक तामं ॥
धरनि अषर दुहुँ श्रवन । जाप जापं मुष रामं ॥
सिर फेरि षग्ग सम्हौ धरयौ । दुअन तार मन उल्हसिय ॥
अष्टमी जुद्ध सुक्रह अथमि । सुर पुर जा सारंग वसिय ॥"

छं० १५२४, सं० ६१ ।

नौ भृत=नया भृत्य (नौकर) [नौकरसे सामंत अथवा सैनिक का तात्पर्य है] । विलग्गा<हि० विलग=पार्थक्य, अलग । है<हय=घोड़ा । उत्तर=

उतरा। बिय बाजिय = दो घोड़े। उत्तर बिय बाजिय=दो घोड़ों पर चढ़ा। धरा=पृथ्वी। गिर < गिरि=पर्वत। कंदर=कंदरा, गुफा। गाजिय=गूँज उठीं। पहुपंजलि < पुष्पांजलि। पूजत=पूजा की, प्रशंसा की। रिनह < रण (की)=युद्ध (की)। इक < अप० इक्क < प्रा० एक्क, एक्को, एगो, एओ < सं० एक=हिं० एक। परयौ सोधे सकल=सारा ढूँढ़ता पड़ा रहा। षेत=खेत < क्षेत्र। बंधे=औंधे। धुनह=धुन।

नोट रू० ७०—"इधर जब खिलजी खाँ के मुकाबिले में दो तीन अच्छे अच्छे वीर काम आये तब सारंग देव ने उस पर आक्रमण किया, सारंगदेव ने अपने घोड़े को एड़ देकर खिलजी खाँ के हाथी के मस्तक पर जा टपकारा। इस अद्भुत कौशल से इधर तो हाथी चिक्कार उठा उधर सारंगदेव ने खिलजी खाँ को मार कर दो कर दिया।" रासो-सार, पृष्ठ १०२।

रू० ६६ में जिस प्रकार दीर्घकाय मगर की कल्पना की गई है उसी ढँग की एक मौलिक उद्भावना यहाँ भी है।

कवित्त

करी मुष्ष आहुट्ठ, वीर गोइंद सु अष्ष।
कबिल पील जनु कन्ह, दंत दारुन दहि[1] नष्षै॥
सुंड दंड भयै षंड, पीलवानं गज मुक्यौ।
गिद्ध सिद्ध[2] वेताल, आइ अंषिन पल रुक्यौ॥
बर वीर परयो भारथ्थ बर, लोह लहरि[3] लग्गत[4] झुल्यौ।
तत्तर षांन संम्हौ सु क्रत[5] सिह हक्कि अंबर डुल्यौ॥ छं० १०५। रू० ७१।

भावार्थ—रू० ७१—वीर गोइंद के संबंधी आहुट्ठ ने एक हाथी की सूँड़ वैसे ही पकड़ कर खींची (या—अक्षय वीर गोइंद के संबंधी ने एक हाथी की सूँड़ वैसे ही आहुट्ठ (ऐंठ) दी) जैसे कृष्ण ने कुबलयापीड़ के भयानक दाँत तोड़े थे। सुंड के दाँत टूट जाने पर पीलवान ने उसे छोड़ दिया तथा गिद्धों, सिद्धों और वेतालों ने आकर उस पर दृष्टि जमाई। (परन्तु) इस वीर युद्ध में श्रेष्ठ योद्धा (=कनक आहुट्ठ) गिर पड़ा, तलवारों के वारों से वह झँझरी हो गया था, तत्तार खाँ के सामने उसने अपनी वीरता दिखाई थी (और) उसका सिंह सदृश गर्जन सुनकर आकाश भी काँप उठता था।

शब्दार्थ—रू० ७१—करी=हाथी। मुष्ष < मुख (यहाँ हाथी की सूँड़ से तात्पर्य है)। आहुट्ठ=यह पृथ्वीराज का वीर सामंत था। अगले रू० ८४

(१) ना०—गहि (२) ना०—गिद्धि सिद्धि (३) ना०—लहरी (४) ना०—लगात (५) ना०—सम्हौ सुक्रत; बं०—सम्है सुकृत।

में हम इसका नाम कनक आहुट्ठ पढ़ते हैं। यह गुहिलोत वंश का था। 'आहुट्ठ' गुहिलोत राजपूतों की एक पदवी थी जिसका प्रयोग समरसिंह और गरुआ गोविंद के साथ अधिक मिलता है। रासो में आहुट्ठ पति और आहुट्ठ नरेश नाम भी पाये जाते हैं। प्रस्तुत कवित्त में आया हुआ 'गोइंद' प्रसिद्ध गरुआ गोविंद समझ पड़ता है और यदि यह सच है तो उसके दो संबंधी इस युद्ध में मारे गये। [आहुट्ठ का अर्थ 'ऐंठना' संभव तो था परन्तु 'आहुट्ठ' सामंत का पूरा विवरण मिल जाने से 'ऐंठना' अर्थ अच्छा नहीं है। 'आहुट्ठ'= ऐंठना—अर्थ करके भी अनुवाद में अर्थ लिख दिया गया है परन्तु उसका विशेष मूल्य नहीं है]। अष्षै (या अंचै) <सं० आ+कृश=खींचना। [अष्षै <सं० अक्षय]। कबिल पील <कुबलया पीड़—यह कंस का हाथी था जिसे कृष्ण ने दाँत तोड़कर मार डाला था। वास्तव में यह दैत्य था परन्तु शाप वश हाथी हो गया था [वि० वि०—महाभारत, भागवत दशम स्कंध]। दारुन दहि=दारुण कष्ट देकर। दंत=दाँत। नष्षै=नष्ट करना, तोड़ना। सुंड= हाथी। षंड=खंड, टूटना। मुक्यौ=छोड़ना। गिद्ध=पक्षी विशेष जो बड़ी दूर तक देख सकता है। मरे हुए पशु ही इसका आहार हैं। सिद्ध—जिसने योग या तप द्वारा अलौकिक लाभ या सिद्धि प्राप्त की हो। सिद्धों का निवासस्थान भुवर्लोक कहा गया है। 'वायु पुराण' के अनुसार इनकी संख्या अट्ठासी हज़ार है और ये सूर्य के उत्तर और सप्तर्षि के दक्षिण अंतरिक्ष में वास करते हैं। ये एक कल्प भर तक के लिये अमर कहे गये हैं। कहीं कहीं सिद्धों का निवास स्थान गंधर्व किन्नर आदि के समान हिमालय पर्वत भी कहा गया है। परन्तु प्रस्तुत कवित्त में वर्णित शव भक्षी सिद्ध, कापालिक या अघोर पंथी योगियों से तात्पर्य है। सिद्ध का अर्थ 'सिद्धि' भी हो सकता है। ये 'सिद्धि', खप्पर वाली योगिनियाँ हैं जो दुर्गा की परिचारिकायें कही जाती हैं तथा युद्ध भूमि में घूमने वाली मानी गई हैं। वेताल—<सं० वेताल—पुराणों के अनुसार भूतों की एक प्रकार की योनि। इस योनि के भूत साधारण भूतों के प्रधान माने जाते हैं और स्मशानों में रहते हैं। आइ अंषिन पल रुक्यौ=आकर आँखों के पास रुक गये (या—आकर उसपर अपनी दृष्टि जमाई) कि कब यह मरे और खाने को मिले। लोह=तलवार। लहरि=लहर, (यहाँ तलवारों के 'वार' से तात्पर्य है।) लग्गत=लगने से। झुल्यौ=झूल गया था अर्थात् स्थान स्थान पर घाव लगने से झँझरी हो गया था। संम्हैं=सामने। सुक्रत < सुकृत=सुंदर (वीरोचित) कार्य। सिंह हक्कि=सिंह सदृश हुंकारा (या गरजा)। अंबर=आकाश। डुल्यौ=डोल गया, काँप उठा।

नोट—प्रस्तुत कवित्त की अंतिम दो पंक्तियों का अर्थ ह्योर्नले महोदय ने इस प्रकार लिखा है—

"The brave warrior fell in this brave fight, reeling under the repeated strokes of the sword (of his enemy). Tartar Khan in fro it him roared like a lion over his success, (so loudly that) the heavens shook." p. 46.

कवित्त

षोलि षग्ग नरसिंघ, षीझ्झि षल[1] सीसह झारिय ।
तुटि धर धरनि परंत, परत संभरि कट्टारिय ॥
चरन अंत उरझंत, वीर कूरंभ करारौ ।
तेग थाइ[2] चुकंत, झरी झर लोह सँभारौ ॥
चलि गयो न क्रमन, क्रम्म[3] न चलै, डुल्यौ न, डुलत[4] न हथ्थ वर
तिन परत वीर दाहर तनौ, चामंडां बज्जी लहर ॥ छं० १०६ । रू० ७२ ।

भावार्थ—रू० ७२—नरसिंह (के संबंधी) ने क्रोधावेश में तलवार खींच ली और खल (शत्रु) के सर पर वार किया जिससे उसका धड़ कटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा परन्तु गिरते गिरते उसने (नरसिंह के संबंधी के) कटार मार दी । (कटार लगने से इस वीर के) पैर विकट वीर कूरंभ की लोथ की अँतड़ियों से उलझ गये । उसने तलवार का सहारा लेना चाहा परन्तु चूक गया और (स्वयं अपनी तलवार से घायल हो जाने के कारण उसके) लोहू की धार झर झर करके बह चली [या—(झरी झर=) गिरते गिरते उसने तलवार से सहारा लेना चाहा परन्तु चूक गया और बुरी तरह घायल हो गया] । वह एक पग भी न चल सका; न वह हिला और न उसके श्रेष्ठ हाथ ही हिले । उसको गिरते देखकर दाहर का पराक्रमी पुत्र चामंड दुख से परिपूरित हो गया [या—उसके गिरने पर दाहर का वीर पुत्र चामंड युद्ध की लहर में उलझ गया अर्थात् भयंकर युद्ध करने लगा] ।

शब्दार्थ—रू० ७२—षोलि षग्ग=तलवार निकालकर । नोट—प्रस्तुत रू० में जिस वीर की मृत्यु का वर्णन है वह अगले रू० ८४ के आधार पर नरसिंह का संबंधी और दाहिम जाति का राजपूत था । इस रू० में चामंड-राय–पुंडीर–दाहिम का नाम, चामंडां, आया है जिसका वर्णन पढ़कर अनुमान होता है कि वीरगति पाने वाला योद्धा अवश्य ही चामंडराय का संबंधी था ।

---

(१) ना०—पिझ्झि षज (२) ना०—घाइ (३) मो०—न क्रमन क्रमनत; ना०—क्रमन क्रम्मन (४) ना०—नडुल्ल; ए०—न डुलतन ।

यह वीर नरसिंह नहीं है जैसा कि रासो-सार में लिखा है और जैसा प्रस्तुत 'कवित्त' पढ़ने से जान पड़ता है। नरसिंह नागौर का राजा था ['नरसिंघ एक नागौर पत्ति। रिनधीर राज लीयै जुगत्ति।' रासो सम्यौ ६१, छं० ६४५]। नरसिंह का जन्म स्थान समियान गढ़ था और बलभद्र का जन्म स्थान नागौर था ['समियांन गढ्ढ नरसिंघ राइ। पिंत मात छोरि आए सु भाइ॥' रासो सम्यौ १, छंद ५८७]। नरसिंह नागौर का शासक था और बलभद्र कूरंभ समियान गढ़ का; परन्तु Indian Antiquary. Vol I, p. 279 में इसका बिलकुल उलटा लिखा है, जो अशुद्ध है। नरसिंह संयोगिता अपहरण वाले युद्ध में पृथ्वीराज के साथ था और लड़ते हुए मारा गया था। (रासो सम्यौ ६१, छंद १४८२)। षिज्झि=खीझकर। षल सीसह झारिय=खल के शीश पर वार किया। तुटि धर धरनि परंत=(उसका) धड़ टूटकर (कटकर) धरती पर गिर पड़ा। परत संभरि कट्टारिय=गिरते गिरते उसने कटार मार दी (या—गिरते हुए भी वह कटार सम्हाले रहा)। कूरंभ=यह वही योद्धा है जो पल्हन का संबंधी था और जिसकी मृत्यु का वर्णन पिछले रूपक ६६ में हो चुका है। करारौ= करारा, तगड़ा; कगार, यहाँ लोथ से अभिप्राय जान पड़ता है। कूरंभ करारौ= कूरंभ की लोथ। झरी झर लोह सँभारौ=(१) गिरते गिरते उसने तलवार से सहारा लेना चाहा (२) झर झर लोहू कीधार बह चली। थाइ <स्था=सहारा। चुक्कंत=चूक गया। तेग=तलवार। तिन परत उसके गिरने पर। दाहर तनौ (<तनय)=दाहरराय का पुत्र। चामंडा=चामंडराय। चामंडां बज्जी लहर=(१) चामंड ने तलवार बजाई (२) चामंड (युद्ध की) लहर में बज्जी (<बज्झी=उलझ गया) (३) 'चामंड दु:ख के आवेश से भर गया, (ह्योर्नले)। अंत=अंतड़ियाँ, आँतें।

नोट—"कूरंभराय के पुत्र नरसिंह ने खाँड़ा खींचकर ख्वाजा की खोपड़ी पर मार उसे एक ही वार में खपाना चाहा परन्तु उसने गिरते गिरते नरसिंह के पेट में कटारी भोंक दी जिससे उसके पेट की अंत मेद मज्जा आदि बाहर निकल पड़ी। वह वीर उसकी कुछ भी परवाह न कर करारे वार करता ही रहा।" रासो-सार, पृष्ठ १०३।

प्रस्तुत रूपक के शब्दार्थ में यह बात सप्रमाण निर्दिष्ट की जा चुकी है कि लड़ने वाला वीर नरसिंह नहीं था वरन् नरसिंह का संबंधी था। नरसिंह की मृत्यु का वर्णन रासो-सम्यौ ६१ में इस प्रकार है—

लग्यौ दल सिंघ करष्षि सु तीर।
छुँपे ज्वब सिंघ सु भग्गिय मीर॥

परयौ नरसिंह नरव्वर सूर ।
तुटै सिर आवध जाम करूर ॥ छं० १४८२ ॥

पृ० रा० ना० प्र० सं० में छं० १०६ की प्रथम पंक्ति में 'ब्रल' पाठ की जगह 'ब्रज' है जिसका अर्थ रासो-सार में 'ख्वाजा' किया गया है। पेट में कटार भोंकने और पेट की अंत मेद मज्जा आदि निकलने का वर्णन जैसा रासो-सार में है, प्रस्तुत रू० ७२ के आधार पर नहीं है। रासो-सार के अनुसार यह वीर मरा नहीं है परन्तु रू० ७२ में उसकी मृत्यु का और अधिक स्पष्ट वर्णन ही क्या किया जा सकता था। सबसे विचित्र बात तो यह है कि रासो-सार वालों ने नरसिंह को कूरंभ का पुत्र तक कह डाला है।

भुजंगी

छुटी छंद[1] निच्छंद सीमा प्रमांनं ।
मिली ढालनी माल राही समानं ॥
निसा मांन नीसांन नीसांन धूम्रं ।
धुम्रं धूरिनिं मूरिनं पूर कूम्रं ॥ छं० १०७ ।
सुरत्तान फौजं तिनें पंत्ति[2] फेरी ।
मुखं लग्गि चहुआंन पारस्स घेरी ॥
भये प्रात सुज्जात संग्राम षालं ।
चहुव्वांन उट्ठाय सालो पिथालं ॥ छं०१०८।रू०७३।

भावार्थ—रू० ७३—[रात्रि] उनकी इच्छा या अनिच्छा से अपनी सीमा को प्रमाणित करती हुई (अर्थात् अपना कृष्ण अंबर फैलाती हुई) आई और फौजों को उसी प्रकार मिली जिस प्रकार थके हुए पथिकों को मिलती है। निशा को आया जानकर दोनों ओर के नगाड़ों पर चोट पड़ी। [फौजों के फिरने और शांति स्थापित होने पर] धूल का अंधड़ (ऊपर से नीचे की ओर) मुड़ा और (इतनी धूल लौटी कि) कुएँ भर गये। सुलतान की फौज की पंक्तियाँ पीछे लौटीं और चौहान की सेना ने आगे बढ़कर घेरा डाल लिया [या घेरे के आकार का पड़ाव डाला]। (दूसरे दिन) जब रणस्थल में सुंदर प्रात:काल हुआ तो वीर चौहान विशाल शाल वृक्ष सदृश (युद्ध के लिये) उठा।

शब्दार्थ—रू० ७३—छुटी=आई, फैली। छंद निच्छंद=इच्छा या अनिच्छा से। सीमा प्रमानं=सीमा को प्रमाणित करती हुई। ढालनी=ढाल वाले अर्थात् योद्धागण या फौज। मालराही=माल ले जाने वाले रास्तागीर

(१) ए०—छंदासं; कृ० मो०—छदनी, छदनीमा (२) ए० कृ० को—पंति।

अर्थात् कुली। समानं=समानरूप से, उसी प्रकार। निसा मांन=निशा को मानकर या आया जानकर। नीसांन=नगाड़े। नीसांन (क्रिया)=निशान पड़ना या चोट पड़ना। धुअं=धुआँ, अंधड़। धूरिनं=धूल। मूरिनं<मुड़ि नम=मुड़कर; [श्री केलाग महोदय 'नम' को कृदंत मानते हैं]। पूर कूअं=कुएँ पूर दिये या भर दिये। पंत्ति=(१) पंक्ति (२)<सं० पदाति=पैदल सेना। मुखं लग्गि=आगे बढ़कर। पारस्स=चारों ओर, चक्र और मंडल सदृश, इसका अर्थ सेना भी लिया जा सकता है [कुछ विद्वान् 'पारस्स' को 'परस्पर' का अपभ्रंश भी मानते हैं।] घेरी=घेरा बना लिया। भये=होने पर। प्रात=प्रात:काल। सुज्जात=√जन धातु से क्त वत् सुजात् अर्थात् 'सुंदर उत्पन्न प्रात:काल' हुआ; [सुज्जात<सु+जात (पैदा)]। षालं=खाल (=गड़हा)। षालं<सं० स्थल। चहुव्वांन=चौहान। उट्ठाय=उठा। सालो=शाल वृक्ष। पिथालं (अप०)<सं० पृथुल=मोटा, विस्तृत, विशाल।

नोट—(१) गाथा और प्राकृत की रीति छंद पंक्ति के अंतिम शब्दांतों में अनुस्वार जोड़ने की है इसीलिये हम प्रमानं, समानं, धूअं, कूअं, षालं, पिथालं आदि शब्द रासो में पाते हैं।

(२) भानु जी ने अपने ग्रंथ 'छंद: प्रभाकर' में भुजंगी छंद का लक्षण 'तीन यगण तथा लघु गुरु' बताया है। रेवातट समय में भुजंगी छंद का नियम भुजंगप्रयात का अर्थात् चार यगण वाला है, अस्तु इस विषय में भ्रम नहीं होना चाहिये। कबि ने भुजंगप्रयात को ही भुजंगी नाम से प्रयुक्त किया है।

(३) पिछले रू० ६१, छं० ७४ में आये हुए 'वले' शब्द का अर्थ 'फिर' है। वले (गु०) [<सं० वलय]=समय का पुनरावर्तन, फिर; [उ०—'**वली** बाढ दे सिली सिली वरि, काजल जल वालियौ किर' ॥ ८६ ॥; 'करि इक बीड़ौ **वले** वाम करि, कीर सु तसु जाती क्रीड़न्ति' ॥ ६६ ॥ वेलि क्रिसन रुक्मिणी री। 'वाणी जगराणी **वले**, मे चींताणी मूढ ॥ २ ॥ वीर सतसई, सूर्य्यमल्ल मिश्रण]। वले<फा० ولے, (वले) [=लेकिन]>प० بلے (बले)=हाँ।

कबित्त

जैत बंध ढहि परयौ, सुलष[1] लष्षन कौ जायौ।
तहँ झगरी महमाय[2], देवि हुंकारौ पायौ॥
हुंकारै हुंकार, जूह गिद्धनि उड्डायौ।
गिद्धिनि तें अपछरा, लियो चाहतौ न पायौ॥

---

(१) ना०—लष्ष (२) हा०—तहां झगरि महामाया।

अवतर न सोइ उतपति गयौ, देवथांन विभ्रंम बियौ[3]।
जम लोक न सिवपुर ब्रह्मपुर भान थांन मानै भियौ[4] ।।छं०१०६। रू०७४।

भावार्थ—रू० ७४—(इस दूसरे दिन के युद्ध में) सुलष को पैदा करने वाला लखन जो जैत का संबंधी था मारा गया। देवी महामाया ने उस (के शव) को हुंकारते और झगड़ते हुए पाया। अपनी हुंकार से उन्होंने (लाश से) गिद्धों के यूथों को उड़ा दिया। गिद्धों से एक अप्सरा ने उसे लेना चाहा परन्तु न पा सकी [महामाया दुर्गा उसे ले गईं]। आवागमन के बंधन से मुक्त होकर वह ऊपर चला गया और देवस्थान वालों को इस बात का बड़ा आश्चर्य हुआ कि (वीर लखन) यम लोक, शिव लोक और ब्रह्म लोक न जाकर (सीधा) सूर्य लोक जाकर सूर्य हो गया (अर्थात् सूर्य लोक में स्थान पा गया)।

शब्दार्थ—रू० ७४—जैत=जैतसिंह प्रमार। बंध=भाई या अन्य संबंधी। सुलष—लखन का पुत्र था और लखन प्रमार वंश का था (अगले रू० ८४ में लिखा है—'पर्यौ जैतबंधं सु पावार भानं')। अतएव सुलख भी प्रमार वंश का था और जैतसिंह प्रमार का संबंधी था। सुलष प्रमार (पावार या परमार) की वीरता के प्रकरण रासो के अन्य आगे के सम्यौ में पाये जाते हैं। संयोगिता अपहरण में पृथ्वीराज की सहायतार्थ यह भी गया था ['परमार सलष जालौर राह। जिन बंधि लिद्ध गजनेस साह।' सम्यौ ६१, छं० ६४५] और वीरता पूर्वक युद्ध करके मारा गया ['करि नृपति सार नृप पंग दल। अब्बुअ पति जप सब्ब किय ।। उग्रह्यो ग्रहनु प्रथिराज रवि। सलष अलष भुज दान दिय।' सम्यौ ६१, छं० २३६२]। ह्योर्नले महोदय का कथन है कि सुलख इसी युद्ध में मारा गया और यह बात उपर्युक्त प्रमाणों से असत्य सिद्ध होती है। वास्तव में सुलष का पिता लखन प्रमार मारा गया है जिसके लिये ह्योर्नले महोदय ने सम्यौ ६१ के प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि लखन जीवित रहा और सुलख मर गया—परन्तु ये प्रमाण तो उनकी बात का प्रतिपादन करने के स्थान पर उसका खंडन करते हैं क्योंकि ६१वें सम्यौ का लखन, प्रमार वंश का नहीं वरन् बघेल था। सुलख के मारे जाने के बाद—"दियौ दान पम्मार बलि। अरि सारंग सम पेल ।। मरन जानि मन मझ्झ रत। लरि लष्षन बघ्घेल ।।" सम्यौ ६१, छं० २३६३। और फिर भीषण युद्ध करके बघेला वीर भी खेत रहा। यथा—

जीति समर लष्षन बघेल। अरि हनिग प्रग्ग झर।
तिधर तुट्टि धरनहि धुकंत। निवरंत अद्ध धर ।।

---

(३) बं०—भयौ (४) हा०—भयौ।

तहँ गिद्धारव रुरिग । अंत गहि अंतह लग्गिग ।
तरनि तेज रस बसह । पवन पवनां घन वज्जिग ।।
तिहि नाद ईस मथ्यौ धुन्यौ । अमिय बुंद ससि उल्लस्यौ ।।
बिडर्‍यौ धवल संकिय गवरि । टरिय गंग संकर हस्यो ।।सम्यौ६१,छं०२३७२।

लष्षन=सुलख प्रमार का पिता और आबू तथा धार के प्रमार वंशी राजकुमार जैतसिंह का संबंधी था। झगरी=झगड़ते हुए। महमाय देवि=देवी महामाया—दुर्गा। ये भी युद्ध में पहुँचने वाली कही गई हैं [वि० वि०प० में देखिये]। नोट—[यदि अप्सरा वीर लखन को ले जाती तो उसे पुनर्जन्म लेना पड़ता परन्तु महामाया के ले जाने से वह आवागमन के बंधन से मुक्त हो गया]। अवतर न=अवतार (=जन्म) न लेना। उतपति गयौ=उत्पत्ति से बच गया। विभ्रंम=आश्चर्य। जम लोक=<सं०यमलोक—वह लोक जहाँ मरने के उपरांत प्राणी जाते हैं। शिवपुर=(शिवलोक)—शिव जी का लोक, कैलाश। [उ०—सोने मँदिर सवाँरई और चँदन सब लीप। दिया जो मन शिव लोक महँ उपना सिंहल दीप।। जायसी]। ब्रह्मपुर=सं० ब्रह्मलोक—(१) वह लोक जहाँ ब्रह्मा रहते हैं (२) मोक्ष का एक भेद। कहते हैं कि जो प्राणी देवयान पथ से ब्रह्म लोक को प्राप्त होते हैं उन्हें इस लोक में फिर जन्म नहीं ग्रहण करना पड़ता। भान थांन=सूर्य स्थान अर्थात् सूर्य लोक। भानै भियौ=सूर्य में ही प्रवेश कर गया। बियौ<सं० वप्=उगा, उत्पन्न हुआ।

नोट—(१) श्री० टॉड महोदय ने इस कवित्त का अनुवाद इस प्रकार किया है—

"The brother of Jait lay slain in the field, Sulakh the seed of Lakhan. Where he fell Mahamaya herself descended and mingled in the fight, uttering horrid shrieks. Innumerable vultures took flight from the field. In her talons she bore the head of Sulakha, but the Apsaras descended to seize it from the unclean. Her heart desired but she obtained it not! Where did it go? For Sulakha will have no second birth. It caused amazement to the gods, for he entered none of their abodes. He was not seen in Yama's realm, not in the heaven of Siva, not in the Moon, nor in the Brahmapur, nor in the abode of Vishnu. Where then had he gone? To the realm of Sun."

(२) विभिन्न लोकों के वर्णन 'विष्णु पुराण' (२।७।३-२०) में पढ़ने को मिलेंगे, परन्तु विभिन्न पुराणों में भिन्न भिन्न कथायें मिलती हैं और चंद वरदाई का मत भी अपना निराला है।

(३) अगले रू० ७५ से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सुलख नहीं मारा गया है वरन् उसका पिता मारा गया है—

"तिहित बाल ततकाल सलष बंधव ढिग आइय" अर्थात् एक बाला तत्काल सुलष के बाँधव के पास आई। आश्चर्य तो यह है कि ह्योर्नले महोदय ने भी इसका यही अर्थ लिखा है परन्तु रू० ७४ के अर्थ में सुलख की मृत्यु लिख गये हैं। जहाँ तक मेरा अनुमान है उन्हें सुलख और सलख तथा लखन प्रमार और लखन बघेल के समझने में भ्रम हो गया है।

कवित्त

तन झंझरि पंवार परयौ धर मुच्छि घटिय[1] बिय।
बर अच्छर बिटयौ, सुरग मुक्के न सुर गहिय[2]॥
तिहित बाल ततकाल[3], सलप बंधव ढिग आइय।
लिषिय अंग बिह्य[4] हथ्थ, सोई वर बंचि दिषाइय॥
जंमन मरंन[5] सह दुह सुगति, नन मिट्टै भिंटह न तुअ।
ए बार सुबर बंटहु नहीं, बंधि लेहु सुकी बधुअ॥ छं० ११०। रू० ७५।

दूहा

रांमबंध कौ सीसवर, ईस गह्यौ कर चाइ।
अथ्थि[6] दरिद्री ज्यौं भयो, देषि देषि ललचाइ॥ छं० १११। रू० ७६।

दूहा

जाम एक दिन चढ़त बर, जंघारौ झुकि बीर।
तीर जेम तत्तौ परयौ, धर अप्पारे मीर॥ छं० ११२। रू० ७७।

भावार्थ—रू० ७५—पामार का शरीर झँझरी हो गया और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा तथा दो घड़ी तक मूर्छित पड़ा रहा। अप्सरायें (स्वर्ग में रहते रहते और देवताओं का वरण करते करते) ऊब उठीं अतएव उन्होंने स्वर्ग का वास और देव वरण छोड़ दिया (और नीचे मृत्युलोक में युद्धस्थल पर

(१) ए०—वटय (२) मा०—बर अच्छर विंटयौ। सुरँग मुक्के सुरंग हिय (३) मो०—तिहित काल सत बाल (४) ना०—विय अथ्थ (५) ना०—जमन मरन (६) मो०—अथिर।

आईं। एक बाला तुरंत सुलख के बांधव (पिता लखन प्रमार) के पास आई और उसके ललाट पर लिखा हुआ विधि का विधान पढ़ कर सुनाया। (फिर बोली कि) जन्म और मरण साथ ही साथ हैं; (परन्तु) वीरों के लिये ये दोनों सुगतियाँ हैं; ये अवश्यंभावी हैं (मिटने वाली नहीं हैं), तुम अपनी मृत्यु पर निराश न हो। [जान पड़ता है कि सुलख के बाँधव ने पहले उसके प्रस्ताव का विरोध किया था क्योंकि वह कहती है कि] हे प्रिय, इस बार मेरे प्रस्ताव का विरोध न करो और मेरे समान सुख देने वाली (या सुन्दरी) बधू को स्वीकार ही कर लो।

रू० ७६—ईश (शिव) ने राम के संबंधी का श्रेष्ठ सर [अपनी मुंड-माला में डालने के लिये] बड़े चाव से उसी प्रकार लेना चाहा जिस प्रकार दरिद्री मनुष्य धन देखकर ललचाता है (और उसे लेना चाहता है)।

रू० ७७—एक याम (=पहर) दिन चढ़ने पर बीर जंघारा युद्ध में झुका या कूदा (परन्तु) मीर से युद्ध करके वह जलते हुए बाण सदृश पृथ्वी पर गिर पड़ा।

शब्दार्थ—रू० ७५—पांवार=प्रमार। पर्यौ धर=पृथ्वी पर गिर पड़ा। मुच्छि=मूर्च्छित। घटिय=घड़ी; (यह चौबिस मिनट का समय माना गया है)। बिय=दो। बिटयौ<(मराठी) बिटनेम=ऊबना। सुरग मुक्के=स्वर्ग [वि० वि० प०] छोड़ दिया। सुर गहिय=देव वरण। तिहित=तहाँ; उन्हीं में से। बाल=बाला। ततकाल<तत्काल। बंधव<बांधव=बंधु, भाई, नातेदार। सलष बंधव=लखन का बांधव (पिता) लखन प्रमार। ढिग आइय=निकट आई। अंग=शरीर (यहाँ ललाट से तात्पर्य है क्योंकि ब्रह्मा की रेखायें वहीं पर लिखी हुई मानी गई हैं) । बिह्म<विधि=ब्रह्मा। हथ्थ=हाथ। वर=श्रेष्ठ। वंचि दिषाइय=बाँच कर दिखाया। जंमन=जन्म। सह=साथ। दुह=दोनों। सुगति=सुन्दर गतियाँ। नन मिट्टै=न मिटने वाली अर्थात् अवश्यंभावी। मिटह न तुअ=तुम निराश न हो। एबार=इस बार। सुबर=सुन्दर वर (अर्थात् प्रियतम)। बंटहु<(मराठी) बाटणेम=झगड़ना। बंटहु नहीं=झगड़ा न करो। बंधि लेहु=बाँध लो या स्वीकार कर लो। सुक्की बधुअ=सुख देनेवाली बधू।

रू० ७६—राम बंध=राम का बंधु—(यह रघुवंशियों की जाति का राम है जिसका विवरण पीछे दिया जा चुका है। उसके बंधु (संबंधी) का नाम प्रिथा या प्रथा था। अगले रू० ८४ में वर्णित मरे हुए योद्धाओं में यह तीसरा

है) । ईस=शिव । गह्यौ कर चाइ=हाथ में चाव से पकड़ना चाहा । अथ्थि <सं० अर्थ=धन; [अथ्थि<सं० अस्थि=हड्डी—ह्योर्नले] ।

रू० ७७—जाम<सं० याम (तीन घंटे के बराबर समय)=प्रहर (विकृत रूप पहर) । [नोट—सूर्योदय होने पर अर्थात् लगभग छै बजे (दूसरे दिन) युद्ध प्रारंभ हुआ था । पहले घंटे में जैत का संबंधी गिरा दूसरे में लखन प्रमार और तीसरे में राम का संबंधी] । झुकि=झुका (युद्ध के लिये) । तीर=बाण । जेय या जेम=तरह, समान, भाँति । तत्तौ=गरम या जलता हुआ । तत्तौ पर्यौ=जलता हुआ गिरा । धर=भूमि, धरती । अष्पारे=अखाड़ा करके अर्थात् युद्ध करके । जंघारौ=योगी जँघारा । जंघारा—यह रुहेल खंड के दक्षिण पूर्व के तुअर वंशी राजपूतों की एक बड़ी और लड़ाकू जाति है । भूर और तरई जँघारे इसकी दो शाखायें हैं । धप्पूधाम की अध्यक्षता में ये इस देश में आकर बसे थे । धप्पूधाम की वीरता और बदायूँ के नायक से भीषण मोर्चा लेने पर उनकी अनेक कवितायें सुनी जाती हैं । एक समय कोइल (अलीगढ़) के समीप ये बड़े शक्ति शाली थे और इनकी चार भिन्न चौरासियाँ थीं । पुंडीरों के साथ इनके बराबर के संबंध होते हैं । ये अपनी लड़कियाँ चौहानों और बड़गूजरों को देते हैं तथा भाल, जैत और गुहिलोतों की लड़कियाँ पाते हैं । [Races of N.W. Provinces of India, Elliot, Vol I, p. 141] । जंघारा जो इस युद्ध में मारा गया है, उसका मूल नाम न तो इसी रूपक में है, न अगले रू० ७८ में और न रू० ८४ में ही । जंघारा जाति के वीर पृथ्वीराज की सेना के नायक रहे हैं । भीम जंघारा जिसका वर्णन रासो सम्यौ प्रथम में है, पृथ्वीराज के साथ कन्नौज गया था और उसने लौटते समय बड़ा वीर युद्ध करके प्राण दिये थे [रासो सम्यौ ६१, छं० ११६, २४५०-५४]— ·

घरिय च्यार रवि रत्त । पंग दल बल आहट्यौ ॥
तब जंघारौ भीभ । भ्रंम स्वामित तन तुट्यौ ॥
सगर गौर सिर मौर । रेह रष्षिय अजमेरिय ॥
उड्डत हंस आकास । दिट्ठ घन अच्छरि घेरिय ॥
जंघार सूर अवधूत मन । असि बिभूति अंगह घसिय ॥
पुन्छ्यौ सुजान त्रिभुवन सकल । को सु लोक लोकैं बसिय ॥छं०२४५४॥

नोट—रू० ७५—के अंतिम दो चरणों का अर्थ डॉ० ह्योर्नले के अनुसार इस प्रकार है—"Birth and death these two painful states, do not cease in meeting with thy (नतुअ<नतिअ, नार्ता=दौहित्र और इसीलिये संबंधी) kinsmen; this time beloved, do

not dispute (the matter,) but accept in me a resplendent wife." ।

और रू० ७६ का अर्थ उन्होंने इस प्रकार किया है—

"The head of the kinsman of Rāma now Īsa with his hand desired to take, like a man who has become a beggar covets a *bone* whenever he sees it." p. 49.

कवित्त

जंघारौ जोगी जुगिंद्, कढ्यौ कट्टारौ ।
फरस[1] पानि तुंगी त्रिसूल, पष्षर[2] अधिकारौ ॥
जटत बांन सिंगी बिभूत, हर बर हर सारौ ।
सबर सद्द बद्दयौ, विषम दुग्गं घन भारौ[3] ।
आसन सदिट्ठ निज पत्ति में, लिय सिर चंद अम्रित अमर ।
मंडलीक रांम रावत[4] भिरत, न भौ बीर इत्तौ समर ॥ छं० ११३ । रू०७८ ।

भावार्थ—रू० ७८—जंघार (या=जंघारा), योगियों में योगीन्द्र (शिव) सदृश दिखाई पड़ा; (उसके एक हाथ में) खुली हुई कटार थी, एक हाथ में फरशा, (पीठपर) ऊँचा त्रिशूल और बाघंबर था। सर पर जटाओं का जूट बाँधे, बाण तथा सिंगी बाजा लिये, और (शरीर में) भभूत मले हुए वह सर्व नाशक शिव सदृश दिखाई पड़ता था। उसने शाबर मंत्रों का उच्चारण करके विषम मद में भरने वाली वायु फैला दी। [अब वीर गति प्राप्त हो जाने पर] वह (स्वर्गलोक में) अपनी (योगियों की) पंक्ति में देखा जा सकता है; उसके सिर पर अमरत्व प्रदान करने वाला अमृत से युक्त चंद्रमा सुशोभित है। मंडलेश्वर राम और रावण के युद्ध के बाद संसार में ऐसा युद्ध अब तक न हुआ था [या—राम रावत के युद्ध से अब तक समर भूमि में ऐसी वीरता न देखी गई थी—ह्योर्नले]।

शब्दार्थ—रू०७८—जोगी जुगिंद=योगियों में योगीन्द्र सदृश। कढ्यौ कट्टारौ=कटार काढ़े हुए। फरस=फरशा। पानि<सं० पाणि=हाथ। तुंगी <तुंग=ऊँचा। त्रिसूल<सं० त्रिशूल। पष्षर=ज़िरह बख़्तर, (यहाँ बाघंबर)। अधिकारौ=अधिकार में (अर्थात् सुसज्जित)। जटत=जटाओं का जूड़ा। बांन<बाण। सिंगी=सींग का वाद्य विशेष। बिभूत=भभूत। हर बर=श्रेष्ठ

(१) ना०—परस (२) ना०—मष्षर (३) ना०—विषम मद्गंधन भारौ (४) मो०—रावन; ना०—रावत ।

शिव। हर सारौ=सब हरने वाले या सर्वनाशक। सबर<सं० शाबर=मंत्र तंत्र, (उ०—'शाबर मंत्र जाल जेहिं सिरजा।' रामचरित मानस)। सद्द<सं० शब्द। बढ्यो (बढ्ढयो)=बढ़ाया। सबर सद्द बढ्यौ=शाबर मंत्रों का उच्चारण किया। विषम दग्गं घन झारौ=(१) एक प्रकार की मद में भरने वाली वायु फैल गई (२) विषम (दग्गं<दृग) नेत्रों से अग्नि झरने लगी। सदिट्ठ< सदृष्टि=देखा गया। अम्रित<अमृत। अमर=अमरता (देने वाले)। मंडलोक= मंडलेश्वर। राम=अयोध्या के राजा इक्ष्वाकु वंशी महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र जो ईश्वर या विष्णु भगवान् के मुख्य अवतारों में माने जाते हैं। रावन< सं० रावण (=जो दूसरों को रुलाता हो)। लंका का प्रसिद्ध राजा जो राक्षसों का नायक था और जिसे युद्ध में भगवान् रामचन्द्र ने मारा था। राम रावत— पृथ्वीराज की सेना का एक वीर योद्धा था। [रावत—यह छोटे राजपूतों की उपाधि है। गढ़वाल के राजपूत कस्सी नामी पहाड़ी जाति से विवाह संबंध करने के कारण बहिष्कृत किये गये थे। इनमें जो अच्छे रह गये उन्होंने 'रावत' उपाधि ग्रहण कर ली। चंदेल राजपूतों की चार शाखायें भी राजा, राव, राना और रावत हैं। Races of N. W. Provinces of India. Elliot, Vol. I, pp. 24, 72, 116, 293 में रावतों का वि० वि० है]। ह्योर्नले महोदय का मत है कि जंघार भी रावत था परन्तु जोगी होने के कारण जाति च्युत हो गया था। इत्तौ=इतना ; ऐसा।

नोट—'रावन' और 'रावत' पाठों में 'रावन' पाठ अधिक उचित और उपयुक्त है। राम रावण का युद्ध प्रसिद्ध है और राम रावत को जानने वालों की गणना नगण्य है।

कवित्त

सिलह सज्जि सुरतांन, झुक्कि बज्जे रन जंगं।
सुने श्रवन लंगरी, बीर लग्गा अनभंगं॥
बीर धीर सत मध्य, बीर हुंकरि रन धायौ।
सामंतां सत मद्धि, मरन दीनं भय सायौ॥
पारंत धक्क हाकंत रिन[1], पग [2]प्रवाह पग पुल्लयौ।
बिब्भूति[3]चंद अंगन तिलक, वहसि बीर हकि बुल्लयौ॥ छं०११४। रू०७६।

भावार्थ—रू० ७६—सुलतान कवच और अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित होकर युद्ध भूमि में जंग करने के लिये झुका। अपने कानों (यह) सुनकर

(१) ए०—रिन, तरिन (२) ना०—पग (३) ना०—बिब्भूत।

[या—यह सुनकर] वीर लंगरी राय मुक़ाबिले के लिये चला। सात धैर्यवान योद्धाओं के बीच (=साथ) वह वीर हुङ्कारता हुआ रण में दौड़ा (अर्थात् युद्ध भूमि में कूदा)। सात सामंतों के बीच (=साथ) उसने (शत्रुओं में) मृत्यु का दीन भय छा दिया। [रणभूमि में] धक्का देते और हाँक लगाते हुए उसने अपनी तलवार चलाने की कुशलता से (शत्रुओं की) तलवारों (की मूठें) ढीली कर दीं। (तब) चंद कवि कहते हैं कि तिलक लगाये और अंगों में विभूति युक्त वीर ने हँसते हुए हाँक लगाई [या—'तब चंद <चंद्र=(स्वच्छ) बिभूति अंगों में मले हुए वीर ने हँसते हुए हाँक लगाई' या—('उसकी यह अनुपम वीरता देखकर) अंगों में भभूत मले हुए और ललाट पर चंद्रमा सुशोभित किये हुए (शिव ने) उसे हँसते और पुकारते हुए उत्साहित किया', ह्योर्नले]।

शब्दार्थ—रू० ७६—सिलह<अ० [illegible]=कवच। झुकि बज्जे रन जंगं=रण में जंग करने के लिये झुका। सज्जि=(अस्त्र शस्त्र से) सुसज्जित होकर। श्रवन<सं० श्रवण=कान। लंगरी=लंगरी राय का वर्णन पहले आ चुका है। अगले रू० ८० में लंगा नाम मिलता है और रू० ८१ में लंगा-लंगरी राय आया है। लंगरी जाति के राजपूतों का ठीक पता नहीं चलता। "लंगह, चालुक्य या सोलंकी वंश के राजपूतों की एक शाखा थे। लंगह राजपूत मुलतान के समीप रहते थे। इनका पता अब नहीं चलता, कुछ मार डाले गये और कुछ मुसलमान बना लिये गये," [Rajasthan. Tod. Vol. I, p. 100]। लंगह और लंगा नामों में बहुत कुछ अनुरूपता है। ह्योर्नले महोदय का अनुमान ग़लत है कि लंगरी राव इसी युद्ध में मारा गया। प्रमाण अगले रूपक ८१ की टिप्पणी में देखिये। लग्गा=(युद्ध में) लगा। अनभंगं=बिना (साहस) भंग हुए अर्थात् निर्भयता से। धीर=धैर्यवान्। मध्य (मद्धि)=बीच में (यहाँ 'साथ' से तात्पर्य है)। सामंतां सत मद्धि=सात सामंतों के बीच (=साथ)। मरन दीनं भय सायौ=मरने का दीन भय छा दिया। पारंत धक्क=धक्का देते हुए। हाकंत रिन=रण में हाँक लगाते हुए। पग प्रवाह पग पुल्लयौ=तलवार के प्रवाह से तलवारें खोल दीं अर्थात् तलवार चलाने की कुशलता से तलवारों की मूठें ढीली कर दीं। पारंत धक्क हाकंत रिन=उनके हृदयों को विचलित करते हुए और रण में हाँक लगाते हुए। हसि=हँसते हुए। (बहसि=बदावदी करते हुए)। हकि=चिल्लाकर। बुल्लयौ=बुलाया। अंतिम पंक्ति का अर्थ एक विद्वान् के अनुसार यह भी है—भभूत, चंदन और तिलक से सुशोभित लंगरी ने अपने साथियों को प्रोत्साहित किया (या) शिव ने हँसकर उसे

अपने पास बुला लिया (कि इसको मेरे गणों में होना चाहिये)। परन्तु लँगरी राय अभी मरा नहीं है अतएव दूसरा अर्थ करना असंभव है।

नोट—"उसके पश्चात् सुन्दर केशर मय चंदन की खौड़ दिये, हिये पर पुष्प माला धारण किये हुए, वीरता के छत्तीसों वस्त्र लिये लंगरी राय ने पसर की।" 'रासो-सार', पृ० १०२।

कवित्त

लंगा लोह उचाइ, पर्‌यौ घुम्मर वन मज्झै[1]।
जुरत तेग सम तेग, कोर बद्दर कछु सुज्झै[2]॥
यौं लग्गौ सुरतांन, ज्यों[3] अनल दावानल दंगं[4]।
ज्यों लंगूर लग्गया, अगनि अग्गै[5] आ लंगं[6]॥
इक मार उभ्भार अपार मल, एक उभ्भार सज्झार्‌यौ[7]।
इक वार तर्‌यौ दुस्तर रुपै, दूजै तेग उभार्‌यौ॥छं० ११५। रू० ८०।

भावार्थ—रू० ८०—लंगा तलवार उठाये हुए शत्रुओं के बीच में घूम रहा था। तलवार पर तलवार के वार पड़ने से (उसी प्रकार की बिजली की लपक निकलती थी जैसी कि) बादलों के किनारे के समीप दिखाई पड़ती है। (लंगा) सुलतान (ग़ोरी) से (युद्ध में) उसी प्रकार लगा जिस प्रकार अग्नि दावाग्नि में दग उठती है (अर्थात् दावानल वन में लग जाती है)। लंगा उसी प्रकार आगे बढ़ा जिस प्रकार लंगूर (वीर हनुमान) (लंका में) आग लगा कर बढ़े थे। एक वार में उसने अखाड़े के मल्लों (अर्थात् विपक्षियों) को उभाल दिया और दूसरे वार में उसने उन्हें झाड़ कर एक जगह इकट्ठा कर दिया। जब उसने एक वार किया तो (उसके सामने शत्रुओं का) रुकना ही कठिन हो गया और फिर दुबारा उसने तेग उठाई (अब शत्रु की रक्षा कैसे होगी)। या—'एक बार तो वह कठिनाई से (शत्रु के वार से) बचा परन्तु तुरंत ही उसने फिर तलवार ऊपर उठाई'—ह्योर्नले।

शब्दार्थ—रू० ८०—लंगा=वीर लंगरी राय। लोह=तलवार। उचाइ=उठाये, ऊँचा किये। घुम्मर=घूमता हुआ। मज्झै<मध्ये=बीच में। बद्दर=बादल। यौं लग्गौ सुरतांन=सुलतान के वह इस प्रकार लगा। दंगं=दग उठना। दावानल=दावाग्नि। लंगूर=हनुमान, जिन्होंने लंका में आग लगा दी थी, [वि० वि० प० में]। इक मार=एक मार में अर्थात् तल-

(१) ना०—मझ्झै (२) ना०—सुझ्झै (३) 'ज्यौं' पाठ ना० में नहीं है (४) ना०—दग्गं (५) ना०—अग्गे (६) ना०—आलग्गं (७) ना०—सुझार्‌यौ।

वांर के एक वार में। उभ्कार=उभ्काल देना, बिखराना, तितर बितर करना। अषार=अखाड़ा [यहाँ युद्धभूमि से तात्पर्य है]। मल<मल्ल=योद्धा। एक उभ्कार=एक उभ्काल अर्थात् वार में। सज्भारयौ=[पंजाबी सज्भ=साभ्का] भाड़ कर एक स्थान पर कर देना, इकट्ठा कर देना। इक वार=एक (तलवार के) वार में; एक वार। तर्यौ=तरना, बचना (या) तरा, बचा। दुस्तर=कठिन। रुपै=रूप। दूजै=दूसरी बार। उभारयौ=उठाई, उभारी।

नोट—डॉ० ह्योर्नले प्रस्तुत रूपक की अंतिम दो पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार करते हैं—

"Like a wrestler in the arena he with one stroke scattered (his enemies), with another sweep he gathered them; at one moment with difficulty he escaped (his enemy's stroke), at the next he again uplifted his sword." p. 52.

कुंडलिया

तेग भारि उज्भारि बर, फेरि[१] उपम कवि कथ्थ।
नैंन बांन अंकुरि बहुरि (परैं), तन तुट्टै बहि हथ्थ॥
तन तुट्टै बहि हथ्थ, फेरि बर बीर सबीरह।
मरन चित्त सिंचयौ, जनम तिन[२] तजी जंजीरह[३]॥
हथ्थ बथ्थ आहित्त फिर[४], तक्के उर बहु बेगा।
लंगा लंगरि राय, बीर उचाइसु तेगा॥ छं० ११६। रू० ८१।

भावार्थ—रू० ८१—[लंगा लंगरीराय शत्रुओं को] अपनी श्रेष्ठ (अच्छी, मज़बूत और तेज़) तलवार भाड़ करके (या तलवार के वार करके) उभ्काल रहा था। कवि उसकी फिर उपमा कहता है। (कुछ समय बाद लंगरी के) नेत्र में एक बाण घुस गया और शरीर से बायाँ हाथ कट गया (या—शरीर का बायाँ हाथ टूट गया)। (यद्यपि) शरीर से बायाँ हाथ कट गया फिर भी उसका वीरोचित उत्साह कम नहीं हुआ। उसने मन में विचारा कि (युद्ध भूमि में) मृत्यु होने से (फिर) जन्म लेने का बंधन छूट जावेगा। उसका हाथ और कमर (या--बथ्थ=वक्षस्थल) घायल हो चुके थे फिर भी उसने (लंगरी-

(१) कृ०—फेरि उपम; ना०—फिरि उपमा (२) ए० कृ० को—तिन; ना०—जिन (३) ना०—ज जीरह (४) ना०—फेरि।
(परैं) पाठ अन्य प्रतियों में नहीं है केवल हा० ने दिया है।

राय ने आवागमन से मुक्त होने की बात पर दृढ़ निश्चय करके और मृत्यु की परवाह न कर) (शत्रु के) वक्षस्थल [का निशाना] ताक कर तलवार ऊपर उठाई ।

शब्दार्थ—रू० ८१—उपम = उपमा । कथ्थ (प्रा०) <सं० कथ् = कहना । नैंन = नेत्र । बांन = बाण । अंकुरि = घुसना । बहुरि = फिर । तुट्टै = टूटना, कटना । बहि = वहना (ह्योर्नले); बायाँ । बहि हथ्थ = बायाँ हाथ । फेरि वर वीर सबीरह = फिर भी श्रेष्ठ वीर सबीरह (अर्थात् वीरता पूर्ण रहा); फिर भी उस श्रेष्ठ वीर का वीरोचित उत्साह कम नहीं हुआ । मरन चित्त सिंचयौ = उसने अपने मन में मरने की बात सिंचयो (सोची) । जनम तिन तजी जंजीरह = उसने जन्म [अर्थात् पृथ्वी पर पुन: जन्म लेने] की बेड़ी त्याग दी । (साधारणत: मृत्यु होने पर आवागमन लगा रहता है परन्तु युद्धभूमि में वीरगति प्राप्त होने पर मुक्ति हो जाती है और आवागमन का बंधन छूट जाता है—ऐसा तत्कालीन क्षत्रिय योद्धाओं का विश्वास था) । हथ्थ (प्रा०) <सं० हस्त = हाथ । बथ्थ (प्रा०) <सं० वस्ति = कमर । आहित्त <सं० आहत । बथ्थ आहित्त = उसका हाथ और कमर (या वक्षस्थल) घायल हो चुके थे; (फिर उसने अपना हाथ कमर पर रक्खा—ह्योर्नले) । फिर तक्के = फिर (निशाना) ताककर । उर = हृदय या छाती । बहु बेगा = बड़े वेग से । फिर तक्के उर बहु बेगा = फिर बड़े वेग से (शत्रु के) वक्षस्थल (का निशाना) ताककर । बीर उच्चाइसु तेगा = बीर ने तलवार उठाई । फिर तक्के उर बहु बेगा—कुछ विद्वान् 'उर' का 'ओर' शाब्दिक अर्थ लेकर इस पंक्ति का अर्थ करते हैं कि—फिर बड़े वेग से उस ओर ताककर ।

टिप्पणी—(१) "The interpretation of this whole stanza is very obscure." Hoernle. परन्तु ऐसी कोई कठिनाई इसके शब्दार्थ और भावार्थ में नहीं प्रतीत होती ।

(२) डॉ० ह्योर्नले महोदय का अनुमान है कि लंगरी राय की इस युद्ध में मृत्यु हो गई परन्तु यह भ्रम पूर्ण है । लंगरी-राय संयोगिता अपहरण वाले युद्ध में था और बड़ी वीरता पूर्वक लड़कर (रासो सम्यौ ६१, छं० ९७३-१००४) मारा गया, ('संजमह सुअन लै चली रंभ । सब लोग मद्धि हूऔ अचंभ ।' छं० १००४) । किस प्रकार यह उद्भट वीर पंगदल को परास्त कर राजमहल में घुस पड़ा और किस प्रकार उसका आधा धड़ लड़ता रहा, यह वहीं पढ़ने से विदित होगा । चंद बरदाई ने उसी स्थल पर लंगरी राय की प्रशंसा में निम्न तीन कवित्त कहे हैं—

एक जुद्ध लंगरिय । श्राय चौकी सम जुट्यौ ॥
एक अंग लंगरिय । तीन लष्षह हथ घुट्यौ ॥
सार सार उछरंत । परी गिद्धारव भष्षन ॥
गज वाजित्र निहाय । वजि उत्तराधि दष्षिन ॥
इम भिर्यौ लंग पंगहि अनी । हाय हाय मुष फुट्टयौ ॥
हल हलत सेन असि लष्ष दल । चौकी चौरँग जुट्टयौं ॥छं०१००६॥

मंत्री राव सुमंत । हथ्थ विंटचौ सचलंतौ ॥
दुजाई दिल्लीप कोप । श्रोप कुञ्जरनि वढ़ंतौ ॥
हालो हल कनवज्ज । मंझ केहरि कुकंदा ॥
संजम राव कुमार । लोह लग्गा लूसंदा ॥
चहुश्रान महोवै जुद्ध हुश्र । मेहा गिद्ध उड़ाइयाँ ॥
रन भंग रावनै वर विरद । लंगै लोह उचाइयाँ ॥ छं० १००७ ॥

एक कहै अप्पान । एक कहि बंधि दिवाना ॥
बंधौ वंधन हार । मार लद्धी सिर कान्हा ॥
बावारौ बर तुंग । षग्ग साहै विरुझाना ॥
लंगी लंगर राव । अद्ध राजी चहुश्राना ॥
उरतान ढंकि कमधज्ज दल । संजम राव समुद्ध हुश्र ॥
प्रारंभ जुद्ध जुद्धे सबल । चलि चलि वीर भुजंग हुश्र ॥ छं० १००८॥

अगले रासो सम्यौ ३१ में भी लंगरी राय के युद्ध का वर्णन मिलता है—

'लग्यौ लंगरी लोह लंगा प्रमानं ।
षगे पेत पंड्यौ षुरासान षानं ॥' छं० १४४ ।

'रासो सार' भी लंगरी राय की मृत्यु का वर्णन इस युद्धकाल में नहीं करता ।

(३) लंगरी राय—पृथ्वीराज के सौ सामंतों में संजमराय का यह पुत्र भी था । यह बड़ा ही पराक्रमी तथा पक्का धनुर्द्धर था—

'संजम राय कुमार बल । करि संजम नृप ध्रंम ॥
इक्क मिक्क एकत भए । अप्प चर्म्म पसु चर्म्म ॥ छं० २१ ॥
गजन कुंभ जिस हथ्थ हनि । फारि चीर धरि डार ॥
संजम राय कुमार सौं । बथ्थन मारि पछारि ॥ छं० २२ ॥
रीछ रोझ वाराह हनि । दठ्ठन वढ्ढे कोरि ॥
तिते जीव उर मझ्झत । कढि जम दढ्ढे फोरि ॥ छं० २३ ॥

गिरि परवत नद षोह सर। लंघत लगी न वार।
लंगा इक्कन लंघयौ। अनी धार धर धार॥ छं० २४॥ सम्यौ ५॥'

इसका पिता संजम राय कम स्वामिभक्त नहीं था। महोबा युद्ध में पृथ्वीराज के मूर्च्छित होने पर एक गिद्धिनी उनके सर पर आ बैठी और आँख निकालने लगी। संजम राय ने यह दृश्य देखकर गिद्धिनी को अपने शरीर का मांस काट काट कर खिलाना प्रारंभ कर दिया और इसी में प्राण दे दिये—

लोह लागि चहुवान। परे मूरछा ह्वै धरत्तिय।
उड़ गीधनि बैठि कै। चुंच बाहैति बिरत्तिय॥
देष्यौ संजम राय। नृपति दृग दाढ़ति पंछिन।
अपने तन कौ मासु। काटि भषु दियौ ततच्छिन॥
अपने सु नयन देष्यौ नृपति। अंत समय भ्रम मझ्झियव।
आये विवान बैकुंठ के। देह सहत धरि चझ्झियव॥ छं० ८१३, महोबा समय।

पृथ्वीराज ने संजमराय के इस अपूर्व बलिदान पर उसके पुत्र (लंगरीराय) को आधी गद्दी का आसन और आधे राज का पट्टा दिया—

'संजम राय कुंवर कौ। बोलि हजूर नरेस।
हय गय मनि मानिक बकसि। अध आसन अध देस॥' छं० ८२८।
महोबा समय।'

शशिव्रता हरण में गये हुए सामंतों के साथ लंगरी राय भी देवगिरि गया था--

"चढ्यौ लंगरी राय लंगा सुबीरं।
किधौं बाय बढ्यौ बुग्रं जानि धीरं॥" छं० २१३, सम्यौ २५]।

प्रस्तुत समय २७ में हमने लंगरी राय की वीरता का हाल पढ़ा ही है। लंगरी राय की मृत्यु इस युद्ध में नहीं हुई जैसा कि कुछ विद्वानों का अनुमान है, वह बहुत बुरी तरह से घायल अवश्य हो गया था। अगले समय ३१ में उसके पराक्रम का हाल फिर पढ़ने को मिलता है—

'लग्गो लंगरी लोह लंगा प्रमानं।
पगे षेत पंड्यौ षुरासान षानं॥ छं० १४४, सम्यौ ३१।'

समय ४३ में जो शहाबुद्दीन से युद्ध का वर्णन है उसमें भी लंगरी का नाम आता है—[जू चल्यौ लंगरीराइ रन्न जंगं॥ छं० ३१]। 'भीम वध' समय में भी लंगरी राय चौहान के साथ था—[लंगरी राव तहँ बैठि आइ।

जगि जुद्ध सभय जनु अगनि वाइ ॥ छं० १३, सम्यौ ४४]। 'दुर्गा केदार' समय में भी लंगरी राय संभरी-नाथ के साथ गया था और गोरी से लड़ा था—[सत तुंग भवन लंगरी राव। छं० १७, सम्यौ ५८]। अंत में कनवज्ज समय में हम वीर लंगरी राय की अंतिम वीरता और मृत्यु का हाल पढ़ते हैं। पृथ्वीराज के पूर्व पुरुषों में पप्पयराज नाम का कोई प्रतापी पुरुष हो गया था। उसके दो पुत्र थे जिनमें एक के वंश में पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर थे और दूसरे का वंशज संजमराय था जिसका पुत्र लंगा लंगरी राव था। पृथ्वीराज चंद के साथ भेष बदले हुए हैं, यह जानकर जयचंद ने चंद कवि का पड़ाव चारों ओर से घिरवा लिया। अब युद्ध के सिवा दूसरा उपाय ही क्या था। सामंत भी कमर कस कर तय्यार हो गये। संजम राय का पुत्र लंगरी अपना नमक अदा करने के लिये सबसे पहले उठा और शत्रुओं को चीरता फाड़ता राज महल में पैठ पड़ा (छं० ९८३-८९, सम्यौ ६१)। उसका शरीर बीच से चिर कर दो हो गया। एक धड़ तो वहीं पड़ा रहा परन्तु दूसरा महल की पहली चौक में घुस गया और मार काट करने लगा (छं० ९९१-९३)। रनिवास की स्त्रियाँ झरोखों से यह कौतुक देखने लगीं। सैकड़ों का वारा न्यारा करता हुआ वह जयचंद के मंत्री सुमंत के सामने आया, और अंत में दोनों गिर गये।

किलकिला नाल छुट्टी अवाज।
लै चली लंग पर महल साज ॥
दस कोस परे गोला रनक्कि।
परि महल कोट गज्जी धनक्कि ॥ छं० १००३॥
संजमह सुअन लै चली रंभ।
सब लोक मद्धि हूऔ अचंभ ॥ छं० १००४, सम्यौ ६१ ॥

लंगरी राय ने जयचन्द के तीन हज़ार योद्धा, मंत्री पुत्र, भानजे और भाई आदि मारे। क्यों न हो आख़िर स्वामी की रक्षा में गिद्धिनी को अपना मांस खिलाने वाले का ही पुत्र था।

कवित्त

(तब) लौहांनौ महमुंद[1], बांन मुक्के बहु भारी।
फुट्टि सु ढढ्ढर वहि जु बान[2], पिट्ठ ऊरद्ध निकारी ॥

---

(१) ना०—लोहानौ मदमुंद; हा०—लोहांनौ महमुंद (२) ना०—फुट्टि सु ढढ्ढर ज्वान।

मनों किवारी लागि, पुट्ठि षिरकी उघ्घारिय।
कट्टारी[1] बर कढ्ढि, वीर अवसान सँभारिय॥
एक झर मीर उज्झारि झर[2], करि सुमेर परिअरि सुफिरि।
चवसट्ठि षांन गोरी परे, तीन राइ[3] इक राज परि॥ छं० ११७। रू० ८२।

भावार्थ—रू० ८२—तब लोहाना ने महमूद पर एक बड़ा भारी बाण चलाया जो (उसका वक्षस्थल) फोड़कर धड़धड़ाता हुआ घुस गया और ऊपर पीठ में आ निकला मानों दरवाज़ा बंद देखकर उसने पीठ में खिड़की खोल दी। [महमूद जब इस प्रकार आहत हो गया तो लोहाना ने म्यान से] कटार काढ़ ली और उसका अंत करने के लिए सँभला (बढ़ा)। (यह देख कर ग़ोर के एक) मीर ने (तलवार के) एक वार से उभाल कर उसे गिरा दिया (मार डाला) और वह (लोहाना) सुमेरु की परिक्रमा करने चला गया। [अभी तक रण क्षेत्र में] ग़ोरी के चौंसठ ख़ान मारे गये तथा [पृथ्वीराज की ओर] एक और तीन अर्थात् तेरह राव राजे काम आये (या) एक राजा और तीन राव खेत रहे।

शब्दार्थ—रू० ८२-लोहांनौ—लोहाना, पश्चिमी भारत, सिंध और कच्छ में फैली हुई जाति का नाम है। "पहले ये राठौर वंशी राजपूत थे जो कन्नौज से सिंध प्रदेश में खदेड़ दिये गये थे और तेरहवीं शताब्दी में सिंध से कच्छ चले गये थे। उस समय ये भंसालियों की भाँति जनेऊ पहिनते थे और अपने को क्षत्रिय कहते थे।" [Hindu Tribes and Castes, Sherring. Vol. II, p. 242]। सिंध की हिन्दू आबादी में सबसे अधिक ये ही लोग हैं (वही, पृ० ३७१)। इनमें से कुछ सिक्ख धर्मानुयायी भी हैं (वही, पृ० ३७५)। "लोहाना जाति घाट और तालपुरा में विस्तार से फैली हुई है। पहले ये राजपूत थे परन्तु व्यापार करने के कारण कुछ समय बाद वैश्य हो गये"—[Rajasthan, Tod. p. 320]। "पृथ्वीराज के राजत्व काल में ये कन्नौज के समीप ही रहते होंगे जहाँ से मुसलमानों की विजय के बाद राठौरों के निर्वासित किये जाने पर बाहर चले गये"—ह्योर्नले। चंद ने अपने महाकाव्य में लोहानों का वर्णन किया है। लोहाना वंशी एक वीर पृथ्वीराज के साथ संयोगिता अपहरण वाले युद्ध में भी था और उसी युद्ध में पराक्रम दिखा कर खेत रहा [रासो सम्यौ ६१, छं० १४६३-६४]। महसुंद < महमूद—(रासो की प्रतियों में 'महसुंद' पाठ भी है)—यह वीर, शाहज़ादा

---

(१) ना०; हा०—बट्टारी (२) ए०—कर (३) ना०—तिन रावव; ए० कृ० को०—तीन राइ। (तब)-पाठ अन्य प्रतियों में नहीं है केवल हा० ने दिया है।

ख़ाँ-पैदा-महमूद है जिसका वर्णन पिछले रू० ३६ में आ चुका है। अगले रू० ८४ में भी इसका वर्णन है कि—

"परयौ वीर बानैत नादंत नादं।
जिने साहि गोरी भिल्यौ साहिजादं ॥"

'बानैत' योद्धा बिड्डुर ही था जिसने शाहज़ादा महमूद का सामना किया था। मुक्के <मुक्के=छोड़ना। पिट्ठ<सं० पृष्ठ=पीठ। फुट्टि (क्रि०)=फोड़ा। सु=वह (बाण)। ढड्ढर=धड़धड़ाता हुआ। ऊरद्ध <सं०ऊर्ध्व=ऊपर। मनो किवारी लागि =मानो दरवाज़ा बंद देखकर। पिरकी = खिड़की। उग्घारिय=उघारना, खोलना। कट्टारी=कटार। कढ्ढि (या कढ्ढि)=काढ़कर, खींचकर। अवसान=अंत, मरण। संभारिय=सँभार करना, प्रबन्ध करना। सुमेर <सं० सुमेरु=एक पुराणोक्त पर्वत जो सोने का कहा गया है [वि० वि० प० में]। परिअरि (अप०) (परिकरि)< सं० परिक्रमा। करि सुमेर परिअरि सुफिरि=फिर वह सुमेरु पर्वत की परिक्रमा करने चला गया। (नोट—सुमेरु की परिक्रमा करने वाले सूर्य कहे गये हैं। लोहाना भी सुमेरु की परिक्रमा करने चला गया अर्थात् लोहाना सूर्यलोक में स्थान पा गया)। चवसट्ठि<सं० चतुष्षष्टि=चौंसठ। परे=मारे गये। तीन राइ इक राज परि=(१) एक राजा और तीन राव गिरे (२) एक और तीन अर्थात् तेरह राव राजे गिरे। नोट—इस दूसरे अर्थ में एक और तीन का अर्थ तेरह करने का रहस्य यह है कि अगले रू० ८४ में इस युद्ध में धराशायी होने वाले तेरह सामंतों मात्र का स्पष्ट उल्लेख है और यहाँ इस रूपक में केवल एक और तीन अर्थात् चार ही होते हैं। यह विषमता मिटाने के लिये एक और तीन अर्थात् तेरह की कल्पना कर ली गई है। अब रहा पहला अर्थ, वह भी ठीक है ; (पृथ्वीराज के जितने वीर काम आये उनमें) तीन राव इक राज परि (=एक राजा और तीन राव थे)—इस प्रकार प्रथम अर्थ की पुष्टि भी हो जाती है।

नोट (१)—"इस तरफ आजानबाहु लोहान अजब ही मजा कर रहा था। वह जिस लंबे चौड़े काबुली वीर के सीने में कटार मार के वारा पार कर देता तो ऐसा मालूम होता था कि मानों किसी दृढ़ दुर्ग का द्वार खोल दिया गया हो।' रासो-सार, पृष्ठ १०२।

यहाँ आजानबाहु, लंबे-चौड़े-काबुली वीर, कटार और दृढ़-दुर्ग शब्द ध्यान देने योग्य हैं। 'महमुंद' [का 'महसुंद' (मह=बड़ा+सुंद<सुंड=हाथ) अर्थात् बड़े हाथ] पाठ करके 'आजानबाहु' की उत्पत्ति हुई है। लंबे-चौड़े-

काबुली-वीर और दृढ़-दुर्ग के पर्य्यायवाची शब्द इस रूपक में कहीं नहीं आये हैं। फिर कवित्त से यह भी स्पष्ट है कि लोहाना ने छाती के वार पार बाण मारा था न कि कटार।

(२) लोहाना आजानुवाहु—यह वीर लोहाना अद्वितीय पराक्रमी था। एक दिन महाराज पृथ्वीराज सायंकाल सोलह गज ऊँची चित्रशाला की गौख में सामंतों सहित खड़े थे। एक चित्रकार ने एक चित्र पेश किया। उसको संभरीनाथ देख रहे थे कि वह चित्र हाथ से छूट पड़ा परन्तु लोहाना आजानवाहु ने उसे अधविच में ही झड़प लिया—('ठढ्ढो सु इक्क लोहान भर। कहर कबुत्तर कुद्दयो॥ जो नेक चूकि ऐसो गिर्यौ। साप अंब ह्व हल्लयौ॥' छं० २, सम्यौ ४) तभी पृथ्वीराज ने इसे आजानुवाहु नाम दिया था (सम्यौ ३, छं० ५७)। इसने ओड़छा के राजा का दुर्ग भी छीना था (सम्यौ ४)। पृथ्वीराज इसका बड़ा सन्मान करते थे। अंत में अंतिम युद्ध में आजानुवाहु स्वामी के लिए पराक्रम से भिड़कर [तवै गजियं वीर आजान वाहं। मिल्यौ मीर अड्डो सुरं जुद्ध राहं॥' छं० १२९३, सम्यौ ६६] वीरता पूर्वक लड़ता हुआ मारा गया—

परयौ होय आजान। बाह त्रयपंड धरन्नी॥
जै जै जै जंपंत। सुष्प सब सेन परन्नी॥
धनि धनि जंपि सुरेस। सु धुनि नारद उचारं॥
करिग देव सब कित्ति। बुढ़ि नभ पुहुप अपारं॥
कौतिग्ग सूर थक्यौ सुरह। भइय टगट्टग सुग्र भरनि॥
आसंसि करै अच्छर सयल। गयो भेदि मंडल तरनि॥ छं० १३०५। सम्यौ ६६।

कबित्त

मंनि[1] लोह मारूफ, रोस बिड्डर गाहक्के।
मनों पंचानन बाहि, सद्द सिरसद्द[2] हहक्के॥
दुहूं मीर बर तेज, सीस इक सिंघह बाही।
टोप टुट्टि बर करी,[3] चंद उप्पमा सु[4] पाई॥
मनु सीस बीय अँग बिज्जुलह, रही हेत तुटि भाम न[5] हति।
उतमंग सुहै बिव टूक ह्वै, मनु उडगन नृप तेजमति॥ छं० ११८। रू० ८३।

भावार्थ—रू० ८३—बिड्डर अपनी तलवार चलाने की कुशलता पर विश्वास करके मारूफ की ओर क्रोधपूर्वक लपका (और गरजा) मानों सिंह

(१) ना०—मानि; (२) ना०—सिर हद; मो०—सिरद्दस, सिरद्दसु (३) ना०—वहकरी, (४) ना०—चंद ओपमता पाई; ए० कृ० को०—उपमा सु, उपमा सुइ; (५) ना०—'भाम न' के स्थान पर 'भान' पाठ है।

वाहिनी [दुर्गा] अपने अनेक मुखों से हुंकारी हों। [युद्ध छिड़ गया] एक ओर दो तेजस्वी श्रेष्ठ मीर थे और दूसरी ओर सिंहवाहिनी (की उपमा पाने वाले या सिंहवाह राजपूत का) का एक सर था [अर्थात् दूसरी ओर अकेला बिड्डुर था]। [आखिरकार बिड्डुर का] शिरस्त्राण टूट कर बिखर गया और चंद को उससे उपमा मिली। उसके सर के दो टुकड़े करता हुआ भाला वैसे ही लगा मानों पर्वत श्रृंग पर बिजली गिरी हो, परन्तु उस (सिर) की शोभा नष्ट नहीं हुई; सिर दो टुकड़े होकर भी ऐसा शोभायमान रहा मानों तेजस्वी उडुगण नृप (अर्थात् चंद्रमा) हो।

शब्दार्थ—रू० ८३—मंनि लोह=लोह (तलवार) मान के अर्थात् अपनी तलवार चलाने की कुशलता पर विश्वास करके। मारूफ=तातार मारूफ खाँ। बिड्डुर=सिंघवाह नाम की एक राजपूत जाति कही जाती है परन्तु अब उसका कहीं पता नहीं लगता। संभव है कि विड्डुर सिंघवाह राजपूत था, तभी चंद का कथन है कि सिंघवाह (=सिंह पर चढ़ने वाला) विड्डुर उसी प्रकार गरजा जैसे सिंहवाहिनी हुंकारती हैं। एक ओर दो मीर थे और दूसरी ओर सिंघहवाही [अर्थात् सिंघवाह राजपूत या सिंहवाहिनी दुर्गा की उपमा पाने वाले] का एक सर था—अर्थात् विड्डुर अकेला था। चंद ने 'सिंहवाह' शब्द के अर्थ का चमत्कार प्रस्तुत रूपक में दिखा दिया है। गाहक्के<हि० गहकना=लपकना (बड़े चाव से)। पंचानन=सिंह [नोट—सिंह को पंचानन कहने के दो कारण कहे जाते हैं। कुछ लोग 'पंच' शब्द का अर्थ 'विस्तृत' करके 'पंचानन' का अर्थ 'चौड़े मुख वाला' करते हैं; और कुछ लोग चारों पंजों को जोड़कर पाँचवाँ मुँह गिना देते हैं]। वाहि=वाहिनी। पंचानन वाहि=सिंहवाहिनी (दुर्गा) [वि० वि० प० में] (उ०—'रूप रस एवी महादेवी देव देवन की सिंहासन बैठी सोहैं सिंहबाहिनी।' देव)। सद्द<सं० शब्द। सद्द<सद<सं० शत=सौ। सिर सद्द=सौ सिर (अर्थात् अनेक सर)। हहक्के=हहकना, गरजना, हुंकारना। बरकरी=बरक गया। टोप टुट्टि बरकरी=टोप टूटकर बिखर गया। हेत<सं० हेति=भाला। तुटि=टूटना। बीय=दोनों। श्रंग<सं० श्रृङ्ग=पर्वत की चोटी। बिज्जुलह=बिजली। भाम=शोभा। न=नहीं। हति=[हतना (=नष्ट करना) के भूत कालिक कृदंत का स्त्री लिंग रूप है,] नष्ट हुई। भाम न हति=शोभा नष्ट नहीं हुई। उत=उधर। मंग=माँग (यहाँ सिर से तात्पर्य है)। उतमंग=मस्तक। सुहै=शोभायमान हुआ। बिव=दो। टूक ह्वै=टुकड़े होकर। उडगन नृप=चंद्रमा। तेजमति=(तेजम+अति) अति तेजस्वी। इस कवित्त की अंतिम पंक्ति के अंतिम चरण

का कुछ विद्वान् अर्थ करते हैं कि—मानों चंद्रमा टुकड़े-टुकड़े हो गया हो। कवित्त में आये हुए 'वीय' और 'बिव' का संबंध 'विंव' से जोड़कर ह्योर्नले महोदय 'गोल' अर्थ करते हैं जो संभव होने पर भी आवश्यक नहीं प्रतीत होता।

नोट—ह्योर्नले महोदय ने प्रस्तुत कवित्त के अंतिम दो चरणों का अर्थ इस प्रकार किया है—

"It was as if the *sword* had descended on his head like lightening on a mountain peak, yet its beauty was not destroyed; *but his round head, having been broken into pieces, appearad like a multitude of stars*; *such a glorious lord was he*." p. 45.

नीचे नोट नं० ३२७ में आपने लिखा है—"But I confess, the meaning of the whole verse is not quite clear to me"

छंद भुजंगी

परे षांन चौसट्ठि गोरी नरिंदं।
परे सुभ्र[1] तेरह कहै नाम चंदं॥
परे लुथ्थि लुथ्थी जु सेना अलुज्झै।
लिषे कंक अंकं बिना कौंन बुज्झै॥ छं० ११६॥
परयौ गोर जैतं मधिं सेस ढारी।
जिनं राषियं रेह अजमेर सारी॥
परयौ कनक आहुट्ठ गोविंद बंधं।
जिनें मेछकी पारसं सब्ब षद्धं॥ छं० १२०॥
परयौ प्रथ्थ बीरं रघुव्वंश राई।
जिनें संधि षंधार गोरी गिराई॥
परयौ जैत बंधं सु पावार भानं।
जिनें भेजियं मीर बांनेति बानं॥ छं० १२१॥
परयौ जोध संग्रांम सो हंक मोरी।
जिनें कढ्ढियं बैरगो दंत गोरी॥
परयौ दाहिमौ देव नरसिंह अंसी।
जिनें साहि गोरी गिल्यौ[2] षांन गंसी॥ छं० १२२॥
परयौ बीर बांनेंत नादंत नादं।
जिनें साहि गोरी मिल्यौ[3] साहिजादं॥

(१) ना०—सुभर (२) ए०—मिल्यौ। (३) ना०; हा०—गिल्यौ।

परयौ जावलौ जल्ह ते सेंन भष्षं।
हए सार मुष्षं निसंकंत[1] नष्षं॥ छं० १२३॥
परयौ पल्हनं बंध माल्हंन राजी।
जिनें अग्ग गोरी क्रमं सन्त भाजी॥
परयौ बीर चहुआंन सारंग सोरं।
बजे दोइ २हं ज आकास तोरं॥ छं० १२४॥
परयौ राव भट्टी बरं पंच पंचं।
जिनें मुक्ति के पंथ चल्लाइ संचं॥
परयौ भांन पुंडीर ते सोम कामं।
जिनें जुंझते बज्जयो पंच जामं[2]॥ छं० १२५॥
परयौ राउ परसंग लहु बंध भाई।
तिनं मुक्ति अंसं छिनं मद्धि[3] पाई॥
परयौ साहि गोरी भिरै चाहुआनं।
कुसादे कुसादे चवै मुष्ष षांनं॥ छं० १२६। रू० ८४॥

भावार्थ—रू० ८४—गोरी के चौंसठ ख़ान मारे गये। और नरेन्द्र (पृथ्वीराज) के तेरह श्रेष्ठ वीर खेत रहे। चंद (कवि) उनके नाम कहते हैं क्योंकि जो लोथों में उलझे हुए पड़े हैं उनके जातिगत और व्यक्तिगत नाम लिखे बिना उन्हें कैसे पहिचाना जा सकता है। छं० ११६।

(१) अजमेर की लाज बचाने वाला जैत गोर (गरुआ) (लाशों के) अवशेषों के बीच में गिरा। (२) गोविन्द का संबंधी कनक आहुट्ठ गिरा जिसने म्लेच्छों की सब [अधिकांश] सेना को नष्ट कर डाला था। छं० १२०।

(३) रघुवंशियों का राजा, वीर प्रथा गिरा जिसने कंधार में घुसकर गोरी को पराजय दी थी। (४) प्रमार वंश का सूर्य जैत का संबंधी [लखन] गिरा जिसने प्रसिद्ध धनुर्द्धर मीर को एक बाण से (स्वर्ग) भेज दिया था। छं० १२१।

(५) संग्राम स्थल में हुंकारने वाला योद्धा [जंघारा जोगी] गिरा जिसने अपनी तपस्या के बल से गोरी का दाँत खींच लिया था। (६) नरसिंह देव का अंशी (साझीदार) दाहिम गिरा जिसने ग़ोरी के ख़ानों को बाणों की नोक से निगल लिया था (अर्थात् बाणों से मार डाला था)। छं० १२२।

(७) हुंकारने और नाद करने वाला वीर बानैत (धनुर्द्धर) गिरा जिसने

---

(१) ना०— निकस्संत; मो०—तिसक्कंत। (२) ना०—झिळे जुम्झयं बज्जयौ पंच जंमं; ए०— जिने जुझ्झतें बज्जयो पंच जंमं। (३) हा०—मंझ।

शाह ग़ोरी के शाहज़ादे [ख़ाँ पैदा महमूद] का सामना किया था। (८) उनकी सेना को भक्षण करने वाला जावल वंशी जल्ह गिरा जिसने (ग़ोरी के) घोड़-सवारों के सरदार को निश्शंक होकर नष्ट कर डाला था। छं० १२३।

(९) पल्हन का संबंधी राजा माल्हन गिरा जिसके सामने से ग़ोरी के सात योद्धा एक के बाद एक भाग खड़े हुए थे। (१०) सारंग (सोलंकी) का संबंधी [माधव] जो चौहान के साथ रहने लगा था शोर करता हुआ गिरा; जिस समय उसने आकाश तोड़ा (स्वर्ग में प्रवेश किया) उस समय दो बजे थे। छं० १२४।

(११) पाँच श्रेष्ठ वीरों को पंचत्व में मिला, उन्हें मुक्ति के मार्ग पर चला कर सुख पाने वाला राव भट्टी भी गिरा (१२) चंद्रलोक की इच्छा करने वाला पुंडीर वंशी भान गिरा, जिसे युद्ध करते करते पाँच याम बीत गये थे। छं० १२५।

(१३) प्रसंग राव का लघु बंधु [बिड्डुर] गिरा और उसने क्षण भर में ही मुक्ति का अंश पा लिया [अर्थात् वह क्षण भर में ही मुक्त हो गया]। चौहान (की सेना) से भिड़ कर ग़ोरी के इतने ख़ान मारे गये कि मुँह प्रसन्नता से उनका वर्णन कर सकता है। छं० १२६।

शब्दार्थ—रू० ८४—सुभ्र<सुभर<सुभट=श्रेष्ठ वीर, [सुभ्र=< सं० शुभ्र=श्वेत—ह्योर्नले]। नरिंद<नरेन्द्र (पृथ्वीराज के लिए प्रयुक्त हुआ है)। तेरह (प्रा०) <पा० तेरस<सं० त्रयोदश=(हिं०) तेरह। लुथ्थि लुथ्थी=लोथों में। अलुज्झै=उलझे हुए। कंक अंकं=भाग और चिन्ह अर्थात् उनके जातीय और व्यक्तिगत नाम। बुज्झै=बूझना, जानना। मधिं=मध्य में। सेस=अवशेष (लोथों का)। ढारी<(ढारना)=गिरा। जिनं=जिसने। राषियं=रखी। रेह=धूल। जिनं राषियं रेह अजमेर सारी=जिसने अजमेर की सारी मिट्टी रखी अर्थात् जिसने अजमेर की लाज रखी। गोर=इस जाति के राजपूतों का मुख्य स्थान अजमेर पाया जाता है। "सारे प्राचीन इतिहासों में हम 'अजमेर के गोर' लिखा पाते हैं जिससे विश्वास हो जाता है कि चौहानों के बाद देश का शासन सूत्र इन्हीं के हाथ में आया। पृथ्वीराज की लड़ाइयों में गोरों का नाम ख्यातनामा योद्धाओं की भाँति लिया गया है। मध्य भारत में इनका एक छोटा राज्य था जो सात सौ वर्षों की मुसलमानी अमलदारी में अपना अस्तित्व बनाये रहा। सन् १८०९ ई० में सिंधिया ने गोरों की राजधानी सुपूर पर अधिकार करके उन्हें नष्ट भ्रष्ट कर डाला"। [Rajasthan, Tod, Vol. I, p. 116 and Vol. II, p. 449]। अजमेर के गोर पृथ्वीराज

के साथ कन्नौज गये थे और इनके नायक का नाम गौरांग गरुअ था—"गौरांग गरुअ अजमेर पति। रषित्र नृपति पच्छिम सयन ॥" सम्यौ ६१)। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गोर, गौर या गरुअ सब एक ही थे। रासो में इसका गुरु रूप भी मिलता है। (सं० गुरु>प्रा० गरु, गरुअ)। इसका एक संस्कृत रूप गौरव निकला जो साधारण बोल चाल में गौर रह गया जिसका प्राकृत रूप गोर हुआ [वररुचि, प्रथम भाग, पृ० ४१]। जैत गोर=उपर्युक्त व्युत्पत्ति तथा ऐतिहासिक आधार से यह वीर गरुअ गोविंद का संबंधी रहा होगा जिसकी मृत्यु का वर्णन पिछले रू० ६६ में है। गोर या गौर राजपूत, गुहिलोत राजपूतों की एक शाखा हैं क्योंकि गरुअ गोविंद गुहिलोत भी पाया जाता है। "इनकी पाँच शाखायें—ओंतिहर, सिल्हल, तूर, दूसेन और बोदनो हैं" Rajasthan. Tod. Vol. I, p. 116]। इन्हें गाड़ राजपूत न समझना चाहिये जैसा कि (Hindu Tribes and Castes. Sherring, Vol. I, p. 171; Races of The N. W. Provinces. Elliot. Vol. I, p. 105) में लिखा है। "गौरूअ राजपूत आगरा और मथुरा से नौ सौ वर्ष पूर्व जयपुर चले गये" (Elliot. ibid. p. 115)। "गौरुअ और गोर एक ही हैं। गरुआ से या तो गौरुआ हो गया या गौरुआ संस्कृत गौरव का विकृत रूप है।" "गोर जाति का राजस्थान में एक समय बड़ा आदर था यद्यपि उसे विशेष प्रसिद्धि नहीं प्राप्त हुई। बंगाल के प्राचीन राजे इसी जाति के थे और उन्होंने अपने नाम से लखनावती राजधानी बसाई" (Rajasthan Tod. Vol. I, p. 115)। टॉड महोदय की पहली बात तो ठीक है परन्तु दूसरी बात गौर और गौड़ (गाड़) को एक ही मान लेने के कारण हुई है। लखनावती का प्राचीन नाम गौड़ था। "गौरुअ की उत्पत्ति विचित्र है परन्तु यह विकृत रूप है। यह साधारण पदवी है। गौरुअ की उतनी ही शाखायें हैं जितनी ठाकुरों की। गौरुअ राजपूतों को हम ठाकुरों की भाँति अपने को कछवाह, जसावत, सिसौदिया आदि कहते हुए पाते हैं। सिसौदिया गौरुओं को बच्छल भी कहते हैं। बच्छल, 'सेही' के बच्छवन से निकला है जहाँ उनके गुरू रहते हैं। उनका कहना है कि सात या आठ सौ वर्ष पहिले हमने चित्तौर छोड़ दिया था परन्तु अधिक संभावना इस बात की है कि वे सन् १३०३ ई० में अलाउद्दीन के चित्तौर घेरने पर निकले होंगे। मथुरा जिले की अपनी भूमि का नाम इन्होंने कानेर रखा इससे भी स्पष्ट हो जाता है कि सन् १२०२ ई० के पहले ये नहीं गये। सन् १२०२ ई० में चित्तौड़ के राजा ने रावल के स्थान पर राना उपाधि ग्रहण की। चाता परगना

में आज भी इनके चौबीस गाँव हैं और जिला मैनपुरी के भोगाँव और बेवर परगनों में इस जाति के ८७२ व्यक्ति हैं" (Ancient History of Muttra, Growse.) । चित्तौड़ के राजपूत गुहिलोत थे । रेह प्रा० <सं० रेखा । कनक=यह वही वीर है जिसकी मृत्यु का वर्णन रू० ७१ में आ चुका है । 'आहुड़', गुहिलोतों की उपाधि थी । समरसिंह और गरुअ गोविन्द भी गुहिलोत थे, [वि० वि० पीछे दिया जा चुका है] । पारसं=सेना; [रासो में प्राय: इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग हुआ है अतएव इसी को मान लेना उत्तम होगा] । षद्धं=यह पंजाबी और गुजराती 'खा' (=खाना) का भूत-कालिक कृदंत है । इसका 'काधा' रूप भी मिलता है । प्रथ्थ=प्रथा, रघुवंशी राजपूत था और इसीलिये राम का संबंधी रहा होगा जिसकी मृत्यु का वर्णन रू० ७६ में है । 'प्रिथीराज' का विकृत रूप 'प्रथा' होना भी बहुत संभव है । चंद ने भी कहीं-कहीं पिथ, पिथ्थ और पिथल लिखा है । संधि (क्रिया)=सेंध, छेद करना, खोदना । गोरी गिराई=ग़ोरी को गिराया अर्थात् ग़ोरी को परा-जित किया । सु पावार भानं=प्रमार वंश का सूर्य । जैत बंध=यह जैतसिंह और सुलष का संबंधी लखन है जिसकी मृत्यु का वर्णन रू० ७४-७५ में है । बांनेति=धनुर्द्धर ['कमनैत' और 'बानैत' का अर्थ एक ही है] । जिनें भेजियं मीर बांनेति बानं=जिसने (प्रसिद्ध) धनुर्द्धर मीर को एक बाण से (स्वर्ग) भेज दिया । भेजियं=भेजना, [यदि 'भेजियं', भंजियम का दूसरा रूप हो तो पूरी पंक्ति का अर्थ—'उसने एक के बाद दूसरे मीर को बाणों से मार डाला या उसने धनुर्द्धर मीर को एक बाण से मार डाला' होगा] । जोध <सं० योद्धा; [नोट—यह वीर 'जंघारा जोगी' है जिसकी मृत्यु का वर्णन रू० ७७-७८ में हो चुका है । जंघारा=झगड़ालू या योद्धा । इस रूपक में भी रू० ७८ की भाँति वह बैरगो (<वैराग्य अर्थात् वैरागी) कहा गया है । वैरागी वैष्णव होते हैं और जोगी शैव । परन्तु योगी और वैरागी दोनों शब्द तपस्वियों और महात्माओं के लिये भी प्रयुक्त होते हैं । पृथ्वीराज को कन्नौज वाले युद्ध में एक हज़ार वैरागियों से मुकाबिला करना पड़ा था—(बातें संष विरद्द धर । बैरागी जुध धीर ।। सूर संग्र निप नामि सिर । भर पट्ठ मजन भीर ।। रासो सम्यौ ६१, छं० १७८६) । ये युद्ध करनेवाले वैरागी अपने तथा अपने घोड़ों के सरों पर मोर पंख बाँधते थे— मोर चंद मथ्थै धरिय । जटा-जूट जट बंधि ।। संख बजावत सब्ब भर । सेवें जाइ कमंद ।। सम्यौ ६१, छं० १८१२ । 'परयौ जोध संग्राम सो हंक मोरी'—(में मोरी या मोर<सं० मयूरिका से संबंधित हैं । हंक=चिल्लाना । मोरी=मुड़ना)=उस योद्धा ने

हुंकार कर (शत्रुओं को) संग्राम से मोड़ दिया या भगा दिया । जिनें कढ़िढयं बैरगो दंत गोरी=जिसने वैराग्य (=योग बल) द्वारा गोरी का दाँत तोड़ दिया । दाहिमौ—यह वही दाहिम है जिसकी मृत्यु का वर्णन रू० ७२ में हो चुका है । दाहिम होने के कारण यह प्रसिद्ध दाहिम बंधु कैमास, चामंड और चंद पुंडीर का संबंधी रहा होगा । यह नरसिंह देव का अंसी (<अंशी=साझी-दार) भी था । नरसिंह का विस्तृत वर्णन पीछे किया जा चुका है । गिल्यौ= खा डाला, निगल लिया (अर्थात् मार डाला) । गंसी>हि० गाँसी=बाण के समान नोकदार, पैना । जिनें साहि गोरी गिल्यौ षान गंसी—जिसने शाह ग़ोरी के ख़ानों को गंसी से मार डाला । वीर (बांनेत नादंत नादं)=यह वीर जो बांनैत कहा गया है और कोई नहीं लोहाना है जिसकी मृत्यु का वर्णन रू० ८२ में है । उक्त रू० में लिखा है कि लोहाना महमूद के साथ भारी बाण चलाता हुआ भिड़ा । महमूद=शहाबुद्दीन ग़ोरी के भाई ग़ियासुद्दीन का पुत्र था और वह इस युद्ध में नहीं मारा गया था अतएव हम सब रासो प्रतियों और ना० प्र० सं० रासो के गिल्यौ (=मार डाला) पाठ को 'मिल्यौ' किये देते हैं । (मिल्यौ=मिला या सामना किया । यह भी संभव है कि मिल्यौ के स्थान पर लिखने वाले भ्रमवश गिल्यौ लिख गये हों क्योंकि 'ग' और म में केवल एक 'पड़ी पाई' का भेद मात्र है) । नादंत नादं=नाद करता हुआ; हुंकारता हुआ । जावलौ जल्ह=इस नाम के योद्धा का युद्ध वर्णन पिछले रूपकों में नहीं किया गया है । 'संभव है कि यह लंगरी राय हो,' ह्योर्नले । परन्तु लंगरी राय का वर्णन फिर अगले सम्यौ ३१, छं० १४४ में है—(लग्यो लंगरी लोह लंगा प्रमानं । षगे षेत षंड्यौ षुरासान षानं) और उसकी मृत्यु का वर्णन सम्यौ ६१ में जैसा कि पीछे टिप्पणी रू० ८१ में प्रमाणित किया जा चुका है, पाया जाता है । 'जब तिलंग परलोक गय । दय दच्छिन जावलम ।' (सम्यौ ६१) अर्थात् जब प्रमार राजा तिलंग परलोक गया तो उसने दक्षिण देश जावल को दिया । इससे स्पष्ट है कि जावल दक्षिणी राजपूतों में थे । लंगरी भी दक्षिणी राजपूत था इसीलिये ह्योर्नले महोदय ने जावल को लंगरी मानने की संभावना की है । एक जावल जल्ह का वर्णन संयोगिता अपहरण वाले युद्ध में भी आया है—(सज्यौ जावलो जल्ह चालुक्य भारी ।" सम्यौ ६१ छं० १२२] । इस युद्ध में जल्ह की मृत्यु भी हुई थी—['परयौ जावलौ जल्ह सामंत भारे । जिनैं पारिया पंग पंधार सारे ॥' सम्यौ ६१, छं० १६२८] । भष्षं<सं० भक्ष्य=खाना । हए सार मुष्षं=घोड़ों के सार (शक्ति) का मुख (प्रधान)—अर्थात् घुड़सवारों का सरदार । निसंकंत<(सं०) निःशंक=

निडर, निर्भय। नष्षं<नष्ट (करना)। माल्हंन=पल्हन का बंधु; इसकी मृत्यु का वर्णन रू० ६६ में है। राजी=राजा, नायक। क्रमं सत्त भाजी=क्रम से (एक के बाद एक) सात (ग़ोरी के योद्धा) भाग खड़े हुए। सारंग=यह सारंग सोलंकी (या चालुक्य) माधव का संबंधी है जिसकी मृत्यु का वर्णन रू० ७० में हो चुका है। वहीं हम पढ़ते हैं कि वह चौहान के साथ रहने लगा था। सोरं<फा० شور=शोर करता, चिल्लाता हुआ। भट्टी—अभी तक भट्टी नाम का कोई वीर नहीं मारा गया है। जहाँ तक अनुमान है यह रू० ६७ में वर्णित पतंग जयसिंह के लिये आया है जिसकी जाति का नाम वहाँ नहीं बताया गया है। यहाँ इस भट्टी के लिये लिखा है कि उसने मरते मरते पाँच शत्रुओं को मार डाला और यही बात हम जयसिंह के विषय में पढ़ते हैं। यह भी संभव है कि यह रू० ५८ में आने वाला भट्टी हो। भान पुंडीर--यह वही वीर है जिसकी मृत्यु का वर्णन रू० ६८ में है। सोम=चंद्र। कामं=इच्छा। सोम कामं=चंद्रलोक की इच्छा करने वाला; या—[सोम (<सं० सौम्य)+कामं (<कार्य=काम) करने वाला]। जुंझते<जूझते=युद्ध करते करते। बज्जयौं=बज गये (या बीत गये)। पंच जामं=पाँच पहर (याम)। राउ परसंग लहु बंध भाई—यह संभवतः बिड्डुर के लिये आया है जिसकी मृत्यु रू० ८३ में वर्णित है। 'भाई' का अर्थ 'संबंधी' न लेकर भाई लेने से यह असुविधा सामने आती है कि राव परसंग चौहानों की एक शाखा 'खीची' वंश का राजपूत था और बिड्डुर 'सिंघवाह' राजपूत था। जिनं मुक्ति अंसं छिनं मद्धि पाई—जिसने क्षण भर (के मंझ=बीच) में मुक्ति का अंश पाया अर्थात् जो क्षण भर के अंदर (आवागमन से) मुक्त हो गया (या, जो क्षण भर के अन्दर मारा गया)। कुसादे<फा० كشاده; [Infinitive كشادن से Pastt ense كشاد बना और उससे Past participle كشاده (Having opened) बन गया]। चवै (चवय)<सं० श्रव=चूना, बहना, (परन्तु यहाँ 'कहना' से तात्पर्य है)। मुष्ष<हिं० मुख =मुँह।

नोट—प्रस्तुत कवित्त में ह्योर्नले महोदय का निम्न नोट सहायक होगा—

"The object of the following lines is, as Chand himself tells us, to identify the thirteen chiefs who fell on the present occasion. For there is considerable difficulty in making the list, given here, to agree with the preceding narrative, which the list is apparently intended to sum up. There are

only eight men in the present list, who can with certainty be identified in the preceding narrative; these are 1, Màdhava, the Solanki, the kinsman of Sàrang; No. 1 in the narrative (v.65) and No. 10 in the list. 2, Bhàn, the Pundîr, No. 4 in the narrative (v.68) and No. 12 in the list; 3, Màhlan, the Kürambh, the kinsman of Pàhlan, No. 5 in the narrative (v. 69) and No. 9 in the list; 4, Kanak, the kinsman of Govind Ahuttha, No. 6 in the narrative (v. 71) and No. 2 in the list; 5, the kinsman of Narsingh, the Dàhima, No. 7 in the narrative (v. 72) and No. 6 in the list; 6, Sulakh, the kinsman of Jaitsingh, the Pramàr, No. 8 in the narrative (v. 74) and No. 4 in the list; 7, Prathà, the kinsman of Ram, the Raghuvansi, No. 9 in the narrative (v. 76) and No. 3 in the list; and (probably) 8, Jait, the Gor or Garua, the kinsman of Govind, No. 2 in the narrative (v. 66) and No. 1 in the list. Again there are two men in the present list, of whom apparently no name whatever is given; viz. Nos. 5 and 7, whom I am inclined to identify with the Janghàr and the Lohàna, (v.v. 77 and 82 in the narrative) respectively. Lastly, there are three men in the list who bear different names from those given to them in the narrative. These are No. 6 Jalha, the Jàbala; No. 11, Rao Bhatti and No. 13 the kinsman of Rao Parsang, whom I incline to identify with the Langari Rai (v. 79), Jaisingh (v. 67) and Biddar (v. 83) respectively in the narrative."

[Bibliotheca Indica. New series. No. 452. Note p. 55.]

कवित्त

दस हथ्थी सु बिहांन, साहि गोरी मुष किन्नौ।
कर अकासवादी ततार, सोर चवकोद सदिन्नौ॥
नारि गोर जम्बूर, कुहक बर बांन अघातं।
गज्जि भग्ग प्रथिराज, चित्त करयौ अकुलातं॥
सो मोह कोह बर बज्जि कें, अज उन धार[1] धमंसि कैं।
सामंत सूर बर बीर बर, उठे बीर बर हमहि कैं॥ छं० १२७। रू० ८५।

(१) ना०—धारय।

[नोट—यहाँ से तीसरे दिन के युद्ध का वृत्तांत प्रारम्भ होता है। पिछले रू० ८४ में दो दिन के युद्ध में मरे हुए वीरों का हाल सूक्ष्म रूप से बता दिया गया है।]

भावार्थ—रू० ८५—दूसरे दिन प्रातःकाल शाह ग़ोरी ने दस हाथी (सेना के) आगे रक्खे। और तातार खाँ ने आकाश वाणी सदृश चारों ओर चिल्लाकर (युद्ध प्रारम्भ करने की) आज्ञा दी। (जिसे सुनकर) कुहक बाण तथा छोटी और बड़ी तोपों से गोले फेंके जाने लगे। (गोलों की बाढ़ से घबड़ा कर) पृथ्वीराज का हाथी (युद्ध भूमि से) भागने लगा और (यह देखकर) उनका चित्त व्याकुल हो उठा। [महाराज को अस्थिर देखकर] सामंत और श्रेष्ठ शूर वीर अपने उत्तम वीरत्व को और हुमसा कर आगे बढ़े तथा मोह का परित्याग कर क्रोध पूर्वक वज्र के समान तलवारें चलाने लगे।

शब्दार्थ—रू० ८५—दस (प्रा०)<सं० दश>हि० दस। हथ्थी प्रा० <सं० हस्तिन्=हि० हाथी। बिहांन (देशज) (सं० विभात)=सवेरा (यहाँ दूसरे दिन से तात्पर्य है)। मुष किन्नौं=सामने किये। कर अकासवादी=आकाश वाणी करते हुए। सोर<फा० شور (शोर)। चव=चार। कोद (कोध) [देशज] <(सं० कोण, कुत्र)=दिशा, ओर, कोना। चव कोद=चारों ओर। दिन्नौं= दिया, दी। [कर अकासवादी ततार सोर चवकोद स दिन्नौं=विवादी तातार खाँ ने आकाश की ओर हाथ उठा कर चारों दिशाओं में ज़ोर से आज्ञा दी, ह्योर्नले]। नारि<अ० نال =बड़ी तोप। जंबूर<अ० زنبوره (ज़बूरह)= छोटी तोप। कुहक=कुहक बाण [दे० Plate No. III]। अघातं (<सं० आघात)=मारना। गज्जि (प्रा०)<सं० गज=हाथी। भग्ग=भागा। चित्त करयो अकुलातं=चित्त व्याकुल कर दिया। अकुलातं<सं० आकुलन=घबड़ाना, बेचैन होना, व्याकुल होना। मोह (सं०)=देह और जगत की वस्तुओं को अपना और सत्य जानने की दुखद भावना; (उ०—'मोह सकल व्याधिन कर मूला' रामचरितमानस)। कोह<सं० क्रोध; (उ०—सूध दूध मुख करिय न कोहू—रामचरितमानस)। बज्जि कें<बरजि के=छोड़ करके। ब्रज=वज्र। धार= तलवार। धमंसि कैं=धमसकर। सूर वर=श्रेष्ठ शूर। वीर बर=श्रेष्ठ वीर; वीर बर=उत्तम वीरता (या वीरत्व)। हमसि कैं (देशज)=हुमसा कर; हिलाकर। उठे=आगे बढ़े। उठे बीर बर हमसि कैं=उत्तम वीरत्व को और अधिक बढ़ा कर आगे बढ़े।

नोट—ह्योर्नले महोदय ने प्रस्तुत कवित्त के अंतिम दो चरणों का अर्थ इस प्रकार किया है—"Then abandoning emotions of love

and anger, and brandishing their swords like thunder-bolts, the Sàmantas, warriors and heroes rose up." p. 59.

युद्ध में मोह का छोड़ना तो ठीक है परन्तु क्रोध का त्याग संभव नहीं है। 'क्रोध' रौद्र-रस का 'स्थायी भाव' है अतएव युद्ध में क्रोध का रहना आवश्यक है।

कवित्त

अद्ध अद्ध जोजनह, मीर उड़ि संगा फेरी[१]।
तब गोरी सुरतान, रोस सामंतह घेरी॥
चक्र श्रवन चौडोल, अग्ग सेखन[२] पंचा सौ।
सूर कोट ह्वै जोट, सार मरनह हुल्लासौ[३]॥
बर अगनि बगी हल्यौ[४] नहीं, पद्धर[५] कोट सुजोट हुअ।
बर बीर रास समरह परिय, सार धीर[६] बर कोट हुअ[७]॥ छं० १२८। रू० ८६।

भावार्थ—रू० ८६—(उस समय जब) मीर आधे-आधे योजन इधर उधर दौड़कर साँग चलाने लगे तब सुलतान ग़ोरी पचास (या पाँच सौ) शेख़ों के आगे चक्र चलाने वालों की चार पंक्तियाँ करके (पृथ्वीराज के) सामंतों को क्रोध पूर्वक (चारों ओर से) घेरने लगा। शूरों (=सामंतों) ने कोट बना लिया और (यह विचार कर कि युद्ध का) सार मृत्यु है [अर्थात् वीरगति पाकर मुक्ति मिल जायगी] वे (अपने मन में प्रसन्नता के कारण) हुलस उठे। (चारों ओर युद्ध करने की) अग्नि (ज्वाला) धधक रही थी परन्तु वे (अपने स्थान से किंचित् मात्र) नहीं हिले, उनका पद्धर (उनकी रोक) दृढ़ कोट [=दुर्ग] सदृश हो गया। समर भूमि में वीरों का रास (नृत्य) होने लगा परन्तु (पृथ्वीराज के सामंतों का) कोट [=व्यूह] धैर्य का सार बन गया।

शब्दार्थ—रू० ८६—अद्ध अद्ध जोजनह मीर उड़ि संगा फेरी=मीर आधे योजन इधर उधर दौड़ कर साँग चलाने लगे। [इस में कुछ अतिशयोक्ति मालूम होगी परन्तु यह तो सुलतान ग़ोरी के लड़ने का और अपने विपक्षी को एक प्रकार से धोखा देने का एक ढंग था। Firishta. (Briggs) Vol. I, (1829), pp. 183-84]। अद्ध=आधा। जोजनह<सं० योजन

(१) ना०—केरी (२) ए०—नेषन (३) ना०—मारनह हुलासौ (४) मो०—हस्यौ (५) ना०—पद्दर (६) ना०—धार; ए० कृ० को०—धरि (७) ए०—तुव।

(=चार या आठ कोस की दूरी) । उड़ि=उड़कर अर्थात् दौड़ कर । [संगा फेरी=साथ साथ फिरना—और इस प्रकार पूरी पंक्ति का अर्थ होगा, 'मीर आधे योजन इधर और आधे योजन उधर शीघ्रता पूर्वक साथ-साथ (या पंक्ति बद्ध) बढ़े ।] । संगा=साँक या साँग<सं० शंकु=चौड़े फल वाला भाला, [दे० Plate No. III] । [नोट—ग़ोरी का विचार अपनी सेना की भुजायें शीघ्रता पूर्वक बढ़ाकर और पृथ्वीराज की थोड़ी सी सेना को घेरकर प्रथम तो युद्ध आरंभ करने का था और फिर चक्र चलाने वालों को पीछे करके पराक्रमी पाँच सौ शेख़ों द्वारा आक्रमण करवा के राजपूतों को बाँध लेने, मार डालने या आत्म समर्पण करवा लेने का था । पृथ्वीराज के सामंत एक प्रकार का चौकोर व्यूह बाँधे लड़ रहे थे—ह्योर्नले] । रोस<सं० रोष=क्रोध । चक्र=अस्त्र विशेष जो फेंक कर मारा जाता था, [दे० Plate No. III] । श्रवन<स्राव=बहना, निकलना । चक्र श्रवन=चक्र चलाने वाले । चौडोल<चोड़ोल=चौ पंक्ति, चार पंक्ति । (ह्योर्नले महोदय ने चौडौल का अर्थ 'पीछे की सेना' न जाने क्या विचार कर किया है) । अग्ग (प्रा०)<सं० अग्र=आगे । सेखन=शेख़ों को । शेख़, पैगंबर मुहम्मद के वंशज मुसलमानों की उपाधि है । मुसलमानों के चार वर्गों में ये श्रेष्ठ कहे गये हैं । ग़ोरी की सेना के लड़ाकू सैनिकों में ये अग्रगण्य थे । पंचाशत सं०>प्रा० पंचासा (जिसका पंचासौ होना संभव है)>हिं० पचास; [या पंचा सौ=पंच×सौ (शत)=पाँच सौ] । कोट=दुर्ग (यहाँ 'व्यूह' से तात्पर्य है । सामंतों ने दृढ़ व्यूह बना लिया) । जोट=जुटना [(१) इकट्ठा होना (२) युद्ध करना] । सार (सं०)=मूल, तत्व । [कोट हुै जोट=जुट कर कोट बना लिया । जोट सार=जुटने अर्थात् युद्ध करने का सार (तत्व)] । मरनइ=मरना ही; मृत्यु । हुल्लासौ=हुलसना अर्थात् प्रसन्न होना । नोट—[युद्ध में मृत्यु होना क्षत्रिय वीर बड़े सौभाग्य की बात मानते थे क्योंकि इस मृत्यु द्वारा संसार के आवागमन से छूटने में उनका विश्वास था । युद्ध काल में यह विचार कर कि अब मृत्यु होगी वे प्रसन्न होते थे । चंद वरदाई ने तत्कालीन क्षत्रिय वृत्ति का अच्छा परिचय दिया है । युद्धाग्नि क्षत्रिय के लिये सुखांत है इसीसे चंद प्रस्तुत कवित्त में उसे बर (श्रेष्ठ) अगनि (अग्नि) कहते हैं ।] [बगी (>हिं० क्रिया बगना)<सं० बक=घूमना, फिरना । बर अगनि बगी=श्रेष्ठ अग्नि (युद्ध की) फैल रही थी या धधक रही थी । हल्यौ नहीं=नहीं हिले (अपने स्थान से) । पद्धर <सं० प्रधारण=रोक । पद्धर कोट=रोकने वाला (=मोर्चा लेने वाला)+कोट (=व्यूह) । सुजोट हुअ=भली भाँति जुट गया (अर्थात् दृढ़ हो गया) । रास (सं०)=प्राचीन काल की एक क्रीड़ा

जिसमें मंडल बाँध कर नाचा जाता था। परिय=पड़ा। समरह परिय = समर भूमि में होने लगा। नोट—[यहाँ चंद ने इस युद्ध को रास कहकर बड़ी ही सामयिक उपमा दी है। सामंत गणों को ग़ोरी की सेना चारों ओर से घेर रही थी और यह युद्ध एक प्रकार से रास ही था]। सार धीर=धैर्य का सार (तत्व)। नोट—[यहाँ 'सार धीर' भी 'बर' की भाँति 'कोट' का विशेषण है। सामंतों का कोट स्वयं धैर्य का समूह बन गया]। सार धीर बर कोट हुअ= सामंतों का व्यूह धैर्य का सार बन गया—अर्थात् अति धैर्यवान सामंत खूब वीरता पूर्वक लड़ने लगे और उनके शरीरों द्वारा निर्मित वह 'सार धीर कोट' टूटना कठिन हो गया।

नोट—कवित्त के प्रथम तीसरे चरण का अर्थ ह्योर्नले महोदय यह लिखते हैं—"Those skilled in the use of the chakra-weapon (he placed) in the rear , in the front five hundred Shekhs." p. 60.

परन्तु विचारणीय बात है कि 'चक्र' अस्त्र है और बाणों की भाँति फेंक कर चलाया जाता है। जिस तरह तत्कालीन युद्ध में सब से आगे धनुर्द्धर रहते थे उसी प्रकार चक्र चलाने वाले भी रहते होंगे। आगे अन्य सैनिकों को कर के पीछे चक्र वालों को करने का स्पष्ट अर्थ है आगे वालों को चक्र वालों से मरवाना और ऐसी मूर्खता कोई सेनापति नहीं कर सकता।

ह्योर्नले महोदय की इस भूल का कारण चौडोल का ग़लत अर्थ करना है। चौडोल को वे चंडोल करके उसका संबंध सं० चंडावल (चंड + अवलि) से कर 'सेना के पीछे का भाग अर्थात् हरावल का उलटा' अर्थ लगा गये हैं। परन्तु चौडोल या चौड़ोल देशज शब्द है जिसका एक अर्थ चौ पंक्ति भी होता है और चौडोल इसी अर्थ में प्रस्तुत रूपक में प्रयुक्त हुआ है।

(२) कुहक बाण—"एक तीन हाथ लंबे बांस के टुकड़े में पेंदे की तरफ एक चमड़े का थैला ताँत से कसा जाता है। इस थैले की लंबाई एक फुट से लेकर डेढ़ फुट तक और गोलाकार मुँह की चौड़ाई दो से तीन इंच तक होती है। इसमें करीब एक सेर बारूद धाँस धाँस कर भरी जाती है और ऊपर से ताँबे, लोहे, सीसे और काँच के छोटे-छोटे टुकड़े भरकर मुँह बंद कर दिया जाता है और बाँस की नली के भीतर से एक बारूद का भीगा धागा आर पार लगा रहता है। बाँस के दूसरे सिरे पर एक झंडी रहती है। बारूद के धागे में आग देने से थैली की बारूद अनार दाने की तरह शब्द करके लौ

छोड़ने लगती है। जब ज़ोर पर आता है तो चलाने वाला हाथ से बाण को छोड़ देता है उस समय यह हाथी को भी वेध डालता है और जहाँ तक उक्त थैला पट नहीं पड़ता तहाँ तक सीधा जाता है फिर आप ही आप बड़े ज़ोर से चक्कर खाने लगता है। थैले के छर्रे मील भर पर्यन्त बिथर कर सैकड़ों आदमियों को बेकाम कर देते हैं। आगे यह किले और मैदान दोनों की लड़ाई में काम आता था।" रासो-सार, पृष्ठ ३२६। इसे अग्निबाण और बानगीर भी कहते थे। Plate No. III में नं० ६ कुहक बाण है।

छंद रसावला

मेलि साहं भरं। षग्ग षोले रुरं॥
हिंदु मेच्छं जुरं। मन्त जा जं भरं॥ छं० १२६।
दन्त कट्ढे करं। उप्पमा उप्परं॥
कंद[1] भीलं जुरं। कोपि कट्ठे करं॥ छं० १३०।
कंध नं नं धरं। पंष जष्षं[2] फिरं॥
तीर नंषै करं। मेघ बुट्ढे बरं॥ छं० १३१।
आवधं संभरं। बङ्क तेगं करं॥
चंद बीजं बरं। अद्ध अद्धं धरं॥ छं० १३२।
बीय बन्धं धरं। कित्ति जंपै सरं॥
अस्सु दुट्टै फिरं। रंभ बंछै बरं॥ छं० १३३।
थान थानं नरं। धार धारं तुटं॥
भूंम बासं छुटं। ....॥ छं० १३४।
साह गोरी बरं। षग्ग षोले करं॥
....। ....॥ छं० १३५। रू० ८७।

भावार्थ—रू० ८७—

शाह के योद्धा तेज़ तलवारें निकालकर बढ़े। हिन्दू और म्लेच्छ एक दूसरे से भिड़ गये। जिस वीर को जैसा समझ पड़ा उसने वैसा किया। छं० १२६।

(किसी ने हाथियों के) दाँत हाथ से खींच लिये तो ऐसी उपमा जान पड़ी कि मानों भीलों ने क्रोधपूर्वक हाथ से कंद उखाड़ लिए हों [(या) किसी ने हाथियों के दाँत तोड़ दिये मानों भीलों ने कंद उखाड़ लिये हों और (किसी ने) क्रोध करके (हाथियों के) कर (सूँड) काट लिए]। छं० १३०।

(१) ना०—केद (२) ना०—जष्ष।

कंध धड़ रहित हो गये। उनके (हाथियों के) पद्म ज़ख्मों से फट गये; तीरों से उनकी सूँड़ें घायल हो गई और मेघ वर्षा सदृश आयुध चलने लगे। द्वितीया के सुन्दर चन्द्रमा की तरह टेढ़ी तलवारें निकल आईं और शरीर आधे आधे होने लगे तथा (आत्मा) दूसरा बंधन (शरीर) ग्रहण करने लगी। सिर कीर्ति बखानने लगे [या, कटे हुए सिर विजय विजय चिल्लाये]। (सवार के मरने पर) अश्व उसे ढूँढ़ने लगे। (स्थान स्थान पर पड़े हुए मनुष्यों में) रंभा अपने लिए वर खोजने लगीं। छं०१३१-३३।

स्थान-स्थान पर तलवारों से कटे हुए नर (योद्धा) पड़े थे, उनका भ्रम पूर्ण वास समाप्त हो गया था। (अर्थात् वे वीर गति प्राप्त होने के कारण मुक्त हो गये थे)। छं० १३४।

(यह दृश्य देखकर) शाह ग़ोरी ने हाथ में नंगी तलवार ली (या अपने हाथ में (म्यान से) तलवार निकाली। छं० १३५।

शब्दार्थ—रू० ८७—मेलि=मिले या भिड़े। भरं<भट=वीर। जुरं=जुड़ना (यहाँ युद्ध करना से तात्पर्य है)। मंत=मत। जा जं=जिसको जैसा। भरं=वीर। मंत जा जं भरं=यावान विचारो यस्य भटस्य आशीत तावत तेन कृतम्। करं=यह करि (=हाथी) के स्थान पर प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है। उप्पमा उप्परं=इसके ऊपर उपमा देने के लिए। कंद=बिना रेशे की गूदेदार जड़ जैसे मूली गाजर, शकरकंद इत्यादि। भीलं=भील एक पहाड़ी जंगली जाति है। ये राजपूताना के आदिम निवासी थे। पृथ्वीराज की लड़ाइयों में बहुधा इनका वर्णन आता है। भील<सं० भिल्ल=एक जंगली जाति। भीलों का वि० वि० देखिये—Hindu Tribes and castes. Sherring. Vol. II, pp. 128-29, 291-300। कंध नं नं धरं=कंधे धड़ रहित हो गये अर्थात् शरीर बुरी भाँति घावों से भर गया या, कंधों से धड़ पृथक हो गया (सिर कट गया)। नोट—रासो के अन्तर्गत युद्ध काल के वर्णन के साथ इस पद का प्रयोग बहुलता से मिलता है)। पंष<सं० पक्ष। जष्मं<फा० زخم = घाव। फिरं=फिर (या 'फिरं' अथवा 'फरं', 'फटं' (=फटना) के स्थान पर लिखा गया भी संभव है जैसे 'भटं' के लिए चंद ने 'भरं' लिखा है। तीर=बाण (कुछ प्रतियों में 'तौर' पाठ भी मिलता है परन्तु वह अशुद्ध है)। नंषै करं=नष्ट करना या घायल करना, चोट पहुँचाना। मेघ=वर्षा। आवधं<सं० आयुध। सं झरं=झरना, गिरना। चंद<सं० चंद्र। बीजं<वीयं<द्वि=दो। चंद बीजं बरं=द्वितीया का सुन्दर चंद्रमा। अद्ध अद्ध धरं=शरीर आधे

आधे हो गये। किति<सं० कीर्त्ति<यश। जंपै=जपना, कहना। किति जंपै सरं=सिर कीर्त्ति कहने लगे, (या) [कटे हुए] सिर विजय विजय चिल्लाने लगे। अस्सु<सं० अश्व=घोड़ा। रंभ<रंभा=स्वर्ग की एक अप्सरा। बंछै बरं=वर (पति) की वांछना। थान<सं० स्थान। बीय बंधं धरं=दूसरा बंधन धरना अर्थात् दूसरे शरीर रूपी बंधन में पड़ना। थान थानं=स्थान स्थान पर। नरं (ब० व०)=नर (योद्धागण)। धार धारं तुटं=तलवार की धार से टूटकर (=कटकर)। भ्रंम वास छुटं=भ्रम पूर्ण वास छूट गया। जन्म लेने का अर्थ है प्रपंच जन्य संसार के आवागमन में पड़ना। 'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या' है, जो वीर यहाँ से चल दिया उसने तो सचमुच ही संसार रूपी अज्ञानमय स्थान से विदाई ले ली। षग्ग षोले करं=हाथ में तलवार निकाल ली। रुरं=रुरे, [रूरा (<सं० रूढ़=प्रशस्त) का बहुवचन=उत्तम, सुंदर]; उ०—राज समाज विराजत रूरे, रामचरितमानस।

नोट:—(१) ह्योर्नले महोदय ने स्वसंपादित रासो में प्रस्तुत रूपक का नाम रसावली लिखा है। रसावला से अलग यह कोई छंद नहीं है। दोनों के एक ही लक्षण हैं, नाम का किंचित् भेद है और वह लिपि कर्त्ताओं के अज्ञानवश हो गया समझ पड़ता है।

(२) प्रस्तुत रूपक में छं० १३४ का अंतिम एक चरण और छं० १३५ के अंतिम दो चरण, जितनी रासो की प्रतियाँ उपलब्ध हो सकीं किसी में नहीं मिले अतएव उनके स्थान पर ये......चिह्न लगा दिये गये हैं।

कवित्त

षां षुरसांन ततार, षिज्झि[1] दुज्जन दल भष्षै।
बचन स्वामि उर षटकि, हटकि तसबी कर नंषै॥
कजल पंति गज बिथुरि, मध्य सेना[2] चहुआंनी।
अजै मानि जै रारि, बिय स तेरह चँपि प्रांनी॥
धामंत फिरस्तन कढ्ढि असि[3], दहति पिंड सामंत भजि।
बर बीर[4] भीम बाहन करह[5], परे धाइ चतुरंग सजि॥ छं० १३६। रू० ८८।

भावार्थ—रू० ८८—खुरासान (का) तातार ख़ाँ क्रोध पूर्वक दुर्जनों (शत्रुओं अर्थात् पृथ्वीराज) का दल भक्षण करने लगा (अर्थात् विनाश करने लगा)। स्वामी के वचन उसके हृदय में खटके और उसने हाथ से अपनी तसबीह (सुमिरनी) तोड़ डाली। चौहान की सेना के मध्य में (ग़ोरी के)

---

(१) ना०—षिभिझ (२) ना०—सैनं ए०—सैना (३) ना०—कढ़ि असी
(४) ना०—भीर (५) ए०—करह; ना०—कहर।

हाथियों की काली पंक्ति (घुस कर) फैल गई और दो सौ तेरह प्राणी (योद्धा) दब कर मर गये, (उस समय ऐसा विदित हुआ कि) इस युद्ध में (पृथ्वीराज की) हार होना मानी हुई बात है [अर्थात्—इस युद्ध में पृथ्वीराज की हार होना अवश्यंभावी है, ऐसा मालूम पड़ा] । (ग़ोरी के हाथियों के पीछे पृथ्वीराज की सेना में) फ़िरिश्ते तलवारें खींचे हुए घुस पड़े और दौड़ दौड़ कर सामंतों को मारने लगे । (इस विकट संकट काल में) श्रेष्ठ वीर भीम, (सेना के एक भाग को) चतुरंगिणी बना कर हाथी पर चढ़ कर (उनके मुक़ाबिले के लिये) दौड़ पड़ा ।

शब्दार्थ—रू० ८८—दुज्जन < दुर्जन (यहाँ ग़ोरी के लिये दुर्जन रूप शत्रु पृथ्वीराज के सैनिक थे) । स्वामि < स्वामी (ग़ोरी सुलतान) । षटकि=खटकना । हटकि=रोकना । तसबी < फा० تسبیح (तसबीह) सुमिरनी, जप करने की छोटी माला । कर नंष्षै=हाथ से तोड़ा । कजल < सं० कज्जल=काला । पंक्ति < सं० पंक्ति । बिथुरि=फैलना । मध्य सेना चहुआंनी=चौहान की सेना के मध्य में । अजै < अजय=हार । मानि जै=मान लिया गया । रारि=युद्ध । बिय=दो । बिय स तेरह=दो सौ तेरह । चँपि प्रानी=प्राणी चँप गये (दब गये) । धामंत=दौड़ते हुए । फिरस्तन < फ़ा० فرشته (फ़िरिश्ता) फ़िरिश्तों ने । कढ्ढि असि=तलवार काढ़ (खींच) ली । दहति पिंड=शरीर जलाना (यहाँ मारने से तात्पर्य है) । सामंत भजि=भागने वाले सामंतों को (या) दौड़ दौड़ कर सामंतों को । भीम—रघुवंशी राजपूत योद्धा जिसकी मृत्यु का वर्णन अगले रू० में है । बाहन (क्रिया)=चढ़ कर । करह (< सं० करभ) करिह =हाथी को । परे धाइ=दौड़ पड़ा । चतुरंग सजि=एक चतुरंगिणी सजा कर ।

नोट—युद्ध फल पलटने में सफल वीर भीम रघुवंशी इस युद्ध में मारा गया । चंद वरदाई ने उसकी मृत्यु का अन्य कुछ योद्धाओं की भाँति विविध वर्णन न करके अगले रू० ८९ के प्रारम्भ में ही कह दिया है—'परयौ रघ्घुबंसी अरी सेन जाडी ।' इससे स्पष्ट है कि भीम इस मोर्चे पर खेत रहा ।

भुजंगी

परयौ रघ्घुबंसी अरी सेन जाडी[१] ।
हुतौ बाल वेसं मुषं[२] लज्ज डाढी[३] ॥
बिना लज्ज पष्षै सची दुंढि पिष्यौ ।
मनो डिम्भरू जानि कै मीन क्रष्यौ ॥ छं० १३७ ।

(१) ना०—जाड़ी (२) ना०—सषं (३) ना०—डाढ़ी ।

परथौ रुक रिन बट्ट अरि सेन गाही[१]।
मनो एक तेगं भरी नीर दाही॥
फिरे अड्ड बड्ढे उपम्मा न बट्टै।
विश्वंक्रम्म बंसी कि दारुन्न गट्टै[२]॥ छं० १३८।
परे हिंदु मेच्छं उलथ्थे पलथ्थी।
करै रंभ भैर ततथ्थे ततथ्थी॥
गहैं अंत गिद्धं बरं जे कराली।
मानों नाल[३] कढ्ढें कि सोभै म्रनाली॥ छं० १३९।
तुटै एक टंगा टिकै[४] षग्ग धायौ।
मनो विक्रमं राइ गोइंद पायौ॥
गहै हिंदु हथ्थं मलेच्छं भ्रमायौ।
जनौ भीम हथ्थीन उप्पम्म पायौ॥ छं० १४०।
ननं मानवं जुद्ध दानब्ब ऐसौ।
ननं इंद तारक भारथ्थ कैसौ॥
झुकं[५] बज्जि झंकारयं झंपि उट्ठै।
बरं लोह पंचं बधं पंचं छुट्टै॥ छं० १४१।
मनो सिंघ उज्झै अरुज्झन्त छुट्टै[६]।
रनं देवसांई सए आब षुट्टै॥
घनं घोर दुण्ढंत उतकंठ फेरी[७]।
लगै झग्गरै हंस हज्जार एरी॥ छं० १४२।
तुटै रुंड मुंडं बरं जे[८] करेरी।
बरद्दाइ रिज्झैं दुहूं दीन्न भेरी॥ छं० १४३। रू० ८९।

भावार्थ—रू० ८९—शत्रु सेना का संहार करता हुआ वीर रघुवंशी (भीम) मारा गया। वह अभी बिलकुल बालक था और उसके मुँहपर डाढ़ी लज्जित हो रही थी (अर्थात् डाढ़ी के कुछ कुछ चिह्न दिखाई पड़ते थे)। शची ने लज्जा का परित्याग कर उसे ढूँढ़ना प्रारंभ किया और अंत में उसे (एक स्थान पर) देखकर उसी प्रकार खींचा जैसे मछली अपने बच्चे को खींचती है। उस (भीम) ने (बढ़ती हुई) शत्रु सेना पर आघात कर उसका युद्ध

---

(१) ना०—माही (२) ना०—गढ्ढै (३) ए० को०—भाल (४) ना०—तुटै एकटं गाढ़ि कै षग्ग धायौ (५) ना० झकं (६) ना०—मनों सिंघ उझ्झै अरुझ्झंत छुट्टै (७) ना०—घनं घोर ढुंढं उतक्कंठ फेरी (८) ना०—जो।

मार्ग उसी प्रकार रोका था मानो किसी ने (बढ़ती हुई) जल धारा सुखा दी हो। वीरों को इधर उधर दौड़ते देखकर (इसके अतिरिक्त और) कोई उपमा नहीं समझ पड़ती मानो विश्वकर्मा के वंशज लकड़ी गढ़ रहे हों। [युद्ध में परस्पर मार काट करके] हिंदू और म्लेच्छ उलटे पुलटे पड़े थे तथा रंभा और भैरव ताताथेई ताताथेई करके नाच रहे थे। कराल गिद्धों ने (मरे हुओं की) अंतड़ियाँ खींच लीं तो ऐसी शोभा मालूम हुई मानों नाल सहित कमल उखाड़ लिये गये हों। टाँग टूटने पर तलवार का सहारा लेकर (वीर योद्धा) दौड़े मानो उन्होंने गोविन्द का पुरुषार्थ पा लिया हो। हिंदुओं ने म्लेच्छों को हाथ पकड़ चारों ओर घुमा कर भीम द्वारा हाथियों को घुमाने की उपमा प्राप्त कर ली। यह मानवों का युद्ध न था वरन् दानवों का सा युद्ध था या इन्द्र और तारकासुर के युद्ध सदृश था। युद्ध में आयुध परस्पर लगकर झंकृत होते थे, बंद हो जाते थे और (वार पड़ने पर) पुनः झनकार उठते थे। उन (सामंतों) के पाँच प्रकार के आयुधों की मार से (शत्रु के) पंच तत्व अलग अलग हो जाते थे (अर्थात् शत्रु की मृत्यु हो जाती थी)। जिस तरह सिंह छलांग मारकर और कूद कर (शिकार पर) टूटता है उसी प्रकार देवताओं के स्वामी युद्ध भूमि में आकर लड़ने लगे। घनघोर युद्ध में उत्कंठा से फिर कर ढूँढ़ते हुए शिव और इंद्र झगड़ने लगते थे। करौली के वार से जब धड़ से कटकर सिर गिरता था तब दोनों वरदाई (वीर; वरदानी) रीझ करके भेरी बजाने लगते थे।

शब्दार्थ—रू० ८६—रघुबंसी=यह भीम के लिये आया है जिसके लिये पिछले कवित्त में लिखा है कि उसने एक चतुरंगिणी सजा कर सुलतान की बाढ़ का मुक़ाबिला किया। अरी सेन=शत्रु सेना। जाडी (पंजाबी)=मारना। हुतौ=था। बाल बेसं<वाल वयस=नव युवक। मुषं लज्ज डाढ़ी=मुख पर डाढ़ी लज्जित हो रही थी अर्थात् मुँह पर थोड़ी सी डाढ़ी निकली थी। बिना लज=बिना लज्जा के अर्थात् निर्लज्ज हो के। पष्षै<सं० प्र+कृश=पकड़ना; [प्रकृश से 'पष्षै' उसी प्रकार हो गया है जिस प्रकार सं० प्रकर्कश्य>प्रा० पअक्क्ख (या) पक्ख]। सची<सं० शचि=इंद्राणी। ढुंढि=ढूँढ़ कर। पिष्यौ (=पेखा या देखा)<सं० प्रेक्षण। डिम्भरू=बच्चा। ऋष्यौ=खींचा। (नोट—मछली अपने ही बच्चों को खा जाती है। 'मीन ऋष्यौ' से यह ध्वनि भी घोषित होती है)। रूक=रोककर। रिन<सं० रण। बट्ट<बाट=मार्ग। गाही <सं० ग्राह=पकड़, घात। तेगं झरी=तलवार का वार। नीर दाही=जल सुखा दिया। अड्ड बड्डे<अंड बंड=इधर-उधर। उपम्मा न बट्टै=उपमा

नही बढती अर्थात् उपमा नही देते बनता। विश्वंक्म्म<विश्वकर्मा। वंशी=
वंशज, राज, बढई, लुहार आदि विश्वकर्मा के वंशज कहे जाते है। दारुन्न<
दारु (=लकड़ी) का बहु वचन है। गट्ठै या गढ्ढै=गढना। अंत=अंत-
ड़ियाँ। कराली=भयंकर। म्रनाली<सं० मृणाल=कमल नाल। उलथ्थे
पलथ्थी=उलटे पुलटे। बिक्रमं<विक्रम=पुरुषार्थ। गोइंद (<गोविद)
=यह नाम विष्णु के वामनावतार की ओर संकेत करता है। "कश्यप और
अदिति के पुत्र वामन ने तीन पगो मे सब लोको को जीत लिया और उन्हे
पुरंदर को दे दिया" (विष्णु पुराण)। विष्णु पुराण मे इस अवतार का
केवल इतना ही हाल मिलता है, विशेष विवरण भागवत, कूर्म, मत्स्य और
वामन पुराणो मे है। श्रीमद्भागवत मे यह कथा संक्षेप मे इस प्रकार वर्णित
है—विरोचन के पुत्र बलि ने तपस्या और यज्ञो द्वारा इन्द्रादिक देवताओ को
वश मे करके आकाश, पाताल और मृत्यु लोक पर आधिपत्य कर लिया। देव-
ताओ की प्रार्थना पर विष्णु ने कश्यप और अदिति के घर जन्म लिया।
कश्यप का पुत्र बौना होने से वामन कहलाया। एक दिन वामन ने बलि से
दान मागा। दैत्यो के गुरू शुक्र के मना करते हुए भी बलि ने वामन को मुँह
मागी मुराद पूरी करने का वचन दे दिया। वामन ने तीन पग पृथ्वी मागी
और बलि के एवमस्तु कहते ही वामन ने अपना इतना आकार बढाया कि
तीनो लोक भर गये। अंत में बलि और उनके पूर्वज प्रह्लाद की प्रार्थना पर
बलि को पाताल का राजा बना दिया गया—'बलि चाहा आकास को हरि
पठवा पाताल'। यह भी कथा है कि वामन का एक पैर लकडी का डंडा था।
'प्राशुलभ्ये फले लोभदुद्बाहुवि वामन.'—रघुवंश। [ये विभिन्न कथाये
देखिये—Sanskrit Texts, J Muir. Vol. IV, p 116ff.]।
गहै=पकडकर। हथ्थ प्रा०<सं० हस्त=हि० हाथ। भ्रमायौ=घुमाया।
भीम—पांडवो के भाई भीमसेन के लिये लिखा है कि वे महाभारत मे
कौरवो के हाथियो को सूँड पकडकर घुमाते थे और फिर उन्हे पृथ्वी पर पटक
कर मार डालते थे (महाभारत)। सं० हस्तिन्>प्रा० हथ्थी>हि० हाथी—
['हथ्थोन', 'हाथी' का बहुवचन है]। दानब्ब=दनु के पुत्र। कश्यप की स्त्री
दनु के चौदह पुत्र हुए जो दानव कहलाये (विष्णु पुराण १।२१।४-६)। सं०
भारत>प्रा० भारथ्थ>हि० भारत, भारथ=घोर युद्ध। तारक=तारकासुर,
राक्षस ने तपस्या द्वारा देवताओ से भी अधिक शक्ति प्राप्त की और फिर सबको
त्रास देने लगा, तब इन्द्र ने शिव के पुत्र कार्तिकेय की सहायता से उसका बध
किया, [वि० वि० प०, मत्स्य पुराण, कुमार संभव-कालिदास]। भुर्कं=

झुकना। बजि=बजकर। झंकारयं=झंकार की ध्वनि। झंपि=झँपना, बंद होना। झुकं बजि झंकारयं झंपि उट्ठे=युद्ध में (अस्त्र शस्त्र परस्पर) बजकर झंकार उठते हैं, बंद होते हैं और झनझना उठते हैं। लाह=लोह (तलवार या आयुध)। लोह पञ्चं=पाँच आयुध (तलवार, ढाल, भाला, कटार, बाण)। इनके नामों के विषय में मतभेद है। तलवार, ढाल, धनुष, डंडा और भाला— ये पाँच आयुध Spence Hardy's Manual of Buddhism. p. 290 में मिलते हैं। बधं=बध करना। पञ्च छुट्टै=पंचत्व [पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश] छूट जाते हैं अर्थात् अलग हो जाते हैं। या 'पंच छुट्टै' का अर्थ 'आत्मा का पंचत्व (शरीर) से छूट जाना' भी संभव है। उज्झै=उझल या उछल कर। देवसांई=देवताओं के स्वामी=इन्द्र। उतकंठ< सं० उत्कंठा। घनं घोर=घन घोर (युद्ध में)। लगै झगरै=झगड़ने लगना। हंस शिव (ह्योर्नले)। हजार=(सं० सहस्राक्ष) इन्द्र का एक नाम। इन्होंने गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या से ऋषि का छद्म वेश रखकर पापाचार किया था। गौतम ने यह जान कर शाप दिया कि रे योनि प्रेमी अधम, तेरे शरीर में एक सहस्र योनि सदृश छिद्र हो जावें। तभी इन्द्र का नाम 'सयोनि' पड़ा। कुछ समय पश्चात् उन्हीं ऋषि की कृपा से ये योनियाँ आँखों के रूप में बदल दी गई और तब इन्द्र का नाम सहस्राक्ष पड़ा, (वि० वि० पुराणों और महाभारत में देखिये)। बरद्दाइ=वरदाई (१—वीर, २—वरदानी)। रिज्झैं= रीझते हैं। दीन्न भेरी=भेरी बजाने लगते हैं। भेरी=बड़ा नगाड़ा, ढोल, दुन्दुभी। करेरी>हि० करौली<सं० करवाली=एक प्रकार की छोटी तलवार, कटार।

कवित्त

पच्छैं भो संग्राम, अग्ग अपछर बिच्चारिय।
पुच्छै रंभ मेंनिका, अज्ज चित्तं किम भारिय॥
तब उत्तर दिय फेरि, अज्ज पहुनाई आइय।
रथ्थ बैठि औथान, सोझ तह कंत न पाइय॥
भर सुभर परे भारथ्थ भिरि, ठांम ठांम चुप जीति सधि[१]।
उथकीय पंथ हल्लै चल्यौ, सुथिर संभौ देषीय नथि[२]॥ छं० १४४। रू० ६०।

भावार्थ—रू० ६०—संग्राम पीछे हुआ इससे आगे (पूर्व) अप्सराओं ने विचार किया [अर्थात् अगले दिन युद्ध छिड़ने के पूर्व अप्सराओं में कुछ

(१) ना०—संथ (२) ना०—तथ; ए० कृ० को०—नथ।

वार्तालाप हुआ]। रंभा ने मेनका से पूछा कि तुम्हारा चित्त क्यों भारी है ? मेनका ने उत्तर दिया कि "आज पहुनाई करने का दिन आया है; (पाहुन) रथों [विमानों] में बैठकर अन्य स्थानों को जा रहे हैं; तहाँ (युद्ध भूमि में खोजकर) मैंने अपने कंत को नहीं पाया; श्रेष्ठ वीर योद्धा युद्ध में लड़भिड़ और विजय प्राप्त कर [—विजयी इसलिये कि शत्रु को मार कर मरे हैं—] स्थान स्थान पर चुपचाप पड़े हैं तथा उधर वाले मार्ग पर [अर्थात् स्वर्ग लोक की ओर] शीघ्रता पूर्वक चले जा रहे हैं; (मेरे लिये) सुस्थिरता की संभावना नहीं दिखाई पड़ती (या मेरे लिये सुस्थिरता का समय नहीं दीखता)।"

शब्दार्थ—रू० ६०—पच्छैं=पीछे । भो (<सं० भव)=हुआ । अग्ग<सं० अग्र=आगे या पहले। विचारिय=विचार किया। पुच्छै=पूछा पूछती है। रंभ=रंभा (एक अप्सरा)। मेनिका<सं० मेनका=स्वर्ग की एक अप्सरा जो इंद्र की आज्ञा से बिश्वामित्र का तप भंग करने के लिये गई थी और विश्वामित्र के संयोग से जिससे शकुंतला नाम की कन्या उत्पन्न हुई थी। सं० अद्य>प्रा० अज्ज>हि० आज। चित्तं किम भारिय=चित्त क्यों भारी है अर्थात् तुम उदास क्यों हो। पहुनाई=(हिंदी पहुना+ई प्रत्यय) अतिथि सत्कार। आइय=आया, आई। रथ्थ<सं० रथ, यहाँ विमानों से तात्पर्य है)। औथान<उत्थान=ऊपर उठना (स्वर्गलोक की ओर), (या—औथान =अन्य स्थान)। सोझ=(१) [हिंदी सूझना=दिखाई पड़ना] (२)> सोध<सं० शोध=ख़बर, टोह। कंत=प्रिय। तह=तहाँ (अर्थात् युद्ध भूमि में)। भर<भट। सुभर<सुभट। भिर=लड़भिड़ कर। ठांम ठांम=ठाँव ठाँव अर्थात् स्थान स्थान पर। जीति=विजयी होकर। चुप सधि=चुप्पी साधे हुए अर्थात् चुपचाप। उथकीय=पूर्वी बोली में एथकी ओथकी का अर्थ इधर उधर है, अतएव उथकीय (या उथकी) का अर्थ ओथकी (या उथकी)= 'उधर' हुआ। सं० 'इत:+तत:' से इत-उत, एतकी-ओतकी, एकैती-ओकैती, इत्त-उत्त आदि शब्द निकले हैं। हल्लै चल्यौ=हल्ला मचाते चले गये या शीघ्रता पूर्वक चले गये (क्योंकि विमानों में गए थे)। सुथिर (<सुस्थिर= जो भली भाँति स्थिर हो)=शांति। संभौ=(१) समय, ('समौ' का बोल चाल में 'संभौ' भी होता है); (२) संभावना। देषीय=दिखाई पड़ना। सं० नास्ति>प्रा० नत्थि>अप० नथि=नहीं है।

नोट—(१)—युद्ध से आशान्वित होकर अप्सराओं ने अपने घर वीर गति पाने वाले योद्धाओं के स्वागतार्थ सजा रखे थे। परन्तु युद्ध के दिन इन

वीरों को अपने घर के सामने से निकलकर अन्य लोकों को जाते देख मेनका बड़ी निराश हुई (रू० ६०) । रंभा ने मेनका को यह कहकर प्रबोधा कि ये वीर हमारे लिये बहुत बड़े हैं और तुम्हारा प्रिय इन्द्राणी द्वारा वरण किया जा चुका है (रू० ६१) । संभवतः मेनका, वीर योद्धा भीम रघुवंशी को वरण करना चाहती थी जिसे इन्द्राणी पा गई (छं० १३३, रू० ८६) ।

(२) कर्नल टॉड (Colonel Tod) ने रू० ६० और ६१ का अंग्रेज़ी में इस प्रकार अनुवाद किया है—

"The Apsaràs invain searched every part of the field. Rambhà asked Menakà, 'Why thus sad today ?' 'This day' said she 'I expected guests.' I descended in my chariot. The field have I searched, but he whom my soul desires, is not to be found: therefore, am I sad! chiefs, mighty warriors, strew the ground, who conquered victory at every step ! My feet are weary in tracing the paths in which fell the brave; but him whom I seek, I cannot find. 'Listen, Oh sister,' said Rambhà, 'he who never bowed the head to a foe, will not be found in this field. To convey hence the pure flame, the chariot of the planets descended. He even avoided the heaven of Brahmà and of Siva; his flame, has gone to be united to the Sun, to be worshipped by Indrànî. On earth he will know no second birth."

[Transactions of the Royal Asiatic Society. Vol. I, Comments on a Sanskrit Inscription. pp. 151-52]

(३) प्रस्तुत रूपक से रेवातट-समय के चौथे दिन के युद्ध का वर्णन प्रारम्भ हो गया है ।

कुंडलिया

कहै रंभ सुनि मेनका[१], एरहु जिन मत जुथ्थ ।
अरिय अनंमति जांनि करि, जोति आवै ग्रह रथ्थ ॥
जोति आवै ग्रह रथ्थ, ब्रह्म सिव लोकह छंडी ।
(कै) बिश्न लोक ग्रह करै, (कै) भांन तन सों तन मंडी ॥
रोमंच्चि तिलक्कं बसि बरी, इंद्र बधू पूजन जहीं ।
ओपंम जोग न न हुअ बहुरि, अवतार न बर है कहीं[२] ॥ छं० १४५ । रू० ६१ ।

(१) ना०—मेनकनि (२) ना०—अब तारन बर है कहीं । (कै) पाठ अन्य प्रतियों में नहीं है केवल ह्योर्नले ने इसे दिया है ।

कवित्त

षां हुसेन ढरि परयौ, अस्व फुनि परयौ सार बहि।
झुज्झ[1] फेरि सत सीव, षांन उजबक्क षेत्त[2] रहि॥
षां ततार मारूफ, षांन षांनं घट घुम्मै।
तब गोरी सुबिहांन, आइ दुज्जन मुष झुंम्मै॥
कर तेग झल्लि मुट्ठिय[3] सुबर, नहिं सुरतानह पन करी।
अदि हार दीह पलटे सुबर, तबहिं साहि फिर पुक्करी॥ छं० १४५। रू० ६२।

भावार्थ—रू० ६१—रंभा ने कहा कि मेनका सुनो, "उस जुथ्थ (लाशों के ढेर) में उस (अपने कंत) को मत खोजो। उसे शत्रु के संमुख न झुका जानकर ग्रह से रथ जुत कर आया था। ग्रह से रथ जुत कर आया और (उसे बिठा कर) ब्रह्म और शिव लोक छोड़ता हुआ चला गया। अब या तो वह विष्णु लोक में वास करेगा या सूर्य के शरीर में अपना शरीर मिलाकर शोभित होगा (अर्थात् सूर्य लोक में वास करेगा)। सुंदर इंद्र बधू (इन्द्राणी) प्रसन्नता से रोमांचित हो, (अपने माथे पर) वश में करने वाला (सिंदूर) बिंदु लगा कर उसकी पूजा करने गई हैं। उस (वीर) की उपमा नहीं दी जा सकती, वैसा कोई न हुआ है और न कहीं अवतार (जन्म) लेगा [या—उसकी बराबरी के योग्य जन्मा हुआ कोई नहीं है]।"

नोट—अगले दिन युद्ध आरंभ हो गया—

रू० ६२—(ग़ोरी का योद्धा) हुसेन ख़ाँ (आक्रमण करने के लिये आगे) दौड़ पड़ा और (उसके पीछे) घोड़सवार सेना चल पड़ी। युद्ध पलटने के लिये [या—युद्ध से भागने वालों को पलटने के लिये या—हारता युद्ध जीतने के लिये] उजबक्क ख़ाँ रणक्षेत्र में (पीछे) सीमा बनाये (अर्थात् रोक लगाये) डटा रहा। तातार मारूफ ख़ाँ तथा अन्य ख़ान एक साथ घूमने लगे, (उसी समय) ग़ोरी भी शीघ्रता से आगे बढ़ कर शत्रु (पृथ्वीराज की सेना) के सामने झूमने लगा। सुभट (ग़ोरी) ने हाथ में तलवार लेकर मुट्ठी घुमाते हुए प्रण किया कि 'मैं सुलतान न रहूँगा यदि आज (का दिन) पलटने (अर्थात् शाम) तक (शत्रु को) भलीभाँति पराजित न कर दूँगा (और इतना करने पर) तभी फिर शाह पुकारा जाऊँगा।'

---

(१) ना०—झुज्झ (२) ना०—षेत (३) मो०—पुट्ठिय।

शब्दार्थ—रू० ६१—एरहु=हेरहु, खोजो। जिन<जिनि (अव्यय) [हि० जनि]=मत, नहीं। मत=नहीं। चंद ने Double negatives का प्रयोग बहुधा किया है; उ०—'न न'; रासो में इसकी भरमार है; वैसे ही यहाँ आया हुआ 'जिन मत' भी है)। अरिय=अरि, शत्रु। अनंमति=(अ + नमति) न झुकने वाला। ग्रह=घर। [ग्रह से यहाँ विष्णु लोक से तात्पर्य है जहाँ से वीर गति पाने वालों के लिये विमान आते हैं]। छंडी=छोड़ता हुआ। (कै)=या तो। (कै) भान तन सों तन मंडी=या तो सूर्य के शरीर में अपना शरीर मिला देगा अर्थात् सूर्य लोक में वास करेगा। भान<भानु=सूर्य। रोमंचि=रोमांचित हो; [रोमांच अधिक प्रसन्नता, भय, दुःख आदि के वेग में होता है। यहाँ इन्द्राणी इतना बड़ा वीर पाकर प्रसन्नता से रोमांचित हो उठीं थीं]। तिलंक=तिलक, (यहाँ सिंदूर विंदु से तात्पर्य है जिसे स्त्रियाँ अपने माथे पर लगाती हैं)। बसि<वश। बरी=श्रेष्ठ, सुंदरी (—वर का स्त्रीलिङ्ग रूप 'वरी' है)। तिलंक बसि=वश में करने वाला विंदु; [नोट—इस लाल विंदु में पुरुषों को आकर्षित करने की बड़ी शक्ति होती है और इसके लगाने से स्त्रियों की सुंदरता अत्यधिक बढ़ जाती है। इस विंदु की महिमा कवि बिहारीलाल ने इस प्रकार बखानी है—

> कहत सबै बेंदी दिये, आँक दस गुनो होत।
> तिय लिलार बेंदी दिये, अगनित होत उदोत ॥

इंद्र बधू=(सं० शचि)—इंद्र की पत्नी इंद्राणी, दानवराज पुलोमा की कन्या थीं। उनके पर्य्यायवाची नाम—सची, ऐंद्री, पुलोमजा, माहेन्द्री, जयवाहिनी भी हैं। ओपंम जोग=उपमा देने के योग्य। न न हुअ बहुरि=फिर नहीं हुआ। बहुरि (या बहुर) [देशज] [हि० बहुरना< सं० प्रघूर्णन], उ०—बहुर लाल कहि बच्छ कहि; आगे चले बहुरि रघुराई—राम चरित मानस। नन को न न पढ़ना चाहिये जो (Double negatives) हैं। अवतार=(अवतरति ये ति अवतार:)—जन्म। अवतार न बर है कहीं=(१) न कहीं जन्म लेगा (२) जन्मा हुआ कहीं नहीं है।

रू० ६२—ढरि परयौ=दौड़ पड़ा; [ययाँ ढरि परयौ का अर्थ मारा गया लेना उचित न होगा क्योंकि अगले रू० ६४ में हमें फिर हुसेन ख़ाँ का हाल मिलता है]। अश्व सार<अश्व सवार=घोड़सवार सेना से तात्पर्य है। सार=शक्ति। पुनि<सं० पुनः=फिर। परयौ बहि=बह पड़ी

अर्थात् आक्रमण किया । भुज्झ<जुज्झ<जुद्ध<युद्ध । फेरि=फेर देना, पलट देना । सीव<सीमा । षेत्त रहि=खेत(युद्ध क्षेत्र) में रहा । घट घुम्मै= इकट्ठे होकर घूमने लगे । सुविहांन=प्रात:काल;[यहाँ शीघ्रता से तात्पर्य है] । बिहान<पंजाबी विहानण=बीत जाना । आइ=आकर । दुज्जन मुष झुम्मै=दुर्जनों (=शत्रुओं) के संमुख भूमने लगा । कर तेग=हाथ में तलवार लिये हुए ! झल्लि मुट्ठि=मुट्ठी हिलाता हुआ । नहिं सुरतानह=सुलतान नहीं हूँ , (सुलतान न कहलाऊँगा या सुलतान न रहेगा) । पन करी=प्रण किया । अदि<सं० अद्य>प्रा० अज्ज>हि० आज । हार दीह=दी हुई हार; पराजित करना । सुबर=(१) सुभट (२) भलीभाँति । तबहिं साह फिर पुक्करी =तभी वह फिर शाह पुकारा जायगा (अर्थात् केवल तभी वह शाह कहलावेगा अन्यथा नहीं) ।

नोट—(१) "दूसरे दिन मीर हुसेन के पुत्र हुसेन खाँ ने मारूफ खाँ का मुक़ाबिला किया और उसे घायल करके गिरा दिया, यह देखकर उजबक खाँ उसके मुकाबिले पर आया । दोनों में बड़ी देर तक बड़ी ताक झाँक होती रही अंत में उजबक ने एक ऐसा हाथ मारा कि जिससे हुसेन खाँ के भी गहरी चोट लगी और उसका घोड़ा कटकर ज़मीन पर लोट गया । इस युद्ध में शहाबुद्दीन बिकट व्यूह से रक्षित तलवार लिये मरने मारने पर उद्यत था ।" रासो-सार, पृष्ठ १०२ ।

प्रस्तुत रू० में आया हुसेन ख़ाँ ग़ोरी का योद्धा है जिसके लिये अगले रू० ६४ में लिखा है कि गहि गोरी सुरतान षान हुस्सेन उपारयौ ।' यदि हुसेन ख़ाँ (चाहे वह मीर हुसेन का पुत्र हो या कोई अन्य हो) वही है जिसके लिये रासो-सार कहता है कि पृथ्वीराज की ओर से उसने मारूफ़ ख़ाँ का मुक़ाबिला किया तो फिर पृथ्वीराज ही की सेना सुलतान को पकड़ने के बाद उसे क्यों 'उपार' देती [उखाड़ देती (हरा देती) ; नष्ट कर देती या मार डालती] । इस प्रकार हुसेन ख़ाँ के ग़ोरी पक्ष का सैनिक सिद्ध होते ही रासो-सार का उपर्युक्त वर्णन अनुचित सिद्ध होता है ।

(२) एक 'हुसेन ख़ाँ' तातार मारूफ़ ख़ाँ का भी भाई था और जहाँ तक संभव है यह हुसेन ख़ाँ वही था—[आषूब तम्मि आवैति वार । सम लाल षान हस्सन हकार ।।" छंद १६, रासो सम्यौ ४३] ।

कवित्त

तब साहिब गोरी नरिंद, सत्त बानं जु समाही[1] ।
पहल[2] बान बर बीर, हने रघुवंस गुरांई[3] ॥
दूजै बांन तकंत[4], भीम भट्टी बर भंजिय ।
चहुआंन तिय बांन, षांन अद्ध धर रंजिय ॥
चहुआंन कमांन सुसंधि करि, तीय बांन हथह थहरिय[5]।
तब लग्गि चंपि प्रथिराज नें, गोरी वै गुज्जर गहिय ।। छं० १४७ । रू० ६३ ।

भावार्थ—रू० ६३—तब साहब शाह ग़ोरी ने सात बाण स्थिर किये [या सात बाण धनुष पर चढ़ाये] । पहले बाण से उसने श्रेष्ठ वीर रघुवंश गुराई को मार डाला, दूसरे बाण से उसने निशाना लगाकर श्रेष्ठ भीम भट्टी को मारा और ख़ान (ग़ोरी) ने तीसरे बाण से चौहान के शरीर का मध्य भाग घायल किया । चौहान ने (भी) धनुष सँभालकर तीन बाण हाथ में लिये । (परन्तु) जब पृथ्वीराज यह करने में लगे थे तो गुज्जर ने ग़ोरी को पकड़ लिया ।

शब्दार्थ—रू० ६३—सत्त बानं=सात बाण । समाही<सं० समाहित = समाधिस्थ, स्थिरीकृत, (उ—'भुज समाहित दिग्वसना कृत:'—रघुवंश) । सत्त बानं जु समाही=सात बाण स्थिर किये अर्थात् सात बाण धनुष पर चढ़ाये । पहल बान=पहला बाण । हने=मार डाला । 'गुराई', गोराज का विकृत रूप है । (गोराज या गोविन्द=गायों का स्वामी) । रघुवंस गुरांई=गुराई, रघुवंशी राजपूत विदित होता है । इस प्रकार अभी तक तीन रघुवंशी योद्धा मारे गये—(१) प्रथा (रू० ८४), (२) भीम (रू० ८६); (३) गुराई (रू० ६३) । दूजै बांन तकंत=दूसरे बाण से ताककर अर्थात् निशाना लगाकर । भंजिय=नष्ट किया । तिय बांन=तीन बाण । षांन=यह शाह ग़ोरी के लिये आया है । ग़ोरी के लिये अभी तक सहाब, शाह आदि पदवियों का प्रयोग होता रहा है; परन्तु यहाँ पर ख़ान का प्रयोग क्यों हुआ यह विचारात्मक है । संभव है कि सुलतान ग़ोरी की प्रतिज्ञानुसार कि यदि आज दिन पलटने तक शत्रु को भलीभाँति पराजित न कर दूँगा मैं सुलतान या शाह न कहलाऊँगा (रू० ६२), चंद वरदाई ने उसके लिये 'षांन' का प्रयोग किया हो । चहुआंन=पृथ्वीराज (परन्तु यह भी संभावना है कि यह चौहान वंशी कोई अन्य योद्धा हो) । अद्ध

(१) ना०—सतवान समाहिय (२) ना०—पहिल (३) ना०—गुसाँइय (४) ना०—दूजै वानत कंठ (५) ना०—तीय वान हथ हथ रहिय ।

घर<अर्द्ध धड़=आधे धड़ में या शरीर के मध्य भाग में। [नोट—'घर' की जगह 'घर' पाठ भी मिलता है; और 'घट' (= शरीर) से 'घर' होना उसी प्रकार संभव है जिस प्रकार रासो में 'भट' से 'भर' होना]। 'रंजिय' को यहाँ रंजन से संबंधित न कर यदि फारसी 'रंज' (दुख, कष्ट) से निकला मान लिया जाय तो कोई हानि नहीं दीखती और अर्थ भी अच्छा हो जाता है। रंजिय<फा० رنج =कष्ट। अद्धं घर रंजिय=आधे धड़ को कष्ट दिया अर्थात् शरीर का मध्य भाग घायल किया। कमान सुसंधि करि=धनुष सम्हाल कर। सुसंधि=भली भाँति संधानना; (संधान=निशाना लगाना) अतएव 'कमान सुसंधि करि' का अर्थ 'धनुष संधानना' नहीं वरन् 'धनुष सम्हालना होगा', क्योंकि बाण संधाना जाता है, धनुष नहीं। थहरिय<ठहरिय। हथह थहरिय= हाथ में ठहराये या लिये। हथह=हाथ में। लग्गि=लगे हुए। चपि=दबना। लग्गि चंपि=लगे दबे थे अर्थात् व्यस्त थे। गहिय=पकड़ा। गुज्जर—यह संभवतः पृथ्वीराज का वही सामंत है जिसका वर्णन प्रस्तुत रासो-समय के रू० २७ और २८ में आ चुका है। 'बह बह कहि रघुबंस राम हक्कारि स उठ्यौ' तथा 'रे गुज्जर गांवांर राज लै मंत न होई' के आधार पर उसका नाम 'राम रघुवंशी गूजर (गुर्जर)' होना चाहिये।

नोट—"राजपूत बीरों की विकट मार के मारे जब यवन सेना पस्त हिम्मत हो उठी तो कुछ सामंतों ने मिलकर शहाबुद्दीन पर आक्रमण किया और उसे घेर कर पकड़ना चाहा। यह देखकर शाह ने एक बान से रघुबंस राम गुसाईं को मारा और दूसरे से भीम भट्टी को घायल किया तीसरा बाण जब तक चढ़ता था कि पृथ्वीराज ने आकर उसके गले में कमान डाल दी।" रासो-सार, पृष्ठ १०३।

कवित्त

गहि गोरी सुरतान, षान हुस्सेन उपारयौ।
षां ततार निसुरत्ति, साहि झोरी कारि डारयौ॥
चामर छत्र रषत्त, बषत लुट्टे सुलतानी।
जै जै जै चहुआन, बजी रन जुग जुग बानी॥
गजि बंधि बंधि सुरतांन कों, गय ढिल्ली ढिल्ली नृपति।
नर नाग देव अस्तुति करैं, दिपति दीप दिवलोक पति॥ छं० १४८। रू० २४।

दूहा

समै एक बत्ती नृपति, बर छंड्यौ सुरतांन ।
तपै राज चहुआन यौं[1], ज्यों ग्रीषम मध्यांन ॥ छं० १४६ । रू० ६५ ।

भावार्थ—रू० ६४—सुलतान ग़ोरी को पकड़ लिया, हुसेन ख़ाँ को नष्ट कर डाला, (फिर) तातार निसुरति ख़ाँ को झोली बना कर बाँध लिया। सुलतान के चमर और छत्र रखने का समय लुट गया (=चला गया)। रणभूमि में स्थान व स्थान पर चौहान की जय जयकार होने लगी। दिल्लीश्वर, बँधे हुए सुलतान को हाथी पर बाँध कर दिल्ली (ले) गये। नर, नाग और देवता स्तुति करने लगे कि (महाराज पृथ्वीराज का) तेज पृथ्वी पर इंद्र के समान प्रकाशमान हो [या—महाराज पृथ्वी पर इंद्र सदृश यशस्वी हों]।

रू० ६५—कुछ समय बीतने पर पृथ्वीराज ने सुलतान को मुक्त कर दिया। चौहान राजा उसी प्रकार तप रहा था जिस प्रकार ग्रीष्म (ऋतु) में मध्याह्न का सूर्य [अर्थात् चौहान का बल और पुरुषार्थ ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न काल के सूर्य के समान था]।

शब्दार्थ—रू० ६४—उपारयौ=नष्ट कर दिया या उखाड़ दिया। रष्त्त=रखने का। बष्त <फा० وقت=समय। लुट्टे=लुट गया। सुलतानौ=सुलतान गोरी का। जुग जुग=जगह जगह; युग युग। वानी<सं० वाणी। गय=गये। ढिल्ली=दिल्ली, [वि० वि० प० में]। ढिल्ली नृपति=दिल्ली नृप (अर्थात् पृथ्वीराज)। दिपंति=प्रकाशित हो, दिपै। दीप=प्रकाश, तेज, यश। दिवलोकपति=इन्द्र। रष्त्त बष्त<रख़्त बख़्त=डेरा डंडा।

रू० ६५—समै<समय। बत्ती<सं० वार्ता। बत्ती<सं० व्यतीत=बीता। छंड्यौ=छोड़ दिया, मुक्तकर दिया।

नोट—(१) रू० ६४ के प्रथम दो चरणों का अर्थ ह्योर्नले महोदय ने इस प्रकार लिखा है—"The Gorî Sultàn being captured, Husain Khan now prevailed (in the battle); and the Tattar Nisurati Khan, making up a litter, put the Shàh on it" pp. 66-67.

(२) रू० ६४ में 'रष्त्त बष्त' शब्द का एक साथ अर्थ करने से 'डेरा डंडा' होता है और इसी अर्थ में पृ० रा० में हम इसका प्रयोग पाते हैं—

---

(१) ना०—यौ ।

[उ०—'चामर छत्र रपत्त। सकल लुट्टे सुरतानं ॥' छं० २४८, सम्यौ १६,
'चामर छत्र रपत्त। वषत लुट्टे रन रारी ॥' छं० २६४, सम्यौ २४,
'हसम हयग्गयय लुट्टि। लुट्टि पष्षर रषतानं ॥' छं० ६०१, सम्यौ ५२,
'चामर छत्र रपत्त। तषत लुट्टे सुलतानी ॥' छं० २६५, सम्यौ ५८,
आदि प्रयोग भी रासो में हैं]।

अतएव प्रस्तुत रूपक के प्रथम तीसरे चरण का अर्थ यह भी होगा कि—सुलतान का चँवर, छत्र और डेरा डंडा सब लुट गया।

कवित्त

मास एक दिन तीन, साह संकट में रुंधौ[1]।
करी अरज उमराउ, दंड हय मंगिय सुद्धौ ॥
हय अमोल नव सहस, सत्त सें दीन[2] ऐराकी।
उज्जल दंतिय अट्ठ, बीस मुरु[3] ढाल सु जक्की ॥
नग मोतिय मानिक नवल, करि सलाह संमेल करि।
पहिराइ[4] राज मनुहार करि, गज्जनवै पठयौ सु घर[5] ॥ छं० १५० । रू० ६६ ।

भावार्थ—रू० ६६—एक महीना और तीन दिन तक ग़ोरी वंदीगृह में पड़ा रहा। जब उसके अमीरों ने प्रार्थना की और दंडस्वरूप घोड़े देना स्वीकार किया तब वह मुक्त किया गया। (दंड में अमीरों ने) नौ हज़ार अमूल्य घोड़े और सात सौ ऐराकी घोड़े दिये; आठ सफेद हाथी और बीस ढली हुई अच्छी ढालें दीं तथा गजमुक्ता और नये माणिक्य दिये। (इस प्रकार) सुलह कर और शांति स्थापित करके राजा ने गज्जन [ग़ज़नी नरेश] को पहिना ओढ़ा तथा आदर सत्कार करके उसके घर भेज दिया।

शब्दार्थ—रू० ६६—संकट में रुंधौ=संकट में रुँधा रहा (अर्थात् वंदीगृह में पड़ा रहा)। अरज<अ० عرض (अर्ज़)=प्रार्थना। उमराउ<अ० امرا [(उमरा) امير (अमीर) का बहु वचन है]। हय=घोड़े। सुद्धौ=शुद्ध हुआ (अर्थात् वंदीगृह से मुक्त हुआ); शुद्ध=निर्मल। नव सहस<सं० नव सहस्र=नौ हज़ार। सत्त सै=सात सौ। दीन=दिये। ऐराकी=इराक़ देश के (घोड़े)। उज्जल दंतिय अट्ठ=आठ सफेद हाथी। मुरु=मुड़ना (यहाँ ढालना से तात्पर्य समझ पड़ता है)। ढाल=ढालें। विंशति (सं०)<पा० विसति<प्रा० वीसा,

---

(१) ना०—रुंद्धौ (२) ना०—दिन (३) ना० मुर (४) ना०—परिराइ (५) ना०—सुघरि।

बीसइ < हि० बीस। जक्की < अ० زکی (ज़की)=तेज़; (यहाँ अच्छी बनी हुई ढालों से तात्पर्य है)। नग मोतिय < नग मोती=गज मुक्ता। मानिक < सं० माणिक्य। नवल=नये। सलाह < फा० صلاح=सुलह। संमेल करि=मेल करके, शांति स्थापित कर। पहिराइ=पहिना ओढ़ा कर। मनुहार=(हि० मन+हरना) आदर सत्कार करना। गजनवै=ग़ज़नी के ईश अर्थात् ग़ोरी को; ग़ज़नी में। सु घर=उसके घर। पठयौ=भेज दिया। ग़ज़नी=अफगानिस्तान का एक नगर, [वि०वि० प० में]।

इति श्री कविचंद बिरचिते प्रथिराज रासा के
रेवातट पातिसाह ग्रहनं नांम
सतावीसमो प्रस्ताव सपूरणं।२७।
रेवातट सम्यौ समाप्तं।०।

परिशिष्ट

१—'रेवातट समय' की कथा

२—भौगोलिक-प्रसंग

३—पौराणिक-प्रसंग

१—'रेवा तट समय' की कथा

(जब) देवगिरि को जीतकर चामंडराय दिल्ली आया (तब) कवियों ने महाराज का कीर्त्तिगान किया (रू० १)। फिर सामन्तनाथ पृथ्वीराज से चामंडराय दाहिम ने कहा कि जिस हाथी के ललाट पर शिव जी ने तिलक कर तथा जिसका ऐरावत नामकरण कर इन्द्र को सवारी के लिये दिया था और जिसको उमा ने एक हथिनी प्रदान की थी उसी की औलाद रेवा तट पर फैल गई है। वहाँ चारों प्रकार के हाथी पाये जाते हैं अतएव आप रेवाटत पर उनका शिकार खेलने चलें (रू० २, ३, ४,)। नरपति ने तब चंद कवि से पूछा कि देवताओं के ये वाहन पृथ्वी पर किस प्रकार आगये (रू० ४)? (चंद ने उत्तर दिया कि) "हिमालय के समीप एक बड़ा भारी वट का वृक्ष था, (एक दिन विचरते हुए) हाथी ने उसकी शाखायें तोड़ी और फिर मदांध हो दीर्घतपा का आराम उजाड़ डाला। ऋषि ने यह देखकर श्राप दे दिया और हाथी की आकाशगामी गति क्षीण हो गई तब मनुष्यों ने उसे अपनी सवारी बनाया (रू० ५)। अंगदेश के घने वन खंड के लोहिताक्ष सरोवर में श्रापित गजों का यूथ निशिवासर क्रीड़ा किया करता था। उसी वन में पालकाव्य ऋषि रहते थे। उनसे और हाथियों से परस्पर बड़ी प्रीति हो गई थी। एक दिन उस वन में राजा रोमपाद शिकार खेलने आया और हाथियों को पकड़कर चंपापुरी ले गया (रू० ६)। पालकाव्य की विरह से हाथियों के शरीर क्षीण हो गये तब मुनि ने आकर उनकी सुश्रूषा की (रू० ७) और कोंपल, पराग, पत्र, छाल, डाल आदि खिलाकर उन्हें पुनः स्थूल बना दिया (रू० ८)। एक ब्रह्मर्षि को तपस्या करते देखकर इंद्र डरा और उसने मुनि को छलने के लिये रंभा को भेजा। तपस्वी ने रंभा को हथिनी होने का श्राप दिया। सोते समय एक यति का वीर्यपात हो गया और कर्मबंधन के अनुसार वह हथिनी वहाँ आकर उस वीर्य को खा गई जिससे पालकाव्य मुनि पैदा हुए। हे नृप पिथ्थ! इसीलिये मुनि को हाथियों से अत्यंत प्रीति थी" (रू० ९, १०)। (तब चामंडराय ने कहा कि) "हे राजन्, रेवातट पर बड़े दाँतों वाले हाथियों के झुंड तो हैं ही पर

मार्ग में सिंह भी मिलेंगे जिनका शिकार भी आप खेल सकते हैं। (इसके अतिरिक्त) पहाड़ों और जलाशयों पर कस्तूरी मृग, पक्षी और कबूतर रहते हैं परन्तु दक्षिण की सुरभि तो वर्णनातीत है" (रू० ११)। चौहान ने यह विचार कर कि एक तो पहुपंग को कष्ट होगा दूसरे स्थान भी रमणीक है, रेवातट के लिये प्रस्थान कर दिया (रू० १२)। मार्ग के राजा महाराजाओं ने चौहान का अभिवादन किया और नृप ने हाथियों, सिंहों और हरिणों का शिकार खेला। (इसी समय) सुलतान को कष्ट देने वाले लाहौर स्थान (के शासक चंद पुंडीर दाहिम) का पत्र मिला (रू० १३) जिसमें लिखा था कि तातार-मारूफ़ ख़ाँ ने चौहानी को उखाड़ फेंकने के लिये सुलतान ग़ोरी के हाथ से पान का बीड़ा लिया है (रू० १४)। ग़ोरी ने चुपचाप एक बड़ी सेना तय्यार कर ली है और मुसहफ छूकर धावा बोल दिया गया है (रू० १५, १६, १७)। चंद-वीर-पुंडीर के पत्र को प्रमाण मानकर चौहान छै छै कोस पर मुकाम करता हुआ लाहौर की ओर चला (रू० १६)। (इधर) दूतों ने यह सारा समाचार कन्नौज जाकर कमधज्ज से कह सुनाया (रू० २०, २१, २२)। पृथ्वीराज के सारे सामंत एकत्रित होकर मंत्रणा करने लगे कि इस अवसर पर क्या नीति ग्रहण करनी चाहिये ? अनेक मत-मतांतर होते होते विवाद बढ़ गया तब पृथ्वीराज ने कहा कि सुलतान सामने है अब इसी मत पर विचार करो कि लड़ने मरने का परवाना आ पहुँचा है। पृथ्वीराज की (यह) सिंह गर्जना सुनकर यह बात निश्चित होगई कि सुलतान से मुक़ाबिला होगा (रू० २३—३०)। सुलतान से युद्ध होना निश्चित जानकर युद्ध की तय्यारियाँ होने लगीं, घोड़े अपने बाखरों पाखरों सहित फेरे जाने लगे (रू० ३२)। रात में नौ बजे चौहान महल में गये और अर्धरात्रि में एक दूत ने महाराज को जगाकर कहा कि आठ हज़ार हाथी और अठारह लाख घोड़े लिये हुए ग़ोरी नौ बजे (लाहौर से) चौदह कोस की दूरी पर देखा गया है (रू० ३३)। (दूत द्वारा लाये हुए पत्र में लिखा था कि) "चंद पुंडीर अपने प्राणों को मुक्ति का भोग देने के लिये अपने स्थान पर डटा रहेगा" (रू० ३४)। उधर जहाँ ग़ोरी ने चिनाब नदी पार की वहीं चंदपुंडीर बरछी गाड़े डटा हुआ था। कोलाहल करती हुई दोनों ओर की सेनायें आगे बढ़ीं और परस्पर भयंकर युद्ध करने लगीं। कुछ समय बाद पुंडीर वंशी पाँच वीरों के गिरने पर चंद पुंडीर ने मुक़ाबिला छोड़ दिया और तभी शाह ग़ोरी चिनाब से आगे बढ़ सका (रू० ४३)। चौहान को भी एक दूत ने यह समाचार आकर सुनाया कि मारूफ़ ख़ाँ लाहौर से पाँच कोस की दूरी पर आ गया है (रू० ४४)। यह सुनकर पृथ्वीराज का

क्रोध भभक उठा। उन्होंने कहा कि मैं ग़ोरी को फिर बाँध लूँ तभी सोमेश्वर का बेटा हूँ (रू० ४५)। चंद्राकार व्यूह में खड़े हुए चौहान के सैनिकों ने प्रतिज्ञा की कि सुलतान की सेना को छिन्न-भिन्न करके शाह को बाँध लेंगे (रू ४६)। पंचमी तिथि मगलवार को प्रात:काल क्रूर और बलवान ग्रह (मंगल) के उदय होने पर महाराज पृथ्वीराज ने (ग़ोरी से मोर्चा लेने के लिये) चढ़ाई बोल दी (रू० ४७)। नगाड़ों के ज़ोर-ज़ोर बजते ही हाथियों के घंटे घनघना उठे, वीर गरजने लगे। आकाश में धूल छा गई जिससे अँधेरा हो गया (रू० ५०)। सुलतान के दल वालों ने (चौहान की सेना के) लोहे के चमकते हुए बाणों को देखकर अनुमान किया कि क्या गरदिश ने चक्कर खाया है जो रात को आया जानकर तारे निकल आये हैं (रू० ५३)। दोनों ओर की सेनायें काले बादलों के समान एक दूसरे से भिड़ गईं (रू० ५६) चित्रांगी रावर समरसिंह अपने वायु वेगी अश्व पर चढ़ कर शत्रुओं के सिर पत्तों सदृश तोड़ता हुआ आगे बढ़ा। मेवाड़पति के आक्रमण ने सुलतान की सेना में धूल उड़ा दी (रू० ५७)। रावर के पीछे क्रोधित जैत पँवार था और जैत के पीछे चामंडराय और हुसेन ख़ाँ थे। चामंड और हुसेन ने हाथियों पर चढ़कर सुलतान की चतुरंगिणी सेना को व्याकुल कर दिया तथा धाराधिपति भट्टी ने ग़ोरी के सैनिकों को उखाड़ फेंका (रू० ५८)। सेनापति जैत की अध्यक्षता में चौहान की सेना चन्द्रव्यूह बनाकर लड़ रही थी (रू० ५६)। कबंध नाचते थे, कटे हुए सर चिल्लाते थे, साँगें घुस रही थीं, तलवारों से तलवारें बज रही थीं, भैरव नाच रहे थे, गण ताल दे रहे थे। भयानक युद्ध होता रहा और पराक्रमी महाराज पृथ्वीराज क्रोधपूर्वक ग़ोरी से भिड़े रहे (रू० ६१)। यह देखकर सुभट ग़ोरी का साहस भंग हो गया। तातार मारूफ़ ख़ाँ ने उसे यह कहकर प्रबोधा कि मेरे रहते सुलतान पर आपत्ति नहीं आ सकती (रू० ६२)। सोलंकी माधवराय का खिलची ख़ाँ से मुक़ाबिला पड़ा। लड़ते लड़ते सोलंकी की तलवार टूट गई और अनेक शत्रुओं ने घेरकर अधर्म युद्ध से उसे मार डाला (रू० ६५)। ग़ोरी की सेना समुद्र की भाँति गरजने लगी। तब गरुअ गोइंद्व आगे बढ़ा जिसे यवनों ने विनष्ट कर दिया (रू० ६६)। गरुअ गोइंद के पश्चात् शत्रुओं को युद्धाग्नि की आहुति देकर पतंग-जयसिंह भी पंचत्व को प्राप्त हुआ (रू० ६७)। (भान) पुंडीर को चारों ओर से घेर कर सुलतान की सेना ने उसके शिरस्त्राण के टुकड़े टुकड़े कर डाले। वह गिरता पड़ता भिड़ा रहा और मारे जाने पर उसका कबंध पाँच पल तक खड़ा रहा जिसे देखकर सुरलोक में जय जय का

घोर हो उठा (रू० ६८) । खुरासान ख़ाँ ने पल्हन के संबंधी कूरंभ का सामना किया और अपनी लंबी तलवार से उसका सर काट दिया, फिर कूरंभ के कटे हुए सर से जब तक मारो मारो की ध्वनि होती रही तब तक उसका कबंध नाचता रहा । यह दृश्य देखकर भैरव अट्टहास कर उठे और पार्वती चकित रह गईं (रू० ६९) । त-तार ख़ाँ ने हाथी की सूँड़ उखाड़ने वाले आहुठ को स्वर्ग भेजा (रू० ७१) । नरसिंह का संबंधी शत्रु को मारकर उसकी कटार से घायल हो अपनी तलवार से सहारा लेने में चूक कर आहत होकर गिर पड़ा उसको गिरते देख दाहर-तनौचामंडा (चामंडराय) भयंकर युद्ध करने लगा (रू० ७२) । (अब तक) रात्रि हो चुकी थी (अस्तु) दोनों सेनाओं ने युद्ध बंद कर दिया । दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही चौहान विशाल शाल वृक्ष सदृश उठा (रू० ७३) । युद्ध प्रारंभ हुआ और सुलख का पिता लखन मारा गया । महामाया उसको ले गईं । इस वीर ने सूर्यलोक में स्थान पाया (रू० ७४) । अप्सरायें देव वरण छोड़कर भू लोक में युद्ध भूमि पर आईं और मरे हुए वीरों का वरण करने लगीं (रू० ७५) । ईश (शिव) ने राम के संबंधी का श्रेष्ठ सर बड़े चाव से उठाया (रू० ७६) । राम और रावण सरीखा युद्ध करने वाला योगी जंघारा भी भीषण युद्ध करके स्वर्ग लोक गया (रू० ७७–७८) । अब सुलतान ग़ोरी अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित होकर स्वयं जंग करने के लिये झुका । यह समाचार सुनकर लंगा-लंगरी-राय सात सामंतों को लेकर युद्ध भूमि में धँस पड़ा और अपनी तलवार चलाने की कुशलता से शत्रुओं की तलवारों (की मूठें) ढीली करने लगा (रू० ७९) । कुछ समय बाद लंगरी राय के एक नेत्र में बाण घुस गया और बायाँ हाथ कट गया तब भी वह बराबर शत्रु से लड़ता रहा (रू० ८१) । दूसरी ओर लोहाना ने महमूद की पीठ फोड़कर निकलता हुआ बाण मारा और कटार लेकर झपटा ही था कि एक मीर ने तलवार के वार से उसे गिरा दिया (रू० ८२) । एक मीर और मारूफ ख़ाँ ने मिलकर बिड्डुर को मार डाला (रू० ८३) । अब तक ग़ोरी के चौंसठ ख़ान और पृथ्वीराज के तेरह श्रेष्ठ वीर काम आये (रू० ८४) । (रात्रि होने से युद्ध बन्द हो गया और) दूसरे दिन ग़ोरी ने दस हाथी आगे किये और तातार ख़ाँ की आज्ञा पाते ही कुहक बाण और गोले बरसने लगे । इस पर पृथ्वीराज का हाथी भागने लगा और महाराज क्षुब्ध हो उठे । उनको अस्थिर देख सामंतगण मोह त्याग कर वज्र सदृश तलवारों के वार करने लगे (रू० ८५) । मीर भी आधे आधे योजन दौड़ कर साँग चलाने लगे और ग़ोरी चक्र फेंकने वाले सैनिकों की चार पंक्तियों के आगे पाँच सौ शेख़ों को

करके सामंतों को घेरने लगा सामंत भी भिड़ गये और भयानक युद्ध करने लगे (रू० ८६) । खुरासानी तातार ख़ाँ ने अपनी तसबीह तोड़ डाली । गोरी के हाथी चौहान की सेना में घुस गये और दो सौ तेरह प्राणी दबकर मरे, (चौहान की) पराजय के लक्षण दिखाई दिये तब श्रेष्ठ वीर भीम, सेना के एक भागको चतुरंगिणी बनाकर हाथी पर चढ़कर मोर्चे पर आया (रू० ८८)। शत्रु सेना का संहार करता हुआ रघुवंशी राम मारा गया। हिन्दू और म्लेच्छ उलटे पलटे पड़े थे, रंभा और भैरव ताताथेई ताताथेई करके नाचते थे, गिद्ध मृतकों की अँतड़ियाँ खींचते थे, वीर पैर कटने पर तलवार के सहारे दौड़ते थे—बिलकुल देवासुर संग्राम सरीखा युद्ध हो रहा था (रू० ८९) । (चौथे दिन संग्राम होने से पूर्व) रंभा ने मेनका से पूछा कि आज तुम्हारा चित्त क्यों भारी है? मेनका ने कहा कि आज पहुनाई करने का दिन आया है। शूरवीर वीरगति पाकर विमानों में बैठ स्वर्गलोक जा रहे हैं। युद्ध भूमि में मैंने बहुत खोजा परन्तु मुझे अपना वर ढूँढ़े नहीं मिल रहा है और यही मेरी चिन्ता का कारण है। रंभा ने उत्तर दिया कि ऐ मेनका वहाँ उस वीर को मत खोजो वह तो विमान में बैठ शिव और ब्रह्म लोक छोड़ता हुआ सूर्य लोक गया है। इंद्र-वधू उसकी पूजा करने गई हैं। उसके समान आजतक न तो कोई वीर हुआ है और न होगा (रू० ९०–९१)। (युद्ध प्रारंभ हुआ और) हुसेन ख़ाँ के पीछे घोड़सवार सेना चल पड़ी। तातार मारूफ ख़ाँ और अन्य ख़ान एक साथ दौड़ने लगे तथा ग़ोरी शत्रुओं (सामंतों) के संमुख झूमने लगा। उसने हाथ में लरवात लेकर और मुट्ठी घुमाते हुए प्रण किया कि आज पलटने तक यदि शत्रु को पराजित कर दूँगा तभी शाह कहलाऊँगा (रू० ९२) । (इसके बाद) ग़ोरी ने सात बाण धनुप पर चढ़ाये। पहले बाण से उसने रघुवंश गुराई को हना (मारा) दूसरे से उसने ताककर भीम भट्टी का भंजन किया और तीसरे से चौहान को घायल कर दिया। चौहान ने भी कमान सँभाल कर तीन बाण हाँथ में लिये परन्तु जब वे यह कर रहे थे तब तक गुज्जर ने ग़ोरी को पकड़ लिया (रू० ९३)। हुसेन ख़ाँ नष्ट कर डाला गया और ग़ोरी तथा निसुरति ख़ाँ झोली बनाकर डाल दिये गये। युद्धभूमि में चौहान की जय जयकार होने लगी। सुलतान ग़ोरी हाथी पर बाँधकर दिल्ली ले जाया गया (रू० ९४) । इस समय चौहान का प्रताप मध्यान्ह सूर्य सदृश था (रू० ९५) । एक मास और तीन दिन संकट (कारागार) में रहने के उपरांत जब शाह के अमीरों ने प्रार्थना की और दंडस्वरूप नौ हज़ार घोड़े, सात सौ ऐराकी घोड़े, आठ सफेद हाथी, बीस ढली हुई ढालें, गजमुक्ता और अनेक

माणिक्य दिये तब राजा (पृथ्वीराज चौहान) ने सुलह कर और शांति स्थापित कर गज्जनवै (गोरी शाह शहाबुद्दीन) को पहिना ओढ़ाकर उसके घर भेज दिया (रू० ६६)।

२—भौगोलिक-प्रसंग

कनवज्ज (>कन्नौज)—

[सं० कान्यकुब्ज या कन्याकुब्ज >प्रा० कण्णउज्ज > अप० कनवज्ज > हिं० कन्नौज]

प्राचीन भारत की राजनीति में अधिक भाग लेने वाले नगरों में कन्नौज भी एक है। यह उत्तर प्रदेश के ज़िले फरूख़ाबाद का एक साधारण नगर गंगा के दाहिने किनारे पर अक्षांश २७°५′ उत्तर और देशांतर ७९° ५५′ पूर्व में बसा हुआ है। "इसके वैभव का पराभव हुए बहुत समय बीता। इस समृद्धिशाली नगर के खंडहर और नगर के चारों ओर के घने जंगल और नाले अपराधियों के सहायक और शरणागत हैं।" [The East India Gazetteer. Walter Hamilton, (1828) Vol. I, p. 74]।

कन्नौज ने गुप्त वंश के पतन और मुस्लिम उत्थान के मध्य काल में बड़े-बड़े साम्राज्यों की उथल-पुथल देखी है।

वाल्मीकीय रामायण में 'कन्नौज' नाम की उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है कि प्राचीन काल में राजा कुश ने विदर्भ (आधुनिक बरार) राज की कन्या का पाणिग्रहण किया जिससे उसके चार पुत्र कुशानाभ, कुशांभ, असूर्त-राज और वसु हुए। प्रत्येक पुत्र ने अपने नाम से एक नगर बसाया। कुशानाभ ने 'महोदय' (जिसका कुशानाभ नाम भी संस्कृत साहित्य में मिलता है) नगर बसाया। कुशानाभ और घृताचि से एक सौ सुन्दर पुत्रियों का जन्म हुआ। एक दिन जब ये सब लड़कियाँ उपवन में खेल रही थीं तो 'वायु' ने उन पर मुग्ध होकर एक साथ सबसे विवाह कर लेने का प्रस्ताव किया। लड़कियों ने इस प्रस्ताव का तीव्र तिरस्कार किया जिससे क्रोधित होकर वायु ने श्राप द्वारा उन सबको कुबड़ा कर दिया। तभी से इस नगर का नाम कन्याकुब्ज या कान्यकुब्ज हो गया। ऐतिहासिक दृष्टि से भले ही इस कथा का मूल्य न हो पर कन्नौज की प्राचीनता अवश्य निश्चित हो जाती है।

कन्नौज के अन्य नाम जैसे महोदया, कुशस्थल, कुशिक आदि भी साहित्य में पाये जाते हैं। 'युवान च्वांग' का कथन है कि इस नगर का नाम कुसुमपुर (पुष्पों का नगर) था परन्तु ऋषि (the great tree-rishi) के श्राप से बाद में कान्यकुब्ज हो गया। कान्यकुब्ज केवल नगर का नाम नहीं था वरन् नगर के चारों ओर के एक सीमित प्रदेश को भी कान्यकुब्ज कहते थे जैसे आजकल बम्बई और मद्रास कहलाते हैं।

पुराणों और महाभारत में हम कन्नौज के राजवंशों का हाल पढ़ते हैं। युधिष्ठिर ने दुर्योधन से कुशस्थल (कन्नौज), वृकस्थल, माकन्दी, वारणावट और पाँचवाँ कोई एक नगर माँगे थे। पालि साहित्य में हम पढ़ते हैं कि त्रायत्रिंश नामक स्वर्ग से भगवान् बुद्धदेव कन्नौज में ही उतरे थे और उपदेश दिया था। कन्नौज का ऐतिहासिक वर्णन फ़ाहियान की यात्राओं में भी मिलता है।

छठी शताब्दी में कन्नौज मौखरी राजाओं की राजधानी था। ईशान-वर्मन और सर्ववर्मन के राज्यत्वकाल में कन्नौज राज्य का प्रभुत्व और प्रताप बढ़ा जिसके फलस्वरूप गुप्त राजाओं से युद्ध हुए। अंत में कन्नौज मगध का स्थानापन्न हो राजनैतिक केन्द्र हो गया। मौखरियों के पश्चात् सातवीं शताब्दी में थानेश्वर के हर्ष ने कन्नौज का शासन-सूत्र अपने हाथ में ले लिया। हर्ष की मृत्यु होने पर पचास वर्ष तक कन्नौज अशान्ति और विद्रोह का अखाड़ा रहा। फिर प्रतिहार भोज प्रथम और महेन्द्रपाल प्रथम के शासनकाल में कन्नौज में शान्ति स्थापित हो उन्नति प्रारम्भ हुई, और इसका विस्तार सौराष्ट्र, मगध, राजपूताना, गोरखपुर, उज्जैन, करनाल और बुन्देलखण्ड तक हो गया। सन् १०१८ ई० में महमूद ग़ज़नवी के आक्रमण ने कन्नौज साम्राज्य को धक्का पहुँचाया, परन्तु गाहड़वाल राजाओं ने क्षति पूर्ति कर उसे पुनः समृद्धिशाली बना दिया। 'अन्त में बारहवीं शताब्दी में सिहाबुद्दीन गोरी ने सन् ११९२ में चौहान साम्राज्य उखाड़कर' (Firishta-Briggs-Vol. I, p. 277)—'सन् ११९४ में कन्नौज साम्राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला' [ताज-उल-मआसीर ; History of India. Elliot. Vol. II, p. 297]। साम्राज्य तो ध्वंस हो गया और बड़े-बड़े साम्राज्यों के वैभव पराभव का साक्षी कन्नौज एक साधारण नगर मात्र रह गया।

आल्हा ऊदल की बारहदरी, जयचंद के दुर्ग और संयोगिता के गंगातट पर महल के खण्डहर आज भी अपने युग की गाथाओं की स्मृति के प्रतीक हैं।

(वि० वि० देखिये—History of Kanauj. R. S. Tripathi. Preface and pp. 1—19.)।

गजनी (<ग़ज़नी)—

अफ़ग़ानिस्तान के घिलज़ाई प्रदेश की राजधानी ग़ज़नी कंधार से काबुल जाने वाली पक्की सड़क पर ७२८० फीट की ऊँचाई पर ग़ज़नी नदी के बायें किनारे ३३°३४′ अक्षांश उत्तर और ६८°१७′ देशांतर पूर्व में पर्वत-मालाओं पर बनी कुछ प्राकृतिक और कुछ कृत्रिम ऊँची दीवाल से घिरा हुआ बसा है। इसका नाम ग़ज़ना और ग़ज़नीन भी मिलते हैं।

प्रसिद्ध यूनानी लेखक 'टालमी' [Ptolmy] ने गज़क (Gazaca) नाम से जिस नगर का वर्णन किया है वह संभवत: ग़ज़नी ही है। 'रालिं-सन' महोदय [Sir H. Rawlinson] ने इसको गज़ोस (Gazos) नाम से पहिचाना है और ह्वेनसांग ने होसीना [Ho-si-na] नाम से इसका वर्णन किया है। यवन आक्रमण काल के समय ग़ज़नी के आसपास का प्रदेश ज़ाबुल (Zabul) कहलाता था और यह भारतीय व्यापार का प्रधान केंद्र था। सन् ८७१ ई० में याकूब ने इस प्रदेश पर आक्रमण कर यहाँ के निवा-सियों को तलवार के ज़ोर से इस्लाम धर्मानुयायी बनाया। कलर (श्यालपति), सामंद, कमलू, भीम, जयपाल (प्रथम), आनंदपाल, जयपाल (द्वितीय) और भीमपाल ये आठ ब्राह्मण शासक काबुल में हुए हैं और ग़ज़नी का इनके अधिकार में होना असंभव नहीं है। महमूद ग़ज़नवी के समय तक काबुल के हिन्दू राजवंश ने काबुल नदी की घाटी का कुछ भाग अपने अधिकार में रखा था। दसवीं सदी में अलप्तगीन नामक एक तुर्की दास ने बोख़ारा में राज्य करने वाले समनिद राज्यवंश से ग़ज़नी छीनकर वहाँ अपनी राजधानी स्थापित की। सन् ६७७ ई० में अलप्तगीन का दामाद सुबुक्तगीन ग़ज़नी की गद्दी पर बैठा और क्रमश: उसने आधुनिक अफ़ग़ानिस्तान और पंजाब पर अधिकार कर लिया। सन् ६६७ ई० में उसका पुत्र महमूद ग़ज़नवी गद्दी पर बैठा। इसने भारतवर्ष पर सत्रह आक्रमण किये और असंख्य धन लूटकर ग़ज़नी ले गया। महमूद के बाद उसके चौदह वंशजों ने और राज्य किया, परन्तु महमूद कालीन ग़ज़नी फिर अपनी उस समृद्धि पर कभी न पहुँच सका। बहरामशाह ग़ज़नवी (सन् १११८-५२ ई०) ने ग़ज़नी आये हुए ज़िबल के बादशाह ग़ोर के कुमार कुतुबुद्दीन को मार डाला जिसपर कुतुबुद्दीन के भाई सैफ़उद्दीन सूरी ने एक बड़ी सेना लेकर आक्रमण किया और बहराम को खदेड़ दिया; परन्तु

सन् ११४६ ई० में बहराम ने सैफ़उद्दीन को मरवा डाला। इस घटना के कारण क़त्ल किये गये दो भाइयों से छोटा अलाउद्दीन ग़ोर ग़ज़नी पर चढ़ आया और बहरामशाह को भगाकर उसने नगर को जलाने और निवासियों को तलवार के घाट उतारने की आज्ञा दी। इस क्रूरता के कारण अलाउद्दीन ग़ोर का नाम 'जहाँ-शोज़' पड़ गया और बरबाद ग़ज़नी फिर न पनप सका। अलाउद्दीन ग़ोर के जाते ही बहराम ने पुन: ग़ज़नी पर अधिकार कर लिया। सन् ११५७ ई० में उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र खुसरोशाह गद्दी पर बैठा परन्तु उसके राज्यत्वकाल में घज़्ज़ (Ghuzz) नामक तुर्की जाति ने ग़ज़नी को हथिया लिया। बादशाह लाहौर भाग गया और उसके पुत्र के बाद ग़ज़नवी वंश का नाम लेवा पानी देवा कोई न रह गया। सन् ११७३ ई० में अलाउद्दीन ग़ोर 'जहाँशोज़' के भतीजे गयासुद्दीन ने घज़्ज़ों (या ग़ज़्ज़ों) से ग़ज़नी छीनकर अपने भाई मुईज़ुद्दीन को दे दी जिसे इतिहासकार मुहम्मद ग़ोरी भी कहते हैं। सन् ११७४-७५ ई० में मुहम्मद ग़ोरी ने भारतवर्ष पर आक्रमण करके खुसरो मलिक ग़ज़नवी से लाहौर तक का प्रदेश छीन लिया और सन् ११९२ ई० में थानेश्वर के युद्ध में दिल्ली अजमेर के राजा को पराजित कर हिमालय से अजमेर तक का प्रदेश हस्तगत कर लिया। गयासुद्दीन के बाद मुहम्मद ग़ोरी ग़ोर और ग़ज़नी का सुलतान हो गया। सन् १२०६ ई० में ग़ोरी की हत्या हो जाने पर ख़्वारज़्म के सुलतान मुहम्मद शाह ने ग़ज़नी को अपने राज्य में मिलाकर उसका शासन प्रबन्ध अपने पुत्र जलालुद्दीन के हाथ में दे दिया। चंगेज़ ख़ाँ ने जलालुद्दीन को सिंधु के उस पार खदेड़ दिया और अपने पुत्र ओगदाई (Ogdai) से ग़ज़नी का घेरा डलवा दिया; तब से एशिया के इतिहास में ग़ज़नी का हाथ न रहा। इस पर मुग़लों का अधिकार रहा ; कभी फारस का हुलागू वंश हावी रहा और कभी तुर्किस्तान का चग़ताई वंश। इब्नबतूता (C. सन्१३३२ ई०) लिखता है कि ग़ज़नी नगर अधिकांश खंडहर था। तैमूर कभी ग़ज़नी नहीं गया परन्तु सन् १४०१ ई० में उसने काबुल, कंधार और ग़ज़नी अपने पौत्र पीर मुहम्मद को दिये थे। सन् १५०४ ई० में तैमूर वंशी बाबरने ग़ज़नी पर अधिकार कर लिया। बाबर ने लिखा है कि "यह (ग़ज़नी) एक साधारण और निर्धन स्थान है। मुझे यह विचार कर आश्चर्य होता है कि यहाँ के सुलतानों ने जो हिन्दुस्तान और ख़ुरासान के भी बादशाह थे, ख़ुरासान के बदले इस निकृष्ट स्थान को क्यों अपनी राजधानी बनाया?" सन् १७३८ ई० में नादिरशाह के आक्रमण तक ग़ज़नी बाबर के वंशजों के हाथ रहा; फ़िर नादिरशाह की मृत्यु के पश्चात्

अहमदशाह दुर्रानी ने इसे अफ़ग़ानी राजधानी बनाया। सन् १८३६ ई० में सर जान केन ने इस पर अधिकार कर लिया, परन्तु दिसम्बर १६, सन् १८४१ ई० से मार्च ६, सन् १८४२ तक अफ़ग़ानों ने फिर इसे छीन लिया। इसी वर्ष बसंत में जेनरल नाट ने ग़ज़नी का घेरा डाला और दुर्ग तथा दीवाल की रक्षा के बचाव तोड़ कर महमूद ग़ज़नवी द्वारा ले जाये गये सोमनाथ के फाटक उठवा लिये। "यदि तुम प्रबल आक्रमण द्वारा ग़ज़नी और काबुल का अधिकार पा सकना तो परिस्थिति के अनुसार कार्य करना तथा ब्रिटिश सेना की मानव भावना को अक्षुण्ण रखते हुए उसके अतुलित बल की अमिट छाप छोड़े आना। (सुलतान) महमूद ग़ज़नवी की क़ब्र पर लटकता हुआ उसका (राज) दंड और उसकी क़ब्र (मकबरे) के दरवाज़े जो सोमनाथ मंदिर के द्वार हैं, तुम अपने साथ ले आना। तुम्हारे आक्रमण की सफलता के ये उचित विजय चिह्न होंगे।" [लार्ड एडिनबरा द्वारा जनरल नाट को (२८ मार्च १८४३ ई० की 'गुप्त समिति' की बैठक में भेजे हुए पत्र का एक अंश)]

महमूद ग़ज़नवी की क़ब्र के चंदन के द्वार बड़े समारोह के साथ भारत वर्ष में लाये गये। परन्तु पीछे सिद्ध हुआ कि वे सोमनाथ वाले द्वार न थे अस्तु उन्हें आगरा के लाल क़िले में रख दिया गया जहाँ वे आज भी देखे जा सकते हैं।

"जून सन् १८६८ में शेरअली ने ग़ज़नी पर फिर अधिकार कर लिया। सन् १८७८-८१ के अफ़ग़ान युद्ध के बाद अफ़ग़ानिस्तान की परिस्थिति जो बदली तो निर्वासित अब्दुर्रहमान फिर अमीर हो गया। अंग्रेज़ों ने उससे सुलह कर ली और काबुल, ग़ज़नी, जलालाबाद और कंधार उसे दे दिये। ग़ज़नी तभी से अफ़ग़ानिस्तान के शाहों के पास चला आता है। अफ़ग़ानिस्तान में यद्यपि अनेक घटनायें तब से हो चुकी हैं परन्तु ग़ज़नी का उनमें विशेष हाथ नहीं रहा" (Afghanistan, Macmunn, pp. 168, 206).

आज पुरानी इमारतों में ग़ज़नी में १४० फिट ऊँचे दो मीनार परस्पर ४०० गज़ की दूरी पर हैं। उत्तरी मीनार के कूफ़िक लिपि के लेखों से पता लगता है कि वह महमूद ग़ज़नवी का बनवाया हुआ है और दूसरा उसके पुत्र मसऊद का है। ग़ज़नी दुर्ग, नगर से उत्तर पहाड़ियों के बाद है। इस नगर से एक मील आगे काबुल जाने वाली सड़क पर एक साधारण बाग में प्रसिद्ध विजेता महमूद की क़ब्र है। ग़ज़नी से ऊन, फलों और खालों का व्यापार भारतवर्ष से होता है।

[वि० वि० देखिये—Visit to Ghazni, Kabul and Kandhar. G. T. Vigne, p. 134; Afghanistan, Hamilton Angus, pp. 343-45; Afghanistan, Muhammad Habib; History of Afghanistan, Malleson; History of Afghanistan, Walker; Afghanistan, Godard (Paris); Geography of Ancient India, Cunningham, pp. 45-48; History of Afghanistan, Macmunn and Afghanistan, Jamal-uddin Ahmad and Md. Abdul Aziz, 1936.]

ढिल्ली (>दिल्ली)—

यमुना नदी के किनारे अक्षांश २८° ३८′ उत्तर और देशांतर ७७° १२′ पूर्व में बसा हुआ एक प्रसिद्ध और प्राचीन नगर है जो बहुत दिनों तक हिन्दू राजाओं और मुसलमान बादशाहों की राजधानी था और जो सन् १९१२ में फिर ब्रिटिश भारत की भी राजधानी हो गया। जिस स्थान पर वर्तमान दिल्ली नगर है उसके चारों ओर १०-१२ मील के घेरे में भिन्न-भिन्न स्थानों में यह नगर कई बार बसा और कई बार उजड़ा। कुछ विद्वानों का मत है कि इंद्रप्रस्थ के मयूर वंशी अंतिम राजा 'दिलू' ने इसे पहले पहल बसाया था, इसी से इसका नाम दिल्ली पड़ा। [पृथ्वीराज रासो सम्यौ ३]—दिल्ली किल्ली प्रस्ताव में लिखा है कि पृथ्वीराज के नाना अनंगपाल ने एक बार एक गढ़ बनवाना चाहा था। उसकी नींव रखने के समय उनके पुरोहित ने अच्छे मुहूर्त में लोहे की एक कील पृथ्वी में गाड़ दी और कहा कि यह कील शेषनाग के मस्तक पर जा लगी है जिसके कारण आपके तोंअर (तोमर) वंश का राज्य अचल हो गया। राजा को इस बात पर विश्वास न हुआ और उन्होंने वह कील उखड़वा दी। कील उखाड़ते ही वहाँ से रक्त की धारा निकलने लगी। इस पर राजा को बहुत पश्चाताप हुआ। उन्होंने फिर वही कील उस स्थान पर गड़वाई, पर इस बार वह ठीक नहीं बैठी, कुछ ढीली रह गई। इसी से उस स्थान का नाम 'ढीली' पड़ गया जो बिगड़कर 'दिल्ली' हो गया। दिल्ली में यह कील अब भी देखी जा सकती है।

परन्तु कील या स्तंभ पर जो शिलालेख है उससे रासो की उपर्युक्त कथा का खंडन हो जाता है क्योंकि उसमें अनंगपाल से बहुत पहले के किसी चंद्र नामक राजा (शायद चंद्रगुप्त, विक्रमादित्य) की प्रशंसा है। नाम के विषय में चाहे जो कुछ हो पर इसमें संदेह नहीं कि ईसवी पहली शताब्दी के

बाद से यह नगर कई बार बसा और उजड़ा। सन् ११६३ में मुहम्मद ग़ोरी ने इस नगर पर अधिकार कर लिया, तभी से यह मुसलमान बादशाहों की राजधानी हो गया। सन् १३६८ में इसे तैमूर ने ध्वंस किया और सन् १५२६ में बाबर ने इस पर अधिकार कर लिया। सन् १८०३ में इस पर अँगरेज़ों का अधिकार हो गया। सन् १८५७ के विद्रोह में दिल्ली भी बाग़ियों का एक केन्द्र था। ग़दर के बाद फिर अँग्रेज़ी हुकूमत में आया। पहले अँग्रेजी भारत की राजधानी कलकत्ता में थी; पर सन् १६१२ से उठकर दिल्ली चली गई। आज-कल वर्तमान दिल्ली के पास एक नईदिल्ली बस गई है।

महाराज पृथ्वीराज चौहान तृतीय के दुर्ग और उसके प्राचीर के ध्वंस आज भी दिल्ली के अंतिम हिन्दू सम्राट की गाथा अमर बनाये हुए हैं।

देवग्गिरि [<देवगिरि]।

दक्षिण का यह प्राचीन नगर जो आजकल दौलताबाद कहलाता है [Hindostan. Hamilton, Vol. I, p. 147] निज़ाम राज्य में औरंगाबाद से सात मील उत्तर-पश्चिम अक्षांश १६° ५७′ उत्तर और ७५° १५′ देशांतर पूर्व में बसा हुआ है [The East India Gazetteer. Walter Hamilton, Vol. I, p. 526]।

"देवगिरि में एक दुर्ग भी है। यह इतना दृढ़ बना है और इसमें इतनी सुविधायें हैं कि यदि रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर लिया जाय तो शत्रु को केवल भोजन की कमी होने पर ही आत्म समर्पण करना पड़ेगा। पहाड़ियों की श्रेणी से उत्तर पश्चिम ३००० गज़ की दूरी पर ग्रैनाइट में छिद्र करके बनाया हुआ यह दृढ़ दुर्ग मधुमक्खियों के ठोस छत्ते सदृश दिखाई पड़ता है। इसका नीचे का तिहाई भाग तराशकर चट्टान की सीधी दीवाल सदृश कर दिया गया है। अनुमानतः ५०० फिट ऊँचे इस दुर्ग के चारों ओर एक गहरी नहर है और नहर के बाद एक साधारण दीवाल परन्तु नहर और दुर्ग तक तीन फाटक और तीन मोटी दीवालें पड़ती हैं। नहर के ऊपर से दुर्ग में जाने का मार्ग इतना संकीर्ण बनाया गया है कि एक साथ दो मनुष्यों से अधिक नहीं जा सकते।" [दुर्ग के वि० वि० के लिये देखिये—The east India Gazetteer. Walter Hamilton, Vol. I, pp. 526, 527.]

"बादशाह (मुहम्मद तुग़लक) देवगढ़ (दुर्ग और नगर) की स्थिति और दृढ़ता देखकर तथा इसे दिल्ली की अपेक्षा अपने साम्राज्य का उचित केन्द्र विचारकर इतना प्रसन्न हुआ कि उसने इसे अपनी राजधानी बनाने का संकल्प कर लिया।" [Firishta-Briggs. (1829) Vol. I, p. 419.]

"देवगिरि, यादव राजाओं की बहुत दिनों तक राजधानी रहा। प्रसिद्ध कलचुरि वंश का जब अध:पतन हुआ तब इसके आसपास का सारा प्रदेश द्वार-समुद्र के यादव राजाओं के हाथ आया। कई शिलालेखों में जो इन यादव राजाओं की वंशावली मिली है वह इस प्रकार है—
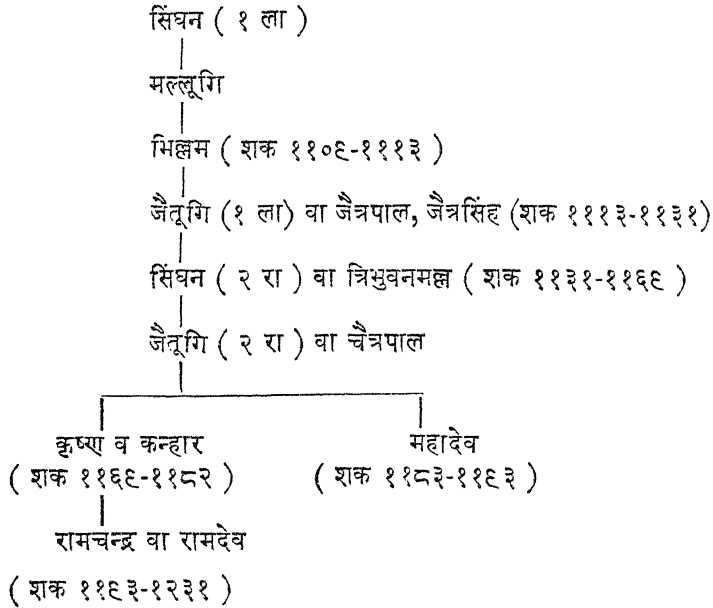
द्वितीय सिंघन के समय में ही देवगिरि यादवों की राजधानी प्रसिद्ध हुआ। महादेव की सभा में बोपदेव और हेमाद्रि ऐसे प्रसिद्ध पंडित थे। कृष्ण के पुत्र रामचन्द्र रामदेव बड़े प्रतापी हुए। उन्होंने अपने राज्य का विस्तार खूब बढ़ाया। शक १२१६ में अलाउद्दीन ने अकस्मात् देवगिरि पर चढ़ाई कर दी। राजा जहाँ तक लड़ते बना वहाँ तक लड़े पर अंत में दुर्ग के भीतर सामग्री घट जाने पर उन्होंने आत्म समर्पण किर दिया। शक १२२८ में रामचन्द्र ने कर देना स्वीकार किया। उस समय दिल्ली के सिंहासन अलाउद्दीन बैठ चुका था उसने एक लाख सवारों के साथ मलिक काफ़ूर को दक्षिण भेजा। राजा हार गये और दिल्ली भेजे गये। अलाउद्दीन ने पर सम्मानपूर्वक उन्हें देवगिरि भेज दिया। इधर मलिक काफ़ूर दक्षिण के और राज्यों में लूट पाट करने लगा। कुछ दिन बीतने पर राजा रामचन्द्र का जामाता हरिपाल मुसलमानों को दक्षिण से भगाकर देवगिरि के सिंहासन पर

बैठा। छै वर्ष तक उसने पूर्ण प्रताप से राज्य किया अन्त में शक १३४० में दिल्ली के बादशाह ने उस पर चढ़ाई की और कपट युक्ति से उसको परास्त करके मार डाला। इस प्रकार यादव राज्य की समाप्ति हुई।" [हिन्दी शब्द सागर, पृ० १६१६-२०]।

मुहम्मद तुग़लक ने दिल्ली वीरान करने और देवगढ़ आबाद करने का फ़रमान निकाला। उसने दिल्ली और देवगिरि के मार्ग पर छाया के लिये वृक्ष लगवाये और कहला दिया कि निर्धन दिल्ली निवासियों को देवगिरि तक जाने के लिये भोजन की व्यवस्था राज्यकोष से की जाय तथा यह सूचना दी कि आज से देवगढ़ का नाम दौलताबाद हो गया।" [Firishta (Briggs), 1829, Vol I, p. 420.]

सन् १५६५ ई० में दौलताबाद (देवगढ़ या देवगिरि) ने अहमदनगर के अहमद-निज़ाम-शाह को आत्म समर्पण कर दिया। निज़ामशाही वंश के पश्चात् हबशी गुलाम मलिक अंबर ने इस पर अधिकार कर लिया। उसके वंशज सन् १६३४ तक यहाँ राज्य करते रहे। सन् १६३४ में शाहजहाँ के शासनकाल में मुग़लों ने दुर्ग और नगर पर कब्ज़ा कर लिया। मुगलों के दक्षिण साम्राज्य के साथ दौलताबाद निजाम-उल-मुल्क के आधीन हुआ और तभी से हैदराबाद के निज़ाम यहाँ का शासन-प्रबन्ध करते चले आ रहे हैं। केवल सन् १७५८ में अंग्रेज़ सेनापति 'बसी' (M. Bussy) ने दौलताबाद पर अधिकार कर लिया था परन्तु जब 'लैली' (M. Lally) ने सेना लेकर कर्नाटक जाने के लिये आज्ञा दी तो 'बसी' ने दौलताबाद का अधिकार छोड़ दिया। [Fitzclarence, Fullerton, Firishta, Scott और Orme के आधार पर]।

लाहौर—

प्राचीन राजधानी के खण्डहरों पर पंजाब का आधुनिक प्रसिद्ध नगर लाहौर, रावी नदी के बायें किनारे, पाँच छै मील की दूरी तक पूर्व से पश्चिम ३१° ३७' अक्षांश उत्तर और ७६° २६' देशांतर पूर्व में बसा हुआ है। इसकी जन संख्या सन् १९३१ की गणना के अनुसार ४२९७४७ थी और सन्१९४१ की गणना के आधार पर ६७१६५६ है।

फारसी इतिहासकारों ने लाहौर को लोहर, लोहेर, लोहवर, लेहवर, लुह्वर, लोहावर, लहानूर, रहावर आदि भी लिखा है। राजपूताने की ख्यातों में इसका नाम लोह-कोट और (पुराणों के) देश विभाग में लवपुर

पाया जाता है। "लहानूर, 'लोहनगर' का विकृत रूप है क्योंकि 'नगर' का दक्षिणी रूप 'नूर' है जैसे कलानूर, कनानूर आदि" (Thornton)। अलबरूनी ने इसका विशुद्ध नाम लोहअवर लिखा है। लोहअवर का अर्थ है लोह (या लव) का किला (Cunningham)।

वाल्मीकीय रामायण के अनुसार राम के पुत्र 'लव' ने 'लाहौर' बसाया और 'कुश' ने 'कसूर'। राजतरंगिणी में 'लाहौर' महाराज ललितादित्य के साम्राज्य का नगर बतलाया गया है। 'देशविभाग' में लिखा है कि द्वापर के अन्त में लाहौर के राजा बनमल के साथ भीमसेन का युद्ध हुआ था। उत्तर सीमांत के गीतिकाव्यों में लाहौर का जंगल उदीनगर, स्यालकोट के योद्धा सालवाहन के पुत्र रस्सलू और एक राक्षस का युद्ध क्षेत्र कहा जाता है। मेवाड़ राज्य की ख्यातों में लिखा है कि आदि पूर्वज सूर्यवंशी कनकसेन लाहौर छोड़कर दूसरी शताब्दी में मेवाड़ में बसे थे। अन्हलवाड़ा पट्टन के सोलंकी और जैसलमेर के भट्टी राजपूतों का आदि स्थान लाहौर ही पाया जाता है। लाहौर में आज भी एक भाटी दरवाज़ा है। इन सब बातों से तथा अनेक अन्य प्रमाणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि लाहौर बसाने वाले राजपूत थे और यह पश्चिमी भारत के आदि राजपूत राज्य की राजधानी था। "पहली और दूसरी शताब्दी के मध्यकाल में कभी लाहौर नगर की नींव पड़ी होगी" (Geography of Ptolemy)।

सातवीं सदी के द्वितीयार्द्ध में लाहौर, अजमेर वंश के चौहान राजा के आधीन था। सन् १०२२ ई० में महमूद ग़ज़नवी ने दूसरी बार लाहौर पर आक्रमण करके नगर लुटवाकर अपने राज्य में मिला लिया और इसका नाम महमूदनगर रखा। बारहवें ग़ज़नवी सुलतान ख़ुसरो ने ग़ज़नी छोड़कर लाहौर को अपनी राजधानी बनाया ; परन्तु सन् ११८६ ई० में ग़ोर वंश ने ग़ज़नवी वंश की समाप्ति करके उक्त वंश का राज्य अधिकृत कर लिया। अलाउद्दीन के पुत्र सेफ़उद्दीन के उत्तराधिकारी सुलतान ग़यासुद्दीन के भाई शहाबुद्दीन ग़ोर ने नराईं (तराईं) के मैदान में अजमेर के राजा पिथौरा से युद्ध किया परन्तु हार गया (Minhaj-us-seraj)। उसकी सेना ४० मील तक खदेड़ी गई और ग़ोरी अचेत अवस्था में लाहौर लाया गया (Sullivan)। आर्य वीरता के प्रतिनिधि इस पराक्रमी हिन्दू सम्राट [पृथ्वीराज चौहान तृतीय] ने लाहौर दुर्ग के फाटकों पर सात बार टक्करें मारीं (Sullivan) परन्तु अन्त में सन् ११६२-६३ ई० में ग़ोरी द्वारा मरवाया गया [Tabaqat-i-Nasiri; Firishta; Lahore, Latif. p. 13]। पृथ्वीराज रासो

सम्यौ ६७ में सुलतान ग़ोरी की मृत्यु ग़ज़नी दरबार में नेत्रविहीन और बंदी पृथ्वीराज के शब्दवेधी बाण द्वारा होने का विस्तार पूर्वक उल्लेख है। आधुनिक इतिहासकारों का मत है कि पृथ्वीराज की मृत्यु युद्ध भूमि में हुई थी (Mediaeval India. C. V. Vaidya; Dynastic History of India. Hemchandra,)। रासो के रेवातट सम्यौ में चंद पुंडीर को पृथ्वीराज द्वारा नियुक्त लाहौर का शासक कहा गया है। लाहौर नगर और दुर्ग पर फारसी इतिहासकार मुस्लिम अधिकार बताते हैं। अन्य विश्वस्त सूत्रों के अभाव में हम दो सम्भावनायें मात्र कर सकते हैं कि या तो लाहौर नगर और दुर्ग पर कुछ समय के लिये पृथ्वीराज का अधिकार हो गया था या इस सम्यौ में वर्णित लाहौर से नगर का अर्थ न लेकर 'लाहौर प्रदेश' अर्थ करना उचित होगा; आधुनिक काल में जिस प्रकार लाहौर नगर और उस प्रदेश का थोड़ा भाग पाकिस्तान में है तथा उक्त प्रदेश का अधिक भाग हिन्दुस्तान में, कुछ ऐसी ही परिस्थिति उस समय भी रही होगी। सन् १२४१ ई० में चंगेज़ ख़ाँ ने इस नगर को लूटा। ख़िलजी और तुग़लक बादशाहतों के समय लाहौर की विशेष ख्याति नहीं हुई। सन् १३६८ ई० में तैमूर [The Firebrand of the Universe] ने इस नगर पर अधिकार कर लिया परन्तु लूटा पाटा नहीं और जाते समय सैयद ख़िज्र ख़ाँ को यहाँ का शासक नियुक्त कर गया। सन् १५२६ ई० में पानीपत के युद्ध में बाबर ने अफ़ग़ानों को पराजित कर भारतवर्ष में मुग़ल साम्राज्य की नींव डाली। प्रथम छै मुग़ल बादशाहों का शासन काल लाहौर के लिये स्वर्ण युग था और इस नगर की सब प्रकार से बड़ी उन्नति हुई।

> "from the destined walls
> Of Cambal, seat of Cathian can,
> And Samarchand by Oxus, Temir's throne
> To Paquin of Sinaen Kings, and thence
> To Agra and Lahore of Great Mogal"
>
> Milton. Paradise Lost, Book XI-I.

औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद लाहौर के फिर दुर्दिन आये। सन् १७३८ में नादिरशाह का धावा हुआ परन्तु तत्कालीन दिल्ली सम्राट नियुक्त लाहौर के शासक ज़करिया ख़ाँ के मेल कर लेने से नगर की रक्षा हो गई। सन् १७४८ में अहमदशाह ने लाहौर ले लिया। सन् १७६६ ई० में रणजीत सिंह

ने लौटते हुए दुर्रानी शहंशाह से लाहौर का अधिकार माँग कर प्राप्त किया। रणजीत सिंह ने सिक्ख राज्य की नींव डाली और मरते-मरते अपना साम्राज्य तिब्बत से सुलेमान तक और सिंधु के उस पार मुलतान तक कर लिया। उनके उत्तराधिकारी उतने योग्य न निकले। सन् १८४८ ई० में अंग्रेज़ों ने दलीप सिंह को गद्दी से उतार कर सिक्ख साम्राज्य ब्रिटिश भारत में मिला लिया। "Sorrow was silenced and the Sikh Empire became a story of the past." (Old Lahore Goulding)

लाहौर दुर्ग दक्षिण पूर्व में छोटा रावी नदी पर बना है। आधुनिक नगर के चारों ओर के बाग बगीचे, पुरानी मसजिदें, मीनार, मठ, कब्रें आदि देखकर स्पष्ट पता लग जाता है कि प्राचीन लाहौर का विस्तार अब से कहीं अधिक था। सिक्ख उत्थान काल में सैनिकों को कवायद कराने के लिये न जाने कितनी पुरानी इमारतें गिरा कर मैदान बनाये गये और बाद में अंग्रेज़ों ने भी नगर की उन्नति की। लाहौर नगर में चारों ओर ये तेरह दरवाज़े हैं— रौशनी, कश्मीरी, मस्ती, ख़िज्री, यक्की, देहली, अकबरी, मोची, शाह अलमी, लाहौरी, मोरी, भाटी और तख़्ली।

अगस्त सन् १९४७ ई० में डोमीनियन स्टेटस प्राप्ति के उपरांत भारतवर्ष दो भागों में विभाजित हो गया और लाहौर इस समय पश्चिमी पंजाब की राजधानी तथा पाकिस्तान का प्रमुख नगर है। विभाजन काल में धार्मिक असहिष्णुता की ओट में, मानवता को कलंकित करने वाले हिंदू रक्तपात से इस नगर की भूमि रंजित हो चुकी है। शायद लाहौर की इतनी दुर्गति चंगेज़ ख़ाँ तथा अन्य लुटेरे शासकों ने नहीं की, जितनी कि लीग के अनुयाइयों ने भारत विभाजन समय में की।

[वि० वि० देखिये—Lahore, Latif Syed Muhammad; Old Lahore, Goulding; Lahore Directory; Ancient Geography of India, Cunningham; Delhi to Cabul, Barr; Vigin's travels; Journal of the Punjab Historical Society, Vol. I, (Historical Notes on Lahore Fort. J. Ph. Vogel, p. 38.)]

३—पौराणिक-प्रसंग

तारक [<तारकासुर]—

एक असुर था। यह असुर तार का पुत्र था। जब इसने एक हज़ार वर्ष तक घोर तप किया और कुछ फल न हुआ, तब इसके मस्तक से एक बहुत प्रचंड तेज निकला जिससे देवता लोग व्याकुल होने लगे, यहाँ तक कि इन्द्र सिंहासन से खिंचने लगे। देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्मा तारक के समीप वर देने के लिये उपस्थित हुए। तारकासुर ने ब्रह्मा से दो वर माँगे। पहला तो यह कि "मेरे समान संसार में कोई बलवान न हो" दूसरा यह कि "यदि मैं मारा जाऊँ तो उसी के हाथ से जो शिव से उत्पन्न हो।" ये वर पाकर तारकासुर घोर अन्याय करने लगा। इस पर देवता मिलकर ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने कहा—"शिव के पुत्र के अतिरिक्त तारक को और कोई नहीं मार सकता। इस समय हिमालय पर पार्वती शिव के लिये तप कर रही हैं। जाकर ऐसा उपाय रचो कि शिव के साथ उनका संयोग हो जाय।" देवताओं की प्रेरणा से कामदेव ने जाकर शिव के चित्त को चंचल किया। अन्त में शिव के साथ पार्वती का विवाह हो गया। जब बहुत दिनों तक शिव के पार्वती से कोई पुत्र नहीं हुआ तब देवताओं ने घबरा कर अग्नि को शिव के पास भेजा। कपोत के वेश में अग्नि को देखकर शिव ने कहा—"तुम्हीं हमारे वीर्य को धारण करो," और वीर्य को अग्नि के ऊपर डाल दिया। उसी वीर्य से कार्तिकेय उत्पन्न हुए जिन्हें देवताओंने अपना सेनापति बनाया। घोर युद्ध के उपरांत कार्तिकेय के बाण से तारकासुर मारा गया। [वि० वि० मत्स्य पुराण, शिव पुराण और कुमार, संभव (कालिदास) में देखिये]।

नारद—

वेदों में ऋग्वेद मंडल ८ और ६ के कुछ मंत्रों के कर्ता एक नारद का नाम मिलता है जो कहीं कन्व और कहीं कश्यप वंशी लिखे गये हैं।

इतिहास और पुराणों में नारद देवर्षि कहे गये हैं जो नाना लोकों में विचरते रहते हैं और इस लोक का संवाद उस लोक में दिया करते हैं। हरिवंश में लिखा है कि नारद ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। ब्रह्मा ने प्रजा सृष्टि की अभिलाषा करके पहले मरीचि, अत्रि आदि को उत्पन्न किया, फिर सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार, स्कंद, नारद तथा रुद्रदेव उत्पन्न हुए (हरिवंश, अ० १)। बिष्णु पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा ने अपने सब पुत्रों को प्रजा सृष्टि करने में लगाया पर नारद ने कुछ बाधा डाली इस पर ब्रह्मा ने उन्हें शाप दिया कि "तुम सदा सब लोकों में घूमा करोगे; एक स्थान पर स्थिर होकर न रहोगे।" महाभारत में इनका ब्रह्मा से संगीत की शिक्षा प्राप्त करना लिखा है। भागवत, ब्रह्मवैवर्त आदि पीछे के पुराणों में नारद के सम्बन्ध में बड़ी लम्बी चौड़ी कथायें मिलती हैं। जैसे, ब्रह्मवैवर्त में इन्हें ब्रह्मा के कंठ से उत्पन्न बताया गया है और लिखा है कि जब इन्होंने प्रजा की सृष्टि करना अस्वीकार किया तब ब्रह्मा ने इन्हें शाप दिया और ये गंधमादन पर्वत पर उपवर्हण नामक गंधर्व हुए। एक दिन इन्द्र की सभा में रंभा का नाच देखते देखते ये काम मोहित हो गये इस पर ब्रह्मा ने फिर शाप दिया कि "तुम मनुष्य हो।" द्रुमिल नामक गोप की स्त्री कलावती पति की आज्ञा से ब्रह्म-वीर्य की प्राप्ति के लिये निकली और उसने काश्यप नारद से प्रार्थना की। अन्त में काश्यप नारद के वीर्य भक्षण से उसे गर्भ रहा। उसी गर्भ से गंधर्व-देह त्याग कर नारद उत्पन्न हुए। पुराणों में नारद बड़े भारी हरि भक्त प्रसिद्ध हैं। ये सदा भगवान का यश वीणा बजा कर गाया करते हैं। इनका स्वभाव कलह प्रिय भी कहा गया है इसीसे इधर की उधर लगाने वाले को लोग 'नारद' कह दिया करते हैं।

पृथ्वीराज रासो में नारद, अप्सराओं के साथ युद्ध भूमि के दर्शक रूप में दिखाये गये हैं। विद्यापति ने मैना द्वारा अपनी पुत्री पार्वती के लिए बूढ़े शिव को जामाता बना कर लाने वाले नारद को "तेसरे बइरि भेला नारद बाभन, जै बूढ़ आनल जमाई, गे माई"—केवल बैरी मात्र ही नहीं कहा वरन् उनकी दुर्गति करने के लिये भी प्रस्तुत हो गईं—

धोती लोटा पतरा पोथी
एहो सब लेबन्हि छिनाई।
जौं किछु बजता नारद बाभन
दाढ़ी धए घिसिआएब, गे माई।

इसी शिव पार्वती विवाह प्रसंग में तुलसी ने मैना द्वारा अपना भवन उजाड़ने वाले नारद की खासी ख़बर ली है—

नारद कर मैं काह बिगारा।
भवन मोर जिन्ह बसत उजारा॥
अस उपदेश उमहिं जिन्ह दीन्हा।
बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा॥
साँचेहु उन्ह कें मोह न माया।
उदासीन धन धाम न जाया॥
पर घर घालक लाज न भीरा।
बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा॥

परन्तु तुलसी ने विद्यापति की अपेक्षा मैना का विषाद नारद द्वारा ही मिटवाया है; वे अपनी साक्षी हेतु सप्त ऋषियों को अवश्य ले गये थे—

मयना सत्य सुनहु मम वानी। जगदंबा तव सुता भवानी॥

कबीर ने नारद को ज्ञानी स्वीकार करते हुए तथा उन्हें शिव और ब्रह्मा के समकक्ष रखते हुए भी मन की गति समझने में असमर्थ बताया है—

सिव बिरंचि नारद मुनि ग्यानीं, मन की गति उनहूँ नहीं जानीं॥

जायसी ने 'पदमावत' में नारद को झगड़ा कराने वाला कहा है और 'अखरावट' में कबीर की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए नारद के स्वमुख से अपनी पराजय अंगीकार कराई है—

ना—नारद तब रोइ पुकारा। एक जोलाहै सौं मैं हारा॥

संस्कृत में नारद के वि० वि० के लिये 'नारद पुराण' देखना उचित होगा।

महमाय [<महामाया] दुर्गा--आदिशक्ति (देवी)—

शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेय संहिता में रुद्र की भगिनी अंबिका का उल्लेख इस प्रकार है—"हे रुद्र! अपनी भगिनी अंबिका के सहित हमारा दिया हुआ भाग ग्रहण करो।" इससे जाना जाता है कि शत्रुओं के विनाश आदि के लिए जिस प्रकार प्राचीन आर्यगण रुद्र नामक क्रूर देवता का स्मरण करते थे, उसी प्रकार उनकी भगिनी अंबिका का भी करते थे। वैदिक-काल में अंबिका देवी रुद्र की भगिनी ही मानी जाती थीं। तलवकार (केन) उपनिषद् में यह आख्यायिका है—एक बार देवताओं ने समझा कि विजय

हमारी ही शक्ति से हुई है। इस भ्रम को मिटाने के लिए ब्रह्म यक्ष के रूप में दिखाई पड़ा, पर देवता उसे न पहचान सके। हाल-चाल लेने के लिए पहले अग्नि उसके पास गये। यक्ष ने पूछा—"तुम कौन हो?" अग्नि ने कहा—मैं अग्नि हूँ और सब कुछ भस्म कर सकता हूँ।" इस पर उस यक्ष ने एक तिनका रख दिया और कहा—"इसे भस्म करो।" अग्नि ने बहुत ज़ोर मारा, पर तिनका ज्यों का त्यों रहा। इसी प्रकार वायु देवता भी गये। वे भी उस तिनके को न उड़ा सके। तब सब देवताओं ने इन्द्र से कहा कि इस यक्ष का पता लेना चाहिये कि यह कौन है। जब इन्द्र गये, तब यक्ष अंतर्द्धान हो गया। थोड़ी देर बाद एक स्त्री प्रकट हुई जो 'उमा हैमवती' देवी थी। इन्द्र के पूछने पर 'उमा हैमवती' ने बतलाया कि यक्ष ब्रह्म था, उसकी विजय से तुम्हें महत्व मिला है। तब इन्द्र आदि देवताओं ने ब्रह्म को जाना। अध्यात्म पक्ष वाले 'उमा हैमवती' से ब्रह्मविद्या का ग्रहण करते हैं। तैत्तिरीय आरण्यक के एक मंत्र में "दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये" वाक्य आया है, और एक स्थान पर गायत्री छन्द का एक मंत्र है जिसे सायण ने दुर्गा गायत्री कहा है। देवी-भागवत में देवी की उत्पत्ति के सम्बन्ध की कथा इस प्रकार है—महिषासुर से परास्त होकर सब देवता ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा, शिव तथा देवताओं के साथ विष्णु के पास गये। विष्णु ने कहा कि महिषासुर के मारने का उपाय यही है कि सब देवता अपनी स्त्रियों से मिलकर अपना थोड़ा-थोड़ा तेज निकालें। सबके तेज-समूह से एक स्त्री उत्पन्न होगी जो उस असुर का बध करेगी। महिषासुर को वर था कि वह किसी पुरुष के हाथ से न मरेगा। विष्णु की आज्ञानुसार ब्रह्मा ने अपने मुँह से रक्त वर्ण का, शिव ने रौप्य वर्ण का, विष्णु ने नील वर्ण का, इन्द्र ने विचित्र वर्ण का, इसी प्रकार सब देवताओं ने अपना-अपना तेज निकाला और एक तेजः-स्वरूपा देवी प्रकट हुई जिसने इस असुर का संहार किया। 'कालिका पुराण' में लिखा है कि परब्रह्म के अंशस्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव हुए। ब्रह्मा और विष्णु ने तो सृष्टि स्थिति के लिए अपनी-अपनी शक्ति को ग्रहण किया, पर शिव ने शक्ति से संयोग न किया और वे योग में मग्न हो गये। ब्रह्मा आदि देवता इस बात के पीछे पड़े कि शिव भी किसी स्त्री का पाणिग्रहण करें। पर शिव के योग्य कोई स्त्री मिलती ही नहीं थी। बहुत सोच विचार के बाद ब्रह्मा ने दक्ष से कहा—"विष्णु की माया के अतिरिक्त और कोई स्त्री नहीं जो शिव को लुभा सके। अतः मैं उसकी स्तुति करता हूँ। तुम भी उसकी स्तुति करो कि वह तुम्हारी

कन्या के रूप म तुम्हारे यहाँ जन्म ले और शिव की पत्नी हो।" वही विष्णु की माया दक्ष प्रजापति की कन्या सती हुई जिसने अपने रूप और तप के द्वारा शिव को मोहित और प्रसन्न किया। दक्ष यज्ञ विनाश के समय जब सती ने देह त्याग किया, तब शिव ने विलाप करते-करते उनके शव को अपने कंधे पर लाद लिया। फिर ब्रह्मा और विष्णु ने सती के मृत शरीर में प्रवेश किया और वे उसे खंड-खंड करके गिराने लगे। जहाँ-जहाँ सती का अंग गिरा, वहाँ-वहाँ देवी का स्थान या पीठ हुआ। जब देवताओं ने महामाया की बहुत स्तुति की, तब वे शिव के शरीर से निकलीं जिससे शिव का मोह दूर हुआ और वे फिर योग समाधि में मग्न हुए। इधर हिमालय की भार्या मेनका संतति की कामना से बहुत दिनों से महामाया का पूजन करतीं थीं। महामाया ने प्रसन्न होकर मेनका की कन्या होकर जन्म लिया और शिव से विवाह किया। 'मार्कंडेय पुराण' में चंडी देवी द्वारा शुंभ निशुंभ के बध की कथा लिखी है जिसका पाठ चंडी-पाठ या दुर्गा-पाठ के नाम से प्रसिद्ध है और भारत में सर्वत्र प्रचलित है। 'काशी खण्ड' में लिखा है कि रुरु के पुत्र दुर्ग नामक महादैत्य ने जब देवताओं को बहुत तंग किया तब वे शिव के पास गये। शिव ने असुर को मारने के लिये देवी को भेजा।

इनके अनेक नाम हैं जिनमें से ८६ हिं० श० सा०, पृ० १५६२ पर दिए हुए हैं।

पृथ्वीराज रासो में महामाया युद्ध-भूमि में विचरण करने वाली और वीर गति पाने वाले योद्धाओं का वरण करने वाली पाई जाती हैं।

रुद्र—

यह रुद्रों और मरुतों के जनक तथा शासक और तूफ़ान के देवता का नाम है। वेद में ये इंद्र और उनसे भी अधिक सर्वभक्षक-अग्नि तथा काल से संबंधित पाये जाते हैं। वैदिक साहित्य में अग्नि को ही रुद्र कह डाला गया है और यह माना गया है कि यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिये ही रुद्र यज्ञ में प्रवेश करते हैं। वहाँ रुद्र को अग्निस्वरूपी, वृष्टि करने वाला और गरजने वाला देवता कहा गया है जिससे वज्र का भी अभिप्राय निकलता है; इसके अतिरिक्त रुद्र शब्द से इंद्र, मित्र, वरुण, पूषण और सोम आदि अनेक देवताओं का भी बोध होता है। परवर्ती साहित्य में उन्हें काल से अभिन्न माना गया है। एक स्थान पर उन्हें मरुदगण का पिता और दूसरे स्थान पर अंबिका का भाई भी कहा गया है। इनके तीन नेत्र बतलाये गये हैं

और ये सब लोकों का नियंत्रण करने वाले तथा सर्पों का विध्वंस करने वाले कहे गये हैं। मानवों और पशुओं को मृत्यु और रोग के दाता इन संहार देवता की उपाधि शिव अर्थात् शुभ या वरदानी भी है तथा वायु मंडल को विशुद्ध करने और नमी को दूर करने के कारण इन्हें रोग नाशक भी कहा गया है। वेद में 'शिव' व्यक्ति वाचक नहीं है परन्तु परवर्ती साहित्य में प्रथम तो रुद्र के प्रशंसात्मक विशेषण के रूप में और बाद में स्वयं रुद्र के लिये ही इस शब्द का व्यवहार होने लगा परन्तु तब तक तूफ़ान से उनका संबंध विच्छिन्न हो चुका था और वे संयुक्त तथा वियुक्त कर्त्ता सिद्ध कर लिये गये थे। इस समय तक मूल रुद्रों अथवा मरुतों का स्थान एकादश (कहीं कहीं तैंतीस) संख्या वाले नवीन अस्तित्वों ने ग्रहण कर लिया था जो रुद्र नाम से ही प्रख्यात भी हो चुके थे।

विष्णु पुराण में ब्रह्मा के ललाट से रुद्र की उत्पत्ति उल्लिखित है जो बाद में अर्द्धनारीश्वर रूप में परिवर्तित हो गये थे और इसी रूप का नर भाग कालांतर में एकादश रुद्रों में बँट गया इसीलिये ये परवर्ती रुद्र, शिव के लघुतर रूप कहे जाते हैं। कहीं कहीं इन रुद्रों का जन्म कश्यप और सुरभि, ब्रह्मा और सुरभि या भूत और सुरूप से बताया गया है और कहीं इन्हें गण देवता मानते हुये इनकी उत्पत्ति सृष्टि के प्रारंभ में ब्रह्मा की भौंहों से बताई गई है। विष्णु पुराण के अनुसार शिव के आठ रूपों में से रुद्र एक है। कहीं कहीं उन्हें ईशान का दिक्पाल भी कहा गया है। ये क्रोध रूप माने जाते हैं इसी से रस-शास्त्रियों द्वारा ये रौद्र रस के देवता भी मनोनीत किये गये हैं। भूत, प्रेत, पिशाच आदि के जन्मदाता ये ही प्रसिद्ध हैं। विभिन्न पुराणों में रुद्रों के नामों में अंतर भले ही मिलता हो परन्तु यह स्मरण रहना चाहिये कि वे सब शिव के नाम ही हैं। इनके अधिक प्रचलित नाम—अज, एक पाद, अहिब्रघ्न, पिनाकी, अपराजित, त्र्यंबक, महेश्वर, वृषाकपि, शंभु, हरण और ईश्वर हैं। गरुड़ पुराण में इनके नाम इस प्रकार हैं—अजैकपाद, अहिब्रघ्न, त्वष्टा, विश्वरूपहर, बहुरूप, त्र्यंबक, अपराजित, वृषाकपि, शंभु, कपर्दी और रैवत। कूर्म पुराण में लिखा है कि जब आरंभ में बहुत कुछ तपस्या करने पर भी ब्रह्मा सृष्टि न उत्पन्न कर सके तब उन्हें बहुत क्रोध हुआ जिसके आवेश में उनकी आँखों से आँसू निकलने लगे। उन्हीं आँसुओं से भूतों और प्रेतों की सृष्टि हुई; और तब उनके मुख से ग्यारह रुद्र उत्पन्न हुए। ये उत्पन्न होते ही बड़े ज़ोर से रोने लगे थे इसी से इनका नाम रुद्र पड़ा। इसी प्रकार विभिन्न पुराणों में भाँति भाँति की कथायें मिलती हैं।

लंगूर—[हनुमान्]—

वाल्मीकि रामायण में शाप वश पुंजिकस्थला नामक अप्सरा ने अंजना नाम से कुंजर के घर जन्म लिया और केसरी से उसका विवाह हुआ। बाद में वायु द्वारा अंजना के गर्भ से हनुमान् पैदा हुए। जैन राम कथाओं में उपर्युक्त कथा विकृत रूप में मिलती है। उत्तरपुराण (गुणभद्र) में हनुमान् राजा प्रभंजन तथा अंजना देवी के पुत्र हैं तथा उनका एक नाम अमितवेग भी है।

शैव तथा शाक्त पुराणों में हनुमान् शिव के अवतार कहे गये हैं। स्कंदपुराण में वे रुद्र के अंश बताये गये हैं और यही वार्ता महानाटक में भी मिलती है। महाभागवत पुराण में विष्णु के अवतार लेते समय शिव उनसे कहते हैं कि मैं वायु द्वारा उत्पन्न होकर वानर रूप में तुम्हारी सहायता करूँगा। शिव पुराण में विष्णु के मोहिनी रूप पर शिव का वीर्य स्खलित होने पर सप्तर्षियों द्वारा उसे अंजना के कान में रखने तथा इस प्रकार हनुमान् के जन्म होने की कथा दी है।

अनेक राम कथाओं में हनुमान् के विष्णु प्रेमी होने की ध्वनि है। आनंदरामायण में दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ के अवसर पर एक गीध द्वारा कैकेयी का पायस छीन कर अंजनी-पर्वत पर फेंके जाने का उल्लेख है। अंजनी इसी पायस को खाकर गर्भवती होती है।

हिंदेशिया की राम कथाओं में हनुमान् राम और सीता के पुत्र प्रसिद्ध हैं।

ये पंपा के एक वीर वानर हैं जिन्होंने सीता-हरण के उपरांत रामचंद्र की बड़ी सेवा और सहायता की थी। ये सीता की खोज करने के लिये लंका गये, रावण का उपवन उजाड़ा जिसके फलस्वरूप नागपाश में बाँधे गये और इनकी पूँछ में तेल से भीगे पलीते बाँधकर आग लगा दी गई। इन्होंने अपना रूप बड़ा करके सम्पूर्ण हेम लंका को प्रज्वलित कर दिया और फिर समुद्र में कूदकर अपने को ठंढा किया। रावण की सेना के साथ ये बड़ी वीरता से लड़े थे। अपने अपार बल और वेग के लिये ये प्रसिद्ध ही हैं। और बंदरों के समान इनकी उत्पत्ति भी विष्णु के अवतार राम की सहायता के लिये देवांश से हुई थी। ये रामभक्तों में सबसे आदि कहे जाते हैं और राम ही के समान इनकी पूजा भी भारत में सर्वत्र होती है। बल प्रदाता हनुमान् का स्मरण विशेष रूप से हिंदू योद्धा तथा पहलवान करते हैं और प्राय: इनके उपासक भी होते हैं।

रासो में पृथ्वीराज के सामंत 'लंगा लंगरी राय चौहान' को हनुमान् का इष्ट था।

संकर [<सं० शंकर=अभिवृद्धि कर्त्ता, शुभ]—

शिव का एक नाम जो कल्याण करने वाले माने जाते हैं। शिव हिन्दुओं के एक प्रसिद्ध देवता हैं जो सृष्टि का संहार करने और पौराणिक त्रिमूर्ति के अंतिम देवता कहे गये हैं। वैदिक काल में ये ही रुद्र के रूप में पूजे जाते थे, पर पौराणिक काल में शंकर, महादेव और शिव आदि नामों से प्रसिद्ध हुए। पुराणानुसार इनका रूप इस प्रकार है—सिर पर गंगा, माथे पर चंद्रमा तथा एक और तीसरा नेत्र, गले में साँप तथा नर मुंड की माला, सारे शरीर में भस्म, व्याघ्र चर्म ओढ़े हुए और बायें अंग में अपनी स्त्री पार्वती को लिए हुए। इनके पुत्र गणेश तथा कार्तिकेय, गण भूत और प्रेत, प्रधान अस्त्र त्रिशूल और वाहन बैल है जो नंदी कहलाता है। इनके धनुष का नाम पिनाक है जिसे धारण करने के कारण ये पिनाकी कहे जाते हैं। इनके पास पाशुपत नामक एक प्रसिद्ध अस्त्र था जो इन्होंने अर्जुन को उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर दे दिया था। पुराणों में इनके संबंध में बहुत सी कथायें हैं। ये कामदेव का दहन करने वाले और दक्ष का यज्ञ नष्ट करने वाले माने जाते हैं। समुद्र मंथन के समय जो विष निकला था उसके पान करने वाले ये ही थे। वह विष इन्होंने अपने गले में ही रक्खा और नीचे पेट में नहीं उतारा, इसीलिए इनका गला नीला हो गया और ये नीलकण्ठ कहलाने लगे। परशुराम ने अस्त्र-विद्या की शिक्षा इन्हीं से पाई थी। संगीत और नृत्य के भी ये प्रधान आचार्य और परम तपस्वी तथा योगी माने जाते हैं। इनके नाम से एक पुराण भी है जो शिव पुराण कहलाता है। इनके उपासक शैव कहलाते हैं। इनका निवास स्थान कैलाश माना जाता है और लोक में इनके लिंग का पूजन होता है। [वि० वि० शिवपुराण में देखिए]

पृथ्वीराज रासो में अन्य स्तुतियों के साथ चंद ने भगवान शंकर की भी कई छंदों में स्तुति की है—

> नमस्कार संकर करिय, सरस बुद्धि कवि चंद।
> सति लंपट लंपट न वी, अबुधि मंत्र सिसु इंद॥

अर्थात्—जिनकी कृपा से बुद्धि सरसित होती है उन शंकर को मैं नमस्कार करता हूँ। जिनमें (दक्ष पुत्री) सती आसक्त हैं परन्तु जो

स्वयं आसक्ति रहित और निर्विकार हैं। अज्ञान का नाश करने में जो मंत्र स्वरूप हैं, बाल चन्द्र जिनके ललाट पर (सुशोभित) है, (ऐसे चन्द्रशेखर को मेरा प्रणाम है)।

शैव और बैष्णवों का द्वंद मिटाने का भी कवि ने प्रयत्न किया है—

करिय भक्ति कवि चद हरि हर जंपिय इह भाइ।
ईश स्याम जू जू बकह नरक परंतह जाइ॥

अर्थात—हे कवि चंद, हरि हर (= विष्णु और शिव) की भक्ति करो, इस भाव से स्तुति जप करो। ज्यों ज्यों ईश श्याम (= हर और हरि) का नाम कहोगे (त्यों त्यों) नरक दूर होता जायगा।

परात्परतरं यान्ति नारायणपरयाणं।
न ते तत्र गमिष्यन्ति ये दुष्यन्ति महेश्वरम्॥

अर्थात—विष्णु भगवान की आराधना करने वाले उच्च से उच्च स्थान (अर्थात् बैकुंठ, गोलोक या मोक्ष स्थान) को प्राप्त होते हैं, परन्तु महेश्वर से द्वेष रखने वाले विष्णु भक्त भी उस स्थान पर नहीं पहुँचेंगे।

हरि और हर की समान भाव से स्तुति करने वाले और इन दोनों में अंतर न समझने वाले विद्यापति ने उन्हें 'एक सरीर लेल दुइ बास' (अर्थात् एक शरीर से बैकुंठ और कैलाश इन दो स्थानों में रहने वाला) कहकर विपरीत स्वभाव वाले नारायण और शूलपाणि को कभी पीताम्बर और कभी बाघाम्बर धारण करने वाला, कभी चतुर्भुज और कभी पंचानन, कभी गोकुल में गाय चराने वाला और कभी डमरू बजाकर भीख माँगने वाला, कभी वामन रूप धारण करके राजा बलि से दान की याचना करने वाला और कभी काँखों और कानों में भभूत मलने वाला आदि कहकर शैव और वैष्णव विरोध मिटाने का उद्योग किया है।

'रामचरित-मानस' में तुलसी ने अपने काव्य कौशल का एक प्रमुख अंश इन विभिन्न दर्शनों के समन्वय में लगाया है तथा

'शिव द्रोही मम दास कहावै। सो नर मोहिं सपनेहु नहिं भावै'—

इत्यादि न जाने कितने तर्क पूर्ण प्रतिपादन किए हैं।

विद्यापति और तुलसी से शतियों पूर्व चंद कवि के शैव और वैष्णव विरोध मिटाने के कुशल प्रयत्न ऐतिहासिक मात्र ही नहीं परम श्लाघनीय भी हैं।

रासो में शंकर युद्ध-भूमि के दर्शक तथा कभी हिंदू योद्धाओं को प्रोत्साहित करने वाले और कभी मृत वीरों के सिर बड़े चाव से अपनी मुंडमाला में डालने वाले चित्रित किये गए हैं।

सुमेरु—

भागवत के अनुसार सुमेरु पर्वतों का राजा है। यह सोने का है। इस भूमंडल के सात द्वीपों में प्रथम द्वीप जंबू द्वीप के—(जिसकी लम्बाई ४० लाख कोस और चौड़ाई ४ लाख कोस है)—नौ वर्षों में से इलावृत्त नामक अभ्यंतर वर्ष में यह स्थित है। यह ऊँचाई में उक्त द्वीप के विस्तार के समान है। इस पर्वत का शिरोभाग १२८ हज़ार कोस, मूल देश ६४ हज़ार कोस और मध्य भाग ४ हज़ार कोस का है। इसके चारों ओर मंदर, मेरु मंदर, सुपार्श्व और कुमुद नामक चार आश्रित पर्वत हैं। इनमें से प्रत्येक की ऊँचाई और फैलाव ४० हज़ार कोस है। इन चारों पर्वतों पर आम, जामुन, कदंब और बड़ के पेड़ हैं जिनमें से प्रत्येक की ऊँचाई चार सौ कोस है। इनके पास ही चार हृद भी हैं जिसमें पहला दूध का, दूसरा मधु का, तीसरा ऊख के रस का और चौथा शुद्ध जल का है। चार उद्यान भी हैं जिनके नाम नंदन, चैत्र रथ, वैभ्राजक, और सर्वतोभद्र हैं। देवता इन उद्यानों में सुरांगनाओं के साथ विहार करते हैं। मंदार पर्वत के देवच्युत वृक्ष और मेरु पर्वत के जंबू वृक्ष के फल बहुत स्थूल और वृहदाकार होते हैं। इनसे दो नदियाँ—अरुणोदा और जंबू (नदी) बन गई हैं। जंबू नदी के किनारे की ज़मीन की मिट्टी तो रस से सिक्त होने के कारण सोना ही हो गई है। सुपार्श्व पर्वत के महाकदंब वृक्ष से जो मधु धारा प्रवाहित होती है, उसका पान करने वाले के मुँह से निकली हुई सुगंध चार सौ कोस तक जाती है। कुमुद पर्वत का वट वृक्ष तो कल्पतरु ही है। यहाँ के लोग आजीवन सुख भोगते हैं। सुमेरु के पूर्व जठर और देवकूट, पश्चिम में पवन और परियात्र, दक्षिण में कैलाश और करवीर गिरि तथा उत्तर में त्रिशृंग और मकर पर्वत स्थित हैं। इन सब की ऊँचाई कई हज़ार कोस है। सुमेरु पर्वत के ऊपर मध्य भाग में ब्रह्मा की पुरी है, जिसका विस्तार हज़ारों कोस है। यह पुरी भी सोने की है। नृसिंह पुराण के अनुसार सुमेरु के तीन प्रधान शृंग हैं जो स्फटिक, वैदूर्य और रत्नमय हैं। इन शृंगों पर २१ स्वर्ग हैं जिनपर देवता निवास करते हैं।

सुमेरु पर्वत का पुत्र 'त्रिकूट' नाम से विख्यात है जिस पर रावण की लंका बसी हुई थी। वामन पुराण के अनुसार 'त्रिकूट' क्षीरोद समुद्र में स्थित है जिस पर देवर्षि, विद्याधर, किन्नर तथा गंधर्व क्रीड़ा करते हैं। इसकी एक चोटी सोने की है जिस पर सूर्य आश्रित है, दूसरी चाँदी की है जिस पर चन्द्र आश्रित और तीसरी हिम से आच्छादित है। नास्तिकों को यह पर्वत नहीं दिखाई देता।

रासो में अनेक हिन्दू योद्धाओं को वीर-गति पाने के उपरान्त सुमेरु की परिक्रमा करने वाला अर्थात् सूर्य-लोक में स्थान पाने वाला वर्णन किया गया है।

सुरग [< सं० स्वर्ग]—हिन्दुओं के सात लोकों में से तीसरा लोक जो ऊपर आकाश में सूर्य-लोक से लेकर ध्रुव-लोक तक माना जाता है। किसी-किसी पुराण के अनुसार यह सुमेरु पर्वत पर है। देवताओं का निवास स्थान यही स्वर्ग-लोक माना गया है और कहा गया है कि जो लोग अनेक प्रकार के पुण्य और सत्कर्म करके मरते हैं, उनकी आत्मायें इसी लोक में जा कर निवास करती हैं। यज्ञ, दान आदि जितने पुण्य कार्य किये जाते हैं, वे सब स्वर्ग की प्राप्ति के उद्देश्य से ही किये जाते हैं। कहते हैं कि इस लोक में केवल सुख ही सुख है, दु:ख, शोक, रोग, मृत्यु आदि का यहाँ नाम तक नहीं है। जो प्राणी जितने ही अधिक सत्कर्म करता है, वह उतने ही अधिक समय तक इस लोक में निवास करने का अधिकारी होता है। परन्तु पुण्यों का क्षय हो जाने अथवा अवधि पूरी हो जाने पर जीव को फिर कर्मानुसार शरीर धारण करना पड़ता है और यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक उसकी मृत्यु नहीं हो जाती। यहाँ अच्छे-अच्छे फलों वाले वृक्षों, मनोहर वाटिकाओं और अप्सराओं आदि का निवास माना जाता है। स्वर्ग की कल्पना नरक की कल्पना के बिलकुल विरुद्ध है।

प्राय: सभी धर्मों, देशों और जातियों में स्वर्ग और नरक की कल्पना की गई है। ईसाइयों के अनुसार स्वर्ग ईश्वर का निवास स्थान है और वहाँ फ़रिश्ते और धर्मात्मा लोग अनन्त सुख भोग करते हैं। मुसलमानों का स्वर्ग 'बिहिश्त' कहलाता है। मुसलमान लोग भी बिहिश्त को ख़ुदा और फ़रिश्तों के रहने की जगह मानते हैं और कहते हैं कि दीनदार लोग मरने पर वहीं जायँगे। उनका बिहिश्त इन्द्रिय सुख की सब प्रकार की सामग्री से परिपूर्ण कहा गया है। वहाँ दूध और शहद की नदियाँ तथा समुद्र हैं, अंगूरों के वृक्ष हैं और कभी वृद्ध न होने वाली अप्सरायें हैं। यहूदियों के यहाँ तीन स्वर्गों की कल्पना की गई है।

संकेताक्षर

अ० = अरबी

अप० = अपभ्रंश

उ० = उदाहरणार्थ

ए० बी० ओ० आर० आई० = अनल्स आव दि भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट

ए० एस० बी० = एशियाटिक सोसाइटी आ[illegible] गाल

ए० ए० कृ० को० ए० को० को० ए० कृ०	नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा पाठ मिलान के लिए पृथ्वीराजरासो की भिन्न-भिन्न स्थानों से आई हुई प्रतियों के लिए सांकेतिक शब्द

गु० = गुजराती

गौ० ही० ओ० = गौरीशंकर हीराचंद ओझा

छं० = छन्द

जे० आर० ए० बी० बी० एस = जर्नल आव दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बाम्बे ब्रांच

जे० आर० ए० एस = जर्नल आव दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (लंदन)

जे० आर० ए० एस० बी = जर्नल आव दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल

जे० ए० एस० बी० = जर्नल आव दि एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल

डॉ० = डॉक्टर

तु० = तुर्की

दे० = देखिये

ना० प्र० प० = नागरी प्रचारिणी पत्रिका

ना० प्र० सं० = नागरी प्रचारिणी संस्करण

ना० प्र० स० = नागरी प्रचारिणी सभा

प० = पश्तो

पा० = पालि

पु० = पुल्लिंग

पृ० = पृष्ठ
पृ० रा० = पृथ्वीराजरासो
प्रा० = प्राकृत
प्रोसी० = प्रोसिडिंग्ज़
फा० = फारसी
ब० व० = बहु वचन
म० म० = महामहोपाध्याय
रू० = रूपक
वि० वि० = विशेष विवरण
वि० वि० प० = विशेष विवरण परिशिष्ट में
सं० = संस्कृत
स० = समय
हा० = ह्योर्नले
हिं० = हिंदी
हिं० श० सा० = हिंदीशब्दसागर

विशेष चिंह

>यह चिह्न पूर्वरूप से पररूप के परिवर्तन को बताता है, जैसे सं० त्रीणि > प्रा० तिण्ण > हिं० तीन

<यह चिह्न पररूप से पूर्वरूप के परिवर्तन को बताता है, जैसे हिं० तीन < प्रा० तिण्णि < सं० त्रीणि

√ यह धातु का चिह्न है, जैसे सं० √धृ ।

अनुक्रमणिका भाग १

अनुक्रमणिका भाग २

सहायक ग्रन्थ, शिलालेख, पत्रिका आदि

अग्निपुराण. व्यास

अथर्ववेद

अपभ्रंश काव्यत्रयी. जिनदत्तसूरि, संपादक लालचन्द्र भगवानदास गांधी

अपभ्रंश स्टडियन (जर्मन). डा० एल० आल्सडोर्फ

अफ़ग़ानिस्तान. हैमिल्टन ऐंगस

अफ़ग़ानिस्तान. मुहम्मद हबीब

अफ़ग़ानिस्तान. गोडार्ड (पेरिस)

अफ़ग़ानिस्तान. जमालुद्दीन अहमद और मुहम्मद अब्दुल अजीज़

अमर सुबोधिनी भाषा टीका

असली पृथ्वीराज रासो. म० म० पं० मथुराप्रसाद दीक्षित

आईने अकबरी. अबुल फ़ज़ल, अनु० ब्लाकमैन

आनंदरामायण

आबूरास

आर्केलाजिकल सर्वे आव इण्डिया

आल्हखंड. जगनिक

इण्डियन एँटीक्वैरी

इतिहास काव्य (शिलालेख)

ईशावास्योपनिषद्

ईस्ट इण्डिया गज़ेटियर. वाल्टर हैमिल्टन

उत्तरपुराण. गुणभद्र

उत्तररामचरित. भवभूति

उदयपुर राज्य का इतिहास, म० म० पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा

उपदेशरसायनरास. जिनदत्त सूरि

ऊंदररासो

ऋग्वेद

एपिग्राफ़िया इण्डिका

एनल्स ऐंड एँटीक्विटीज़ आव राजस्थान. कर्नल टॉड, (क्रुक संस्करण, कलकत्ता)

एशियाटिक जर्नल

ऐंशियंट हिस्ट्री आव मथुरा. एफ० एस० ग्राउज़

ओल्ड लाहौर. गोल्डिंग

दि ओशेन आव स्टोरीज़. टानी

कछूलीरास

कथाप्रकाश

कथारत्नाकर

कथासरित्सागर. सोमदेव

करहिआ रौ रायसौ

कल्किपुराण

कविदर्पणम्. (अज्ञात), ए० बी० ओ० आर० आई० तथा जयदामन. सं० एच० डी० वेलणकर

कालिकापुराण

कादम्बरी. बाणभट्ट

कान्हडदेप्रबन्ध

कामसूत्र. वात्सायन

कायमरासा. कविजान

काव्यादर्श. आचार्य दंडी

काव्यानुशासनम्. वाग्भट

काव्यानुशासनम्. आचार्य हेमचन्द्र

काव्यालंकार. आचार्य रुद्रट

किरातार्जुनीयम्. भारवि

कीर्तिलता. विद्यापति

कुमारपालरास. ऋषभदास

कुमारसंभव. कालिदास

क़ुरान

कूर्मपुराण

केनोपनिषद् (तलवकार उपनिषद्)

कोशोत्सव स्मारक संग्रह. सं० म० म० पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा

खटमलरास

खरतरगच्छपट्टावली

खुमानरासो. दलपति विजय

गंगालहरी (राजस्थानी)
गंभीरी नदी का शिलालेख
गयसुकुमालरास. देल्हण
गाथालक्षणम्, नंदिताढ्य
ग्रामर आव दि हिंदी लैंग्वेज. रेवरेंड डॉ० एस० एच० केलाग
गिरिनाररास
गुलबकावली
गोतमरास
गोधारासो
चंडीपाठ
चंद वरदायी और उनका काव्य. विपिन विहारी त्रिवेदी
चंदनबालारास. कवि आसगु
चरलू के शिलालेख
चर्चरी. जिनदत्तसूरि
चीरवे के मंदिर के शिलालेख
चौहानों के ऐतिहासिक काव्य की शिलायें
छन्दः कोशः. रत्नशेखर सूरि
छन्दः प्रभाकर. पं० जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'
छन्दार्णवपिङ्गल. भिखारीदास
छन्दोऽनुशासशन्. आचार्य हेमचन्द्र
छत्रप्रकाश. गोरेलाल
छत्रसालरासो. डूँगर सी
जंगनामा. श्रीधर
जंबूकुमाररास. ज्ञानविमल सूरि
जंबूस्वामीरास
जर्नल आव दि अमेरिकन ओरियंटल सोसाइटी
जर्नल आव दि पंजाब हिस्टारिकल सोसाइटी
जर्नल आव दि बांबे ब्रांच आव दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी
जर्नल आव दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल
जर्नल आव दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ग्रेट ब्रिटेन
जातक (ज्योतिष)
जिओग्राफी आव टालमी

जिओग्राफी आव ऐंशियंट इंडिया. जार्ज कनिंघम अब्राहम
जीवदयारास. कवि आसगु
जैन सिद्धांत भास्कर (पत्रिका)
टॉड राजस्थान (हिंदी). पं० रामगरीब चौबे
टामस क्रानिकल्स
डाइनेस्टिक हिस्ट्री ऑव इंडिया. डॉ० हेमचन्द्र राय
डूँगरपुर की ख्यात
डूँगरपुर राज्य का इतिहास. म० म० पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा
ढोला मारू रा दूहा. सं० पं० सूर्यकरण पारिक
णायकुमार चरिउ. पुष्फदंत
तबकाते नासिरी. हसन निज़ामी
ताजुल म आसिर. मिनहाजुस्सेराज
तैत्तरीय आरण्यक
थूलिभद्दफागु. जिनपद्म सूरि
दशार्णभद्ररास
द्रव्यगुणपर्ययरासा. यशोविजय
नवसाहसांकचरित
नष्टजन्मांगदीपिका
नागरी प्रचारिणी पत्रिका
नादेसमाँ के शिलालेख
नारदपुराण
नृसिंहपुराण
नैषधीयचरितम. श्री हर्ष
पउमचरिउ. पुष्पदंत
पद्मावत. मलिक मुहम्मद जायसी, सं० पं० रामचन्द्र शुक्ल
परमालरासो (अज्ञात)
पाक्षिकवृत्ति
पिङ्गलछन्दःसूत्रम्
पीटसर्न की तीसरी रिपोर्ट
पुरातनप्रबन्धसंग्रह. सं० मुनिराज जिनविजय
पृथ्वीराज चरित्र. बाबू रामनारायण दूगड़
पृथ्वीराजरासो. चंदबरदाई, नागरी प्रचारिणी संस्करण

पृथ्वीरायविजयमहाकाव्यम्. जयानक
प्रबन्धकोष
प्रबन्धचिंतामणि. आचार्य मेरुतुंग, सं० मुनिराज जिनविजय
प्रभावकचरित. हेमचन्द्रसूरि
प्राकृतपैङ्गलम. संस्करण एशियाटिक सोसाइटी आव बङ्गाल
प्राचीन गुर्जरकाव्य संग्रह
प्रिलिमिनरी रिपोर्ट आन दि आपरेशन इन सर्च आव मैनुसक्रिप्ट्स आव बार्डिक क्रनिकल्स. म० म० पं० हरप्रसाद शास्त्री
प्राकृतप्रकाश. वररुचि
प्रेमी अभिनंदन ग्रंथ
पैराडाइज लास्ट. जॉन मिल्टन
फिरिश्ता. ब्रिग्ज़
बिब्लिओथेका इंडिका (एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल) संख्या १६२ (जान बीम्स), २२४, ४५२ (रुडोल्फ ह्योर्नले)
बुद्धिरास. शलिभद्र सूरि
बुद्धिरासो. जल्ह
बृहतकथा. गुणाढ्य
ब्रह्मवैवर्त्तपुराण
ब्रह्मांडपुराण
भरतेश्वर बाहुबलिरास. शालिभद्र सूरि
भविष्यपुराण
भविसयत्तकहा. धणवाल, सं० दलाल और गुणे
भावप्रकाशनम. शारदातनय
मत्स्यपुराण
मनुस्मृति
मरुभारती (पत्रिका)
महापुराण. पुप्फदंत
महाभारत. व्यास
माकड़रासो. कवि कान्ह
माडर्न रिव्यू (पत्रिका)
माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान. जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन
मार्कंडेयपुराण

मुंजरास (अज्ञात)
मुक्तावलिरासा. जीवंधर
मुहूर्त चिंतामणि. राम दैवज्ञ
मैनुअल आव बुद्धिज्म. स्पेंस हार्डी
यजुर्वेद
रंभामंजरी (नाटिका)
रघुनाथ रूपक गीताँ रो. मंछाराम
रजतजयंतीअभिनंदनग्रंथ (काशी विद्यापीठ)
रतनरासौ. कुंभकर्ण साँदू
राउ जैतसी रौ रासौ (अज्ञात)
राजतरंगिणी. कल्हण, सं० स्टेन कोनो
राजपूताना का इतिहास. म० म० पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा
राजप्रशस्ति महाकाव्य
राजविलास. कवि मान
राजस्थान (दो भाग). कर्नल टॉड
राजस्थान का पिंगल साहित्य. पं० मोतीलाल मेनारिया
राजस्थानभारती (पत्रिका)
राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज. (प्रथम भाग) पं० मोतीलाल मेनारिया, (द्वितीय भाग) श्री अगरचंद नाहटा
राजस्थानी (पत्रिका)
राजस्थानी भाषा और साहित्य. पं० मोतीलाल मेनारिया
राणारासो. दयालदास सिंढायच
रामचन्द्रिका. केशवदास
रामचरितमानस. तुलसीदास
रामायण. वाल्मीकि
रामरासो. माधवदास दधवाड़िया
रासमाला (दो भाग). फोर्बस
रासविलास. रसिक राय
रासोसार. नागरीप्रचारिणी सभा
रूपदीप पिंगल (हस्तलिखित ग्रंथ, एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल) जयकृष्ण
रेवंतगिरिरास

दि रेशेज़ आव नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज़. इलियट, (सं० जान बीम्स)
ललितविग्रहराजनाटक
लाहौर. लतीफ़ सय्यद मुहम्मद
लाहौर डायरेक्टरी
लिंगपुराण
लीलावई. कइ कोऊहल, सं० डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये
वंशभास्कर. सूर्य्यमल्ल मिश्रण
वस्तुपालतेजपालरास
वाजसनेयीसंहिता
वामनपुराण
वायुपुराण
विक्रमांकदेवचरितम्. बिल्हण
विगिन्स ट्रैवेल्स
विजयपाल रासो. नल्लसिंह भट्ट
विज़िट टु ग़ज़नी काबुल ऐन्ड कंधार. जी० टी० विगने
विद्यापति-पदावली. पं० रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी
वियना ओरियंटल जर्नल
विष्णुपुराण
वीर सतसई. सूर्य्यमल्ल मिश्रण
वीसलदेव रासो. नरपति नाल्ह, सं० सत्यजीवन वर्मा
वृत्तजातिसमुच्चयः. विरहांक
वृत्तरत्नाकर
बृहतकथाकोष. हरिषेणाचार्य, सं० डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये
बृहतसंहिता
वेलिक्रिसनरुक्मिणी री, पृथ्वीराज राठौर, सं० डॉ० एल० पी० टेसीटरी
वैतालपंचविंशतिका
व्यासस्मृति
शंकरदिग्विजय. शंकराचार्य
शिलालेख सं० १३७७ वि० अचलेश्वर का मंदिर आबू
शिवराजभूषण. भूषण
शिवपुराण
शिशुपालवध. माघ

शीघ्रबोध. काशीनाथ भट्टाचार्य
शोधपत्रिका (उदयपुर)
श्रीमद्भागवत (पुराण). व्यास
श्रीस्वयम्भू: छन्द:. स्वयम्भुदेव
श्रेणिकरास
संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी और श्री नामवरसिंह
संदेशरासक. अद्दहमाण, सं० मुनिराज जिनविजय
संस्कृत टेक्सट्स. जे० म्योर
सगतसिंह रासो. गिरधरचारण
समरसिंहरास
समराइच्चकहा, हरिभद्र, सं० डॉ० हरमन जाकोबी
सरस्वती (पत्रिका)
सामुद्रिक शास्त्र
साहित्य जिज्ञासा. प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल
साहित्यसंदेश (पत्रिका)
साहित्यदर्पण. कविराज विश्वनाथ
सिद्धान्त और अध्ययन (दो भाग). बाबू गुलाबराय
सुजानचरित्र. सूदन
सुर्जनचरित्रमहाकाव्य. चन्द्रशेखर
सुधा (पत्रिका)
सूरजप्रकाश
स्कंदपुराण
हम्मीरमहाकाव्य. नयचन्द्रसूरि
हम्मीररासो. जोधराज
हम्मीरहठ. चन्द्रशेखर बाजपेयी
हरिवंशपुराण
हर्षचरित. बाणभट्ट
हिन्दी-अनुशीलन (पत्रिका)
हिन्दी-नवरत्न. मिश्रबंधु
हिन्दी भाषा का इतिहास. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
हिन्दी-शब्द-सागर
हिन्दी-साहित्य. बाबू श्यामसुन्दर दास

हिन्दी-साहित्य. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी-साहित्य का आदिकाल. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास. डॉ० रामकुमार वर्मा
हिन्दी-साहित्य का इतिहास. पं० रामचन्द्र शुक्ल (संस्करण सं० २००३ वि०)
हिन्दुस्तानी (पत्रिका). हिन्दुस्तानी एकेडेमी
हिन्दू ट्राइब्स ऐन्ड कास्टस. शेरिंग
हिम्मतबहादुरविरुदावली. पद्माकर
हिस्ट्री आव अफ़ग़ानिस्तान. मैकमून
हिस्ट्री आव अफ़ग़ानिस्तान. मैलेसन
हिस्ट्री आव अफ़ग़ानिस्तान. वाकर
ए हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर (दो भाग). एम० विंटरनिटज़
हिस्ट्री आव इण्डिया. विंसेंट स्मिथ
हिस्ट्री आव इण्डिया ऐज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरिअन्स. इलियट ऐंड डासन
हिस्ट्री आव कन्नौज. डॉ० रामशंकर त्रिपाठी
हिस्ट्री आव मेडीवल हिंदू इंडिया. सी० वी० वैद्य
हिस्ट्री आव दि राइज़ आव दि महोमेडन पावर इन इण्डिया. ए०बी० एम० हबीबुल्ला
हिस्टारिकल ग्रामर आव अपभ्रंश. जी० वी० तगारे
हेमशब्दानुशासनम्. आचार्य हेमचन्द्र

शुद्धि-पत्र (भाग १)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१४	डपोरशंख	ढपोरशंख
४	१०	पांड्या	पंड्या
१३	२४	देवगिरि	शशिवृता
,,	३०	पूवक	पूर्वक
१४	३	यामंगं	स्यामंगं
२६	५	अनुसाशन	अनुशासन
३३	३२	परन	परन्तु
३६	१७	डुककर	डुक्कर
३७	३१	अष	अष्ट
४०	७	काब्य	काव्य
४६	३१	छै	आठ
४८	७	शिव	हरि
५३	२०	बन्दी	वन्दी
,,	२१	बन्दी	वन्दी
६४	४	ूर	सूर
६६	५	श्रतबिय	श्रुतबिय
,,	१६	नहीं	नहीं
६७	८	विस्तरिथ	विस्तरिय
६६	२१	काब्यों	काव्यों
७१	१२	तिनैं	तिनैं
८०	१६	बग्ग	षग्ग
८१	५	पृप्ठभूमि	पृष्ठभूमि
८८	४	वर्रान	वर्णन
६०	२	फिरयौ	फिर्यौ
६२	२	भिंगुरन	झिंगुरन
१००	२४	धुम्मिय	घुम्मिय
१०६	२	पांड्या	पंड्या
१०८	२८	श्यामलदान	श्यामलदास
११७	१६	चर्चा	चर्चा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११८	१	निराकारण	निराकरण
१२०	३०	पांड्या	पंड्या
१२३	२	पष्त्रर	पष्पर
१२५	२८	मंतित्र	मंतिण
१३७	७	ह	है
१४२	६	संस्कृत - विजय	संस्कृतके - विजय
,,	६	के - चरिउ	के - चरिउ
,,	६	और - कहा	और - कहा
,,	१०	के - रासो	के - रासो
,,	१०	रास - विलास	- रास, - विलास
,,	११	और रूपक	और - रूपक
,,	३०	जिणत्वथ	जिणवत्थ
१४३	१०	अप्पनें	अप्पनें
१४५	३०	सर्ग ८	सर्ग ८, शङ्करदिग्विजय
१५५	१३	भा	भी
१६५	१६	ऐसे	ऐली
१७०	२	आय	आयो
१७४	३	िवाह	विवाह
१७६	२२	कान्तति	कान्तेति
१८५	२६	स्वी	स्त्री
१८६	४	प्रर्श	स्पर्श
,,	२७	ाढ	गाढ
,,	३३	- १६	- १६ श्रीमद्भागवत्
१६७	११	नामावर	नामवर
१६६	१	बे	वे
२०१	३०	१६०३४	१६०३-४
२०२	१	प्रतिहारों के सूर्यवंशी	उनके सूर्यवंशी
२०८	३	जबलपुर	जबलपुर)
२२०	१३	पु	पुत्र
२२१	११	क	के
२२४	३०	श्यामलदान	श्यामलदास

शुद्धि-पत्र (भाग २)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	२३		'भूषण' ने भी रेवा (नर्मदा) की चर्चा छत्रपति शिवाजी के राज्य की सीमा का उल्लेख करते हुए की है :— आवत गुसलखाने ऐसे कछु त्यौर ठाने जानो अवरंग ही के प्रानन को लेवा है रस खोट भए तें अगोट आगरे मैं सातौ चौकी डाँकि आनी घर कीन्ही हद्द रेवा है ॥७६॥ शिवराजभूषण ;
३	६	विथ्तरिय	विथ्थरिय
३	७	इप	इह
५	१४	पितिप	पिष्पि
७	२३	अगदेश	अंगदेश
१०	९	गूदेदा	गूदेदार
११	१९	लषितहू	लषित हूऔ
१४	२२	चल्लो	चल्लौ
१५	५	सिह	सिंह
,,	२४	ऐक	एक
१६	१	दूहा,	दूहा,
,,	२४	मिल्यो	मिल्यो
१८	५	धनुधर्र	धनुर्द्धर
१९	१२	यों कि	कि ये
,,	२५	चौहानों	चौहानी
२०	६	गोरी	ग़ोरी
२१	२७	भारत	भरत
,,	३१	मसरीत	मसूरति
२२	१९	गोरी	ग़ोरी
२३	१६	पूर्वार्ध	पूर्वार्द्ध
२९	५	पृथ्वीराज	पज्जून
,,	६	पज्जून	पृथ्वीराज

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०	१५	गिना	गिनौ
,,	२६	वैं	वै
३२	१७	का	रा
३४	१६	घर	धर
३६	२२	सु त के	सु ति के
३७	७	बॅधी	बँधी
,,	२३	यूथय	यूथप
४२	२१	दं	छंद
५०	२३	बचन	वचन
५२	५	काण	कोण
५३	१	फला देश	फलादेश
५६	३३	thc	the
६३	१४	तिथ्यह	तिथ्थह
६५	१८	मुगत	मुगति
६७	६	परै	पारै
७६	२	वले=	वले=लेकिन ; <वलय=घेरा, फिर।
,,	२२	चंद	चंड
,,	२६	।	)।
७७	६	पृथ्वीपति	पृथ्वीपति=
७८	२२	बन	वन
८१	८५	क	की
८५	२	सेन	सेना
८६	१	ता	तो
,,	९	गौइंद=आहुढ	गौइंद आहुढ
९२	६	०	।
९३	१५	अष्व	अष्वै
,,	२०	तत्तर	तत्तार
९९	१८	परत	परत=
११५	४	आजानुबाहु	आजानुवाहु
११८	४	सन्त	सत्त

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११८	६	ग्रेहं	ग्रेहं
१२२	४	वंधु	वंधु
१२३	२२	Pastt ense	Past tense
१२४	३६	हमहि	हमसि
१२६	२६	।	। [
१२८	३०	लग	लगा
१३०	६	ढूँढ़ने	ढूँढ़ने
१३२	३०	डिग्भरू	डिंभरू
१३३	३	बट्ढै	बढ्ढै
,,	४	गट्ठै	गढ्ढै
१३४	२८	खींचा	खींचा
,,	३०	रूक	रुक =
,,	३२	बट्ढै	बढ्ढै
१३७	३०	नत्यि	नत्थि
१४०	२०	सची	शची
,,	२८	ययाँ	यहाँ
१४३	११	चपि	चंपि
१५३	१६	लरवात	तलवार
१५७	३	ग़जनी	ग़ज़नी
१५८	८	घज्ज़	ग़ज्ज़
१६२	२१	सिंहासन	सिंहासन पर
,,	२३	पर	×
१६५	१४	विलगी	ख़िलजी
१६७	२१	कुमार,	कुमार—
१६६	२	उजाडने	उजाड़ने
,,	२७	आर्थ्यगण	आर्य्यगण
१७१	१	म	में
१७४	४	बैष्णव	वैष्णव
,,	१४	बाले	वाले
,,	१६	कभा	कभी